श्रीगीतगोविन्दम्

श्रील जयदेव गोस्वामी कृत

गौड़ीय वेदान्त पब्लिकेशन्स

☘ श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ जयतः ☘

श्रीजयदेव गोस्वामी विरचित

श्रीगीतगोविन्दम्

अन्वय, अनुवाद, पद्यानुवाद, श्रीपुजारी गोस्वामी कृत

बालबोधिनी टीकाका भावानुवाद सहित

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति एवं तदन्तर्गत भारतव्यापी श्रीगौड़ीय मठोंके
प्रतिष्ठाता, श्रीकृष्णचैतन्याम्नाय दशमाधस्तनवर
श्रीगौड़ीयाचार्यकेशरी नित्यलीलाप्रविष्ट
ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री
श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अनुगृहीत

त्रिदण्डिस्वामी

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी
महाराज

द्वारा सम्पादित

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

❑ **प्रकाशक :**

श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा।

❑ **प्रथम संस्करण :**

श्रीश्रीराधाष्टमी, ४ सितम्बर, २००३

❑ **प्राप्तिस्थान :**

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ, तेघरीपाड़ा, पो-नवद्वीप (प.बं.),फोन-२४००६८

२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (उ. प्र.) फोन-२५०२३३४

३. श्रीरूप-सनातन गौड़ीय मठ, वृन्दावन (उ.प्र.) फोन-२४४३२७०

४. श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ—राधाकुण्ड रोड, गोवर्धन, फोन-२८१५६६८

५. श्रीरमणबिहारी गौड़ीय मठ—बी-३ए, जनकपुरी, नई दिल्ली,फोन-२५५३३५६८

६. श्रीदुर्वाषा ऋषि गौड़ीय आश्रम—ईशापुर, मथुरा (उ.प्र.),फोन-२५५०५१०

❑

मुद्रकका नाम :

रेक्मो प्रिन्टर्स, दिल्ली

समर्पण

जिन परम कारुणिक अहैतुकी कृपालु अस्मदीय श्रीगुरुपादपद्म
नित्यलीला प्रविष्ट ॐ विष्णुपाद
श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज की
प्रेरणासे
यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, उनकी
अपनी वस्तु उन श्रीगुरुपादपद्मके
श्रीकरकमलोंमें
ही
अर्पित है।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

प्रस्तावना

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता एवं आचार्यकेशरी नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी अहैतुकी अनुकम्पासे उन्हींकी प्रीतिके लिए कविकुलतिलक श्रीजयदेव गोस्वामीकृत श्रीगीतगोविन्दका यह अभिनव संस्करण प्रकाशित हो रहा है।

किसी भी ग्रन्थको पढ़कर उसका शब्दार्थ ग्रहण करना एक बात है और गम्भीर भावार्थको समझकर उससे भलीभाँति परिचित होना एक और बात है। शब्दार्थ समझना अधिकतर सहज होने पर भी गम्भीर भावार्थ समझना उतना सहज नहीं है। जो इस ग्रन्थका अधिकारी नहीं है, उसके लिए तो भावार्थ ग्रहण करना नितान्त असम्भव है। इसीलिए सभी प्राचीन ग्रन्थोंके प्रारम्भमें अधिकारी और अनधिकारीकी बात बतलायी गयी है। किसी-किसी महानुभाव ग्रन्थकारने अनधिकारियोंको उन-उन ग्रन्थोंको पाठ करनेमें, जिसके लिए वे अनधिकारी हैं, शपथ देकर उनको पढ़नेके लिए निषेध किया है। इसका उद्देश्य क्या है? उद्देश्य और कुछ नहीं, अनधिकारी उन ग्रन्थोंको पाठकर सही अर्थ समझनेके बदले दूसरा अर्थ समझ लेंगे और परिणामस्वरूप हितके बदले अहित ही होगा। पूज्यपाद श्रीजयदेव गोस्वामीने भी अपने ग्रन्थके सर्वप्रथम मङ्गलाचरणमें ही अधिकारकी बात स्पष्ट कर दी है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनः
यदि विलास-कलासु कुतूहलम्।

मधुर–कोमल–कान्त पदावलीं
शृणु तदा जयदेव–सरस्वतीम्॥

अर्थात् उन्होंने कहा है कि श्रीहरिकी सुखद स्मृतिकी यदि मनमें इच्छा हो अथवा यदि तुम हरिका प्रीतिपूर्वक स्मरण करना चाहते हो अथवा श्रीहरिके विलास–नैपुण्यको जाननेका हृदयमें कौतूहल हो, तो तुम इस ग्रन्थका पाठ करो, अन्यथा तुम इस ग्रन्थका पाठ मत करो। मेरी यह कोमलकान्त पदावली तुम्हारे निकट जितनी भी मधुर और कोमल हो, तुम अनधिकारी इसका पाठ मत करो। यदि तुम्हारे हृदयमें कौतूहल हो और उनके रासविलासको जाननेकी इच्छा हो, तो मेरी कोमलकान्त पदावली तुम्हारे निकट बहुत ही मधुर, कोमल और अत्यन्त कमनीय विवेचित होगी।

इतना स्पष्ट करनेके बाद भी अनधिकारियोंके निकट श्रीजयदेव कवि पार नहीं पा सके। उनके मधुर एवं अलंकृत भाषाके आकर्षणके कारण वे इस ग्रन्थका पाठ करते हैं और अन्तमें उसका यथार्थ भावार्थ या मर्म ग्रहण करनेमें असमर्थ होकर अभद्रकी भाँति कविकुल चूड़ामणि श्रीजयदेवको ही गालीगलौज करते हैं। ऐसा तो होगा ही। वे तो श्रीहरिको नहीं पहचानते, वे हरिकी मधुर स्मृतिके निकट भी जाना नहीं चाहते। वे केवल स्वयंको समझते हैं। वह भी देहेन्द्रियात्मक स्वयंको समझते हैं। वे अपने शरीर और इन्द्रियोंको सुखकर समझकर उसे ही चरम सुख मानते हैं। वैसे कामके किंकर–जन श्रीजयदेव गोस्वामी द्वारा वर्णित अप्राकृत प्रेमके व्यापारको क्या समझेंगे? इसलिए परम पूज्यनीय श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीचैतन्यचरितामृतमें कहा है—

"काम प्रेम दोंहाकार विभिन्न लक्षण।
लौह आर हेम जैछे स्वरूप–विलक्षण॥

आत्मेन्द्रिय–प्रीति–इच्छा तारे बलि 'काम'।
कृष्णेन्द्रिय–प्रीति–इच्छा धरे 'प्रेम' नाम॥
कामेर तात्पर्य—निज संभोग केवल।
कृष्णसुख–तात्पर्य—प्रेम महाबल॥''

तात्पर्य यह है कि लौकिक काम और अप्राकृत प्रेम—इन दोनोंके लक्षण अलग–अलग हैं। लौकिक काम लोहेके समान है तथा अप्राकृत प्रेम सोनेके समान है। अपनी इन्द्रियोंके लिए सुखकर स्पृहाको काम कहते हैं। किन्तु श्रीकृष्णेन्द्रिय–प्रीतिको विशुद्ध प्रेम कहते हैं। केवल अपना संभोग ही कामका तात्पर्य है और श्रीकृष्णको सुखी बनाना ही महाबलवान प्रेमका उद्देश्य होता है।

श्रील कविराज गोस्वामीके इस गम्भीर आशयको कितने लोग समझनेमें समर्थ हैं? विशेषकर जो अपने इन्द्रियतर्पणमें ही सदा व्यस्त हैं, वे इसे समझ नहीं सकते हैं। इसीलिए श्रीराधाकृष्णके अप्राकृत प्रेमकी लीला भी उनके निकट कामवासनाके खेलके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यदि वे श्रीराधाजी एवं उनकी सखियोंके समान लोकधर्म, वेदधर्म, देहधर्म इत्यादिको सर्वथा त्यागकर किसीको प्रेम कर पाते, तो वे इन लीलाओंकी तत्त्वकथासे एकदिन अवश्य अवगत हो पाते; क्योंकि ऐसा होनेपर ही वे समझ सकते कि आत्मसुखकी कामना नहीं रखकर भी निस्वार्थ प्रेम किया जा सकता है।

इसी निःस्वार्थ अप्राकृत प्रेमकी शिक्षा देनेके लिए ही वैष्णव कविगण लेखनीको धारण करते हैं। कविकेशरी श्रीजयदेवने भी यही किया है; क्योंकि स्वयं–भगवान् श्रीकृष्ण इस निःस्वार्थ अप्राकृत प्रेमके वशीभूत हो जाते हैं। वे इतने वशीभूत हो जाते हैं कि जहाँ भी वे ऐसी प्रीतिकी गन्ध पा लेते हैं, वे उनके चरणोंमें गिरकर **'देहि पदपल्लवमुदारं'** कहनेके लिए भी प्रस्तुत रहते हैं। श्रीजयदेव कविकी

जीवनलीलाका अनुशीलन करने पर यह देखा जाता है कि श्रीजयदेव गोस्वामी अनन्त कोटि ब्रह्माण्डके अधीश्वर श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके मुखसे कैसे यह बात कहलावें। ऐसा सोचकर वे अत्यन्त अस्थिर और व्याकुल हो उठे। कितनी ही बार ऐसा लिखूँ, लिखूँ, अभिलाषा करके भी यह चरण (चतुर्थ) किसी प्रकार भी लिखनेमें समर्थ नहीं हुए। वे श्रीकृष्णको स्वयं-भगवान् समझते थे। इस ऐश्वर्यभावके कारण ही वे ऐसा नहीं लिख सके। किन्तु भक्तवत्सल भगवान्‌ने स्वयं उनका वेश धारणकर अपने हस्तसे स्वर्णाक्षरोंमें उस चतुर्थ चरणको "देहि पदपल्लवमुदारं" लिखकर पूरा कर दिया और साथ ही साथ अपने भक्तवात्सल्यकी बात दुंदुभिवाद्यकी भाँति सर्वत्र घोषणा कर दी।

कलिपावनावतार श्रीचैतन्य महाप्रभु गम्भीरामें बैठकर श्रीस्वरूप दामोदर एवं रामानन्दरायके साथ एकान्त निर्जन गम्भीरामें जिन कतिपय रसग्रन्थोंका रसास्वादन करके आनन्दमें विह्वल हो उठते थे, श्रीजयदेव गोस्वामीका गीतगोविन्द उनमेंसे अन्यतम एक है। श्रील कविराज गोस्वामीके मुखसे ही हम इस विषयको जानते हैं—

चण्डीदास विद्यापति, रायेर नाटक गीति
कर्णामृत श्रीगीतगोविन्द।
स्वरूप-रामानन्द-सने, महाप्रभु रात्रिदिने
गाय सुने परम-आनन्द॥

इसमें कुछ ऐसे गम्भीर भाव हैं, जिनकी हम विशेषरूपसे चिन्ता कर सकते हैं। श्रीचैतन्यमहाप्रभु स्वयं भक्तिका आचरणकर भक्तिकी शिक्षा देनेके लिए अवतीर्ण हुए हैं। वे ऐसे निर्जन और गोपनीय गम्भीरामें मात्र दो-एक अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको लेकर इन सब ग्रन्थोंका अनुशीलन—रसास्वादन क्यों करते थे? यहाँ भी उसी अधिकारकी बात कही गयी है। अधिकन्तु इन सब रसग्रन्थोंका अनुशीलन

करनेके लिए स्थानकी बात भी अभिव्यक्त हुई है। श्रीमन्महाप्रभु साधारण स्थानमें साधारण लोगोंके समाजमें जो संकीर्तन करते, वह केवल नामसंकीर्तन तथा रससंकीर्तन गम्भीरा (गुप्त–गृह) में केवल श्रीस्वरूप दामोदर गोस्वामी एवं राय रामानन्दके साथ ही करते। श्रीधाम नवद्वीपमें भी यही नियम था। वहाँ भी संकीर्तन होता था। किन्तु रातमें श्रीनिवासके घरमें द्वार बन्द करके होता था। जगद्गुरु श्रीगौराङ्गदेवकी यही सर्वश्रेष्ठ शिक्षा है। अधिकारी होकर इस ग्रन्थका गुप्तरूपसे अनुशीलन करो। इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा और प्रेमभक्तिके अधिकारी होओगे। अन्यथा भक्त और भगवान्‌के निकट अपराधी होकर तुम अधःपतित हो जाओगे। भगवान् श्रीकृष्ण शक्तिमान् हैं और श्रीमती राधिका उनकी पराशक्ति हैं।[१] श्रीराधिका एवं श्रीकृष्णकी लीला—शक्ति और शक्तिमानकी लीला है। कामगन्धहीन अप्राकृत प्रेमकी लीला है। यह बात तो बहुतसे लोग जानते हैं एवं जिन ग्रन्थोंमें यह लोकपावनी लीला लिपिबद्ध हुई है, भक्ति अनुष्ठानके अङ्गके रूपमें उसका वे अनुशीलन भी करना चाहते हैं। किन्तु संस्कृत भाषामें अनभिज्ञ होनेके कारण उसका भावार्थके साथ पाठ नहीं कर पाते। श्रीगीतगोविन्दका वर्तमान संस्करण उनके अर्थबोध और भावबोध दोनोंमें यथेष्ट सहायता करेगा।

---

[१] सच्चिदानन्द पूर्ण कृष्णेर स्वरूप।
एकई चिच्छक्ति तार धरे तिन रूप॥
आनन्दांशे ह्लादिनी सदंशे सन्धिनी।
चिदंशे संवित् जारे ज्ञान करि जानि॥
ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेमसार भाव।
भावेर पराकाष्ठा—नाम महाभाव॥
महाभाव–स्वरूपा श्रीराधा ठाकुरणी।
सर्वगुणखनि कृष्णकान्ता–शिरोमणि॥

श्रीगीतगोविन्द आजकल शिक्षित समाजमें शृंगाररसात्मक सुमधुर काव्यके रूपमें ही प्रसिद्ध है और उसके प्रणेता पूज्यपाद श्रीजयदेव गोस्वामी एक असाधारण कविके रूपमें हैं। परन्तु श्रीगीतगोविन्द काव्य होनेपर भी केवल छन्दोबद्ध रसात्मक वाक्यस्वरूप लोकप्रसिद्ध आलंकारिक काव्य नहीं है। जयदेव गोस्वामी स्वयं कवि होनेपर भी सुमधुर पदविन्यास करनेमें कुशल रचनाकार और स्वभाव विकासक केवल कविमात्र नहीं हैं। श्रीगीतगोविन्द सर्ववेदका सार एवं श्रीजयदेव गोस्वामी सर्ववेद विशारद परम साधक और सिद्ध भी हैं। पाठकगण श्रीगीतगोविन्दका पाठ करनेसे पूर्व या आरम्भमें यह देखेंगे कि ग्रन्थकारने अपने इष्टदेवताके स्मरणरूप मङ्गलाचरणमें यही लिखा है—

''राधा–माधवयो जर्यन्ति यमुनाकूले रहः केलयः।''

अर्थात् श्रीयमुनापुलिनमें श्रीराधामाधवकी गम्भीर एवं सुगूढ़ विहारलीला सर्वोपरि विराजमान हो रही है। द्वितीय श्लोकमें उनके वर्णनीय विषयका परिचय दिया है—

''श्रीवासुदेव–रतिकेलि–कथा–समेतमेतं करोति जयदेव–कविः प्रबन्धम्॥''

अर्थात् जयदेव कवि श्रीवासुदेव ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरकी परम आनन्दमय रतिविहारका अवलम्बन करके यह प्रबन्ध लिख रहे हैं। जैसा कि हमने पहले कहा है, तृतीय श्लोकमें उन्होंने इस ग्रन्थका अधिकारी भी निर्णय किया है—

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुर–कोमल–कान्त–पदावलीं
शृणु तदा जयदेव सरस्वतीम्॥

अर्थात् यदि हरि स्मरण करनेमें मनको अनुरक्त करना चाहते हो अथवा तुम्हारा मन हरिस्मरणमें अनुरक्त है और यदि उस लीलारसको आस्वादन करनेका कौतूहल हो अर्थात्

यदि एकान्तिक अभिलाषा हो तभी सुमधुर कोमलकान्त पदावलीयुक्त जयदेवके अप्राकृत काव्यका श्रवण करो। श्रीजयदेव गोस्वामीने इस अप्राकृत काव्यमें श्रीराधामाधावके अप्राकृत प्रणयका मनोज्ञ (सुन्दर) वर्णन किया है। शृंगाररसके विप्रलम्भ तथा संभोग दोनों पक्षोंका चरमोत्कर्ष इसी गीतिकाव्यमें दृष्टिगोचर होता है। कविकी मान्यता यह है कि विप्रलम्भ द्वारा परिपुष्ट संभोग शृंगार-रसिक, सिद्ध-महापुरुषों एवं भक्तिसाधकोंको अधिक सुखप्रद प्रतीत होता है। अधिकारीके निर्णयके सम्बन्धमें श्रीमद्भगवद्गीताके अट्ठारहवें अध्यायके ६७-६८ श्लोकोंमें स्वयं-भगवान् श्रीकृष्णने अपने अन्तरङ्ग भक्त अर्जुनको गीताके श्रवण एवं कीर्तनका अधिकारी और अनधिकारीका उपदेश दिया है।

इदन्ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति॥

जो लोग श्रद्धालु नहीं हैं, मेरे प्रति शुद्धभक्ति नहीं है, जो अनधिकारी हैं, ऐसे लोगोंको यह मेरा अत्यन्त रहस्यपूर्ण ज्ञान और विज्ञान उन्हें श्रवण मत कराओ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

अर्थात् जो लोग मेरे इस परमगुह्यतम गीताके अत्यन्त रहस्यपूर्ण ज्ञान विज्ञानका अत्यन्त श्रद्धालु भक्तोंको श्रवण कराते हैं, इस प्रकार अन्तमें वे मुझे ही प्राप्त होते हैं। इसलिए पहले श्लोकमें अनधिकारी और दूसरे श्लोकमें अधिकारीकी बात की है। श्रीजीवगोस्वामीने भी श्रीगोपालचम्पू सुननेके लिए अनधिकारी और अधिकारीका स्पष्टरूपसे विवेचन करते हुए अनधिकारी, भक्तिरहित, श्रद्धारहित, व्यक्तियोंको उक्त ग्रन्थ पढ़नेके लिए निषेध किया है। श्रीसनातन गोस्वामीने भी बृहद्भागवतामृत नामक ग्रन्थका

श्रद्धारहित अनधिकारी व्यक्तियोंको पढ़ने-सुननेके लिए निषेध किया है। इसी प्रकार हमारे अन्यान्य गोस्वामियोंने भी स्वरचित ग्रन्थोंको न पढ़नेके लिए निषेध किया है।

श्रीगीतगोविन्दकी विषय-वस्तु

श्रीजयदेव गोस्वामीने कलियुगकी मानव प्रकृतिको भलीभाँति समझा था। उन्होंने यह समझा था कि कलियुगके मनुष्य बाह्य आवरणके सौन्दर्यको देखकर ही मुग्ध होते हैं। आवरणका सौन्दर्य नहीं देखनेसे अन्तर्निहित परम हितकर औषधकी भी अवहेलना करते हैं। इसीलिए श्रीजयदेव कविने वैष्णवोचित सब जीवोंके प्रति सदय होकर भवरोगकी एकमात्र औषधिस्वरूप एवं अप्राकृत चिन्मय रसका आस्वादन करनेके लिए अद्वितीय अवलम्बनस्वरूप अप्राकृत परम सुमधुर अपने भावोंको आपात मधुर प्राकृत-शृंगाररसके आवरणमें लपेटकर उसे काव्यके रूपमें प्रकाश किया है। पाठकगण अब अच्छी तरहसे समझ सकते हैं कि श्रुतिमें जो रस जीवके स्थिर आनन्दका हेतु निर्दिष्ट हुआ है, श्रीगीतगोविन्द उसी अप्राकृत सुमधुर रसका काव्य है। प्राकृत शृंगाररसका यह काव्य नहीं है। इसीलिए यह काव्य होने पर भी अखिल श्रुतियोंका सार स्वरूप है। रसतत्त्वविद् कविकुल-तिलक श्रीजयदेव गोस्वामीने कभी श्रीकृष्णके विरहमें श्रीराधाको उत्कृष्ट अभिमानके द्वारा ईर्ष्यान्वित किया है, कभी निदारुण दुःखसे अविश्रान्त क्रन्दन कराया है, कभी श्रीराधाके विरहमें श्रीभगवान्को भी अत्यन्त व्याकुल कर दिया है। केवल यही नहीं, स्वयं-भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरको श्रीराधाजीके चरणोंको पकड़कर 'देहि पदपल्लवमुदारं' ऐसा कहलाया है। इसीमें भक्तोंको अत्यन्त उन्नत भगवत् प्रेम और भगवान्का चूड़ान्त भक्तवात्सल्य

प्रकटित हुआ है। यही अखिल श्रुतियोंका सार स्वरूप है। श्रुतियोंने कहा है कि वे परमात्मा जिसको चाहते हैं वही उनको प्राप्त होते हैं—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥

(कठ १/२/२३)

भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दघनमूर्त्ति हैं। जीव भी सब समय केवल आनन्दका ही अनुसन्धान कर रहा है, उसे प्राप्त नहीं कर पा रहा है। किन्तु जिस दिन जीवोंका ऐसा सौभाग्य उदित होगा, उसी दिन अर्थात् जिस समय भक्तोंके अन्तर्निहित भावोंको देखकर भगवान् स्वयं अपनेको ज्ञात करा देंगे, उसी दिन अपने सौभाग्यके बलसे स्वयं आनन्द भी उनका अनुसन्धान करेगा। साधक भक्त अपने हृदयमें कृष्णाकर्षणी प्रेमभक्ति संचयकर अपने घरमें बैठा रहेगा और प्रेमलोलुप आनन्दमय श्रीकृष्ण उसके निकट जानेके लिए परम व्याकुल हो उठेंगे। अपराधीकी भाँति अनुनय विनय करेंगे—देहि पदपल्लवमुदारं। यही निखिल श्रुतियोंका सार स्वरूप है। श्रुतियाँ कहती हैं—ब्रह्म जितना निकट है उतना दूर भी है।

श्रीगीतगोविन्दके काव्य–तत्त्वकी आलोचना

श्रीजयदेव कविने इस मधुर–काव्यमें गान्धर्व–विद्याका कौशल, ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके चिन्तन–स्मरणका समस्त रहस्य, सम्भोग और विप्रलम्भ दोनों प्रकारके श्रृंगाररसका विस्तृत विवेचन तथा काव्य–प्रणयकी प्राचीन पद्धति, सभीका मणिकाञ्चन न्यायसे सन्निवेश किया है। उन्होंने स्वयं कहा है—'सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः' (१२/२४/११) इस चतुर्थ चरणका यह भी अभिप्राय है कि इन समस्त

वस्तुओंका पूर्णतः शुद्धरूप इस गीतगोविन्द काव्यमें ही एकमात्र उपलब्ध हो सकता है। अतएव विद्वानोंको चाहिए कि वे इस काव्यको भलीभाँति परीक्षण करके देखें और जानें भी। श्रीजयदेव कविको इस बातका दृढ़ विश्वास है कि श्रीगीतगोविन्द-काव्यके माधुर्यके सामने अंगूरकी मदिरा, चीनीकी मिठास, पके आम्रफल तथा कामिनीके अधररस—ये सब उपेक्षणीय हैं; क्योंकि इस शृंगारकाव्यमें शृंगाररसका सम्पूर्ण सार समाविष्ट है।

साध्वी! माध्वीक चिन्ता न भवति भवति शर्करे! कर्कशासि,
द्राक्षे! द्रक्ष्यन्ति के त्वाममृत! मृतमसि क्षीर! नीरं रसस्ते।
माकन्द! क्रन्द कान्ताधर! धर न तुलां गच्छ यच्छन्ति भावं,
यावच्छृङ्गाररसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः॥

इस काव्यमें श्रीजयदेव गोस्वामीने विभिन्न छन्द, रस अलंकार और औचित्योंका सन्निवेश किया है। श्रीराधामाधव-विलासका मधुर गायन ही कविका प्रमुख ध्येय है। इस काव्यकी चौब्बीस अष्टपदियोंके माध्यमसे कविने संगीतशास्त्र तथा रसशास्त्रके अपने गहन अध्ययनका विशद् परिचय दिया है। प्रत्येक अष्टपदीके भिन्न-भिन्न राग और ताल हैं। लगता है कि श्रीराधामाधवके सम्भोग और वियोगका कविने समाधिकी स्थितिमें साक्षात्कार किया है।

गीतगोविन्दमें प्रवेश-प्रणाली

कविवर श्रीजयदेव गोस्वामीने श्रीकृष्णके साथ श्रीराधाके सम्मिलनमें एक सखीको मध्यवर्तिनी रखा है। सखीके अनुगत हुए बिना तथा उनकी सहायता प्राप्त किये बिना श्रीकृष्णको प्राप्त नहीं किया जा सकता। यही समस्त भक्तिशास्त्रोंका सिद्धान्त है। सखीकी सहायता और गुरुकी सहायता एक ही बात है। गुरु होनेके लिए सखीभाव

अवलम्बन करना होता है और श्रीकृष्णको पानेके लिए सखीभावापन्न सद्‌गुरुका आश्रय ग्रहण करना होता है। यही अखिल श्रुतियोंका सार है। श्रुतियोंने कहा है—

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥

(श्रीमद्भागवत ११/३/२१)

अर्थात् ब्रह्मको जाननेके लिए ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरुका आश्रय करना होता है। नैमिषारण्य नामक पुण्यारण्यमें श्रीसूत गोस्वामीने श्रीमद्भागवतका पाठ करते समय श्रीमद्भागवतको ही अखिल श्रुतिसार बताया है। श्रीमद्भागवतका सार रासलीला है। सारदर्शी कविवर श्रीजयदेव गोस्वामीने कृपापरवश होकर उसी सारादपि सार श्रीमद्भागवतोक्त श्रीरासलीलाको निचोड़कर गागरमें सागर भरकर कलिजीवोंकी स्वतः प्रवृत्तिके लिए श्रीगीतगोविन्द नामक काव्यामृतको प्रकाश किया है। श्रीशुकदेव गोस्वामीने परीक्षित महाराजके प्रश्नके उत्तरमें कहा था—

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीड़ा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥

अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए इस प्रकारकी लीलाएँ प्रकाश करते हैं। शृंगाररस-प्रिय अभक्त भी इसे सुनकर क्रमशः श्रीकृष्ण-परायण होंगे। इसके द्वारा यह समझा जा सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णने भक्त-अभक्त सभीके प्रति कृपावश होकर इस प्रकार शृंगारप्रिय लीलाको धरणीतल पर प्रकट की है। महर्षि वेदव्यासने सबके प्रति कृपा-परवश होकर उसको लिपिबद्ध किया और परमभक्त श्रीशुकदेव गोस्वामीने भी कृपा-परवश होकर ही पृथ्वीपर इसका प्रचार किया है। उसके पश्चात् कविवर जयदेव गोस्वामीने भी कृपा-परवश होकर और भी मधुरतर काव्यके आकारमें उसे प्रकाशित किया है। श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीरायरामानन्द संवादमें

श्रीरामानन्दके मुखसे श्रीमन्शचीनन्दन गौरहरिके प्रश्नोंके उत्तरमें कहा है—

प्रभु कहे,—'साध्यवस्तुर अवधि' एइ हय।
तोमार प्रसादे इहा जानिलूँ निश्चय॥
'साध्यवस्तु' 'साधन' बिना केह नाहि पाय।
कृपा करि कह, राय, पावार उपाय॥
राय कहे,—जेइ कहाओ, सेइ कहि वाणी।
कि कहिये भाल–मन्द, किछुइ ना जानि॥
त्रिभुवन–मध्ये ऐछे हय कोन धीर।
जे तोमार माया–नाटे हइबेक स्थिर॥
मोर मुखे वक्ता तुमि, तुमि हओ श्रोता।
अत्यन्त रहस्य, शुन, साधनेर कथा॥
राधाकृष्णेर लीला एइ अति गूढ़तर।
दास्य–वात्सल्य–भावे ना हय गोचर॥
सबे एक सखीगणेर इहा अधिकार।
सखी हइते हय एइ लीलार विस्तार॥
सखी बिना एइ लीला पुष्ट नाहि हय।
सखी लीला विस्तारिया, सखी आस्वादय॥
सखी बिना एइ लीलाय अन्येर नाहि गति।
सखीभावे जे ताँरे करे अनुगति।
राधाकृष्ण–कुञ्जसेवा–साध्य सेइ पाय।
सेइ साध्य पाइते आर नाहिक उपाय॥

तात्पर्य यह है कि श्रीराय रामानन्दके मुखसे साध्य वस्तुके सम्बन्धमें सुनकर श्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा—"यहीं तक साध्य वस्तुकी सीमा और अवधि है। तुम्हारी कृपासे मैं यह सब अच्छी तरहसे जान गया। किन्तु यह अत्यन्त गम्भीर साध्य-वस्तु बिना साधनके कोई नहीं पा सकता। हे राय! आप कृपा करके इसको प्राप्त करनेका उपाय बतलाइये।" रायजीने कहा—"आप जो कुछ हमारे हृदयमें

प्रेरणा करते हैं, वही मैं कहता हूँ। इसमें अच्छा या बुरा मैं क्या कह रहा हूँ, कुछ नहीं जानता? कौन ऐसा धीर व्यक्ति है, जो आपकी मायाके नृत्यमें स्थिर रह सके। अतएव मेरे मुखसे आप ही वक्ता हैं और आप ही श्रोता हैं। यह अत्यन्त रहस्यकी बात है। अब मैं उस अत्यन्त गूढ़ साधनकी बात बतला रहा हूँ। श्रीराधाकृष्णकी यह कुञ्जलीला—रासलीला अत्यन्त गम्भीर है। दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भाववाले भक्तोंको भी यह लीला दृष्टिगोचर नहीं होती। इसमें उनका भी प्रवेशाधिकार नहीं है। एकमात्र सखियोंका ही इसमें अधिकार है। सखीसे इस लीलाका विस्तार होता है। सखीके बिना यह लीला पुष्ट नहीं होती। सखियाँ इस लीलाको विस्तार करती हैं और वे ही इसका आस्वादन करती हैं। इसलिए सखीकी सहायताके बिना, उनका आश्रय लिये बिना इस लीलामें प्रवेश करनेका और कोई भी उपाय नहीं है। जो सखियोंके भावोंका अनुसरण करते हैं, उनके आनुगत्य और आश्रयमें रहकर भजन करते हैं, केवल वे ही श्रीराधाकृष्णकी कुञ्जसेवाको प्राप्त हो सकते हैं। इस साध्यको पानेके लिए सखीके पदाश्रय और उनके स्मरणके बिना कोई दूसरा उपाय नहीं है।”

श्रीजयदेव कविका जीवन चरित्र

कविवर श्रीजयदेव गोस्वामीने पश्चिम बंगालके वीरभूमि जिलेमें प्रायः दस कोस दक्षिणमें अजय नदीके उत्तर भागमें स्थित केन्दुबिल्व नामक ग्राममें जन्म ग्रहण किया था। यह केन्दुबिल्व ग्राम साधारणतः केन्दुलीके नामसे ही विशेषरूपसे प्रचलित है। श्रीजयदेवके पिताजीका नाम भोजदेव और उनकी गर्भधारिणी माताका नाम वामादेवी था। श्रीजयदेव गोस्वामीने स्वयं ही कहा है—

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
केन्दुबिल्व–समुद्र सम्भव–रोहिणी–रमणेन॥

जिस प्रकार महाराज विक्रमादित्य एक परम विद्योत्साही और गुणग्राही थे, बंगाधिपति महाराज लक्ष्मणसेन भी उसी प्रकारसे विद्वान और गुणियोंका समादर करते थे। महाराज विक्रमादित्यकी सभा जैसे कालीदास, वररुचि आदि नवरत्नोंकी शोभासे अलंकृत होती थी, महाराज लक्ष्मणसेनकी सभामें उसी प्रकार गोवर्द्धनाचार्य, जयदेव इत्यादि पञ्चरत्न विराजमान थे।[१] उक्त महाराजकी सभाके द्वारदेशमें प्रस्तर फलकमें जो श्लोक लिखा गया है, उसका पाठकर यह ज्ञात होता है कि महाराज लक्ष्मणसेनकी सभामें गोवर्द्धन, शरण, जयदेव, उमापति और कविराज नामक राज–पण्डित थे। वह इस प्रकार है—

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां।
जानीते जयदेव एव शरणं श्लाघ्यो दुरुह–द्रुते॥
शृङ्गारोत्तर सत्प्रमेय–वचनैराचार्य–गोवर्द्धन।
स्पर्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कवि–क्ष्मापतिः॥

अतः श्रीगीतगोविन्दके प्रारम्भमें कवि जयदेव गोस्वामीके द्वारा लिखित इस श्लोकमें इन सभी राजपण्डितोंके नाम उल्लिखित हैं। इनमें उमापतिधर महाराजके प्रधानमंत्री थे। वे सभी पण्डितोंका समादर करते थे।

श्रीजयदेव गोस्वामीने कब जन्म ग्रहण किया, यह निर्णय करना परम दुसाध्य है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुके प्रधान शिष्य श्रीसनातन गोस्वामी द्वारा लिखित प्रमाणके अनुसार श्रीजयदेव गोस्वामीको बंगाधिपति महाराज लक्ष्मीसिंहका समकालीन व्यक्ति कहा जा सकता है। प्रामाणिक ग्रन्थोंके आधार पर

---

[१] गोवर्द्धनश्च शरणो जयदेव उमापतिः।
कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्णस्य च॥

यह कहा जाता है कि १०३० शकाब्द और ११०७ खृष्टाब्द श्रीलक्ष्मणसेनके राजत्वका समय है। इसके सम्बन्धमें डा. राजेन्द्रलाल मित्रने गभीर गवेषणा द्वारा पुष्ट प्रमाणोंके आधार पर ऐसा लिखा है। अतएव उपरोक्त प्रमाणोंके द्वारा यह प्रतिपन्न हो रहा है कि श्रीलक्ष्मणसेन द्वादश शताब्दीके व्यक्ति थे और उन्हींके समसामयिक श्रीजयदेव कवि भी द्वादश शताब्दीके होंगे, इसमें सन्देहकी कोई बात नहीं है। महाराज पृथ्वीराजके सभासद चाँदकविने अपने चौहान-राष्ट्र नामक ग्रन्थमें प्राचीन कवियोंका गुणगान किया है। श्रीजयदेव कवि एवं गीतगोविन्दका भी उसमें उल्लेख है। खृष्टीय द्वादश शताब्दीके शेषभागमें पृथ्वीराज दिल्ली नगरमें राज्य कर रहे थे। ११९३ खृष्टाब्दमें दृशद्वति नदीके तीर पर मुहम्मद गौरीके साथ युद्धमें वे मारे गये। इसके द्वारा स्पष्ट प्रमाणित हो रहा है कि चाँदकविके पूर्व ही गीतगोविन्दकी रचना हो चुकी थी। ऐसा नहीं होनेसे चाँदकवि अपने ग्रन्थमें गीतगोविन्दका नामोल्लेख नहीं कर सकते थे।

श्रीजयदेव गोस्वामीकी जीवनीके सम्बन्धमें नाभाजी भट्ट प्रणीत भक्तमाल ग्रन्थमें अनेक अद्भुत और अलौकिक घटनाओंका वर्णन है। ग्रन्थके बाहुल्यसे उन सब विषयोंका अधिक वर्णन करना अनावश्यक समझता हूँ।

श्रीजयदेव गोस्वामीको मानव-लीला सम्वरण किये हुए अनेक शताब्दियाँ बीत चुकी हैं; किन्तु आज भी उनके तिरोभावके स्मरणमें कान्दुली-ग्राममें प्रतिवर्ष माघ महीनेमें मकर-संक्रान्तिसे आरम्भ होकर एक विराट् मेला लगता है। उस मेलेमें पचास-साठ हजारसे एक लाख तक लोग सम्मिलित होकर श्रीजयदेव गोस्वामीकी समाधि मन्दिरमें उपासना करते हैं और उस समय सभी वैष्णव लोग मिलकर श्रीराधाकृष्णके मिलन विषयक श्रीजयदेव गोस्वामीके काव्यका पठन-पाठन करते हैं।

श्रीगीतगोविन्दकी टीकाएँ

श्रीगीतगोविन्दकी निम्नलिखित छह प्रसिद्ध टीकाएँ प्राप्त होती हैं—

१. रसमञ्जरी—इसके प्रणेता महामहोपाध्याय शंकरमिश्र हैं। उन्होंने इस टीकाका प्रणयन श्रीशालीनाथकी प्रेरणासे किया था।

२. रसिकप्रिया—इस व्याख्याके प्रणेता कुम्भनृपति कुम्भकरण थे। ये मेवाड़के राजा थे। इनके राज्यकालका समय ईसाकी चौदहवीं शताब्दीका प्रथम चरण माना जाता है।

३. सञ्जीवनी—इसके प्रणेता वनमाली भट्ट हैं।

४. पदद्योतनिका—इसके प्रणेता नारायण भट्ट हैं।

५. बालबोधिनी—इसके प्रणेता श्रीपुजारी गोस्वामी हैं।

६. दीपिका—इसके प्रणेता आचार्य गोपाल हैं।

इस ग्रन्थकी मूल प्रतिलिपिका संकलन श्रीमान् भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजने बड़े परिश्रमसे किया है। उन्होंने इस अभिनव संस्करणका ढाँचा प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् बेटी श्रीमती मधु खण्डेलवाल एम. ए., पीएच. डी. ने इसकी भाषाका संशोधन और अलंकृत कर मानो इसमें प्राणशक्तिका संचार किया है। यही नहीं अपितु सौभाग्यवती बेटीने बड़े परिश्रमसे इस गीतगोविन्द-ग्रन्थके दुर्लभ किन्तु अतिशय सुन्दर और भावपूर्ण श्रीविनयमोहन सक्सेना, दिल्ली निवासी द्वारा रचित पद्यानुवाद खोजकर इसमें सन्निहित किया है। इसका यह कार्य अत्यन्त सराहनीय है। श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराजजीने तथा श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी एम. ए., एल.एल.बी., साहित्यरत्नने इसका विशेषरूपसे प्रूफ-संशोधन किया है। श्रीमान् सुबलसखा ब्रह्मचारी और श्रीपुरन्दर ब्रह्मचारीने कम्प्यूटरसे इसकी प्रतिलिपि प्रस्तुत की है। विशेषतः श्रीमान् पुण्डरीक ब्रह्मचारी तथा

सौभाग्यवती वृन्दादेवीने मेरे साथ रहकर बड़े परिश्रमसे इस ग्रन्थका प्रूफ-संशोधन किया है। मैं श्रीजयदेव गोस्वामी तथा उनकी परमाराध्या श्रीराधिका एवं ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीश्यामसुन्दरके चरणोंमें प्रार्थना करता हूँ कि वे उनपर अहैतुकी कृपा करें, जिससे वे इस प्रसिद्ध काव्यके यथार्थतः अधिकारी बन सकें। शीघ्रतासे इसका प्रकाशन होनेके कारण कुछेक त्रुटियाँ रह गई हैं। कृपालु सहृदय पाठकगण इन त्रुटियोंका संशोधन कर इसके भावार्थको ग्रहण करेंगे और पत्रके माध्यमसे मुझे सूचित करेंगे, जिसका मैं अगले संस्करणमें संशोधन कर सकूँ।

फाल्गुन पूर्णिमा
५१७ श्रीगौराब्द
भारतीयाब्द १९२४,
१८ मार्च २००३ ई.

श्रीहरि-गुरु-वैष्णव कृपालेश प्रार्थी
दीनहीन
त्रिदण्डिभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

विषय—सूची

चित्र–सूची

चित्रकारोंकी सूची

१. श्रीश्याम रानी दासी (प्रमुख चित्रकार)
२. श्रीकृष्णकारुण्य दास (सहायक)
३. श्रीसत्प्रेम दास (,,)
४. श्रीगोपी दासी (,,)
५. श्रीनीलाम्बरी दासी (,,)
६. श्रीसुन्दरी दासी (,,)
७. श्रीकृष्णवल्लभ दासी (,,)
८. श्रीप्रेमानन्दी दासी (,,)
९. श्रीप्रेमवती दासी (,,)
१०. श्रीअनिता दासी (,,)

श्लोक–सूची

पृष्ठ संख्या

श

पृष्ठ संख्या

स

श्रीश्रीगुरु–गौराङ्गौ–जयतः

श्रीश्रीगीतगोविन्दम्

प्रथमः सर्गः

सामोद–दामोदरः

मेघैर्मेदुरमम्बरं वनभूवः श्यामास्तमालद्रुमै–
र्नक्तंभीरुरयं, त्वमेव तदिमं राधे! गृहं प्रापय।
इत्थं नन्दनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं
राधामाधवयोर्जयन्ति यमुनाकूले रहः केलयः ॥१॥

अन्वय—[कदाचित् बालगोपालेन सह गोष्ठस्थितो नन्दः सायं समये मेघाडम्बरमालोक्य स्वयं कार्यान्तरव्यासक्ततया नन्दनं गृहं नेतुमशक्तः किमपि कार्यमुद्दिश्य तत्रोपस्थितां राधां प्रति आह];—अम्बरं (आकाशतलं) मेघैः मेदुरं (निविड़–तमसाच्छन्नतया सान्द्र–स्निग्धं) वनभुवः (आरण्य–प्रदेशाः) तमालद्रुमैः (घनसन्निविष्टैः तमालवृक्षैः) श्यामाः (गाढ़नीलवर्णाः) [तथा च] अयं [मम शिशुः] नक्तं (सप्तम्यन्तमव्ययम्, रात्रौ इत्यर्थः) भीरुः (नितरां भयशीलः) (पूर्वरात्रे) त्वां विहाय अन्याभिः कृतरमणापराधतया त्वत्कृत–बहु–नायिकावल्लभा–रोपणाशङ्की अतएव भीरुः]; तत् (तस्मात्) हे राधे, त्वमेव इमं (बालगोपालं) गृहं (आलयं) प्रापय (नय); इत्थं (एवं) नन्दनिदेशतः (नन्दस्य आज्ञया); [अथवा नन्दयतीति नन्दः, नन्दश्चासौ निदेशश्चेति नन्दनिदेशः श्रीराधासखावचनं तस्मात्] प्रत्यध्वकुञ्जद्रुमं (कुञ्जेनोपलक्षितो द्रुमः कुञ्जद्रुमः, अध्वनः कुञ्जद्रुमोऽध्वकुञ्ज–द्रुमः, तं लक्ष्यीकृत्य तत्रेत्यर्थः) चलितयोः (प्रस्थितयोः) राधामाधवयोः यमुनाकूले रहःकेलयः (विजनविहाराः)

''हरि–राधा मदमाते। यमुन–पुलिनके कुंज–कुंजसे क्रीड़ा करते जाते।''

जयन्ति (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तन्ते)। [श्रीकृष्णस्य स्वयं भगवत्त्वेन सर्वावतारेभ्यः, श्रीराधायाश्च सर्वलक्ष्मीमयत्वेनास्य सर्वप्रेयसीभ्यः श्रैष्ठ्यात् इतिभावः; तथाचोक्तं सूतेन "एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" इति।] वृहद्–गोतमीये च–"देवी कृष्णामयी प्रोक्ता राधिका परदेवता सर्वलक्ष्मीमयी सर्वस्यान्तः–संमोहिनी परा" इति॥१॥

अनुवाद—हे राधे! समस्त दिशाएँ घनघोर घटाओंसे आच्छादित हो गई हैं। वन वसुन्धरा श्यामल तमाल विटपावलीकी प्रतिच्छायासे तिमिरयुक्ता हो गई है। भीरु स्वभाववाले कृष्ण इस निशीथमें एकाकी नहीं जा सकेंगे—अतः तुम इन्हें अपने साथ ही लेकर सदनमें पहुँचो। श्रीराधाजी, सखी द्वारा उच्चरित इस वचनका समादर करती हुईं आनन्दातिशयतासे विमुग्ध हो, पथके पार्श्वमें स्थित कुञ्ज–तरुवरोंकी ओर अभिमुख हुई और कालिन्दीके किनारे उपस्थित होकर एकान्तमें केलि करने लगीं। श्रीयुगल माधुरीकी यह रहस्यमयी लीला भक्तोंके हृदयमें स्फुरित होकर विजयी हो।

पद्यानुवाद—

मेघ भरित अम्बर अति श्यामल तरु तमालकी छाया,
कान्ह भीरु ले जा राधे! गृह, व्याप्त रातकी माया।
पा निर्देश यह नन्द महरका हरि–राधा मदमाते,
यमुन–पुलिनके कुञ्ज–कुञ्जमें क्रीड़ा करते जाते॥१॥

बालबोधिनी—गीतगोविन्द नामक इस प्रबन्धमें श्रीराधा–माधवकी ऐकान्तिकी प्रेममयी निकुञ्ज लीलाका चित्रण किया गया है। रचनाकार महाकवि श्रीजयदेव गोस्वामीने श्रीराधामाधवकी स्मरकेलि–लीलाका वर्णन कर उन दोनोंकी सर्वश्रेष्ठता स्थापित की है। ग्रन्थकृतिके प्रारम्भमें श्रीकविराजजीने तमालवृक्षके तमःपुञ्ज द्वारा समाच्छादित कुञ्ज–भवनमें श्रीराधा–माधवकी प्रविष्टिका चित्रण किया है।

परम प्रेयसी श्रीराधा अपनी सखीके वचनोंका स्मरण कर श्रीकृष्णको साथ लेकर कुञ्जमें प्रवेश कर जो सुखक्रीड़ाएँ करती हैं, उन्हींको मङ्गलाचरणके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। ग्रन्थका प्रतिपाद्य-तत्त्व श्रीराधामाधवकी लीलामाधुरी है; अतः यह प्रबन्ध सभीके लिए मङ्गलदायी और कल्याणकारी है।

'मेघैर्मेदुरमम्बरम्' इस श्लोकमें कह रहे हैं कि श्रीराधामाधवकी सर्वोत्कृष्ट रहःकेलि जययुक्त हो। 'माधव' पदके द्वारा इस कार्यकी सूचना दी गई है कि यद्यपि श्रीभगवान् लक्ष्मीपति हैं फिर भी उनका श्रीराधामें ही प्रेमाधिक्य है। श्रीकृष्ण स्वयं-भगवान् हैं, सर्व-अवतारी हैं; सभी अवतारोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; श्रीमद्भागवतमें श्रीसूतजीने ऐसा ही निर्णय किया है। श्रीबृहद्गौतमीय तन्त्रमें कहा गया है—"देवी कृष्णामयी प्रोक्ता राधिका परदेवता। सर्वलक्ष्मीमयी सर्वस्यान्तःसंमोहिनी परा।" श्रीमती राधिका द्योतमाना, परमा सुन्दरी हैं। ये कृष्णक्रीड़ाकी वसति नगरी अर्थात् आश्रय स्वरूपा हैं। कृष्णमयी—कृष्ण इनके भीतर-बाहर अवस्थित रहते हैं। निरन्तर कृष्णकी अभिलाषा पूर्ण करती हैं; समस्त देवताओंमें सर्वश्रेष्ठा हैं; समस्त लक्ष्मियोंमें परम लक्ष्मी-स्वरूपा हैं। सभीकी हृदय-स्वरूपा हैं, श्रीकृष्ण-चित्ताकर्षका हैं, परा हैं।

ये श्रीश्रीराधामाधव इस काव्य-रचनाकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके लिए अनुग्रह प्रदान करें—इस प्रकार कविके द्वारा शिष्टाचार परम्पराका निर्वाह किया गया है।

जय शब्दसे तात्पर्य है—लीलाओंका सर्वोत्कृष्ट और भक्तजनोंके द्वारा नमस्करणीय होना। ये लीलाएँ भगवान्‌की स्वरूपशक्तिकी वृत्तिरूपा हैं, अतः ये जययुक्त हों।

अब प्रश्न होता है कि कौन-सी लीलाएँ जययुक्त हों? इसके उत्तरमें कहा है—यमुनाकूले—यमुनाके तटपर अवस्थित

श्रीराधामाधवकी कुञ्जगृहकी लीला जययुक्त हों। इस पदके द्वारा रतिजनित श्रमको दूर करने वाला शिशिर समीर सम्प्राप्ति युक्तत्वको सूचित किया गया है।

यह कुञ्ज तमाल वृक्षोंके द्वारा सघन रूपसे आच्छादित होकर श्यामवर्ण हो गया है, इसको लक्ष्य करके पथका निर्देश किया गया है।

'नन्दनिदेशतः'—नन्द अर्थात् जो सबके आनन्दका विधान करते हैं। नन्दश्चासौ निदेशश्चेति—इस प्रकारसे यह नन्दमहाराजका निर्देश भी कहा जा सकता है। इस पदसे यह भी इङ्गित होता है कि जो सदासर्वदा आनन्दमें डूबे हुए हैं, उन नन्दनन्दनका निर्देश पाकर। यद्यपि 'नन्दनिदेशतः' पदके बहुत प्रकारके अर्थ बतलाये गये हैं, फिर भी उक्त पदका अभिप्राय "परम प्रेयसी श्रीराधा अपनी सखीके वचनोंको सुनकर" ही समुचित लगता है, क्योंकि महाराज नन्दका श्रीमती राधाको श्रीकृष्णके साथ कुञ्जमें विहार करनेके लिए आदेश देना कुछ अटपटा-सा रसाभास-सा प्रतीत होता है। वैसे ही स्वयं श्रीकृष्णका वैसा आदेश भी अटपटा ही प्रतीत होता है। यहाँ यही अभिप्रेत है कि सखीवचनका समादर करती हुई श्रीराधिका कृष्णको साथ लेकर चलने लगीं। सखीवचन—हे राधे! यह कृष्ण भीरु स्वभावयुक्त हैं क्योंकि पिछली रात तुम्हें छोड़कर दूसरी नायिकाके साथ मिलित हुए थे, अपने इस अपराधके कारण तुमसे डरे हुए हैं, उनका भयभीत होना स्वाभाविक ही है। तुम्हारे द्वारा लगाया गया अपराध 'बहु नायिका-वल्लभ' ठीक ही है, अब तुम ही मर्मपीड़ित श्रीकृष्णको अपनेमें प्राप्त कराओ।

'गृहं प्रापय'—हे राधे! श्रीकृष्णको लेकर गृहं प्रापय अर्थात् मञ्जु वृक्षोंसे सुशोभित केलि सदनमें प्रवेश करो, क्योंकि यही तुम्हारे लिए अनुकूल है। अथवा घरमें ले जाओ अर्थात् कुञ्जगृहमें प्रवेश कराकर गृहस्थ अर्थात्

अपनेमें मिलाकर गृहिणी मान कराओ। 'गृहं प्रापय' इस वाक्यके 'गृह' शब्दमें तटस्थ लक्षणा है और 'गृह' शब्द गृहमें रहनेवाली गृहिणीरूपी अर्थको लक्षित करता है तथा प्र-पूर्वक 'आप' धातु उदयार्थक है। 'एव' कारके द्वारा—इनकी भार्या होने योग्य केवल तुम ही हो।

यदि कोई कहे कि उनकी भार्या तो रुक्मिणी हैं क्योंकि कुण्डिन नगरवासी जनोंने रुक्मिणीको आशीर्वाद दिया था—'तुम श्रीकृष्णकी भार्या बनो।' इसी प्रकार हे राधे! तुम भी इनकी भार्या बनो, क्योंकि वह गृह, गृह नहीं जिसमें गृहिणी न हो।

श्रीराधिका सखीसे कहती हैं, इस ज्योत्स्नामयी रात्रिमें जनसमूहके मध्य होकर श्रीकृष्णके साथमें कैसे जाऊँ? तदुत्तर कविने अनुकूल समयका चयन किया है। तदनुसार—हे राधे! सम्प्रति आकाश बादलोंसे भरे हुए होनेके कारण मनोज्ञ हो गया है, जिससे चन्द्रमाकी किरणें अदृश्य हो रही हैं, श्रीकृष्णकी प्रिया-मिलनकी इच्छाको जानकर घटाओंने मानो चन्द्रमाको समाच्छादित कर लिया है। अथवा जिस प्रकार श्यामवर्णके मेघोंने गौरवर्ण चन्द्रमाका आलिङ्गन कर रखा है, उसी उद्दीपनसे विभावित हो श्रीश्याम गौराङ्गी श्रीराधासे मिलनेकी तीव्र इच्छासे उत्कण्ठित हो रहे हैं। यह समय भी अनुकूल है। रात्रिकी बेला है, वनभूमि तमाल वृक्षोंसे समाच्छादित होकर श्यामवर्ण हो गई है, चहुँओर निविड़ अन्धकार व्याप्त है, कोई तुम्हें देख नहीं सकता। डरनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार महाकविने सूचित किया है कि इस काव्यका अङ्गी-रस रसराज शृङ्गार है। अन्धकारमय रात्रिकाल, मेघाच्छादित अम्बर तथा तमाल वृक्षोंसे सुशोभित शस्यश्यामला वनभूमि—ये उद्दीपन विभाव हैं; श्रीमती राधा आलम्बन विभाव हैं। रति स्थायी भाव है। हर्ष, आवेग, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी

भाव हैं। भीरुत्व अनुभाव है। शृङ्गार-रसमें नायिकाका प्राधान्य होनेके कारण श्रीराधाजीका यहाँ पहले निरूपण हुआ है।

इस लीलाके अवसर पर सखी इस प्रकार कहेगी—चारों ओर देख सुनकर चलना उचित है—इत्यादि। इन वचनोंसे—'राधे! जब तक चन्द्र-ज्योत्स्ना दृश्यमाना नहीं होती, तब तक वनमें प्रविष्ट हो जाओ।' श्रीमद्भागवतमें श्रीशुकदेवजीने १०-३० में कहा है—'अन्धकारमय स्थानको देखकर'।

प्रस्तुत श्लोकमें जयति शब्दके द्वारा नमस्कारका बोध होता है, ऐसे काव्य-प्रकाशमें भी नमस्कार शब्दसे सूचित किया है। यहाँ श्रीराधामाधवकी रहःकेलिका जो प्रतिपादन हुआ है, उससे वस्तु निर्देश भी लक्षित होता है तथा यह आशीर्वाद स्वरूप भी है। इसलिए इसे महाकाव्य कहा जाता है।

काव्यके विषयमें चर्चा करने पर देखा जाता है कि काव्य ग्रन्थ दो प्रकारके हैं- साधारण काव्य एवं महाकाव्य। महाकाव्यके मङ्गलाचरण श्लोकमें तीन पक्षोंका वर्णन हुआ है—आशीर्वाद, नमस्कार एवं वस्तुनिर्देश। काव्यादर्शमें सर्गबन्धको महाकाव्य कहा गया है। प्रस्तुत श्लोकमें श्रीराधामाधवकी रहःकेलिका प्रतिपादन हुआ है। अतः यह वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण है, राधामाधव कहनेसे दोनोंका अविच्छिन्न नित्य सम्बन्ध प्राप्त होता है।

राधाकृष्ण दुहे एक ही स्वरूप।
लीलारस आस्वादिते धरे दुइ रूप॥

श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णित इस पयारके अनुसार श्रीराधाकृष्ण दोनोंमें अव्यभिचारी सम्बन्ध सूचित होता है। ऋक् परिशिष्टमें कहा है—राधया माधवो देवो माधवेनैव श्रीराधिका—राधाके साथ माधव एवं माधवके साथ श्रीराधिका विराजमान हैं। राधामाधव इस पदमें द्वन्द्व समासके द्वारा दोनोंका अभिन्न सम्बन्ध प्रकाशित होता है।

इस श्लोकके पूर्वार्द्धमें समुच्चयालङ्कार तथा उत्तरार्द्धमें आशीः अलङ्कार है। फलतः दोनोंकी संसृष्टि है। प्रस्तुत श्लोकमें वैदर्भी रीति, कैशिकी वृत्ति, संभाविता गीति, मध्य लय, प्रसाद गुण, अनुकूल नायक तथा स्वाधीनभर्त्तृका नायिका है। इस श्लोकके पूर्वार्द्धमें अभिलाष लक्षण विप्रलम्भ शृङ्गार है तथा शार्दूल-विक्रीड़ित छन्द है॥१॥

वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा
पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्त्ती।
श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतमेतं
करोति जयदेवकविः प्रबन्धम्॥२॥

अन्वय—वाग्देवताचरितचित्रितचित्तसद्मा (वाग्देवतायाः सरस्वत्याः चरितेन चित्रितं सुशोभितं चित्तमेव सद्म भवनं यस्य तादृशः; सर्वविद्याविशारद इत्यर्थः; यद्वा वाचां वक्तव्यत्वेन उपस्थितानां तत्केलिमयीनां देवता वक्ता प्रवर्त्तकश्च श्रीकृष्णः तच्चरितेन चित्ररूपेण लिखितं चित्तरूपं सद्म गृहं यस्य सः); [तथा] पद्मावतीचरणचारणचक्रवर्त्ती (पद्मावत्याः लक्ष्म्याः चरणयोः निमित्त भूतयोरेव चारणचक्रवर्त्ती नर्त्तकश्रेष्ठः; श्रियोऽपि प्रियसेवक इत्यर्थः); जयदेवकविः श्रीवासुदेवरतिकेलिकथासमेतं (श्रीवासुदेवस्य वासुर्नारायणः सचासौ देवश्चेति विग्रहः; श्रीवसुदेवसुतस्य वा रतिकेलिः सुरतोत्सवः तस्य कथा कीर्त्तनं तत्समेतं) एतं प्रबन्धं (ग्रन्थं) करोति॥२॥

अनुवाद—जिनके चित्त-सदनमें समस्त वाणियोंके नियन्ता श्रीकृष्णकी चरितावली सुचारु रूपसे चित्रित हो रही है, जो श्रीराधाजीके चरणयुगल प्राप्तिकी लालसामें निरन्तर नृत्यविधिके अनुसार निमग्न हो रहे हैं, ऐसे महाकवि जयदेव गोस्वामी श्रीकृष्णकी कुञ्ज-विहारादि सुरत लीला समन्वित इस गीतगोविन्द नामके ग्रन्थका प्रणयन कर भावग्राही भक्तजनोंके उज्ज्वल भक्तिरसको उच्छलित कर रहे हैं॥२॥

पद्यानुवाद—

चारु चरित 'वाणी'के चिन्तित मन-मन्दिरमें जिसके,
पद्मावती चरण-चारणसे अङ्ग-अङ्ग सिहरे जिसके।
कवि जयदेव रचित है (जिसकी मति-गति अति तल्लीना)—
वासुदेव-श्री-केलि-कथामय, यह प्रबन्ध रस-भीना॥२॥

बालबोधिनी—पूर्वश्लोकमें एक पदके द्वारा सूचित श्रीराधामाधवकी लीला स्फूर्त्तिप्राप्त होनेसे श्रीजयदेवजीका हृदय अतिशय आनन्दसे परिप्लुत हो गया है। उस आनन्दराशिके प्लावनसे प्लावित होकर महान् करुणाके पारावार कवि-चक्रवर्त्ती श्रीजयदेवजी भक्तों पर अनुग्रह प्रकाश करते हुए अपने प्रबन्ध काव्यमें अपनी समर्थता 'वाग्देवता' इति श्लोकके द्वारा अभिव्यक्त करते हुए कह रहे हैं—

जयदेवः—जय अर्थात् सर्वोत्कर्षता, देव अर्थात् द्योतयति—प्रकाशयति प्रकाश करते हैं। तात्पर्य यह है कि जो अपनी भक्तिके द्वारा श्रीकृष्णकी लीलाकी सर्वश्रेष्ठता प्रकाशित करते हैं, ऐसे श्रीजयदेवजी। साथ ही यह गीतगोविन्द नामक प्रबन्धकृति प्रकृष्ट रूपसे श्रोताओंके हृदयको आकर्षित करती है अथवा प्रकृष्ट रूपसे कृष्णलीला संसार-बन्धन मुक्त कर भक्तजनोंके हृदयमें उदित होती है।

अब प्रश्न होता है कि ग्रन्थमें श्रोताओंके हृदयको आकर्षित करनेकी क्षमता कहाँसे आई? इसके उत्तरमें कहा है कि श्रीवासुदेव रतिकेलि कला समेतम्। यहाँ 'श्री' शब्दसे राधाका तथा वसुदेवके पुत्र रूपमें अवतीर्ण सम्पूर्ण जगत्के स्वामी एवं आत्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्णकी रतिकेलि-कथाका वर्णन है। वासुदेव अर्थात् वसुवंशको प्रकाशित अथवा उज्ज्वल करनेवाले वसुदेव अर्थात् श्रीनन्दमहाराज जो वसुओंमें प्रवर (सर्वश्रेष्ठ) हैं, ऐसे श्रीनन्दजीके पुत्र वासुदेव श्रीकृष्ण हैं। अतः इन दोनोंकी केलि कथाओंसे परिपूर्ण लीलाओंके वर्णनसे श्रीजयदेव कविके हृदयमें ऐसी क्षमता प्रकटित हुई।

इस प्रकार यह प्रबन्ध सर्व-चित्ताकर्षक है। इस पदकी व्युत्पत्तिमें श्रीश्च वासुदेवश्च श्रीवासुदेवौ तयो रतिकेलि कथाः ताभिः समेतम्।

अब प्रश्न होता है—इस प्रबन्धका वर्णन कैसे हुआ है?

इसके उत्तरमें वाणी एवं वक्तव्य रूपमें केलि कलामय देवता, वक्ता एवं प्रवर्त्तक स्वयं श्रीकृष्ण जिनकी चित्तरूपी कन्दरामें सदा अवस्थित हैं, जिनकी इन्द्रियोंके अधिष्ठातृ देवता श्रीकृष्ण उनमें शक्तिका सञ्चार करते हैं, ऐसे श्रीजयदेवजी अपने इष्टदेवको वाग्देवताके रूपमें निरूपित कर रहे हैं। अतएव इस काव्यकी रचनामें श्रीकृष्णका ही कर्त्तृत्व है।

श्रीजयदेवके चित्त-सद्ममें समस्त लीलाएँ चित्रपटकी भाँति संग्रथित हैं। चित्रकारके हृदयमें जो स्फूर्त्ति होती है और चित्रफलकमें जो उदित होता है वही चित्ररूपमें बन जाता है, उसी प्रकार यह केलिचित्रण श्रीजयदेवजीकी लेखनी पर अधिष्ठित होकर अंकित हुआ है। कविका चित्तरूपी सद्म विलक्षण है तथा विचित्र कवितारूपी महाधनका भण्डार है और श्रीराधामाधवके केलि-चरित्रोंसे चित्रित है। कविकी वाणी और मन भी माधव परायण है। अतः निज कर्त्तृत्वका उनके द्वारा परित्याग कर दिया गया है।

अब पुनः प्रश्न होता है कि यह सब होनेपर भी ऐसी चित्रण-शक्ति कहाँसे आई? इसके उत्तरमें कहते हैं—श्री जयदेवजीकी कायिकी-वृत्ति श्रीराधापरायणा अर्थात् श्रीराधाजीकी प्रेरणा ही उनकी इन्द्रिय शक्ति है। श्रीराधा किस प्रकार उनमें अवस्थित हैं? उत्तरमें—श्रीराधाजी पद्मावती हैं। पद्मं करे अस्ति यस्याः सा—यह पद्मावती शब्दकी व्युत्पत्ति है अर्थात् जिसके हाथमें कमल विद्यमान है, वे श्रीराधाजी ही पद्मावती हैं। इन श्रीराधाजीके चरणकमलोंकी प्राप्तिकी लालसासे चारण चक्रवर्त्ती—नर्त्तक-श्रेष्ठ नट-सार्वभौम श्रीजयदेवजी अपनी

वाणीरूपी नृत्य–कलाके द्वारा सदा उनकी आराधनामें तत्पर हैं। इस प्रसङ्गसे यह भाव भी व्यक्त हो रहा है कि कविराजजी प्रधान रूपसे श्रीराधाजीके उपासना–परायण हैं। एक और भी गूढ़ रहस्य है कि महाकवि श्रीजयदेवजीकी पत्नीका नाम भी पद्मावती है। वे श्रीराधामाधव युगलकी उच्चकोटिकी प्रेममयी आराधिका हैं। उन श्रीपद्मावतीजीके प्रति भी महाकवि अपनी कृतज्ञता प्रकाश कर रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें चित्त तथा सद्मका अभेद रूप होनेसे रूपकालङ्कार है तथा अनुज्ञालङ्कार भी। वसन्ततिलका छन्द, ओज गुण, गौड़ीया रीति, भारती वृत्ति तथा संभाविता गीति है॥२॥

यदि हरिस्मरणे सरसं मनो
यदि विलासकलासु कुतूहलम्।
मधुरकोमलकान्तपदावलीं
शृणु तदा जयदेवसरस्वतीम्॥३॥

अन्वय—यदि हरिस्मरणे (श्रीकृष्णचिन्तने) मनः सरसं (रसवत्, स्निग्धमिति यावत्) [कर्त्तुमिच्छेः]; [तथा] यदि विलासकलासु [गतिस्थानासनादीनां मुखनेत्रादिकर्मणाम्। तात्कालिकन्तु वैशिष्ट्यं विलासः प्रियसङ्गजम्॥ इत्युज्ज्वलनीलमणिः। तात्कालिकं दयितालोकनादिभवम्।] (श्रीकृष्णरतिप्रसङ्गेषु रास–कुञ्जादिलीलायाः कलासु वैदग्धीचारुचेष्टासु इत्यर्थः) कुतूहलं (कौतुकं) [स्यात्], तदा (तर्हि) मधुरकोमलकान्तपदावलीं (शृङ्गाररसप्राधान्यात् मधुरा माधुर्यगुणयुक्ताः कोमलाः सरसाः तथा गेयत्वात् कान्ताः मनोज्ञाः पदानाम् आवल्यः पङ्क्तयः यस्यां तादृशीं) जयदेव–सरस्वतीं (जयदेववाणीं तत्कृतप्रबन्धमिति यावत्) शृणु॥३॥

अनुवाद—हे श्रोताओं! यदि श्रीहरिके चरित्रका चिन्तन करते हुए आपलोगोंका मन सरस अनुरागमय होता है तथा उनकी रास-विहारादि विलास-कलाओंकी सुचारु चातुर्यमयी चेष्टाके विषयमें आपके हृदयमें कुतूहल होता है तो मनोहर सुमधुर मृदुल तथा कमनीय कान्तिगुणवाले पदसमूह युक्त कवि जयदेवकी इस गीतावलीको भक्ति-भावसे श्रवणकर आनन्दमें निमग्न हो जाएँ।

पद्यानुवाद—

यदि हरि-चिन्तन-रस आतुर मन, यदि रति-भाव हुलासे।
तो मधु कोमलकान्त पदावलि, सुनो, स्वर्ग-सुख भासे॥३॥

बालबोधिनी—इस प्रबन्ध-काव्यकी रचना करनेमें अपनी योग्यता प्राप्त करते हुए सिद्ध अर्थात् प्रतिज्ञात अर्थके लिए कविके मनमें कोई खेद या विषाद नहीं रहा है। कदाचित् मन्दबुद्धि परायण व्यक्ति इसमें श्रद्धा न रखे, इसलिए इस महाकाव्यके अनुशीलनमें अधिकारीका निश्चय किया गया है।

हे भक्तगण! यदि श्रीकृष्णके निरन्तर स्मरणसे मन स्निग्ध हो जाता है तथा उनकी रास-विहार कुञ्ज-विलास (स्त्रियोंके हाव-भाव विशेषका नाम विलास है, गमनादिकी क्रियाओंको भी विलास कहा जाता है), लीला-चातुरी, विदग्ध-माधुरी आदि चारु-चेष्टाओंके विषयमें मनमें कौतूहल परायणता होती हो तो शृङ्गार रसके वर्णन करनेवाले कवि जयदेवजीकी इस मधुर वाणीका श्रवण करें।

वस्तुतः किसीको सामान्य हरिःस्मरणसे और किसीको श्रीहरिकी विशिष्ट रासादि लीलाके अवलोकनसे परानन्दकी अनुभूति होती है। अब यह काव्य कैसा है? इसके उत्तरमें कहते हैं—यह काव्य शृङ्गार-रस प्रधान और अति मधुर है। इसका अर्थ सहज और बोधगम्य है। इस काव्यके पद अतिशय माधुर्य गुणोपेत-कोमल वर्णनोंसे ग्रथित तथा रमणीय

हैं; क्योंकि वे राधाकृष्णकी कान्ति नामक गुणसे युक्त हैं, जैसे—कान्ता कान्तकी अतिशय प्रिया होती है, वैसे ही यह कमनीय पदावली भक्तजनोंको अतिशय प्रिय है। इससे इसको सङ्गीतात्मकता तथा गेयता प्राप्त है। इसे मधुर कण्ठसे गाया जाना चाहिए।

प्राचीन अलङ्कारशास्त्रियोंने माधुर्य नामक गुणको दो प्रकारका बतलाया है—

शब्दाश्रित और अर्थाश्रित। वाक्यगत पृथक्पदत्वको शब्दाश्रित माधुर्य कहते हैं तथा उक्तिकी विचित्रताको अर्थगत माधुर्य कहते हैं। ये दोनों प्रकारके माधुर्य इस काव्यमें दृष्टिगोचर होते हैं। शब्द और अर्थगत कोमलता भी इस काव्यमें पायी जाती है।

इन पद्योंमें अभिधेय, प्रयोजन तथा अधिकारीका निरूपण हुआ है। श्रीराधामाधवकी रहःकेलि अभिधेय है, प्रतिपाद्य श्रीराधामाधव हैं और प्रतिपादक ग्रन्थ है। यह स्मार्य-स्मारक सम्बन्ध है। श्रीराधामाधवकी केलि-लीलाका श्रवण कीर्त्तन करते हुए अनुमोदनजनित आनन्दका अनुभव और इसमें विभावित अन्तःकरणवाले वैष्णव ही इसके अधिकारी हैं।

इस पद्यमें दीपकालङ्कार, पाञ्चाली रीति, कैशिकी वृत्ति तथा द्रुतविलम्बित छन्द है।

वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः सन्दर्भशुद्धिं गिरां,
जानीते जयदेवएव शरणः श्लाघ्यो दुरूह-द्रुते।
शृङ्गारोत्तर-सत्प्रमेय- रचनैराचार्य-गोवर्द्धन-
स्पर्द्धी कोऽपि न विश्रुतः श्रुतिधरो धोयी कवि-क्ष्मापतिः॥४॥

अन्वय—उमापतिधरः (तन्नामा कविः) वाचः (वाक्यानि) पल्लवयति, (विस्तारयति; सन्दर्भे वागाड़म्बरं प्रदर्शयति, न तु काव्यगुणयुक्ताः करोति) शरणः (तन्नामा कविः) दुरूहद्रुते

(दुरूहस्य दुर्बोधस्य सन्दर्भस्य द्रुते शीघ्रवचने) श्लाघ्यः (प्रशंसनीयः) [नतु प्रसादादिगुणयुक्ते]; शृङ्गारोत्तरसत्प्रमेयरचनैः (शृङ्गारोत्तराणि शृङ्गार-रसप्रधानानि सन्ति उत्कृष्टानि यानि प्रमेयाणि प्रबन्धाः तेषां रचनैः) कोऽपि [कविः] आचार्य-गोवर्द्धन-स्पर्द्धी तेन तुल्यः) न विश्रुतः (न ज्ञातः) [नतु रसान्तर-वर्णने]; [तथा] कवि-क्ष्मापतिः (कविराजः) धोयी (तन्नामा कविः) श्रुतिधरः (श्रुत्या श्रवणमात्रेणैव अभ्यासकर्त्ता इत्यर्थः) नतु [स्वयं कवितारचनायाम्]; [परन्तु] जयदेव एव [नत्वन्यः कोऽपि कविः] गिरां (वाचां) सन्दर्भशुद्धिं (विशुद्धग्रन्थनं) जानीते [अथवा दैन्योक्तिरियम्—गिरां सन्दर्भशुद्धिं किं जयदेव एव जानीते? न जानीते एव; यत्र उमापतिधरो वाचः पल्लवयतीत्यादि॥४॥

अनुवाद—उमापति धर नामक कोई विख्यात कवि अपनी वाणीको अनुप्रासादि अलङ्कारके द्वारा सुसज्जित करते हैं। शरण नामके कवि अत्यन्त क्लिष्ट पदोंमें कविताका विन्यासकर प्रशंसाके पात्र हुए हैं। सामान्य नायक-नायिकाके वर्णनमें केवल शृङ्गार रसका उत्कर्ष वर्णन करनेमें गोवर्द्धनके समान दूसरा कोई कवि श्रुतिगोचर नहीं हुआ है। कविराज धोयी तो श्रुतिधर हैं। वे जो कुछ भी सुनते हैं, कण्ठस्थ कर लेते हैं। जब ऐसे-ऐसे महान् कवि सर्वगुणसम्पन्न नहीं हो सके, फिर जयदेव कविका काव्य किसप्रकार सर्वगुणसम्पन्न हो सकता है?

बालबोधिनी—कवि जयदेवजीने अति दैन्य-विनय वचनोंके द्वारा स्वयंको पद्मावती श्रीराधारानीके चरणकमलोंका चारण चक्रवर्त्ती कहकर अपना परिचय दिया है, उसी आवेशमें अन्य कवियोंकी कृतियोंमें प्राकृत भाव अथवा हेयताकी उपलब्धि कर अपने काव्यमें प्रौढ़ता अर्थात् गाम्भीर्यका विस्तार करते हुए कहते हैं—महाराज लक्ष्मणसेनकी सभामें छह प्रख्यात विद्वान थे। (१) उमापतिधर नामक कवि राजा

लक्ष्मणसेनके अमात्य थे, वे केवल अपनी वाणीका विस्तार मात्र करना जानते थे, उनके काव्यमें वाङ्माधुर्य तथा शब्दार्थ गुणोंका अभाव होता था। उन्होंने वाणीको शाखा-प्रशाखाओंमें पल्लवित तो किया, परन्तु ग्राह्य नहीं बना पाये थे, फलतः उनका काव्य सहृदय स्वरूपा ह्लादक अर्थात् आनन्ददायिनी न होकर केवल चित्रकोटिके काव्यमें सन्निविष्ट होता था। (२) शरण नामके कवि दुरूह तथा शीघ्रतापूर्वक कविताका प्रणयन करनेके लिए प्रख्यात थे। वे लोकप्रिय तो हुए, परन्तु उनका भी काव्य गूढार्थत्वादि दोषोंसे युक्त एवं प्रसादादि गुणोंसे रहित होता था। (३) गोवर्द्धनाचार्य लक्ष्मणसेनकी सभाके तीसरे पण्डित थे। शृङ्गार-रस जो क्रमशः अन्यान्य रसोंसे श्रेष्ठ है—ऐसे उसके आलम्बन स्वरूप साधारण नायक-नायिकाके वर्णन करनेमें आचार्य गोवर्द्धनका कोई प्रतिस्पर्धी नहीं हुआ। परन्तु वे रसान्तर अर्थात् दूसरे-दूसरे रसोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सके। उनके काव्यमें निर्दोष अर्थका सन्निवेश होता था। (४) श्रुतिधर नामक कवि तो अपने गुणोंके कारण ही प्रसिद्ध थे। वे केवल एकबार सुनकर ही काव्यको याद कर लेते थे। (५) धोयी कवि अपनी कविराजकी प्रथासे प्रसिद्ध थे। ग्रन्थके अधिकारी बन तो जाते थे, परन्तु स्वयं कविताका निर्माण नहीं कर पाते थे। (६) लक्ष्मणसेनकी सभाके छठे कवि जयदेव थे। वाणीकी शुद्धि केवल भगवान्‌के नाम, रूप, गुण एवं लीला आदिके वर्णनसे होती है। इस वाणी-शोधनकी प्रथा एकमात्र कवि जयदेव ही जानते हैं। श्रीमद्भागवतमें श्रीनारदजी कह रहे हैं—"तद्वाग् विसर्गो जनताघविप्लवो"।

अथवा कविने स्वयं दैन्य प्रकट किया है, तदनुसार इस श्लोकका भावार्थ होगा कि क्या वाणीकी शुद्धि कवि जयदेव जानते हैं? नहीं, वे नहीं जानते।

उमापति वाणीका विस्तारकर सकते हैं, शरण कवि दुरूह वाक्योंको शीघ्र रचित करनेके लिए प्रसिद्ध हैं, आचार्य गोवर्द्धनके समान कोई कवि हुआ ही नहीं, धोयी कविराज हैं, श्रुतिधर तो श्रुतिधर ही हैं, परन्तु जयदेव कवि कुछ नहीं जानते।

रसमञ्जरीकार लक्ष्मणसेनकी सभाके पाँच कवियोंको ही स्वीकार करते हैं और वे 'श्रुतिधरः' पदको कवि-विशेषकी संज्ञा न मानकर उसे धोयी कविका ही विशेषण मानते हैं। इस विषयमें उनका कहना है कि धोयी कवि तो किसी काव्यको एक बार सुनने मात्रसे ही उसे कण्ठस्थ कर लेते हैं।

वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीजीने प्रमाणित किया है कि पूर्वोक्त भावार्थ ही ठीक है। भगवान्‌की लीलाओंके वर्णनके कारण यह रचना समस्त प्रकारके काव्योंमें श्रेष्ठ है। यह गीति-काव्य अति महत्वपूर्ण, सरस, गोपनीय एवं मधुर है।

इस श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द तथा समुच्चयालङ्कार है॥४॥

अथ प्रथमः सन्दर्भः।

अष्टपदी

गीतम् ॥१॥

मालवगौड़रागेण रूपकतालेन च गीयते॥प्रबन्धः॥१॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम्।
केशव धृत-मीनशरीर
जय जगदीश हरे॥ध्रुवपदम्॥१॥

क्षितिरतिविपुलतरे तिष्ठति तव पृष्ठे
धरणि–धरणकिण–चक्रगरिष्ठे ।
केशव धृत–कूर्मशरीर
जय जगदीश हरे॥२॥
वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृत–शूकररूप
जय जगदीश हरे॥३॥
तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपु–तनुभृङ्गम्।
केशव धृत–नरहरिरूप
जय जगदीश हरे॥४॥
छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पद–नख–नीर–जनितजनपावन।
केशव धृत–वामनरूप
जय जगदीश हरे॥५॥
क्षत्रिय–रुधिरमये जगदपगत–पापम्
स्नपयसि पयसि शमित–भवतापम्।
केशव धृत–भृगुपतिरूप
जय जगदीश हरे॥६॥
वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति–कमनीयं
दशमुख–मौलि–बलिं रमणीयम्।
केशव धृत–रामशरीर
जय जगदीश हरे॥७॥
वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्
हलहति–भीति–मिलित–यमुनाभम्।
केशव धृत–हलधररूप
जय जगदीश हरे॥८॥

निन्दसि यज्ञ–विधेरहह श्रुतिजातम्
सदय–हृदय दर्शितपशुघातम्।
केशव धृत–बुद्धशरीर
जय जगदीश हरे॥९॥
म्लेच्छ–निवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृत–कल्किशरीर
जय जगदीश हरे॥१०॥
श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्।
केशव धृत–दशविधरूप
जय जगदीश हरे॥११॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्तं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः॥१२॥

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ।
केशव धृत–मीनशरीर
जय जगदीश हरे॥ध्रुवपदम्॥१॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत–मीनशरीर! (स्वीकृत–मत्स्य–कलेवर) त्वं प्रलयपयोधिजले (कल्पान्तसागर–सलिले) विहित–वहित्रचरित्रम् (विहितं स्वीकृतम् अवलम्बितमिति यावत् वहित्रस्य अर्णवपोतस्य चरित्रं व्यवहारो यस्मिन् तद्यथा स्यात् तथा) अखेदं (अनायासं यथा स्यात् तथा) वेदं धृतवानसि (रक्षितवानसि) [अतः] हे जगदीश, हे हरे, (हरति भक्तानामशेषक्लेशमिति हरिः तत्सम्बुद्धौ) त्वं जय (सर्वोत्कर्षे वर्त्तस्व)॥१॥

अनुवाद—हे जगदीश्वर! हे हरे! नौका (जलयान) जैसे बिना किसी खेदके सहर्ष सलिलस्थित किसी वस्तुका उद्धार करती है, वैसे ही आपने बिना किसी परिश्रमके निर्मल चरित्रके समान प्रलय जलधिमें मत्स्यरूपमें अवतीर्ण होकर वेदोंको धारणकर उनका उद्धार किया है। हे मत्स्यावतारधारी श्रीभगवान्! आपकी जय हो।

पद्यानुवाद—

जय जगदीश हरे!
प्रलय-जलधिसे नौ सम न्यारे
वेद उबारे, हास्य-सँवारे।
केशव मत्स्य स्वरूप लसे, जय जगदीश हरे॥१॥

बालबोधिनी—श्रीराधामाधवकी लीलामाधुरीकी सर्वोत्कर्षताका वर्णन करना ही कवि जयदेवको अभिप्रेत है। वे ग्रन्थके आरम्भमें 'प्रलयपयोधिजले' श्लोकसे लेकर इस अष्टपदीके अन्ततक समस्त अवतारोंके मूल आश्रय-स्वरूप अखिल नायक शिरोमणि श्रीकृष्णके मत्स्यादि अवतारोंका वर्णन कर रहे हैं। यह अष्टपदी मालव गौड़ रागमें तथा रूपक तालसे गायी जाती है।

मालवगौड़ रागका स्वरूप इस प्रकार है—

नितम्बिनीचुम्बितवक्त्रपद्मः, शुकद्युतिः कुण्डलवान् प्रमत्तः।
सङ्गीतशालां प्रविशन् प्रदोषे, मालाधरो मालवरागराजः॥

नितम्बिनी नायिकाके द्वारा चुम्बित मुखकमलवाला, शुकके समान हरित-वर्णकी कान्तिवाला, कानोंमें कुण्डल तथा गलेमें माला पहने हुए, मदमत्त, रागोंका राजा मालव सङ्गीतशालामें प्रवेश करता है। इस अष्टपदीका ताल रूपक है। जैसे—अन्तमें विराम और द्रुत दोनोंके मिलनमें विलक्षणा रूपक ताल होता है।

इस अष्टपदीमें श्रीभगवान्‌के लिए चार सम्बोधन हैं। पहला सम्बोधन है 'केशव'। भगवान्‌को कई कारणोंसे 'केशव' कहा जाता है—

(१) वराहवतारमें भगवान्‌के जो बाल गिरे, वे कुश रूपमें अङ्कुरित हुए। वेद-विहित यज्ञादि क्रियाकलापोंमें कुशकी आवश्यकता होती है। बिना कुशके वे कार्यकलाप सम्पन्न नहीं होते। इसलिए भगवान् केशव कहलाये। (२) 'केशाद्वोऽन्यतरस्याम'—इस पाणिनीय सूत्रके अनुसार केश शब्दसे प्रसिद्ध अर्थमें 'व' प्रत्यय होकर केशव शब्द बनता है। (३) श्रीभगवान्‌के द्वादश व्यूहोंमें 'केशव-व्यूह'का सर्वप्रथम स्थान है। (४) इस 'केशव' नामकी व्याख्या करते हुए भगवद्गुण दर्पणकार कहते हैं—'प्रशस्तस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलः' अर्थात् 'केशव'—यह भगवान्‌का नाम उन भगवान्‌के प्रशस्त काले और घुँघराले बालोंवाला बतलाता है। (५) 'केशवः—को ब्रह्मा ईशश्च तावपि वयते प्रशस्तीति' अर्थात् क—ब्रह्मा, ईश—महादेव दोनोंके नियामक या शासकको केशव कहते हैं। (६) 'केशान् वयते' गोपियोंके केश-संस्कार करनेवाले रसिकशेखर श्रीकृष्ण ही 'केशव' कहलाते हैं। (७) केशी नामक दैत्यका संहार करनेवाले केशव हैं।

'धृतमीनशरीर'—यह भगवान्‌का दूसरा सम्बोधन है। श्रीभगवान् सन्तजनोंके परित्राण और पापियोंके विनाश हेतु विविध रूपोंमें अवतरित होते हैं। उनके असंख्य अवतारोंमेंसे दश प्रधान हैं। उन दश अवतारोंमें मत्स्यावतार सर्वप्रथम अवतार है। इस अवतारमें श्रीभगवान्‌ने वेदोंके अपहरणकर्त्ता हयग्रीवका बधकर वेदोंका उद्धार किया था।

ये मीन अवतार वीभत्स रसके अधिष्ठाता हैं।

'जगदीश'—इस तीसरे सम्बोधनका अभिप्राय यह है कि श्रीभगवान् सम्पूर्ण जगत् और प्रकृतिके ईश्वर हैं। वे सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि, स्थिति एवं पालनका नियमन करते हैं तथा जगत्‌के भीतर अन्तर्यामी रूपमें स्थित होकर उसका नियमन करते हैं। जगदीश शब्दसे भगवान्‌की करुणा भी प्रकट होती है।

'हरे'—इस चतुर्थ सम्बोधनका तात्पर्य यह है कि भगवान् भक्तोंके अशेष प्रकारके कष्टोंको हरण करनेवाले हैं—हरति भक्तानां क्लेशम्। इसी हेतु उनका अवतार होता है।

इन चार सम्बोधनोंके द्वारा कविराजने श्रीभगवान्‌के प्रति अतिशय आदर प्रदर्शित किया है।

जय, अर्थात् हे प्रभो! आप अपने उत्कर्षका आविष्कार करनेमें सिद्धहस्त हैं, आप इस उत्कर्षको प्रकट करें।

जय जगदीश हरे—यह पंक्ति प्रत्येक पदके साथ आवृत्त करके गायी गई है, अतएव इसे ध्रुव-पद कहा जाता है—'ध्रुवत्वाच्च ध्रुवो ज्ञेयः'। यह ध्रुव-पद अन्तमें प्रयुक्त होता है।

इस अष्टपदीमें भगवान् श्रीकेशवके मत्स्यावतारके चरित्रका वर्णन किया गया है। इस प्रथम अवतारमें श्रीकृष्णने प्रलयकालीन महासागरके अगाध जलमें वेदोंको धारण किया तथा स्वयं अपने सींगसे नौकाको ग्रहण करके उसमें सम्पूर्ण प्रकारके बीजों तथा मनु सहित सप्तर्षियोंको प्रलयकाल तक धारण कर बिना प्रयासके ही उनका वहन करते हुए उनकी रक्षा की। इस अवतारमें उन्होंने सत्यव्रत मुनिकी भी रक्षा की थी। अतएव मत्स्यावतारधारी भगवान् केशवकी जय हो।

प्रस्तुत पदमें ऊर्ध्वमागधी रीति, उपमा और अतिशयोक्ति अलङ्कार, उत्साह नामक स्थायी-भाव तथा वीररस है। मत्स्यावतारको वीभत्स रसका अधिष्ठाता भी कहा गया है॥१॥

क्षितिरतिविपुलतरे तिष्ठति तव पृष्ठे
धरणि–धरणकिण–चक्रगरिष्ठे ।
केशव धृत–कूर्मशरीर
जय जगदीश हरे॥२॥

अन्वय—हे केशव! हे धृतकच्छपरूप! (स्वीकृत-कच्छप-विग्रह) क्षितिः (मेदिनी) धरणि-धरण-किणचक्र-गरिष्ठे (धरण्याः धरणेन बहनेन यत् किणचक्रं कठिनी-भूतत्त्वक्समूहः) तेन गरिष्ठे सुदृढ़े विपुलतरे (अतिविशाले) तव पृष्ठे तिष्ठति; हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व)॥२॥

अनुवाद—हे केशिनिसूदन! हे जगदीश! हे हरे! आपने कूर्मरूप अङ्गीकार कर अपने विशाल पृष्ठके एक प्रान्तमें पृथ्वीको धारण किया है, जिससे आपकी पीठ व्रणके चिह्नोंसे गौरवान्वित हो रही है। आपकी जय हो॥२॥

पद्यानुवाद—

राजित पृष्ठे निज क्षिति विपुला,
धरणी धरण-किण अङ्कित बहुला,
केशव कच्छप रूप लसे, जय जगदीश हरे॥२॥

बालबोधिनी—अष्टपदीके द्वितीय श्लोकमें श्रीभगवान्के कच्छपावतारका वर्णन किया है। आपने इस पृथ्वी (मन्दराचल) को मात्र आकर्षित ही नहीं किया अपितु अपनी पीठपर धारण करते हुए स्थापन किया है। कच्छपावतार धारण करके श्रीभगवान् पृथ्वीके नीचे विद्यमान हैं और पृथ्वीकी अपेक्षा अत्यधिक विशाल उनके पृष्ठपर यह भूमण्डल एक गेंदकी भाँति अवस्थित है।

पृथ्वीके धारण करनेसे उनके पृष्ठपर घाव-चिह्न जाल-सा बन गया है। यह व्रण-चिह्न-जाल आपका अलङ्कार ही है। आपकी जय हो।

जय जगदीश हरे! मुखबन्धकी भाँति यह सम्पुट सम्पूर्ण अष्टपदीसे संयोजित है॥२॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना।
केशव धृत-शूकररूप
जय जगदीश हरे॥३॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत–शूकररूप! (स्वीकृत–वराह–विग्रह) तव दशनशिखरे (दन्ताग्रे) लग्ना (अवस्थिता) धरणी (पृथिवी, लोकधारणकर्त्त्र्यपि); शशिनि (चन्द्रे) निमग्ना कलङ्ककला (कलङ्करेखा) इव वसति (अवतिष्ठते); हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व)॥३॥

अनुवाद—हे जगदीश! हे केशव! हे हरे! हे वराहरूपधारी! जिस प्रकार चन्द्रमा अपने भीतर कलङ्कके सहित सम्मिलित रूपसे दिखाई देता है, उसी प्रकार आपके दाँतोंके ऊपर पृथ्वी अवस्थित है॥३॥

पद्यानुवाद—

दशन अग्र धरणी यह लग्ना,
शोभित चन्द्र कलङ्क निमग्ना।
केशव सूकर–रूप लसे, जय जगदीश हरे॥३॥

बालबोधिनी—अष्टपदीके तृतीय पदमें भगवान्‌की स्तुति की गयी है। भगवान् पृथ्वीको धारण करते हैं, इतना ही नहीं, समस्त चराचरको धारण करनेवाली पृथ्वीको अपने दाँतोंपर अवस्थित कर चलते भी हैं। सृष्टिके प्रारम्भमें हिरण्याक्ष जब बीजभूता पृथ्वीका अपहरण करके रसातलमें चला गया था, तो श्रीभगवान्‌ने वराहरूप धारण किया और प्रलयकालीन जलके भीतर प्रविष्ट होकर अपने दाँतोंके अग्रभागपर पृथ्वीको उठाकर ऊपर ले आये तथा अपने सत्यसङ्कल्परूपी योगबलके द्वारा उसे जलके ऊपर स्थापित किया। जिस समय भगवान् अपने दाँतोंके अग्रभागपर पृथ्वीको उठाकर ला रहे थे, उस समय उनके उज्ज्वल दाँतोंके ऊपर पृथ्वी ऐसे सुशोभित हो रही थी, जिस प्रकार चन्द्रमाके भीतर उसके बीचमें उसकी कालिमा सुशोभित होती है। कविने भगवान्‌के दाँतोंको बालचन्द्रमाकी उपमा देकर उनके दाँतोंके महदाकारत्व तथा धरणीके अल्पाकारत्वको सूचित किया है। धरणी कलङ्क कलावत् निमग्ना है। निमग्न

शब्दसे वराहदेव भयानक रसके अधिष्ठाता रूपमें प्रकाशित होते हैं। इस पदमें उपमा अलङ्कार है। हे शूकररूप धारिण! आपकी जय हो॥३॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्
दलितहिरण्यकशिपु–तनुभृङ्गम्।
केशव धृत–नरहरिरूप
जय जगदीश हरे॥४॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत–नरहरिरूप! (नृसिंहरूपधर) तव कर–कमलवरे (पाणिपङ्कज–श्रेष्ठे) अद्भुतशृङ्गं (अद्भुतं शृङ्गम् अग्रं यस्य तादृशं) दलित–हिरण्यकशिपु–तनु–भृङ्गं (दलिता विदारिता हिरण्यकशिपोः असुरराजस्य या तनुः शरीरं सा एव भृङ्गः येन तथाभूतं) नखं [शोभते इति शेषः], [अतिकोमलेन करकमल–केसरेण सुदृढ़–दैत्यदेहरूपभृङ्गदलनम् अदृष्टचरम्; अतएव अद्भुतम्] हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व)॥४॥

अनुवाद—हे जगदीश्वर! हे हरे! हे केशव! आपने नृसिंह रूप धारण किया है। आपके श्रेष्ठ करकमलमें नखरूपी अद्भुत शृङ्ग विद्यमान है, जिससे हिरण्यकशिपुके शरीरको आपने ऐसे विदीर्ण कर दिया जैसे भ्रमर पुष्पका विदारण कर देता है, आपकी जय हो॥४॥

पद्यानुवाद—

अम्बुज कर खर नखसे अपने,
हिरण्यकशिपुके हर सब सपने।
केशव नरहरि–रूप लसे, जय जगदीश हरे॥४॥

बालबोधिनी—चौथे पद्यमें श्रीजयदेवजीने नृसिंहावतारके रूपमें भगवान्‌का स्तवन किया है। दुःखकातर भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कष्ट स्वीकार कर लेते हैं, पर दूसरोंका दुःख सहन नहीं कर पाते। दितिपुत्र हिरण्यकशिपुने अपने पुत्र

महाभागवत प्रह्लादपर अत्याचार किया तो भगवान्ने नृसिंह वेशमें उस महादैत्यके वक्षःस्थलको निज नखसे विदीर्णकर उनकी रक्षा की। हे नरहरि रूप धारण करनेवाले केशव! आपके श्रेष्ठ करकमलमें नख समुदाय एक श्रेष्ठ कमलके अग्रभागके समान हैं, उनमें अति तीक्ष्णता है। यह नख समुदाय अति अद्भुत, पहाड़की चोटीके समान अति आश्चर्यजनक है। कमलाग्ररूप इन नखोंका यह वैशिष्ट्य है कि अन्य कमलके अग्रभागोंको तो भ्रमर विदीर्ण करते हैं, परन्तु आपके करकमलोंके अग्रभागने तो दैत्यरूपी भ्रमरका ही दलन कर दिया है। विश्वकोषमें शृङ्ग शब्दका अर्थ बजाने वाला विषाण, उत्कर्ष एवं अग्रभाग है। भ्रमरके उदाहरणसे कृष्ण–वर्णत्वको भी सूचित किया गया है। यह रूपक अलङ्कार है। श्रीनृसिंह रूपको वात्सल्यरसका अधिष्ठान माना जाता है॥४॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन
पद–नख–नीर–जनितजनपावन।
केशव धृत–वामनरूप
जय जगदीश हरे॥५॥

अन्वय—हे केशव! हे धृतवामनरूप! (वामनरूपधर) हे पद–नख–नीर–जनित–जन–पावन (पदनख–नीरेण पदनखोद्भूतेन गङ्गाजलेन जनितं जनानां पावनं पवित्रता येन) हे अद्भुतवामन! (अपूर्ववामनमूर्त्तिधारिन्), विक्रमणे (पादत्रयेन त्रिभुवनाक्रमेण) बलिं (दानवपतिम् अतिदातृत्वगर्विणं) छलयसि (प्रतारयसि)। हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥५॥

अनुवाद—हे सम्पूर्ण जगतके स्वामिन्! हे श्रीहरे! हे केशव! आप वामन रूप धारणकर तीन पग धरतीकी याचनाकी क्रियासे बलि राजाकी वञ्चना कर रहे हैं। यह लोक समुदाय आपके पद–नख–स्थित सलिलसे पवित्र हुआ है। हे अद्भुत वामन देव! आपकी जय हो॥५॥

पद्यानुवाद—

छलित नृपति बलि अद्भुत वामन,
पदनख नीर हुए जन पावन।
केशव वामन-रूप लसे, जय जगदीश हरे॥५॥

बालबोधिनी—पाँचवे पद्यमें वामनदेवकी स्तुति की गयी है। राजा बलिकी यज्ञशालामें जाकर आपने भिक्षाके छलसे त्रिविक्रमरूप धारणकर ऊपर नीचेके समस्त लोक नाप लिये हैं। छलयसि—इसमें वर्त्तमान कालिक क्रियापदका प्रयोग है, अर्थात् बलिको अपने वरदानसे अनुग्रहीतकर उसके साथ पातालमें निवास करते हैं और अनादि कालसे ही अद्भुत वामन बनकर उसे छला करते हैं। पदनख नीर जनित जन पावनसे तात्पर्य है कि उन्होंने अपने पद-नखोंसे श्रीगङ्गाको यहाँ प्रकटकर समस्त संसारको पावन किया है। ब्रह्माजीने पृथ्वी नापते समय भगवान्के चरणोंको ब्रह्मलोकमें देखकर अर्घ्य चढ़ाया। वही जल श्रीगङ्गाजीके रूपमें परिणत हो गया। आपकी जय हो। इस पद्यमें अद्भुत रस है, यहाँपर श्रीभगवान् सख्य रसके अधिष्ठाता रूपमें प्रकाशित हुए हैं॥५॥

क्षत्रिय-रुधिरमये जगदपगत-पापम्
स्नपयसि पयसि शमित-भवतापम्।
केशव धृत-भृगुपतिरूप
जय जगदीश हरे॥६॥

अन्वय—हे केशव! हे धृतभृगुपतिरूप! (धृतपरशुरामविग्रह)। [हैययवंशीयैरुन्मार्ग-प्रस्थितैः नृपकुलापसदैः समाधावासक्तं पितरं महर्षिं जमदग्निं निहतमवगम्य पितृ-वधामर्षजकोपात् गुरुतरपरशुमादाय] क्षत्रियरुधिरमये (क्षत्रशोणितरूपे) पयसि (जले) अपगतपापम् (अपगतानि पापानि यस्य तत्) [अतएव] शमित-भवतापम् (शमितः उपशमतां प्राप्तः भवस्य संसारस्य

तापः सन्तापो यस्य तादृशं) जगत् स्नपयसि (प्रक्षालयसि)। हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥६॥

अनुवाद—हे जगदीश! हे हरे! हे केशिनिसूदन! आपने भृगु (परशुराम) रूप धारणकर क्षत्रियकुलका विनाश करते हुए उनके रक्तमय सलिलसे जगतको पवित्र कर संसारका सन्ताप दूर किया है। हे भृगुपतिरूपधारिन्, आपकी जय हो॥६॥

पद्यानुवाद—

'वीर-रुधिर' से धो पापोंको,
और शमन कर भव-तापोंको।
केशव भृगुपति-रूप लसे, जय जगदीश हरे॥६॥

बालबोधिनी—छठवें पद्यमें श्रीपरशुराम अवतारकी स्तुति की है, हे प्रभो! भृगुपतिरूप धारणकर आपने एकबार नहीं, इकतीस बार ब्राह्मणविद्वेषी क्षत्रियोंका विनाशकर उनके रुधिरसे निर्मित सरोवरको कुरुक्षेत्रका ह्रद तीर्थ बना दिया है, जिसमें स्नान करनेसे समस्त जगतके प्राणियोंके पापोंका मोचन होता है और संसारके समस्त तापोंसे मुक्ति मिलती है। ज्ञानकी उत्पत्ति होनेसे उत्तापोंकी शान्ति होती है। प्रस्तुत पदमें स्वाभाविकोक्ति अलङ्कार तथा अद्भुत रस है। परशुराम अवतारको रौद्र रसका अधिष्ठाता माना जाता है। यहाँतक छह पद्योंके नायकको धीरोद्धत नायक कहा जाता है॥६॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति-कमनीयं
दशमुख-मौलि-बलिं रमणीयम्।
केशव धृत-रामशरीर
जय जगदीश हरे॥७॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत-रघुपतिरूप! (स्वीकृत-दाशरथि-देह) रणे (युद्धे) दिक्पति-कमनीयं (दिशां पतीनाम् इन्द्रादिलोकपालानां कमनीयं वाञ्छनीयं) [दशसु] दिक्षु रमणीयं

(शोभाकरं) दशमुखमौलिबलिं (रावणदशमुण्डोपहारं) वितरसि (ददासि)। हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥७॥

अनुवाद—हे जगत् स्वामिन् श्रीहरे! हे केशिनिसूदन! आपने रामरूप धारण कर संग्राममें इन्द्रादि दिक्पालोंको कमनीय और अत्यन्त मनोहर रावणके किरीट भूषित शिरोंकी बलि दशदिशाओंमें वितरित कर रहे हैं। हे रामस्वरूप! आपकी जय हो॥७॥

पद्यानुवाद—

दिक्पति कान्ति हुई कमनीया,
पा रावणकी बलि रमणीया।
केशव रघुपति-रूप लसे, जय जगदीश हरे॥७॥

बालबोधिनी—सातवें पद्यमें श्रीराम-स्वरूपका वर्णन हुआ है। हे प्रभो! प्रिया वियोगादि दुःखको सहन करनेके लिए आप रघुकुल तिलक श्रीराम रूपमें अवतरित हुए। भयानक संग्राममें संसारको रुलानेवाले रावणके दश मस्तकोंको अनन्तकालके लिए समर्पित कर दिया है अर्थात् रावणके शिरोंको काटकर श्रीभगवान्ने दिक्पालोंको बलि चढ़ाया जिससे कि संसारमें राक्षसोंके द्वारा बढ़े हुए उत्पातोंकी शान्ति हो जाय।

दिक्पालोंको रावणकी बलि अत्यन्त अभीष्ट थी। रावणका वध हो जानेसे यह बलि लोकाभिराम बनी। इस बातको जयदेव कविने 'दिक्पति कमनीयम्' एवं 'रमणीयम्' इन दो पदोंके द्वारा अभिव्यक्त किया है। दिक्पालोंकी संख्या दश है तथा रावणके किरीट मण्डित शिरोंकी संख्या भी दश ही है। यही कारण है कि दिक्पालोंको यह बलि अत्यन्त कमनीय थी।

दूसरोंको उद्वेग देनेवाले रावणका संहारकर भगवान्ने जगतमें सभीका आनन्दवर्द्धन किया है।

इस पदके नायक धीरोदात्त हैं। भगवान्के राम अवतारमें करुण रसका प्रकाश होता है।

दशमुख मौलि बलिम्—इस पदकी व्युत्पत्ति दशमुखस्य ये मौलया तान्येव बलिम् अर्थात् रावणके किरीट मण्डित शिर ही बलि हैं। यद्यपि मौलि शब्द शिर और किरीट दोनोंका वाचक है तथापि मौलि मण्डित शिर यह अर्थ तटस्थ लक्षणके द्वारा स्वीकार किया जाता है॥७॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्
हलहति-भीति-मिलित-यमुनाभम्।
केशव धृत-हलधररूप
जय जगदीश हरे॥८॥

अन्वय—हे केशव! हे धृतहलधररूप! (धृतबलदेवशरीर!) त्वं विशदे (शुभ्रे) वपुषि (देहे) जलदाभं (नवघनश्यामं) [अतएव] हल-हति-भीति-मिलित-यमुनाभं (हलस्य लाङ्गलस्य हत्या आघातेन या भीतिः तया मिलिता पादपतिता शरणागता इति यावत् या यमुना तस्या भाः प्रभाइव भा दीप्तिर्यस्य तादृशं) वसनं (वस्त्रं नीलाम्बरमित्यर्थः) वहसि (धारयसि)। हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥८॥

अनुवाद—हे जगत् स्वामिन्! हे केशिनिसूदन! हे हरे! आपने बलदेवस्वरूप धारण कर अति शुभ्र गौरवर्ण होकर नवीन जलदाभ अर्थात् नूतन मेघोंकी शोभाके सदृश नील वस्त्रोंको धारण किया है। ऐसा लगता है, यमुनाजी मानो आपके हलके प्रहारसे भयभीत होकर आपके वस्त्रमें छिपी हुई हैं। हे हलधरस्वरूप! आपकी जय हो॥८॥

पद्यानुवाद—

घन सम वसन विशद तन धारे,
यमुन-तरङ्गित हल-भय मारे।
केशव हलधर-रूप लसे जय जगदीश हरे॥८॥

बालबोधिनी—आठवें पदमें भगवान्‌के हलधारी श्रीबलराम-स्वरूपकी स्तुति की जा रही है। विशद वपु—बलरामजीका वर्ण गौर है, वे शुभ्र हैं।

जलदाभ—बलरामजी नील हरित वर्णका वस्त्र धारण करते हैं। जलसे भरे कृष्णवर्णके मेघको जलद कहते हैं। जलदस्य आभा—श्यामा यस्य तम्—यह जलदाभ पदका विग्रह है। जलद कृषकको जिस प्रकार आनन्दित करता है, उसी प्रकार बलरामजीके वस्त्र भक्तोंको आनन्द प्रदान करते हैं।

हलहतिभीति मिलित यमुनाभम्—हलेन या हतिः तद् भीत्या मिलिता या यमुना तस्या आभा इव आभा यस्य तत्। भगवान् केवल प्रिया-वियोगादि-दुःख सहन नहीं कर पाते, ऐसा नहीं है। आपने प्रेयसीके श्रमरूप क्लेशको दूर करने हेतु अपनी प्रिय भक्त यमुनाजीको आकर्षित किया है। आपके शुभ्र कान्ति विशिष्ट श्रीअङ्गमें धारण किये हुए नील वसनोंसे ऐसा लगता है मानो आपके हलके प्रहारसे भयभीत होकर यमुनाजी आपके नीले सुरम्य वस्त्रोंमें समा गयी हैं।

प्रस्तुत पदके नायक श्रीबलरामजी धीर ललित नायक हैं। इन्हें हास्य रसका अधिष्ठाता माना जाता है॥८॥

निन्दसि यज्ञ-विधेरहह श्रुतिजातम्
सदय-हृदय दर्शितपशुघातम्।
केशव धृत-बुद्धशरीर
जय जगदीश हरे॥९॥

अन्वय—हे केशव! हे सदय-हृदय! (पशुष्वपि करुणामयचित्त) धृतबुद्धशरीर! (बुद्धरूपधर! अहह (खेदे), दर्शित-पशुघातं (दैत्यमोहनाय अहिंसा परमोधर्म इति दर्शितः पशुघातः यस्मिन् तथोक्तं) यज्ञविधेः (क्रतुविधानस्य) श्रुतिजातं (पशुना रुद्रं यजेत इत्यादिकं वेदकामसमूहं) निन्दसि। [वेदान् स्वयमेव प्रकाश्य स्वयमेव तान् निन्दसीत्यद्भुतमित्यर्थः] हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥९॥

अनुवाद—हे जगदीश्वर! हे हरे! हे केशिनिसूदन! आपने बुद्ध शरीर धारण कर सदय और सहृदय होकर यज्ञ विधानों

द्वारा पशुओंकी हिंसा देखकर श्रुति समुदायकी निन्दा की है। आपकी जय हो॥९॥

पद्यानुवाद—

निन्दे यज्ञ नियम श्रुति–मगके,
माने मानव सम पशु जगके।
केशव बुद्ध–शरीर लसे, जय जगदीश हरे॥९॥

बालबोधिनी—नवें पदमें भगवान्‌के बुद्धावतारकी स्तुति की जा रही है। वेद श्रीभगवान्‌के श्वासस्वरूप हैं; 'तस्य निःश्वसितं वेदाः'। वेदोंको स्वयं भगवान्‌की आज्ञास्वरूप माना जाता है। वेद शास्त्रोंमें जब विरोधी मत अर्थात् वेदोंके विरुद्ध विचार धाराएँ बढ़ने लगीं, तब आपने बुद्धावतार ग्रहण किया।

यह प्रश्न होता है कि स्वयं यज्ञ विधिको बनाकर फिर यज्ञ विधायिका श्रुतियोंकी क्यों निन्दा की? अत्यन्त आश्चर्यकी बात है कि स्वयं ही वेदोंके प्रकाशक हैं और स्वयं ही वेदोंकी भर्त्सना कर रहे हैं।

इसके उत्तरमें 'सदय हृदय दर्शित पशुघातम्' अर्थात् आपने पशुओंके प्रति दयावान् होकर अहिंसा परमो धर्मः, यह उपदेश प्रदानकर दैत्योंको मोहित किया है। आपने जैसे अमृतकी रक्षा करनेके लिए दैत्योंको मोहित किया था, उसी प्रकार प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिए आपने दैत्योंको मोहितकर यज्ञोंको अनुचित बतलाया है।

यज्ञमें की जानेवाली पशुओंकी हिंसाको देखकर श्रीभगवान्‌के हृदयमें दया प्रसूत हुई और दया विवश होकर अपने इस अवतारमें यज्ञ प्रतिपादक वेद शास्त्रोंकी निन्दा की।

इस पदके नायक धीर शान्त हैं। भगवान् बुद्धको शान्त रसका अधिष्ठाता माना गया है॥९॥

म्लेच्छ–निवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्।
केशव धृत–कल्किशरीर
जय जगदीश हरे॥१०॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत-कल्किशरीर! [त्वं] म्लेच्छ-निवहनिधने (वेद-बाह्यान् उन्मार्गप्रस्थितान् दुराचारान् हत्वा पुनर्वर्णाश्रम-स्थापनायेत्यर्थः) धूमकेतुमिव किमपि (अनिर्वचनीयम् अतिशयमित्यर्थः) करालं (भीषणं) करवालं (असिं) कलयसि (धारयसि); हे जगदीश, हे हरे, त्वं जय॥१०॥

अनुवाद—हे जगदीश्वर श्रीहरे! हे केशिनिसूदन! आपने कल्किरूप धारणकर म्लेच्छोंका विनाश करते हुए धूमकेतुके समान भयङ्कर कृपाणको धारण किया है। आपकी जय हो॥१०॥

पद्यानुवाद—

म्लेच्छ-नाश-असि धरे विशाला,
धूमकेतु-सम बने कराला।
केशव कल्कि-रूप लसे, जय जगदीश हरे॥१०॥

बालबोधिनी—दशवें पदमें भगवान्के कल्कि अवतारकी प्रशंसा की जा रही है। बिना युद्ध किये प्राणियोंका संहार नहीं होगा, बिना संहार किये शान्ति भी नहीं आयेगी। इसलिए आप कल्कि रूप धारणकर म्लेच्छोंका विनाश करते हैं। दुष्ट मनुष्योंका संहार करनेके लिए भगवान् भयङ्कर काल कराल रूप तलवारको धारण करते हैं। 'किमपि' पदसे कवि द्वारा कृपाणकी भयङ्कर स्वरूपता दिखाई है।

धूमकेतुमिव—धूमकेतु एक ताराविशेषका नाम है। जिसके उदित होनेपर महान उपद्रवकी शङ्का की जाती है। भगवान्का कृपाणरूपी धूमकेतु म्लेच्छोंके अमङ्गलका सूचक है। धूमकेतु शब्द अग्निका भी वाचक है, जिससे म्लेच्छ समुदायका अनिष्ट सूचित होता है।

प्रस्तुत पदके नायक धीरोद्धत हैं। कल्कि भगवान्को वीर रसका अधिष्ठाता माना जाता है॥१०॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम्
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्।
केशव धृत–दशविधरूप
जय जगदीश हरे॥११॥

अन्वय—हे केशव! हे धृत–दशविधरूप! (स्वीकृतदशावतार–विग्रह) हे जगदीश, हे हरे, [त्वं] जय (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तस्व); [तथा] उदारं (महार्थयुक्तं) सुखदं (ऐहिकामुष्मिकपरमानन्दप्रदं) शुभदं (कल्याणप्रदं) भवसारं (भवे संसारे सारं सर्वोत्कृष्टं; यद् वा अवताराणां जन्मनः सारम् आविर्भाव–रहस्यं यत्र तत्) श्रीजयदेवकवेः उदितम् (भाषितं) इदं (दशावतारस्तोत्रं) शृणु, [अथवा अयि महानुभाव भक्तजन इति अध्याहार्यम्]॥११॥

अनुवाद—हे जगदीश्वर! हे श्रीहरे! हे केशिनिसूदन! हे दशबिध रूपोंको धारण करनेवाले भगवन्! आप मुझ जयदेव कविकी औदार्यमयी, संसारके सारस्वरूप, सुखप्रद एवं कल्याणप्रद स्तुतिको सुनें॥११॥

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव कथित हरि–लीला,
सुनो सुखद यह शुभ गतिशीला।
केशव दशविध–रूप लसे, जय जगदीश हरे॥११॥

बालबोधिनी—इस प्रकार दशावतार स्तुतिके अन्तमें महाकवि जयदेव प्रत्येक रसके अधिष्ठान स्वरूप एक–एक अवतारका जयगान कर अब समस्त रसोंके अधिनायक श्रीकृष्णसे निवेदन करते हैं कि हे दशविध स्वरूप! आपकी जय हो।

सुखद—सद्यः परनिवृत्तिकारक होनेके कारण यह स्तुतिकाव्य श्रवणकालमें ही परमानन्द प्रदान करनेवाला है। यह स्तोत्र जगन्मङ्गलकारी है जो कि आपके आविर्भावके रहस्योंको अभिव्यक्त करनेवाला है।

शुभदं—शुभदायी होनेसे परमात्माकी प्राप्तिके समस्त प्रतिबन्धकोंका विनाश करनेवाला है।

भवसारम्—संसाररूपी सागरको पार करनेके जितने भी साधन हैं, उन सबमें प्रधान है।

भवच्छेदक हेतु मध्ये सारम्—यह मध्यपदलोपी समास 'भवसारम्' पदमें जानना चाहिए।

जय—वर्त्तमानकालिक क्रियापदके द्वारा यह सूचित होता है कि भगवान्‌के समस्त अवतार नित्य एवं उनकी लीलाएँ भी नित्य हैं। कविने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि श्रीकृष्ण सभी अवतारोंके मूल कारण हैं। उन्हींसे सभी अवतारोंका प्राकट्य हुआ है, वे सभी रूपोंमें सत्य हैं, अतएव पूर्णावतारी, नित्य लीलाविलासी, दशावतार स्वरूप, सर्वाकर्षक एवं आनन्द प्रदाता आपकी नित्य ही जय जयकार हो। उदात्त तथा सरल भाषामें मैंने आपकी स्तुति की है। आप इसका श्रवण करें। आपका भक्त कवि जयदेव आपको यह स्तुति निवेदन कर रहा है।

प्रस्तुत श्लोकमें शान्त रस तथा पर्यायोक्ति अलङ्कार है ॥११॥

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान् मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१२॥

इति श्रीगीतगोविन्दे प्रथमः सन्दर्भः।

अन्वय—अधुना सर्वेषामेव दशावताराणां पूर्णपुरुषे श्रीकृष्णे परिणतिं भङ्गिक्रमेणाह।—[प्रलयपयोधिमग्नान्] वेदान् उद्धरते [मीनरूपाय तुभ्यं],—जगन्ति वहते (पृष्ठदेशेन उद्वहते) [कूर्मरूपाय तुभ्यं]—भूगोलम् (भूमण्डलम्) उद्बिभ्रते (दशनेन ऊर्द्ध्वं तोलयते) [वराहरूपाय तुभ्यं],—दैत्यं (हिरण्यकशिपुं) दारयते (नखैः विदारयते)

[नृसिंहरूपाय तुभ्यं],—बलिं (दैत्येश्वरं) छलयते (वञ्चयते) [वामनरूपाय तुभ्यं],—क्षत्रक्षयं (क्षत्रियध्वसं) कुर्वते [जामदग्न्यरूपाय तुभ्यं],—पौलस्त्यं (रावणं) जयते [रामरूपाय तुभ्यं],—[दुष्टदमनाय] हलं (लाङ्गलं) कलयते (धारयते) [बलभद्ररूपाय तुभ्यं],—म्लेच्छान् [अनार्याचारान्] मूर्च्छयते (नाशयते) [कल्किरूपाय तुभ्यं]—[अतएव] दशाकृतिकृते (दशावतार रूपधराय) कृष्णाय (स्वयं भगवते वासुदेवाय) तुभ्यं नमः [एतेषामवतारित्वेन श्रीकृष्णस्य सर्वरसत्वं सिद्धम्। "बुद्धो नारायणोपेन्द्रौ नृसिंहो नन्दनन्दनः। बलः कूर्मस्तथा कल्की राघवो भार्गवः किरिः। मीन इत्येताः कथिताः क्रमाद्द्वादशः देवताः॥" इति भक्तिरसामृतसिन्धौ रसाधिष्ठातारः॥]॥१२॥

अनुवाद—वेदोंका उद्धार करनेवाले, चराचर जगत्को धारण करनेवाले, भूमण्डलका उद्धार करनेवाले, हिरण्यकशिपुको विदीर्ण करनेवाले, बलिको छलनेवाले, क्षत्रियोंका क्षय करनेवाले, पौलस्त (रावण) पर विजय प्राप्त करनेवाले, हल नामक आयुधको धारण करनेवाले, करुणाका विस्तार करनेवाले, म्लेच्छोंका संहार करनेवाले—इस दश प्रकारके शरीर धारण करनेवाले हे श्रीकृष्ण! मैं आपको नमस्कार करता हूँ॥१२॥

बालबोधिनी—इस गीतगोविन्द काव्यके प्रथम सर्गके प्रथम प्रबन्धके दश पद्योंमें कवि जयदेवजीने भगवान् श्रीकृष्णके अवतारोंकी मनोरम लीलाओंका चित्रण किया है। दश अवतार स्वरूपको प्रकट करनेवाले श्रीकृष्णने मत्स्य रूपमें वेदोंका उद्धार किया, कूर्म रूपमें पृथ्वीको धारण किया, वराह रूपमें पृथ्वीका उद्धार किया, नृसिंह रूपमें हिरण्यकशिपुको विदीर्ण किया, वामन रूपमें बलिको छलकर उसे अपना लिया, परशुराम रूपमें दुष्ट क्षत्रियोंका विनाश किया, बलभद्र रूपमें दुष्टोंका दमन किया, बुद्धके रूपमें करुणाका विस्तार किया, कल्कि रूपमें म्लेच्छोंका नाश

किया—इस प्रकार दशविध अवतार धारण करनेवाले हे भगवान् श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है॥१२॥

इति दशावतार कीर्त्तिधवलो नाम प्रथमः प्रबन्धः।

इस प्रकार प्रथम प्रबन्धमें दशावतार स्तोत्र कीर्त्तिधवल नामक छन्द है। प्रस्तुत प्रबन्धमें पारस्वर, मध्यमादि राग, आदि ताल, विलम्बित लय, माध्यमी रीति तथा शृङ्गार रस है। इसमें वासुदेव भगवान्‌के यशका वर्णन है॥

इति श्रीगीतगोविन्दे प्रथमः सन्दर्भः।

अथ द्वितीय सन्दर्भः।

गीतम् ॥२॥

गुर्ज्जरी राग निःसार तालाभ्यां गीयते

अनुवाद—गुर्ज्जरी राग तथा निःसार तालसे यह द्वितीय प्रबन्ध गाया जाता है।

गुर्ज्जरी राग—श्यामा नायिकाके समान जो शीतकालमें उष्ण और ग्रीष्मकालमें सुशीतल होती है, जिसके स्तनयुगल सम्यक् रूपेण कठोर हैं, जिसके पदस्पर्श मात्रसे अशोक वृक्षमें असमय ही पुष्प प्रस्फुटित हो जाते हैं, जो मनोहर केशोंको धारण करनेवाली, मलय तरुवरकी कोमल पल्लवोंद्वारा सुसज्जित शय्यामें पहुँचती हैं, श्रुतिके दाहिनी ओरसे स्वरोंको धारण करती है। इसमें निःसार ताल जैसे दो ताल द्रुत और दो ताल लघु होते हैं। इसको गुर्ज्जरी राग कहा जाता है।

श्रितकमलाकुच मण्डल! धृत–कुण्डल!
कलित–ललित–वनमाल!
जय जय देव हरे॥१॥ध्रुवम्॥

दिनमणि–मण्डल–मण्डन! भवखण्डन!
मुनिजन–मानस–हंस!
जय जय देव हरे॥२॥
कालिय–विषधर–गञ्जन! जनरञ्जन!
यदुकुल–नलिन–दिनेश!
जय जय देव हरे॥३॥
मधु–मुर–नरक–विनाशन! गरुड़ासन!
सुरकुल–केलि–निदान!
जय जय देव हरे॥४॥
अमल–कमल–दललोचन! भव मोचन।
त्रिभुवन भवन–निधान!
जय जय देव हरे॥५॥
जनक–सुता–कृत–भूषण! जितदूषण!
समर–शमित–दशकण्ठ!
जय जय देव हरे॥६॥
अभिनव–जलधर–सुन्दर! धृतमन्दर!
श्रीमुखचन्द्र–चकोर!
जय जय देव हरे॥७॥
तव चरणे प्रणता वयम् इति भावय।
कुरु कुशलं प्रणतेषु,
जय जय देव हरे॥८॥
श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतम्
जय जय देव हरे॥९॥

श्रितकमलाकुचमण्डल! धृत कुण्डल!
कलित-ललित-वनमाल!
जय जय देव हरे॥१॥ध्रुवम्॥

अन्वय—[इदानीं परव्योमनाथत्वेन धीरललितत्वमाह—हे श्रितकमलाकुचमण्डल (श्रितं धृतं कमलाया लक्ष्म्याः कुचमण्डलं स्तनयुगलं येन तत्सम्बुद्धौ) अनेन विदग्धत्वपरिहासविशारदत्व-प्रेयसीवशत्वनिश्चिन्तत्वानि सुचितानि] हे धृतकुण्डल (धृते कुण्डले तत्सम्बुद्धौ) हे कलितललितवनमाल (कलिता धृता ललिता सुन्दरी वनमाला येन तत्सम्बुद्धौ); [एतेन विशेषणद्वयेन नवतारुण्यत्वं सूचितम्, तेनैव वेशविन्याससिद्धेः] हे देव, हरे, जय जय (उत्कर्षमाविष्कुरु) ["विदग्धो नव-तारुण्यः परिहास-विशारदः। निश्चिन्तो धीरललितः स्यात् प्रायः प्रेयसीवशः॥"]॥१॥

अनुवाद—हे श्रीराधाजीके स्तन मण्डलका आश्रय लेनेवाले! कानोंमें कुण्डल तथा अतिशय मनोहर वनमाला धारण करनेवाले हे हरे! आपकी जय हो॥

अथवा हे देव! हे हरे! हे कमला कुचमण्डल बिहारी! हे कुण्डल भूषण धारि! हे ललित मालाधर! आपकी जय हो॥१॥

पद्यानुवाद—

धृत कमला कुच मण्डल श्रुतिकुण्डल हे।
कलित ललित वनमाल जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—कवि श्रीजयदेवजी श्रीकृष्णको सबके उपास्य रूपमें वर्णितकर अब दूसरे गीति-प्रबन्धमें एकमात्र चिन्तनीय स्वरूप ध्येयरूपमें वर्णन हेतु धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरशान्त और धीरललित आदि नायकत्व गुणोंसे समन्वित समस्त नायक-चूड़ामणि श्रीकृष्णकी सर्वश्रेष्ठताको प्रकटित करते हुए प्रार्थना करते हैं।

श्रित कमला कुचमण्डल हे—इस पदका विग्रह है—श्रित कमलायाः कुचमण्डलं येनाऽसौ तत्सम्वुक्षै श्रितकमलाकुचमण्डल

अर्थात् श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके स्तनमण्डलीकी सेवा करनेवाले हैं। वे लक्ष्मीजीके प्रिय हैं तथा श्रीलक्ष्मीजी उनकी प्रियतमा हैं। इस पदसे यह भी सूचित होता है कि वे श्रीकृष्ण क्रीड़ाविलासी, विदग्ध, परिहास विशारद, प्रेयसीवश एवं निश्चिन्त हैं। 'ए'कार आलाप मात्र है।

धृतकुण्डल ए, धृते कुण्डल येन स तथा तस्य सम्बुद्धिः, अर्थात् जिन्होंने कानोंमें कुण्डल धारण किया है, मकराकृति कुण्डल धारण करनेसे उनके मुखारविन्दकी शोभा और भी बढ़ जाती है।

कलित ललित वनमाल—आपने अतिशय मनोहर वनमालाको धारण किया है। विश्वकोषकार कहते हैं—

आपादलम्बिनी माला वनमालेति तां विदुः।
पत्रपुष्पमयी माला वनमाला प्रकीर्त्तिता॥

अर्थात् पैरपर्यन्त लटकनेवाली मालाको वनमाला कहते हैं। वनमाला पत्र एवं पुष्पोंसे बनी हुई होती है।

इस प्रकार तीनों विशेषणोंसे श्रीकृष्णका नवतारुण्य द्योतित होता है, उनका वेशविन्यास भी प्रकाशित होता है—नवकिशोर नटवर गोपवेश वेणुकर।

हरे—हे श्रीकृष्ण! आप सबके चित्त, मन एवं प्राणोंको आकर्षित करते हैं, साथ ही सबके मध्यमें अपनी लीला चमत्कारिता प्रकट करते हैं। इससे आपका उत्कर्ष उजागर हो रहा है।

इस गीतिके प्रत्येक पदके अन्तमें 'जय जय देव हरे'—इस ध्रुव पदकी संयोजना है।

प्रस्तुत श्लोकमें श्रीकृष्णका धीरललितत्व चित्रित हो रहा है, जैसाकि धीरललित नायकका लक्षण है—विदग्ध, नवतरुण, विशारद, निश्चिन्त एवं प्रेयसीवश्यता।

'ए'-कार का प्रयोग गानकी वेलामें रागपूर्त्तिके लिए हुआ है॥१॥

दिनमणि–मण्डल–मण्डन! भवखण्डन!
मुनिजन–मानस–हंस!
जय जय देव हरे॥२॥

अन्वय—[अथ सवितृमण्डलान्तर्ध्येयत्वेन धीरशान्तत्वमाह]—हे दिनमणिमण्डलमण्डन (हे सवितृमण्डलभूषण) [अनेन क्लेशसहत्वं विनयादिगुणोपेतत्वञ्च सूचितम्]; [अतएव] हे मुनिजनमानस–हंस (मुनिजनानां मानसं चित्तं तदाख्यः सरइव तत्र स्थित हंस) [हंसो जलचरजीवविशेषः तदाख्यपरममन्त्रस्वरूपश्च]; [अनेन समप्रकृतिकत्वं विनयादिगुणोपेतत्वञ्च सूचितम्]; हे भवखण्डन (भवं संसारं खण्डयतीति तत्सम्बुद्धौ, संसारबन्धखण्डनकृत्), हे देव, हरे, जय जय (उत्कर्षमाविष्कुरु) ["सम प्रकृतिकक्लेश–सहनश्च विवेचकः। विनयादिगुणोपेतो धीरशान्त उदीर्यते"]॥२॥

अनुवाद—हे देव! हे हरे! हे सूर्य–मण्डलको विभूषित करनेवाले, भव–बन्धनका छेदन करनेवाले! मुनिजनोंके मानस सरोवरमें विहार करनेवाले हंस! आपकी जय हो! जय हो॥२॥

पद्यानुवाद—

दिनमणि मण्डित भव खण्डित हे।
मुनिजन मानस हंस जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—दिनमणि मण्डल मण्डन! श्रीभगवान्का सूर्यमण्डलके भीतर अन्तर्यामी रूपमें निवास है। वे ध्येय एवं चिन्तनीय हैं।

ध्येयः सदा सवितृमण्डल मध्यवर्त्ती, नारायणः सरसिजासन सन्निविष्टः।

जैसे सूर्यमण्डल सभीके द्वारा पूज्य हैं, उसी प्रकार आप भी सबके द्वारा चिन्तनीय एवं उपास्य हैं। और भी कहा है—ज्योतिरभ्यन्तरे श्यामसुन्दरमतुलं॥

भवखण्डन ए—एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपासः सत्यकामः सत्यसङ्कल्पः।

अर्थात् यह आत्मा स्वभावसे कर्मके बन्धनसे रहित, जरा, मृत्यु, शोक, मोह, भूख, प्याससे रहित सत्यकाम तथा सत्यसङ्कल्प है।

संसार बन्धनमें पड़े रहनेसे ये गुण तिरोहित हो जाते हैं और भगवान्‌की कृपा होनेपर आविर्भूत हो जाते हैं। इसलिए 'भवखण्डन' कहकर भगवान् श्रीकृष्णको सम्बोधित किया है।

मुनिजनमानसहंस—मुनिजनानां मानसानि इव मानसानि तेषु हंस इव हंस—अर्थात् मननशील मुनियोंके मानसरूप मानसरोवरमें श्रीभगवान् उसी प्रकार विहार करते हैं, जैसे राजहंस मानसरोवरमें। आपके विहार करनेसे इन मुनियोंमें सदा स्फूर्त्ति होती रहती है।

ये मुनिगण सम प्रकृति होकर कष्ट सहन करते हैं और विनय आदि गुणोंसे सम्पन्न होकर भजन करते हैं। भगवान्‌की कृपा होनेसे ये संसारसे विरक्त हो जाते हैं।

देव—दिव्य गुणोंसे सम्पन्न होनेके कारण भगवान्‌को 'देव' शब्दसे अभिहित किया है।

जय—इस क्रियापदका प्रयोग कविकी आदरातिशयताका द्योतक है।

प्रस्तुत पदके नायक धीरशान्त हैं॥२॥

कालिय–विषधर–गञ्जन जनरञ्जन!
यदुकुल–नलिन–दिनेश!
जय जय देव हरे॥३॥

अन्वय—[ध्येयविशेषत्वेन धीरोद्धतत्वमाह द्वाभ्याम्]—हे कालियविषधरगञ्जन (कालियसर्पदमन) हे जनरञ्जन (जनसन्तोष) हे यदुकुल–नलिन–दिनेश (यदुकुलान्येव नलिनानि तेषां दिनेशः सूर्यइव तत्सम्बुद्धौ) हे देव, हरे जय जय ["मात्सर्यवानहङ्कारी मायावी रोषणश्चलः। विकत्थनश्च विद्वद्भिर्धीरोद्धत उदाहृत।" अत्र कालियेत्यादिना मात्सर्यवत्त्वं जनरञ्जनेत्यादिना यदुकुलेत्यादिना च अहङ्कारित्वम् अहन्तया ममच जनरञ्जनादिसिद्धेः]॥३॥

अनुवाद—हे देव! हे हरे! विषधर कालिय नामके नागका मद चूर्ण करनेवाले, निजजनोंको आह्लादित करनेवाले, हे यदुकुलरूप कमलके प्रभाकर! आपकी जय हो! जय हो॥३॥

पद्यानुवाद—

कालिय विषधर गञ्जन जन रञ्जन हे।
यदुकुल नलिन दिनेश जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—कवि श्रीकृष्णको अपना उपास्य होनेपर भी ध्येय विषयके रूपमें स्तुति कर रहे हैं। इसमें श्रीकृष्णका धीरोद्धत नायकत्व प्रस्तुत किया जा रहा है।

कालिय विषधर गञ्जन—श्रीकृष्ण भगवान्ने यमुनामें रहनेवाले (कालिय दहमें) कालिय नामक सौ फणवाले महा विषधर सर्पका गर्व खर्व (चूर्ण) कर दिया।

जन-रञ्जन ए—भगवान्ने कालिय दमनसे व्रजजनोंको आह्लादित किया। श्रीकृष्ण भलीभाँति जानते हैं कि व्रजजन उनके अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहते, यहाँतक कि वे मेरे बिना प्राण भी धारण नहीं कर सकते, उनकी रक्षा, उनका अनुरञ्जन श्रीकृष्णको भी करणीय हो जाता है। हे जन अनुरञ्जन कारिन्! आपकी जय हो!!

यदुकुल-नलिन-दिनेश—गोपगण ही यादव हैं। अतएव भगवान् ही गोकुलके प्रकाशक हैं। जिस प्रकार भास्करके उदित हो जानेपर अरविन्द प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्के द्वारा यदुवंशमें अवतार ग्रहण करनेसे यदुवंश विकसित हुआ है।

प्रस्तुत पदमें श्रीभगवान्को बलशाली, जन-आह्लादकारी गुणसम्पन्न एवं कुलीन बताया है। अतः हे देव! आप हम जैसे मात्सर्य भावयुक्त अहङ्कारियोंका अहङ्कार चूर्णकर हमारा अनुरञ्जन करें।

धीरोद्धत—मात्सर्यवान्, अहङ्कारी, मायावी, रोष-परायण, चञ्चल, विकथनकारी नायकको धीरोद्धत नायक कहा जाता है॥३॥

मधु-मुर-नरक-विनाशन! गरुड़ासन!
सुरकुल-केलि-निदान!
जय जय देव हरे॥४॥

अन्वय—हे मधु-मुर-नरकविनाशन! (मध्वादीनां विनाशकृत्) गरुड़ासन! (गरुड़वाहन) सुरकुलकेलिनिदान! (सुराणां कुलं तस्य केलिः सच्छन्दविहारः तस्य निदान कारण); [असुराणां निधनेन तेषामकुतोभयत्वादिति भावः]; [एतेन मायावित्वादि चतुष्टयमुक्तं भवति] हे देव, हरे, जय जय॥४॥

अनुवाद—हे देव! हे हरे! हे मधुसूदन! हे मुरारे! हे नरकान्तकारी! हे गरुड़-वाहन! हे देवताओंके क्रीड़ा-विहार-निदान, आपकी जय हो! जय हो॥४॥

पद्यानुवाद—

मधु-मुर नरक विनाशन, गरुड़ासन हे।
सुरकुल केलि निदान, जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—मधु-मुर-नरक विनाशन—श्रीकृष्णके तीन लोक हैं, जहाँ वे नित्य-लीलाविलास करते हैं। गोकुल, मथुरा एवं द्वारका। इन धामोंमें लीलाविलास करते हुए श्रीकृष्णमें नायकत्वके छियानवे लक्षण दिग्दर्शित हुए हैं। प्रस्तुत स्तवनांशमें उनका धीरोद्धत्तत्व प्रकाशित हो रहा है। श्रीकृष्णने द्वारकापुरीमें रहते हुए मधुदैत्य एवं नरकासुर आदिका संहार किया है।

इस भावको मधु-मुर-नरक विनाशन पदसे अभिव्यक्त किया है।

गरुड़ासन ए—गरुड़ आसनं यस्य तत्सम्बुद्धौ—यह गरुड़ासन पदका विग्रह है। पक्षिराज गरुड़का पृष्ठ भगवान्‌का आसन है। अतः भगवान्‌को गरुड़ासन अथवा गरुड़वाहन कहा जाता है।

सुरकुल-केलिनिदान—असुरोंका संहारकर भगवान् देवताओंका आनन्दवर्द्धन किया करते हैं। वे भक्तजनोंके साथ आनन्द विहार करते हैं।

यहाँ श्रीकृष्णका मायावित्व भी भासित हो रहा है। हे हरे! आपकी जय हो॥४॥

अमल–कमल–दललोचन! भव मोचन!
त्रिभुवन भवन–निधान!
जय जय देव हरे॥५॥

अन्वय—[सर्वतापोपशमनपूर्वकसर्वाभीष्टप्रदतया देवसहायक-रूपेण धीरोदात्तमाह]—हे अमलकमलदललोचन (प्रफुल्लपद्मपत्रे इवलोचने यस्य, हे तादृश) [एतेन तापशमकत्वम्]; हे भवमोचन (संसारक्लेशहर) [एतेन करुणत्वं]; हे त्रिभुवन-भवननिधान (त्रिभुवनमेव भवनं गृहं तस्य निधानं निधिरिव अमूल्यरत्नमित्यर्थः, तत्सम्बुद्धौ); [एतेन विनयित्वम्; हे देव, हरे, जय जय। ["गम्भीरो विनयी क्षन्ता करुणः सुदृढ़व्रतः। अकत्थनो गूढ़गर्वो धीरोदात्तः सुसत्त्वभृत्॥"]॥५॥

अनुवाद—हे देव! हे हरे! हे निर्मल कमलदलके समान विशाल नेत्रोंवाले, भव-दुःख मोचन करनेवाले, त्रिभुवनरूप भवनके आधार स्वरूप, आपकी जय हो, जय हो॥५॥

पद्यानुवाद—

अमल कमल दल लोचन, भव–मोचन हे।
त्रिभुवन भवन निधान, जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—पाँचवें पद्यमें श्रीकृष्णके धीरोदात्त गुणको अभिव्यक्त कर रहे हैं।

अमल-कमल-दललोचन—अमले ये कमलदले ते इव लोचने यस्याऽसौ तथाविधः तत् सम्बुद्धौ अर्थात् जिनके नेत्र अमल कमल दलके समान निर्मल हैं। नेत्रयुगल सभीके तापोंका प्रशमनकर चित्त, मन और प्राणोंका हरण कर लेते हैं—

तेरछे नेत्रान्त वाण विन्धे गोपीगण–प्राण।

भवमोचन, सभी भक्तोंके संसार बन्धनका मोचन करते हैं, जीवोंकी रक्षा करते हैं। इस पदसे भगवान्‌का कारुण्य भी द्योतित हो रहा है।

त्रिभुवन–भवन–निधान—श्रीहरि त्रैलोक्यव्यापक हैं, वे त्रैलोक्यरूपी भवनके निधिस्वरूप हैं, कारण हैं, जनक हैं—इस तरह आपमें विनयीत्व गुणका प्रकाश होता है। आपकी जय हो।

धीरोदात्त—गम्भीर, विनयी, क्षमाशील, करुण, सुहृद्व्रती, अकथ्य कथनकारी, गुण गर्वीले तथा महान् सत्यपरायण आदि धीरोदात्तके गुण श्रीकृष्णमें विद्यमान हैं॥५॥

जनक–सुता–कृतभूषण! जितदूषण!
समर–शमित–दशकण्ठ!
जय जय देव हरे॥६॥

अन्वय—हे जनकसुताकृतभूषण (जनकसुतया सीतया कृतं भूषणम् अलङ्कारः यस्य; यद्वा जनक सुतायाः कृतं भूषणं येन तत्सम्बुद्धौ; हे सीताकृतालङ्कार; यद्वा कृतसीतालङ्कार), एतेन सुदृढ़व्रतत्वम्]; हे जितदूषण (जितः दूषणः दण्डकारण्यचरो राक्षसविशेषः येन अथवा जितं दूषणं दोषजननं कार्यं येन तत्सम्बुद्धौ; दूषणजयिन् अथच दोषरहित), [एतेन अकत्थनत्वम्]; [तथा] समरशमितदशकण्ठ (समरे युद्धे शमितः नाशितः दशकण्ठो रावणो येन तत्सम्बुद्धौ) [एतेन क्षन्तृत्वगूढ़गर्वत्वसुसत्त्व–भृत्त्वानि] हे देव, हरे, जय जय॥६॥

अनुवाद—हे देव! हे हरे! श्रीरामावतारमें सीताजीको विभूषित करनेवाले, दूषण नामक राक्षसपर विजय प्राप्त करनेवाले तथा युद्धमें दशानन रावणको वधकर शान्त करनेवाले, आपकी जय हो! जय हो॥६॥

पद्यानुवाद—

जनक–सुता कृत भूषण, जितदूषण हे।
समर शमित दशकण्ठ, जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—भगवान् श्रीकृष्णके श्रीरामावतारमें धीरोदात्त नायकत्व है।

जनक–सुता–कृतभूषण—धीरोदात्त गुणोंसे विभूषित हे देव!

आप जनकसुताको अपने हाथोंसे समलंकृत करते हैं। आप नव दुर्वादलस्वरूप श्याम हैं। आपके द्वारा स्वर्णाङ्गी वैदेही विभूषित होती हैं। हे सुदृढ़ व्रतपरायण, आपकी जय हो।

जितदूषण ए—जितदूषणो येनाऽसौ—आपने दूषण नामक राक्षसका वध कर दिया है। वनवासकालमें दण्डकारण्य नामक वनमें निवास करते हुए आप जितदूषण कहलाये।

समर-शमित-दशकण्ठ—राक्षसराज रावण, जो संग्राममें स्थिर रहनेवाला संग्रामकारी और अकथ्य वचन बोलनेवाला, ऐसे महावीरको आपने रणप्राङ्गणमें धराशायीकर शान्त कर दिया। हे वीरोंके अधिपति! हे हरे! गूढ़गर्व तथा क्षमा गुणोंसे विभूषित आपकी जय हो॥६॥

अभिनव-जलधर-सुन्दर! धृतमन्दर!
श्रीमुखचन्द्रचकोर!
जय जय देव हरे॥७॥

अन्वय—[अधुना धीरललितमुख्यत्वप्रतिपादनाय अजित-रूपत्वेन सम्पुटितमिव पुनस्तमेवाह]—हे अभिनव जलधर-सुन्दर (नवजलधररूचे) हे धृतमन्दर (मन्दरधारिन्) [आभ्यां नवतरुणत्वं तदधिगमः]; हे श्रीमुखचन्द्रचकोर (श्रियाः लक्ष्म्याः मुखमेव चन्द्रः तत्र चकोरइव तत्सम्बुद्धौ; कमलावदनचन्द्रसुधापायिन् इत्यर्थः) [अनेन प्रेयसीवशत्वं सूचितम्] हे देव, हे हरे, त्वं जय जय॥७॥

अनुवाद—हे नवीन जलधरके समान वर्णवाले श्यामसुन्दर! हे मन्दराचलको धारण करनेवाले! श्रीराधारूप महालक्ष्मीके मुखचन्द्रपर आसक्त रहनेवाले चकोर-स्वरूप! हे हरे! हे देव! आपकी जय हो! जय हो॥७॥

पद्यानुवाद—

अभिनव जलधर सुन्दर धृत मन्दर हे।
श्रीमुख चन्द्र चकोर, जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत पद्यमें धीरललित नायकका मुख्यत्व प्रतिपादन करते हुए भगवान्‌के विविध अवतारोंकी लीलाओंका प्रदर्शन किया है।

अभिनव–जलधर–सुन्दर—श्रीभगवान् अभिनव सुन्दर हैं, उनका दिव्यातिदिव्य मङ्गलमय विग्रह सजल मेघके समान मनोहर है।

धृतमन्दर—क्षीरसागरके मन्थन कालमें आपने मन्दराचलको धारण किया था। जब मन्दराचल ठहर नहीं रहा था, तब आप कच्छप बन गये थे अथवा श्रीराधाजीके हृदय देशको धारण करते हैं। दूसरे रूपमें देवताओंके साथ समुद्रका मन्थन करते हैं।

श्रीमुखचन्द्र चकोर—श्रीराधाजीका मुखकमल भगवान्‌को आह्लादित करते रहनेके कारण विधु सरीखा है। चकोर जैसे चन्द्रमाकी ओर अस्पृह रूपमें निर्निमेष नेत्रोंसे देखा करता है, उसी प्रकार श्रीभगवान् भी श्रीराधाजीके मुखकी मनोज्ञताको देखकर हर्षातिरेकताका अनुभव करते रहते हैं। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो!!

नवजलधर सुन्दर पदसे भगवान्‌का नवतारुण्य द्योतित होता है। चकोर पदसे उनकी प्रेयसीवश्यता सूचित होती है। धृतमन्दर पदसे श्रीराधाजीके कुचयुगलको धारण करते हैं। हे प्रभो! आपकी जय हो॥७॥

तव चरणे प्रणता वयम् इति भावय।
कुरु कुशलं प्रणतेषु,
जय जय देव हरे॥८॥

अन्वय—अथ श्रोतृषु वक्तृषुच प्रसादं प्रार्थयते—हे हरे! वयं तव चरणे प्रणताः इति भावय (चिन्तय—जानीहि); [ज्ञात्वाच] प्रणतेषु (अस्माषु) कुशलं कुरु (देहि); त्वल्लीला–नुभवसमर्थं कुरु। (त्वल्लीलानुभवस्य त्वत्प्रसादं विनानुपपत्तेः परमानन्दरूपत्वादित्यर्थः) हे देव, हरे जय जय॥८॥

अनुवाद—हे भगवन्! हम आपके चरणोंमें शरणागत हैं। आप प्रेमभक्ति प्रदानकर अपने प्रति प्रणतजनोंका कुशल विधान करें। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो! जय हो॥८॥

पद्यानुवाद—

तव चरणोंमें हम नत हे।
करो कुशल अखिलेश! जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत पद्यमें कवि अपने श्रोताओं और वक्ताओंके कल्याणके लिए श्रीकृष्णके अनुग्रहकी प्रार्थना कर रहे हैं। हे कल्याण गुणाकर! हम आपके चरणोंमें प्रणत हैं। अतएव आप हम शरणागतोंका कल्याण करें। भक्तोंके पाप और तापका विनाश करें। आप परमानन्दस्वरूप हैं, वैसे ही आपकी लीला परमानन्दस्वरूप है, आप इन लीलाओंको हमारे हृदयमें स्फूर्त्तिप्राप्त करवाकर हम सबका आनन्दवर्द्धन करें॥८॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतम्,
जय जय देव हरे॥९॥

अन्वय—श्रीजयदेवकवेः इदम् उज्ज्वलगीतं (उज्ज्वलं यथा तथा गीतं) मङ्गलं (माङ्गलिकं वचनम् अथवा मङ्गलाचरणमात्रं कर्त्तृ) मुदं (हर्षं) कुरुते (जनयति; तव भक्तानां चेतसीति शेषः) हे देव हरे त्वं जय जय॥९॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि प्रणीत यह मनोहर, उज्ज्वल गीतिमय मङ्गलाचरण आपका आनन्द वर्द्धन करें अथवा आपके गुणोंके श्रवण कीर्त्तन करनेवाले भक्तजनोंको आनन्द प्रदान करें। आपकी जय हो! जय हो॥९॥

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव लिखित यह सुन्दर।
मङ्गल उज्ज्वल गीत जय जय देव हरे॥

बालबोधिनी—कवि श्रीजयदेवजी भगवान्‌की स्तुतिकी समाप्तिपर निवेदन करते हैं कि मैंने मङ्गलाचरणमें उज्ज्वल रसकी गीति तथा श्रीराधामाधवके केलिविलास–वर्णन करनेका सङ्कल्प लिया तो इससे मेरा हृदय आनन्दसे अतिशय तरङ्गायित हो उठा है। यदि मङ्गलाचरणमें ही इतना आनन्द है, तब श्रीराधामाधवके केलिविलास वर्णन करनेमें न जाने कितना आनन्द होगा। यह मेरा मनोहर मङ्गल गीत आपके लिए आनन्दप्रद बने, सुनने–सुनानेवालोंका भी कल्याणप्रद बने।

मङ्गलाचरणके इन नौ श्लोकोंमें मङ्गल छन्द है॥९॥

पद्मापयोधर–तटी–परिरम्भ–लग्न–
काश्मीर–मुद्रितमुरो मधुसूदनस्य
व्यक्तानुरागमिव खेलदनङ्गखेद–
स्वेदाम्बु पूरमनुपुरयतु प्रियं वः॥

अन्वय—[एवं प्रार्थ्य श्रोतृन् प्रति आशिषमातनोति]—पद्मापयोधरतटी–परिरम्भ–लग्नकाश्मीरमुद्रितम् (पद्माया लक्ष्म्या या पयोधरतटी कुचपरिणाहः स्तन–परिसर इति यावत्, तस्य परिरम्भणेन आलिङ्गनेन लग्नं यत् काश्मीरं कुङ्कुमं तेन मुद्रितं चिह्नितं) [अतः] व्यक्तानुरागम् (व्यक्तः स्पष्टीभूतोऽनुराग आसक्तिः यत्र तादृशम्) इव [तथा] खेलदनङ्ग–खेद–स्वेदाम्बुपूरम् (खेलन् क्रीड़न् यः अनङ्गस्तेन यः खेदः आयासः तेन स्वेदाम्बुपूरः घर्मजलप्रवाहः यत्र तथाभूतं) मधुसूदनस्य उरः (वक्षः) वः (युष्माकं) प्रियम् अनुपूरयतु (निरन्तरं विदधातु) [अन्तरुच्छलितः प्रियानुरागो बहिः काश्मीररूपेण उरसि आविर्भूत इवेत्यर्थः॥

अनुवाद—पद्मा श्रीराधाजीके कुङ्कुम छापसे चिह्नित स्तन–युगलका परिरम्भण करनेसे जिन श्रीकृष्णका वक्षःस्थल

अनुरञ्जित हो गया है, मानो हृदयस्थित अनुराग ही रञ्जित होकर व्यक्त होने लगा है, साथ ही कन्दर्पक्रीड़ाके कारण जात स्वेद-विन्दुओंसे जिनका वक्षःस्थल परिप्लुत हो गया है, ऐसे मधुसूदनका सम्भोगकालीन वक्षःस्थल आप सबका (हम सबका) मनोरथ पूर्ण करें।

पद्यानुवाद—

हरि हरे व्यथा सब मनकी
जिनके वक्षस्थलपर अङ्कित केशर कमला स्तनकी।
जिनपर छाई शोभा रतिके श्रमके मंजुलकणकी
हरि हरे व्यथा सब मनकी॥

बालबोधिनी—कवि श्रीजयदेवजीने पूर्व गीतिमें प्रभुसे प्रार्थना करनेके उपरान्त श्रोताओंको आशीर्वाद प्रदान करनेके लिए प्रस्तुत श्लोककी अवतारणा की है।

पद्मापयोधर तटी—जब व्रजविलासी श्रीकृष्ण अपनी प्रियतमाका आलिङ्गन करते हैं, तो उनके स्तनोंके प्रान्त-भाग तक लगे हुए कुंकुम-केशर द्रवकी छाप भगवान्‌के वक्षःस्थलपर अङ्कित हो जाती है। श्रीराधाजीसे सर्वाधिक प्रीति रखनेके कारण उनका हृदय राधिकानुरागसे रञ्जित रहता है (अनुरागका रङ्ग रक्तवर्ण होता है)। पयोधर तटी पदसे स्तनोंका उन्नतत्व तथा प्रान्त भागको पर्वतकी तलहटीके समान सूचित किया है।

परिरम्भ लग्न काश्मीर—स्तन तटोंमें लेपित काश्मीर द्रवसे संलग्न श्रीकृष्णका वक्षःस्थल दीर्घकालपर्यन्त किये गये प्रगाढ़ आलिङ्गनको सूचित करता है।

मुद्रित मुरो—श्रीस्वामिनीजीका कुचकुंकुम श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें मुद्रण यन्त्रकी भाँति चिह्नित हो गया है। वह अमिट रूपसे सुशोभित हो रहा है। अहो! धन्य है स्नेहातिशयता।

व्यक्तानुरागमिव—जो अनुरागविशिष्ट हृदयमें सन्निहित

(छिपा हुआ) था, वह अब स्पष्ट रूपसे अभिव्यक्त हो गया। अब यह अनुरागरञ्जित हृदय अन्यत्र संलिप्त नहीं हो सकेगा, इसलिए इसे प्रकट कर दिया है।

खेलदनङ्गखेद स्वेदाम्बुपुरम्—श्रीकृष्णका अनुराग-रङ्गसे रञ्जित वक्षःस्थल दीर्घकालीन कन्दर्पक्रीड़ाके कारण परिश्रान्त होनेसे स्वेदवारिसे पूर्ण हो गया है अथवा श्रीश्यामके विशाल वक्षःस्थलमें घर्मबिन्दुओं (पसीनेके बूँदों) से सिक्त कुंकुम राग उनके हृदयस्थित अनुरागको मानो काश्मीर-रङ्गके रूपमें बाहर प्रकट कर रहा है।

अनुपुरयतु प्रियं वः—इस प्रकार अनुराग-केशरसे रञ्जित श्रीकृष्णका वक्षस्थल हमारे अभीष्टको पूर्ण करे। हमारे हृदयमें प्रेमका वर्द्धन करे।

प्रस्तुत श्लोक वसन्त रागमें गाया जाता है, इससे भगवान्के वासन्तिक स्वरूपका भी सङ्केत प्राप्त होता है। यहाँ नायिका मुग्धा, नायक कुशल, वसन्ततिलका वृत्त, आशीः, उत्प्रेक्षा एवं अनुप्रास अलङ्कार तथा श्रृङ्गार रस है॥१॥

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वितीयः सन्दर्भः।

अथ तृतीयः सन्दर्भः।

वसन्ते वासन्ती-कुसुम-सुकुमारैरवयवै-
र्भ्रमन्तीं कान्तारे बहुबिहित-कृष्णानुसरणाम्।
अमन्दं कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया
बलद्बाधां राधां सरसमिदमूचे सहचरी॥१॥

अन्वय—[श्रीराधाया अष्टनायिकावस्थां वर्णयन् सम्भोगपोषक-विप्रलम्भ-श्रृङ्गार-वर्णनाय प्रथमं विरहोत्कण्ठितामाह]—काचित् सहचरी (सखी) वसन्ते (वसन्तकाले) वासन्तीकुसुमसुकुमारैः

(वासन्तीपुष्पैरिव सुकुमारैः यूथिकाकुसुमपेलवैरित्यर्थः) अवयवैः (अङ्गैरुपलक्षितामित्यर्थः) कान्तारे (निविडे वने) भ्रमन्तीं बहु-बिहित-कृष्णानुसरणाम् (बहु यथातथा बिहितं कृतं कृष्णानुसरणं यया ताम्) [अतएव] अमन्दं (नितान्तं) कन्दर्पज्वरजनितचिन्ताकुलतया (कामसन्तापजनिता या चिन्ता उत्कण्ठा तया आकुलतया कातरतया) बलद्बाधां (परिवर्द्धमान-मदनपीडां) राधाम् इदं (वक्ष्यमाणं) सरसं (रसवत्) वचः ऊचे॥

अनुवाद—किसी समय वसन्त ऋतुकी सुमधुर बेलामें विरह-वेदनासे अत्यन्त कातर होकर राधिका एक विपिनसे दूसरे विपिनमें श्रीकृष्णका अन्वेषण करने लगी, माधवी लताके पुष्पोंके समान उनके सुकुमार अङ्ग अति क्लान्त हो गये, वे कन्दर्पपीड़ाजनित चिन्ताके कारण अत्यन्त विकल हो उठीं, तभी कोई एक सखी उनको अनुरागभरी बातोंसे सम्बोधित करती हुई इस प्रकार कहने लगी॥१॥

पद्यानुवाद—

कौन वह दुर्गम वनोंमें, त्रस्त-मातल डोलती है?
फूल वासन्ती शरीरी, कृष्णका मन तोलती है?
देखकर कन्दर्प ज्वरसे, क्रान्त; मनको खोलती है।
एक सहचरी हो सदय यह, राधिकासे बोलती है—

बालबोधिनी—प्रस्तुत पद्यमें महाकवि श्रीजयदेवजीने सर्वप्रथम श्रीराधामाधवके मङ्गलमय मधुर मिलनके द्वारा उनके महा उत्कर्षका वर्णन किया है। इसी उपक्रममें श्रीराधामाधवकी रहःकेलिका वर्णन करनेसे कविका हृदय विकसित कमलकी भाँति आनन्दमें उच्छलित होने लगा है। इसलिए रसिक कविने दक्षिण, धृष्ट एवं शठ नायकके गुणोंसे विभूषित श्रीकृष्णको श्रीराधिकाके प्रति अनुकूल नायकके रूपमें प्रकट किया है। श्रीशुकदेवजीने जैसे 'सूची कटाह' न्यायसे अर्थात् स्वल्प परिश्रम-साध्य कार्यका सम्पादनकर पीछे बहु-परिश्रम-साध्य

कार्यको सम्पन्न करनेकी भाँति समस्त गोपियोंकी पहले श्रेष्ठता दिखलाकर अन्तमें श्रीराधाजीकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की है। उसी प्रकार कविने श्रीराधामें आठ प्रकारके नायिका–लक्षणोंका वर्णन करते हुए श्रीराधाजीको सर्वनायिका–शिरोमणि सिद्ध किया है।

[आठ प्रकारकी नायिका जैसे—१. अभिसारिका २. वासकसज्जा ३. उत्कण्ठिता ४. खण्डिता ५. विप्रलब्धा ६. कलहान्तरिता ७. प्रेषित–भर्त्तृका ८. स्वाधीन भर्त्तृका]

प्रस्तुत श्लोकमें सम्भोग रसके पुष्टिकारक विप्रलम्भ शृङ्गारका वर्णन करते हुए विरहोत्कण्ठिता नायिका राधिकाका वर्णन कर रहे हैं। उद्धाम, मन्मथभावसे पीड़ित, महाज्वरग्रस्त, कम्पिताङ्गी, रोमाञ्चित, मलिनवपुमयी, पुनःपुनः मोहको प्राप्त होनेवाली वेपथुयुक्ता, सघनरूपसे पुलकित और उत्कण्ठिता होकर बोलनेवाली उत्कण्ठिता नायिकाके लक्षण भरतमुनिने नाट्यशास्त्रमें बताये हैं। शृङ्गार तिलक (१–७५) में विरहोत्कण्ठिता नायिकाके निम्नाङ्कित लक्षण बताये गये हैं—

उत्का भवति सा यस्याः सङ्केतं नागतः प्रियः।
तस्याऽनागमने हेतुं चिन्तयत्याकुला यथा॥

अर्थात् जिस नायिकाका नायक सङ्केतकालमें सङ्केत स्थानपर नहीं आता है, वह विरहोत्कण्ठिता नायिका कहलाती है, वह अपने प्रियतमके नहीं आनेके कारण सोच समझकर व्याकुल हो जाती है। यह श्लोक विप्रलम्भ शृङ्गार वर्णनकी भूमिका स्वरूप है। कवि कह रहे हैं कि वासन्तिक कालमें कोई एक सखी राधिकाजी से कहने लगी—"हे राधे! तुम्हारा शरीर माधवी पुष्पोंके समान अतिशय सुकोमल है और तुम यहाँ कण्टक कुशयुक्त, बीहड़ वनमें कान्त श्रीकृष्णकी प्राप्तिके लिए भ्रमण कर रही हो, इतना अन्वेषण करनेपर भी तुम्हें प्रियतम नहीं मिले। कन्दर्प–वाणसे पीड़ित, अति तीव्र कामज्वरसे सन्तप्त तुम उन्हें पानेकी लालसामें व्याकुल हो रही हो।"

प्रस्तुतपद्यमें 'वसन्त' पदके द्वारा कालरूपी उद्दीपन विभावको बतलाया है। 'चलद्'—यह पद श्रीराधाजीका विशेषण है, इससे सूचित होता है कि उन्होंने श्रीकृष्णको काननमें बार-बार अन्वेषण किया कि प्रियतम शायद अब आयें, अब आयें। 'वासन्ती सुकुमारयवै'—उन श्रीराधाजीके अङ्ग सुकुमार हैं। वासन्ती कुसुम अर्थात् माधवी लता। वसन्त ऋतुमें यह लता पूर्णतया विकसित हो जाती है, वासन्ती लताके पुष्प अत्यन्त मनोज्ञ तथा सुकुमार होते हैं, उसी प्रकार श्रीराधाजीके अङ्ग अत्यन्त मनोहर तथा सुकुमार हैं—यह इस पदके द्वारा सूचित होता है।

"हे सखी राधे! यह निश्चित है कि तुम्हारे प्राणनाथ श्रीकृष्ण तुम्हें छोड़कर किसी दूसरीके साथ विहार कर रहे हैं, शारदीया रास-रजनीमें प्रथम महोत्सवमें श्रीकृष्णने तुम्हारे असमोर्द्ध रूप-गुण माधुरीका अनुभव कर लिया था। तुम्हारे प्रति सर्वविदित अनुरागको वे सार्थक मानने लगे थे। अतः कदाचित् तुम्हारी सरीखी कोई इस व्रजमण्डलमें है या नहीं, यह जाननेके लिए पत्थरकी खुदाईकी क्रियाकी भाँति उसे ढूँढ़ते हुए कुछ दिनोंके लिए इधर उधर निकल गये हैं। अथवा तुम्हारे सदृश कोई है या नहीं यह जाननेकी इच्छासे श्रीकृष्णके अभिप्रायके अनुसार योगमायाने कंसको प्रेरणा दी और कंसने अक्रूरको नन्दगाँव भेजा, श्रीकृष्णने अक्रूरके साथ नारी संकुला बहुसंख्यक स्त्रियोंके सङ्गसे परिवेष्टित मथुरापुरीमें प्रस्थान किया। श्रीकृष्णने देखा, मथुरा मण्डलमें व्रजसुन्दरियों जैसा सौन्दर्य किसीका नहीं और न ही उनके जैसा गुणाकर्षण है। तब इस चाहमें वे मानो द्वारकाके लिए प्रस्थान कर गये। द्वारकामें तब श्रीकृष्णने नरेन्द्र कन्याओंके साथ विवाह किया, वहाँ भी सफलता न मिलने पर नरकासुर द्वारा अपहृत गन्धर्व कन्या, यक्ष कन्या, नाग कन्या एवं मानव कन्याओं (जिनकी संख्या षोडश सहस्र है) से

विवाह कर लिया, फिर भी हे राधिके! तुम्हारे समान किसीको भी न देखकर दन्तवक्र वधके पश्चात् पुनः व्रजमें लौट आये हैं।" पद्मपुराणमें श्रीकृष्णके सुदीर्घ प्रवासके पश्चात् व्रज आगमनका संवाद मिलता है—

कृष्णोऽपि तं दन्तवक्रं हत्वा यमुनामुतीर्य
नन्दव्रजं गत्वा सोत्कण्ठौ पितरौ अभिवाद्याश्वास्य
ताभ्यां साश्रुकण्ठमालिङ्गितः सकल गोपवृन्दान्
प्रणम्याश्वास्य सर्वान् सन्तर्पयामास॥

अर्थात् श्रीकृष्ण दन्तवक्रका वध करनेके पश्चात् यमुना पार करके नन्दव्रजमें पहुँचे। वहाँ चिरोत्कण्ठित नन्द–यशोदाको प्रणाम आदि द्वारा आश्वासन दिया। उन दोनोंने आँसुओंसे स्नान कराते हुए श्रीकृष्णको हृदयसे लगाकर चिर व्यथाको प्रशमित किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने समस्त गोपवृन्दसे मिलकर उनके विरह दुखःको शान्त करके चिर–विरहिणी व्रजगोपियोंसे मिलकर उनकी तीव्र विरह पीड़ाको भी शान्त किया।

श्रीमद्भागवतके प्रथम स्कन्धमें द्वारकावासी कह रहे हैं—

यर्ह्यम्बुजाक्षापससार भो भवान् कुरून्मधून् वाथ सुहृद्दिदृक्षया।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद् रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाच्युत॥

"हे कमलनयन! जब आप सुहृद्जनोंके दर्शनके निमित्त कुरुदेश तथा मधुपुरीमें (व्रजमण्डलमें) गमन करते हैं, उस समय आपके विरहमें क्षणकाल भी कोटि युगके समान प्रतीत होता है। जैसे सूर्यके बिना आँखोंमें अन्धकार प्रतीत होता है वैसे ही आपके बिना चारों ओर शून्य प्रतीत होता है।"

वसन्तमें गोपियोंका प्रियमिलन–जनित आनन्द तथा विरहीजनोंका प्रिय–विच्छेदजनित विरह दोनों ही मर्मस्पर्शी प्रसङ्ग हैं। इन्हीं बातोंका स्मरण कराती हुई सखी कहती है।

प्रस्तुत पदमें शिखरिणी छन्द है, वैदर्भी रीति तथा उप नागरिका वृत्ति है।

गीतम् ॥३॥

वसन्त–राग यति–तालाभ्यां गीयते

(सरस वसन्त समय)

यह तीसरा प्रबन्ध वसन्तराग तथा यति–तालसे गाया जाता है। वसन्त रागका स्वरूप है—

शिखण्ड–बर्होच्चय–बद्धचूड़ः पुष्णन् पिकं चूत–नवांकुरेण।
भ्रमन् मुदा–राममनङ्ग मूर्त्तिर्मत्तोमातङ्गो हि वसन्तरागः॥

अर्थात् वसन्तरागयुक्त पुरुषका सिर मयूरपिच्छसे बँधा होता है। आम्रमञ्जरी तथा लताओंसे वह श्रेष्ठ कोयल समूहको परिपुष्ट बनाता रहता है। सशरीर कामदेवके समान वह प्रसन्न मदमत्त गजराजके समान भ्रमण करता है॥

ललित–लवङ्गलता–परिशीलन–कोमल–मलय–समीरे
मधुकर–निकर–करम्बित–कोकिल–कूजित–कुञ्ज–कुटीरे।
विहरति हरिरिह सरस–वसन्ते....
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहि–जनस्य दुरन्ते॥१॥ध्रुवम्

उन्मद–मदन–मनोरथ–पथिक–वधू–जन–जनित–विलापे ।
अलिकुल–संकुल–कुसुम–समूह–निराकुल–वकुल–कलापे—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥२॥

मृगमद–सौरभ–रभसवशम्बद नवदलमाल–तमाले।
युवजन–हृदय–विदारण–मनसिज–नखरुचि–किंशुकजाले—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥३॥

मदन–महीपति–कनक–दण्डरुचि–केशर–कुसुम–विकासे।
मिलित–शिलीमुख–पाटल–पटल–कृत–स्मर–तूण–विलासे—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥४॥

विगलित–लज्जित–जगदवलोकन–तरुण–करुण–कृतहासे।
विरही–निकृन्तन–कुन्त–मुखाकृति–केतकि–दन्तुरिताशे—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥५ ॥
माधविका–परिमल–ललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनि–मनसामपि मोहन–कारिणि तरुणाकारणबन्धौ—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥६ ॥
स्फुरदतिमुक्तालता–परिरम्भण–पुलकित–मुकुलित चूते।
वृन्दावन–विपिने परिसर–परिगत–यमुनाजलपूते—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥७ ॥
श्रीजयदेव–भणितमिदमुदयतु हरिचरणस्मृतिसारं ।
सरस–वसन्त–समय वनवर्णनमनुगत मदन–विकारम्—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥८ ॥

अब यहाँ नीचे प्रत्येक पद्य, पद्यका अन्वय, श्लोकानुवाद, पद्यानुवाद तथा बालबोधिनी व्याख्या दी जा रही है—

ललित–लवङ्गलता–परिशीलन–कोमल–मलय–समीरे
मधुकर–निकर–करम्बित–कोकिल–कूजित–कुञ्ज कुटीरे—
विहरति हरिरिह सरस–वसन्ते
नृत्यति युवतिजनेन समं सखि विरहि–जनस्य दुरन्ते॥१ ॥ध्रुवम्

अन्वय—अयि सखि, ललित–लवङ्गलता–परिशीलन–कोमल–मलय–समीरे ललितानां मनोहराणां लवङ्गलतानां परिशीलनेन संसर्गेण कोमलः मृदुः सुरभिश्च मलयसमीरः मलयवायुः येन तादृशे; लतानारी–संस्पर्शात् कोमलत्वेन मान्द्यं, पुष्पसम्बन्धात् सौगन्ध्यं, यमुनाजलसम्बन्धात् शैत्यम्, अचेतनापि लता कान्तमन्तरेण चेत् स्थातुं न शक्नोति तर्हि चेतनानां का कथेति भावः); मधुकर–निकर–करम्बित–कोकिल–कूजित–

कुञ्जकुटीरे (मधुकराणां भ्रमराणां निकरैः समूहैः करम्बिताः मिश्रिताः ये कोकिलाः तैः कूजितं मुखरितं कुञ्जकुटीरं यत्र तथाभूते); [तथा] विरहि-जनस्य दुरन्ते (निपीड़के) [सरसोऽपि वसन्तोऽयं विरहिणां दुःखदत्वात् दुरन्त इत्यर्थः]; इह सरस-वसन्ते (रसमये वसन्ते) [रसोऽत्र शृङ्गारः]; हरिः (मनोहरणशीलः अतोऽस्य विरहो दुःसहः) युवति-जनेन (कयाचित् तरुण्या) समं (सह) विहरति (क्रीडति) नृत्यति च॥१॥

अनुवाद—प्रिय सखि! राधे! हाय! यह वसन्तकाल विरही जनोंके लिए अतीव दुःखदायी है। देखो न! इसके आगमनपर मलय समीर सुकोमल मनोज्ञ लताओंको पुनः-पुनः आदरके साथ आलिङ्गनकर कैसी मनोहर शोभा प्रकट कर रहा है। देखो! कुञ्ज-कुटीरमें भ्रमरोंके मँडरानेसे उत्पन्न गुञ्जारसे तथा कोयलोंकी सुमधर कुहुध्वनिसे दिग्दिगन्त परिपूरित हो गये हैं और वे श्रीकृष्ण इस कुञ्ज कुटीरमें किसी भाग्यवती युवतीके साथ विहार कर रहे हैं और प्रेमोत्सवमें मग्न होकर नृत्य भी कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

ललित लवङ्गलता परिचुम्बित कोमल मलय समीर
मधुकर-निकर कलित कोकिलसे कुजित कुंज-कुटीर
लहर उठता रमणीका चीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥१॥

बालबोधिनी—जब मलय समीरके सम्पर्कसे वृक्षावलियोंमें नवजीवनका सञ्चार होने लगता है, बेली, चमेली आदि पुष्पोंके खिलनेसे भौंरे गुञ्जार करने लगते हैं, आम्रके मुकुलित होनेसे कोयलें कूजन करने लगती हैं और वे कन्दर्प-मत्त-मातङ्गके समान मोरपंखकी पगड़ी धारणकर सबके मनको विमोहित करते हैं।

वसन्तके समयमें वसन्त-राग होता है। यति-तालमें लघु और द्रुतकी त्रिपुटी रहती है। सखी—इस पदसे सुहृदत्व सूचित हो रहा है।

सरसवसन्ते—सरस विशेषणके द्वारा वसन्त ऋतुकी रसमयता और आस्वाद्यता सूचित की गई है।

विरहि जनस्य दुरन्ते—विरहीजन इस सरस वसन्तमें बड़े दुःखके साथ अपने समयको बिताते हैं। श्रीहरि अपने मधुर लीलाओंके द्वारा सबके चित्त, मन और प्राणोंका हरण कर लेते हैं और फिर उनका विरह अतिशय कष्टदायी और असहनीय होता है।

ललित लवङ्गलता परिशीलन कोमल मलय समीरे—श्रीकृष्ण जहाँ विराजमान हैं, उस स्थानकी विशेषता बतलाते हुए कहते हैं कि मनोहर लवङ्गलताओंके संस्पर्शसे यहाँकी मलय वायु मृदुल बन गयी है, यों तो मलय समीर शीतल, मन्द और सुगन्धित होता है, किन्तु लवङ्ग–लताओंके संस्पर्शसे वह और भी कोमल और सुगन्धित बन गया है।

मधुकर–निकर–करम्बित–कोकिल–कूजित–कुञ्ज–कुटीरे—इस पदका विग्रह है—**मधुकराणां यो हि निकर स्तेन करम्बिताः मिश्रिताः ये कोकिला स्तैः कूजितः यः कुञ्ज कुटीरः तत्र**। अर्थात् नृत्य स्थान अमर समुदाय एवं कोकिला समूहसे कूजित कुञ्जकी कुटीर है।

इस प्रकार किसी सहचरीके द्वारा विरह उत्कण्ठिता श्रीराधाके समीप वसन्तकालीन वृन्दावनकी शोभाका वर्णन किया गया है। मनोहर लवङ्ग–लताके द्वारा वृक्षका आलिङ्गन किये जानेसे, मलय पवनके संस्पर्शसे, पुष्पोंकी सुगन्धसे, यमुना जलकी शीतलतासे, लताओंकी कमनीयतासे, नारियोंके सुकोमल अङ्गके स्पर्शसे यह वसन्त, कान्तके मिलनमें जितना सुखदायी होता है, विरहमें उतना ही दुःखदायी भी होता है।

जब वसन्त विलास होनेसे अचेतन लता भी कान्तके बिना नहीं रह सकती, तब चेतनस्वरूपा स्त्रीलता कान्तके बिना कैसे रह सकती है? इसमें भी मधुकरोंका गुञ्जन,

कोयलोंका कूजन और भी हृदय विदारक हो जाता है। जब माधवी और बेली पुष्पोंके सौरभसे मुनियोंका मन भी आकर्षित हो जाता है, तब कामी-कामिनियोंकी तो बात ही क्या?

पुनः माधवकी स्फूर्त्ति प्राप्त होनेपर सखी कहती है—माधवी-लता जब आम्र वृक्षका आलिङ्गन करती है, तो मञ्जरियाँ पुलकित हो उठती हैं। जैसे किसी वर सुन्दरीके द्वारा किसी पुरुषको आलिङ्गन किये जानेसे वह पुलकित हो जाता है, वैसे ही आज श्रीहरि यमुना जलसे व्याप्त वृन्दाविपिनमें वसन्तकालकी शोभासे मुग्ध होकर युवतियों द्वारा आलिङ्गन परायण होकर विहार कर रहे हैं।

इस श्लोकमें शृङ्गारके उद्दीपन विभागोंका वर्णन है। इन विभागोंसे विप्रलम्भ-शृङ्गारकी पुष्टि होती है॥१॥

उन्मद-मदन-मनोरथ-पथिक-वधूजन-जनित-विलापे ।
अलिकुल-संकुल-कुसुम-समूह-निराकुल-बकुल-कलापे—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥२॥

अन्वय—उन्मद-मदन-मनोरथ-पथिक-वधूजन-जनित-विलापे (उद्गतो मदो यस्य तेन गर्वस्फीतेन मदनेन मनोरथो येषां तेषां पथिकवधूजनानां जनितो विलापो येन तस्मिन्) [तथा] अलिकुल-सङ्कुल-कुसुम-समूह-निराकुल-बकुल-कलापे (अलि-कुलेन भ्रमरनिकरेण सङ्कुलः आकीर्णो यः कुसुम-समूहः तेन निराकुलः नितरामाकुलः व्याप्तः इति यावत् वकुलकलापः यस्मिन् तादृशे) [सरस वसन्ते इत्यादि]॥२॥

अनुवाद—प्रिय सखि! प्रवासमें गये हुए पतियोंके विरहका अनुभवकर विरहिणियाँ केवल विलाप करती रहती हैं। तुम देखो तो! इस वसन्त ऋतुमें मालती वृक्षोंमें पुष्पोंको समा लेनेके लिए कोई रिक्त स्थान ही नहीं है। राशि-राशि बकुल

पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं और इनपर श्रेणीबद्ध होकर असंख्य भ्रमर गुञ्जार कर रहे हैं और उधर श्रीकृष्ण युवतियोंके साथ विहार तथा नृत्य कर रहे हैं। हाय! कैसे धैर्य धारण करूँ॥२॥

पद्यानुवाद—

काम–पीड़िता पांथ–वधू का व्यापित बहुल विलाप,
अलिकुल संकुल सुमन मनोहर पादप बकुल कलाप।
नहीं धरते हैं विरही धीर,
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥२॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें वसन्तकी दुरन्तता और उन्मादकताका चित्रण करते हुए सखी श्रीराधारानीसे कहती है कि यह समय विरहीजनोंके लिए अति दुष्कर है, इस समय मद तथा काम आविर्भूत हो जाते हैं। प्रियतमके द्वारा प्रवास हेतु चले जानेपर नानाप्रकारके मनोरथोंके द्वारा प्रचालित होकर नायिकाएँ विरह विलाप करती रहती हैं। चहुँदिशि मौलश्री आदि कुसुमसमूहके द्वारा सुगन्ध विकीर्ण करनेपर आमोदित भ्रमरकुल जैसे विकल होकर गुञ्जन करते हैं॥२॥

मृगमद–सौरभ–रभसवशंवद नवदलमाल–तमाले।
युवजन–हृदय–विदारण–मनसिज–नखरुचि–किंशुकजाले—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥३॥

अन्वय—मृगमद–सौरभ–रभस–वशंवद–नव–दलमाल–तमाले (मृगमदस्य कस्तूरिकायाः यः सौरभ–रभसः सौरभ–वेगः सौगन्धातिशय इति यावत् तस्य वशंवदा वशवर्त्तिनी अनुकारिणीति भावः, नव–दल–माला किशलयसमूहः येषु तादृशः, तमालाः यस्मिन् तथा–भूते); [तथा] युवजन–हृदय–विदारण–मनसिज–नखरुचि–किंशुक–जाले (युवजनानां तरुणानां हृदय–विदारणाः हृदयभेदकराः मनसिजस्य मदनस्य ये नखाः तेषां रुचिः

शोभाइव रुचिः शोभा येषां तथाभूतानां किंशुकानां पलाश-कुसुमानां जालं समूहः यस्मिन् तादृशे) [सरस-वसन्ते हरिः इत्यादि]॥३॥

अनुवाद—तमाल वृक्षावली नूतन पल्लवोंसे विभूषित हो मानो कस्तूरीकी भाँति चारों ओर सौरभका विस्तार कर आमोदित हो रही है। देखो, देखो सखी! इन प्रफुल्लित ढाक (पलाश) के पुष्पोंकी कान्ति कामदेवके नखके समान दिखायी दे रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मदनराजने मानो युवक युवतियोंके वक्षस्थलको विदीर्ण कर दिया है॥३॥

पद्यानुवाद—

मृगमद-सौरभ सम विस्तारित परिमल मधुर तमाल;
युवजन मन-बेधक मनसिज-कर नखरुचि किंशुक जाल।
हृदयमें उठती रह रह पीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥

बालबोधिनी—समस्त दिशाओंमें तमाल वृक्षके नवीन पल्लव सुशोभित हो रहे हैं और उनकी सुगन्ध कस्तुरीके समान चतुर्दिशि व्याप्त हो रही है। प्रस्फुटित पलाश कुसुम-समूहको देखकर लगता है कि वे मानो विरही युवक युवतियोंके हृदयको विदीर्ण करनेके साधनभूत मदनदेवके नखरे-नख रूपी आयुध विशेष हैं।

अर्थात् श्रीमाधवका अङ्गसौरभ चारों ओर आमोदित हो रहा है, परन्तु उनका विरह अति असहनीय हो गया है। उनके विरहमें युवतियोंका हृदय विदीर्ण हो गया है। यह बड़ा ही कठोर है।

मदन-महीपति-कनक-दण्डरुचि-केशर-कुसुम-विकासे।
मिलित-शिलीमुख-पाटल-पटल-कृत-स्मर-तूण-विलासे
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥४॥

अन्वय—मदन-महीपति-कनक-दण्ड-रुचि-केशर-कुसुम विकाशे (मदनमहीपतेः मदन-राजस्य यः कनकदण्डः स्वर्णमययष्टिः तस्य रुचिरिव रुचिर्यस्य तादृशः केसर-कुसुमानां

नागकेसरपुष्पानां विकाशो यस्मिन् तथोक्ते); [तथा] मिलित–शिलीमुख–पाटलि–पटल–कृत–स्मर–तूण–विलासे (मिलिताः समवेताः शिलीमुखाः भ्रमराः येषु तादृशैः पाटलिपटलैः पाटलाकुसुमनिकरैः कृतः सम्पादितः स्मरस्य कामस्य यः तूणस्तस्य विलासः चेष्टितं यस्मिन् तादृशे; पाटलिः पारुलफुल इति भाषा; पाटलिपुष्पस्य तूणाकारत्वात् शिलीमुखशब्दस्य च श्लिष्टत्वात् साम्यं) [सरसवसन्ते इत्यादि]॥४॥

अनुवाद—अब वनके विकसित पुष्प–समुदाय ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो मदनराजके हेमदण्ड हैं और भ्रमरावलिसे परिवेष्टित पाटलि (नागकेशर) पुष्पसमूह ऐसे दिखायी दे रहे हैं, मानो कामदेवके तूणीर हों।

पद्यानुवाद—

मदनराजके कनक–दण्ड–सा केसर–कुसुम–विकास,
पाटल पर भौरोंकी छविका अङ्कित मधुर विलास।
जुड़ी है मधु–रसिकोंकी भीर,
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥

बालबोधिनी—सखि! मदन–महीपतिके सुवर्ण छत्रकी विशिष्ट कान्तिके समान नागकेशर पुष्प प्रस्फुटित हो रहे हैं। उसमें भी भ्रमरावलीके तीक्ष्ण दन्तरूपी वाणोंसे बिद्ध यह वसन्तकाल विरहीजनोंके हृदयको भेद रहा है॥४॥

विगलित–लज्जित–जगदवलोकन–तरुण–करुण–कृतहासे।
विरही–निकृन्तन–कुन्त–मुखाकृति–केतकि–दन्तुरिताशे—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥५॥

अन्वय—विगलित–लज्जित–जगदवलोकन–तरुण–करुण–कृतहासे (विगलितं दूरं गतं लज्जितं लज्जा येषां [वसन्तस्य निरतिशयोद्दीपकत्वात् त्यक्तलज्जानामिति भावः] तादृशानां जगतां जगद्वासिनाम् अवलोकनेन दर्शनेन तरुणैः नवविकसित–पुष्पैरित्यर्थः करुणैः तदाख्यवृक्षैः [करुणानेवु इति भाषा] कृतः पुष्पविकाशरूप–हासः यत्र तादृशे); यूनामेव कामाभिज्ञतया

हास्यस्योपयुक्तत्वे शिलष्टार्थस्य तरुणशब्दोस्योपादानम्) [तथा] विरहि-निकृन्तन कुन्त-मुखाकृति-केतकि-दन्तुरिताशे (विरहिणां वियोगिनां निकृन्तनाः संहारकाः ये कुन्ताः अस्त्रविशेषाः तेषां मुखानामाकृतिरिव आकृति-येषां तादृशैः केतकिभिः तन्नामक-कुसुमविशेषैः (केयाफुल इति भाषा) दन्तुरिताः कृतदन्तविकाशाः परिव्याप्ता इति यावत् आशाः दिशः यत्र तादृशे) [सरसवसन्ते हरिः इत्यादि]॥५॥

अनुवाद—अरी सखि! वसन्तके प्रतापसे ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण जगत निर्लज्ज हो गया है। यह देखकर तरुण करुण पादपसमूह (वृक्षराजि) प्रफुल्लित सुमनोंके व्याजसे हँस रहे हैं। देखो, विरहीजनोंके हृदयको विदीर्ण करनेके लिए बरछीकी नोकके समान आकारवाले केतकी (केवड़ा) प्रसून चहुँदिशि प्रफुल्लित विलसित विकसित हो रहे हैं। इनके संयोगसे दिशाएँ भी प्रसन्न हो रही हैं।

पद्यानुवाद—

लज्जा गलित विश्वका करता तरुण करुण उपहास,
बिद्ध केतकी कुन्तमुखोंसे विरही मन-आवास।
हार जाते हैं पलमें वीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे कह रही है—प्यारी सखि! और क्या कहूँ, इस वसन्तकालमें जगतके विरहीजन लाजका त्यागकर प्रियतमके विरहमें रोदन कर रहे हैं। सम्पूर्ण जगतमें प्राणीमात्रकी ही लज्जा पूर्णरूपेण समाप्त हो गयी है। जगतकी इस दशाका अवलोकन करके तरुण करुण विटपावली खिले एवं द्युतिमान पुष्पोंके बहानेसे हास्यसुधा बिखेर रही हैं।

अथवा विलासिनी स्त्रियोंके हृदयकी कामवासनाको जानकर नवतरुण पुरुष हास्यामृतको प्रकाशित कर रहा है।

करुणा और हास्य दोनों किस प्रकार सम्भव है?

करुणा इसलिए कि कण्ठाश्लेष प्रणयीजनोंके वियोगमें इनकी बड़ी दीन दशा होती है और हास्यका कारण है, विरहीजनोंकी अधीरता। खिले केतकी पुष्पोंके अग्रभागको देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे विरहियोंके हृदयका विदारण करने हेतु बरछी हो।

माधविका-परिमल-ललिते नवमालिकयातिसुगन्धौ।
मुनि-मनसामपि मोहन-कारिणि तरुणाकारणबन्धौ—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥६॥

अन्वय—माधविका-परिमल-ललिते (माधविकायाः परिमलेन आमोदेन ललिते मनोहरे) [तथा] नवमालिकया (नवमालिका-कुसुमेन) अतिसुगन्धौ (अतिसुरभित) [अतएव] मुनि-मनसामपि (तापस-चित्तानामपि; का वार्त्ता कामिनाम् इत्यपेरर्थः) मोहन-कारिण (मोहकरे) [तथाच] तरुणाकारणवन्धौ (एकशेषस्तरुणशब्दः; तरुणानां तरुणीनाञ्चेत्यर्थः; अकारणवन्धौ अकृत्रिमसुहृदि; हेतुं विनापि हितकारिणीत्यर्थः) [सरस-वसन्ते हरिः इत्यादि]॥६॥

अनुवाद—यह वसन्त मास वासन्ती पुष्पोंके मकरन्दसे अतिशय ललित एवं मनोहर हो रहा है तथा नवमालिका (जूही) पुष्पोंकी सुगन्धसे सुगन्धित हो रहा है। इसकालमें तो मुनियोंके मनमें भी विकार उत्पन्न हो जाता है, वे मुग्ध हो उठते हैं। यह वसन्त युवावर्गका अकारण बन्धु है॥

पद्यानुवाद—

माधविका-मालती-गन्ध अब रही दिशामें व्याप।
मोहित मुनि-मन विकल तरुण जन खिंचते अपने आप॥
दिखाये कैसे हियको चीर,
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥

बालबोधिनी—माधवी लताके पुष्पोंके परागसे यह वसन्त ऋतु मनोहर हो गया है और वातावरण नवमालिका (जूही) की सुगन्धसे सुवासित हो गया है। यह सुवासितता मुनिजनोंके

मनमें कामविकारको उत्पन्न करा देती है; फिर साधारण पुरुषोंकी तो बात ही क्या की जाय? जब ऐसा वसन्त समय होता है, तब अचेतन लता कान्त (वृक्ष) के बिना नहीं रह सकती है, तो चेतनस्वरूपा हम जैसी स्त्री-लताएँ कान्तके बिना कैसे रह सकती हैं? उसमें भी मधुकरोंका गुञ्जन, कोयलोंका कूजन और भी हृदयविदारक हो जाता है।

ऐसी स्थितिमें वह वसन्त तरुण-तरुणियोंका अकारण बन्धु है॥६॥

स्फुरदतिमुक्तालता-परिरम्भण-पुलकित-मुकुलित चूते।
वृन्दावन-विपिने परिसर-परिगत-यमुनाजलपूते—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥७॥

अन्वय—स्फुरदतिमुक्तालता-परिरम्भण-पुलकित-मुकुलित-चूते (स्फूरन्तीनां आकम्पितानाम् अतिमुक्तालतानां माधवीलतानां परिरम्भणेन आलिङ्गनेन पुलकिताः जातरोमाञ्चाः इव मुकुलिताः ईषद्विकसितमुकुलाः चूताः रसालाः यत्र तादृशे) [यथा कश्चित् वराङ्गनालिङ्गितः जातरोमाञ्चो भवति तथेति भावः]; [तथा] परिसर-परिगत-यमुना-जलपूते (परिसरेषु पर्यन्तभूमिषु प्रान्तेषु इत्यर्थः परिगता प्राप्ता या यमुना तस्याः जलैः पूते पवित्रीकृते सुशोभिते इति तात्पर्यार्थः) वृन्दावन-विपिने (वृन्दावन-कानने) [सरसवसन्ते हरिः इत्यादि]॥७॥

अनुवाद—हे सखि! चपल मुक्तालताके आलिङ्गनसे युक्त मुकुलित (मञ्जरियोंसे पूर्ण) तथा रोमाञ्चित आम्रवृक्षोंसे युक्त वृन्दाविपिनके सन्निकट प्रवाहमाना यमुनाके पावन जलमें श्रीहरि युवतियोंके साथ परस्पर मिलित होकर विहार कर रहे हैं॥७॥

पद्यानुवाद—

वायु चञ्चलित लता माधवीसे आलिङ्गित आम,
परिपुष्पित है; पूत जमुन-जलसे वृन्दावन-धाम॥

समाया उसमें सागर क्षीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥

बालबोधिनी—इस वासन्तिक कालमें चेतनके साथ जड़ पदार्थ भी कामसे विकृत देखे जा सकते हैं। समीरणके वश हुई अतिमुक्तालता (माधवीलता) ने जब आम्रवृक्षका आलिङ्गन किया तो वह मुकुलित और रोमाञ्चित हो गया। सन्निकटमें प्रवाहित होनेवाली यमुनाके जलसे पवित्र वृन्दाविपिनमें श्रीकृष्ण केलिक्रीड़ा कर रहे हैं॥७॥

श्रीजयदेव-भणितमिदमुदयतु हरिचरणस्मृतिसारं।
सरस-वसन्त-समय वनवर्णनमनुगत मदन-विकारम्—
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते.... ॥८॥

अन्वय—श्रीजयदेव-भणितम् (जयदेवोक्तं) इदम् अनुगत-मदनविकारं (अनुगतं अनुसृतं मदनस्य कामस्य विकारो विक्रिया येन तत् कामाद्दीपकमित्यर्थः) हरि-चरण-स्मृतिसारं (हरिचरणयोः स्मृतिः स्मरणमेव सारः परमार्थो यस्य तथाभूतं) सरस-वसन्तमय-वनवर्णनं (सरसः यः वसन्तसमयः तत्र वनवर्णनम्) उदयतु (भक्तहृदये वृद्धिं गच्छतु)॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा वर्णित श्रीकृष्ण-विरहजनित उत्कण्ठिता श्रीराधाके मदनविकारसे सम्वलित इस वसन्त समयकी वनशोभाका चित्रणरूप यह सरस मङ्गलगीत अति उत्कृष्ट रूपसे प्रकाशित हुआ है। यह वासन्तिक काल कामविकारोंसे अनुस्यूत है जो श्रीहरिके चरणकमलकी स्मृतिको उदित कराता है॥८॥

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव काव्य केवल हरि-चरण-स्मृतिका सार,
सरस वसन्त समय वन-वर्णन अनुगत मदन-विकार।

लहर उठता रमणीका चीर
नाचते हैं हरि सरस अधीर॥८॥

बालबोधिनी—कवि श्रीजयदेव इस गीतका उपसंहार करते हुए इसके उत्कर्षका वर्णन करते हैं। इस मङ्गलगीतमें हरिचरण स्मृतिसाररूप शृङ्गार-रसके पोषक वसन्तकालके वनविहारका अभिव्यञ्जन है। इस गीतकी जय हो। जिसका मदनविकार हुआ है, ऐसे निकटवर्त्ती जन ही इसका श्रवण करें, जिससे उनके विकार दूर हो जायेंगे।

यह मङ्गलगीत अष्टपदीय है, जिसमें जाति नामक अलङ्कार है। इसमें वर्णित श्रीराधा मध्या नायिका हैं। इसमें श्रीकृष्ण दक्षिण नायकके रूपमें हैं। इसमें शृङ्गार रसका विप्रलम्भ भाव है। इसमें प्रयुक्त छन्दका नाम लय है।

इस तृतीय प्रबन्धका नाम "माधवोत्सव कमलाकर" है।

दर-विदलित-मल्ली-वल्लि-चञ्चत्-पराग-
प्रकटित-पटवासैर्वासयन् काननानि।
इह हि दहति चेतः केतकी-गन्ध-बन्धुः
प्रसरदसमबाण-प्राणवद्-गन्धबाहः ॥१॥

अन्वय—[अथ वसन्तवायु वर्णयति कविः]—इह (वसन्ते) केतकीगन्धवन्धुः (केतकीनां गन्धस्य वन्धुः नित्यसहचरः अत्यागसहनइत्यर्थः) [तथा] प्रसरदसमवाण-प्राणवत् (प्रसरन् प्रतिदिशं सञ्चरन् तरुणचेतसि प्रवृद्धिं गच्छन् यः असमवाणः पञ्चवाणः मदन इत्यर्थः मदनोऽत्र नृपत्वेन निरूपितः तस्य प्राणवत् प्राणसदृशं अतिप्रिय इत्यर्थः; अस्य निरतिशय-मदनोद्दीपकत्वादिति भावः) गन्धवाहः (दक्षिणानिलः) [सख्युराज्ञा पालनीया इत्यालोच्य] दर-विदलितमल्ली-वल्लि- चञ्चत्पराग-प्रकटित-पट-वासैः (दर-विदलितानाम् ईषद्- विकसितानां मल्लीनां मल्लिकानां या वल्लयः लताः तासां चञ्चन्तः प्रसरन्तः ये परागाः पुष्परेणवः ते एव प्रकटिताः स्फुटीकृताः

पटवासाः सुगन्धचूर्णविशेषाः तैः) काननानि वासयन् (सुरभीकुर्वन्) चेतः [वियोगिनामिति शेषः] दहति हि (नितरां सन्तापयत्येव)॥१॥

अनुवाद—हे सखि! देखो, अर्द्ध प्रस्फुटित मल्लिकालताके मकरन्दके श्वेतचूर्णसे वनस्थली श्वेत पटवास द्वारा समाच्छादित हो गयी है। केतकी कुसुमोंके सुगन्धसे मलयपवन आमोदित हो रहा है, यह पवन कामदेवके बाणके समान उसका प्राणसखा वन विरहीजनोंके हृदयको दग्ध कर रहा है॥१॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीके सम्मुख वसन्तकालमें प्रवहमाना मलयवायुकी उद्दीपनाका वर्णन करती हुई कह रही है कि पवन विरहीजनोंके हृदयको तापित कर रहा है। यदि यह पूछा जाय कि किस अपराधके कारण वायु चित्तको दग्ध कर रही है तो इसके उत्तरमें कहते हैं, यह पवन कामदेवका प्राणतुल्य है, अतः अपने सखाके आदेशका पालन करते हुए विरहीजनोंके हृदयको तपाने लगता है। इस वसन्तकालमें मल्लिका-लता ईषत् रूपसे विकसित हो गयी है, उसके उड्डीयमान परागपुञ्ज ही पटवास बन गये हैं और केतकी प्रसूनोंके इस परिमल-चूर्णसे वायु सुगन्धसे परिपूर्ण हो गयी है, कामदेवके समान यह पवन भी विरहीजनोंको सन्तप्त कर रहा है। अतएव यह समीरण कामदेवके प्राणके समान है।

प्रस्तुत श्लोक मालिनी छन्दका है, समासोक्ति तथा वर्णानुप्रास अलङ्कारोंकी संसृष्टि है॥१॥

अद्योत्सङ्ग-वसद्भुजङ्ग-कवल-क्लेशादिवेशाचलं
प्रालेय-प्लवनेच्छयानुसरति श्रीखण्डशैलानिलः।
किञ्च स्निग्ध-रसाल-मौलि-मुकुलान्यालोक्य हर्षोदया-
दुन्मीलन्ति कुहुः कुहूरिति कलोत्तालाः पिकानां गिरः॥२॥

अन्वय—अद्य (अधुना) श्रीखण्डशैलानिलः (श्रीखण्डशैलस्य मलयाचलस्य अनिलः वायुः) उत्सङ्ग-वसद्भुजङ्ग-कवल-क्लेशात् इव (उत्सङ्गे क्रोड़े वसन्तः ये भूजङ्गाः सर्पाः तेषां कवलेन

ग्रासेन यः क्लेशः तस्मात्); [भुजङ्गाः पवनाशनाः इति लोके प्रसिद्धिमेव तस्य; भुजङ्गकवलेन विषव्याप्तदेहत्वादिति भावः] प्रालेय-प्लवनेच्छया (प्रालेयेषु हिमेषु प्लवनेच्छया अवगाहनाशया विषज्वालायाः शान्तये इति भावः) ईशाचलं (ईशस्य महादेवस्य अचलः पर्वतः हिमाचलस्तं) अनुसरति (गच्छति); [चन्दनतरु कोटरस्थ-विषधर-कवल-सन्तप्तोवायुः हिमस्नानेच्छया हिमाचलं यातीव; वसन्ते दक्षिणदिर्गवर्त्तिनो मलयाचलात् वायेरुत्तरत्र गमनात् उत्तरे च हिमाचलस्य अवस्थानात् इयमुत्प्रेक्षा]। [किञ्च] स्निग्ध-रसाल-मौलिमुकुलानि (स्निग्धानि कोमलानि रसालानां चूततरूणां मौलिषु शिखरेषु यानि मुकुलानि तानि) आलोक्य (दृष्ट्वा) हर्षोदयात् (आनन्दोदयात्) पिकानां (कोकिलानां) कुहुः कुहूरिति कलोत्तालाः (कला अव्यक्तमधुरा उत्ताला अत्युच्चाः), गिरः (ध्वनयः) उन्मीलन्ति (उद्गच्छन्ति)॥२॥

अनुवाद—अरी सखि! सुना है श्रीखण्डशैल (मलय पर्वत) में बहुतसे सर्प निवास करते हैं, वहाँका पवन भुजङ्गोंके विषसे निश्चित ही जर्ज्जर हो गया है, इससे ऐसा लगता है कि वह उस विष ज्वालासे जलकर हिम सलिलमें स्नान करनेके लिए हिमालयकी ओर प्रवाहित होने लगा है।

देखो! देखो! सखि! मधुर, मनोहर, स्निग्ध रसालमौलि मुकुलों (मञ्जरियों) को देखकर हर्षसे विभोर कोकिल कुहु-कुहुकी मधुर वाणीमें उच्चस्वरसे कूजन कर रही है।

पद्यानुवाद—

सतत सर्प पीड़ासे तापित, मलय पवन हिमदेश
बहनेको आतुर रहता है, निशिदिन कोमल वेश।
मधुर आमके वोरोंसे या बढ़ता जाता मिलने
जो कोकिलकी कुहु कुहु सुन मदसे लगते खिलने॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें सखीने शृङ्गार रसके दोनों विभावोंका चित्रण किया है। इस मधुमासमें मलयाचलकी वायु हिमदेशकी ओर आ रही है। रातदिन मलयगिरिमें

चन्दनके वृक्षोंपर जहरीले साँप अवस्थित रहते हैं। इसी कारण वह हवा हिमालयकी ओर प्रस्थान कर रही है। सर्पोंके दंशनके कारण मलयाचलमें सन्ताप उत्पन्न हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि अपने उस सन्तापके कारण ही हवा हिमालयकी शीत हवाका आनन्द प्राप्त करनेके लिए हिमदेशको जा रही है।

इस समय रसाल तरुवरोंमें मञ्जरियाँ भी उद्भूत हो जाती हैं। इन आमकी बौरोंको देखकर कोकिल समुदाय हर्षसे आह्लादित होकर उच्चस्वरसे कुहु–कुहुका स्वर आलाप करने लगा है।

इस तरहकी उन्मादिनी प्रोन्मादिनी वेलामें श्रीकृष्णसे तुम्हारा डरना उचित नहीं है, राधे!

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द, अनुप्रास तथा उपमा अलंकार, वैदर्भी रीति तथा विप्रलम्भ शृङ्गारका सूचक रति नामक स्थायी भाव है॥२॥

उन्मीलन्मधुगन्ध–लुब्ध–मधुप–व्याधूत–चूताङ्कुर–
क्रीड़त्–कोकिल–काकली–कलकलैरुद्गीर्णकर्णज्वराः।
नीयन्ते पथिकैः कथंकथमपि ध्यानावधानक्षण–
प्राप्त–प्राणसमा–समागम–रसोल्लासैरमी वासराः॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे तृतीय सन्दर्भः।

अन्वय—[इदानीं चिरविरहिणः प्रियासङ्गमं विना दिनयापनं दुर्घटमित्याह]—उन्मीलन्मधु–गन्ध–लुब्ध–मधुप–व्याधूत–चुताङ्कुर–क्रीड़त्–कोकिल–काकली–कलकलैः (उन्मीलत्सु प्रसरत्सु मधुगन्धेषु मकरन्दगन्धेषु लुब्धैः लोलुपैः मधुपैः भ्रमरैः व्याधूताः कम्पिताः ये चूतांकुराः आम्रमुकुलानि तेषु क्रीडतां कोकिलानां काकलीकलकलैः सूक्ष्ममधुरी–स्फुटध्वनिभिः) उद्गीर्णकर्णज्वराः (उद्गीर्णाः उद्भूताः कर्णज्वराः श्रोत्रपीडाः येषु तथोक्ताः)

ध्यानावधान-क्षणप्राप्तप्राणसमा-समागम-रसोल्लासैः (ध्यानं कान्तायाश्चिन्तनं तत्र यत् अवधानम् अभिनिवेशः तस्य क्षणे प्राप्तः अनुभूतः प्राणसमायाः प्रणयिन्याः समागमरसेन सङ्गसुखेन उल्लासः आनन्दः यैः तादृशैः सद्भिः) पथिकैः (विरहिभिः) अमी वासराः (वसन्तदिवसाः) कथंकथमपि (अतिकृच्छ्रेण) नीयन्ते (अतिबाह्यन्ते)॥३॥

अनुवाद—हे सखि! देखो! उन्मीलित आम्र मुकुलके पुष्प किञ्जल्कके मधुगन्धके लुब्ध भ्रमरोंसे प्रकाशित मञ्जरियों पर कोयलें क्रीड़ा करती हुई कुहु-कुहु रवसे मधुर ध्वनि कर रही हैं और इस कोलाहलसे विरहीजनोंको कर्णज्वर हो रहा है। वसन्त ऋतुके वासरोंमें विरहीजन अतिशय कठोर विरह यातनाके कारण प्राणसम प्रेयसियोंका चिन्तन करने लगते हैं। तब उनके मुखमण्डलके ध्यानसे, उनके समागम जनित आनन्दके आविर्भूत हो जानेसे क्षणिक सुख लाभ करते हुए वे अति कष्टपूर्वक समयको अतिवाहित करते हैं॥३॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे कह रही है कि विरहीजनोंका प्रिय विरह भी अति दुःसह होता है। श्रीकृष्ण-विरहमें मलय पवन ही केवल पीड़ाप्रद होता है, ऐसा नहीं, आम्रवृक्षमें बैठनेवाली कोयलोंकी कुहु-कुहु अति मधुर एवं अस्फुट ध्वनि चारों ओर गुञ्जन करने लगती है, जिसमें विरहीजनोंका हृदय अतिशय रूपसे अनुतप्त होता है। ये क्रीड़ापरायण कोयलें कलध्वनिसे कर्णज्वर प्रादुर्भूत कर रही हैं। जब कोयलका स्वर सुनकर विरही प्रियतमाका स्मरण करते हैं तो उन्हें लगता है कि प्राणसमा प्रियतमाका समागम हो गया है। यह समय अति कष्टपूर्वक अतिवाहित होता है।

इस श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है। इनमें काव्यलिङ्ग नामक अलङ्कार, गौड़ीया रीति तथा विप्रलम्भ शृङ्गार रस है। 'वासराः' पदमें बहुवचनका प्रयोग औचित्ययुक्त है॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्दे तृतीयः सन्दर्भः।

चतुर्थः सन्दर्भः

अनेक–नारी–परिरम्भ–सम्भ्रम–
स्फुरन्मनोहारि–विलास–लालसम्।
मुरारिमारादुपदर्शयन्त्यसौ
सखीसमक्षं पुनराह राधिकाम्॥१॥

अन्वय—[ततश्च तयोः श्रीकृष्णानुसन्धान–चेष्टा सफला सञ्जाता। श्रीकृष्णः तयोर्नेत्रपथवर्त्ती वभुव एवं समये] असौ (पूर्वोक्ता श्रीराधायाः सखी) आरात् (अनतिदूरे) [समवस्थितमिति शेषः] अनेकनारी–परिरम्भ–सम्भ्रम–स्फुरन्मनोहारि–विलासलालसम् (अनेकानां नारीणां गोपतरुणीनां परिरम्भे निर्भरालिङ्गने यः सम्भ्रमः आवेगः तेन स्फुरन् निरतिशयस्फूर्त्तिशाली अतएव मनोहारी चित्ताकर्षणकारी यः विलासः केलिः तत्र लालसा एकान्तौत्सुक्यं यस्य तादृशं) मुरारिं समक्षं (अक्ष्णोः समीपे) उपदर्शयन्ती (अङ्गुलीसङ्केतेन प्रदर्शयन्ती) पुनः राधिकाम् आह॥१॥

अनुवाद—अनन्तर श्रीराधिकाजीकी सखीने बड़ी चतुरतासे श्रीकृष्णका अनुसन्धान कर लिया। सखीने देखा कि अति सान्निध्यमें ही श्रीकृष्ण गोप–युवतियोंके साथ प्रमोद विलासमें निमग्न आदरातिशयताको प्राप्त कर रहे हैं। उन रमणियोंके द्वारा आलिङ्गनकी उत्सुकता दिखाये जाने पर श्रीकृष्णके मनमें मनोज्ञ मनोहर विलासकी लालसा जाग उठी है। सखी अन्तरालसे (आड़में छिपकर) राधाजीको दिखलाती हुई पुनः यह बोली—

पद्यानुवाद—

परिरम्भ मदिर रस मातल
प्रमदा परिवेशित हरिको।
दिखला, राधासे आली
बोली पी कर मधु छबिको॥

बालबोधिनी—वनशोभाके चित्रण आदिके द्वारा कविने श्रीराधाजीके सुदीप्त भावको प्रकाशित किया है। कोई सखी श्रीराधाजीके समीप उपस्थित होकर श्रीकृष्णके अभिप्रायको साक्षात् रूपसे दिखलाती हुई कहती है (अनेक नारी इति श्लोकके द्वारा)—सखि देखो! मुरारि इस समय क्या कर रहे हैं? वे इस समय इतनी तरुणियोंका आलिङ्गन प्राप्त करके भी तृप्त नहीं हो सके हैं, इसलिए अति मनोहारिणी श्रीराधाजीसे मिलनकी उत्सुकता प्रकट करने लगे हैं और विलासकी लालसासे उत्कण्ठित हो गये हैं।

श्रीकृष्णका लीलाविलास नित्य है, इसलिए यह प्रत्यक्ष भी है। विरहमें स्मरण, स्फूर्त्ति तथा आविर्भाव—ये तीन वैशिष्ट्य परिलक्षित होते हैं।

अतः यहाँ विलासका स्फुरित होना युक्तिसङ्गत है। इसमें वंशस्थविला छन्द, अनुप्रास अलङ्कार एवं दक्षिण नायक हैं॥१॥

गीतम् ॥४॥

रामकिरीरागेण यतितालेन च गीयते।

चन्दन–चर्चित–नील–कलेवर पीतवसन–वनमाली
केलिचलन्मणि–कुण्डल–मण्डित–गण्डयुग–स्मितशाली
हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे
विलासिनी विलसति केलिपरे॥१॥ध्रुवम्॥
पीन–पयोधर–भार–भरेण हरिं परिरभ्य सरागं।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चित–पञ्चम–रागम्—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥२॥]

कापि विलास–विलोल–विलोचन–खेलन–जनित–मनोजं।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदन–वदन–सरोजम्—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥३ ॥]

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥४ ॥]

केलि–कला–कुतुकेन च काचिदमुं यमुनावनकुले।
मञ्जुल–वञ्जुल–कुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥५ ॥]

करतल–ताल–तरल–वलयावलि–कलित–कलस्वन–वंशे।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशंससे—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥६ ॥]

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामां।
पश्यति सस्मित–चारुतरामपरामनुगच्छति बामां ॥७ ॥
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥७ ॥]

श्रीजयदेव–भणितमिदमद्भुत–केशव–केलि–रहस्यं ।
वृन्दावन–विपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम् ॥
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥८ ॥]

नीचे प्रत्येक पद्य, अन्वय, श्लोकानुवाद, पद्यानुवाद तथा बालबोधिनी व्याख्या दी जा रही है—

चतुर्थ प्रबन्धके श्लोक रामकिरी राग तथा यति तालसे गाये जाते हैं।

चन्दन–चर्चित–नील–कलेवर पीतवसन–वनमाली
केलिचलन्मणि–कुण्डल–मण्डित–गण्डयुग–स्मितशाली
हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे
विलासिनी विलसति केलिपरे ॥१ ॥ध्रुवम् ॥

अन्वय—अयि विलासिनि (विलासवति) केलि-चलन्मणि-कुण्डल-मण्डित-गण्डयुग-स्मितशाली (केलिना क्रीड़ारसेन चलन्ती ये मणिकुण्डले रत्नमय-कर्णभूषणे ताभ्यां मण्डितं शोभितं गण्डयुगं कपोलयुगलं यस्य सः; तथा स्मितेन मृदुहासेन शालते शोभते इति स्मितशाली, स चासौ स चेति तथा) चन्दन-चर्चित-नीलकलेवर-पीतवसन-वनमाली (चन्दनैः चर्चितम् अनुलिप्तं नीलं कलेवरं यस्य सः; तथा पीत वसनं यस्य तथोक्तः; तथा वनमाली वनकुसुम-मालाधरः; स चासौ स चासौ स चासौ स चेति तथा) हरिः इह (अस्मिन्) केलिपरे (क्रीड़ासक्ते) मुग्धवधूनिकरे (सुन्दरी-समूहे) विलसति (विहरति) [अहो श्रीकृष्णस्य अकृत-वेदित्वम्! त्वद्दत्त-चन्दन-वनमाला-भूषित स्त्वद्वर्णवसनावृताङ्गयष्टिरेव विलसतीत्यवलोकय]॥१॥

अनुवाद—हे विलासिनी श्रीराधे! देखो! पीतवसन धारण किये हुए, अपने तमाल-श्यामल-अङ्गोंमें चन्दनका विलेपन करते हुए, केलिविलासपरायण श्रीकृष्ण इस वृन्दाविपिनमें मुग्ध वधुटियोंके साथ परम आमोदित होकर विहार कर रहे हैं, जिसके कारण दोनों कानोंमें कुण्डल दोलायमान हो रहे हैं, उनके कपोलद्वयकी शोभा अति अद्भुत है। मधुमय हासविलासके द्वारा मुखमण्डल अद्भुत माधुर्यको प्रकट कर रहा है॥१॥

पद्यानुवाद—

चन्दन चर्चित नील कलेवर पीत वसन वनमाली
केलि चञ्चला मणि कुण्डल गति स्मितमुख शोभाशाली।
काम मोहिता, रूप गर्विता, गोपीजन कर साधे
विलस रहे हैं श्रीहरि आतुर, निरखि विलासिनि राधे॥

बालबोधिनी—इस गीतका राग रामकरी तथा झम्पा ताल है। रस-मञ्जरीकारने यहाँ रूपक ताल माना है।

जब कान्ता नीलवसन धारणकर प्रभातकालीन आकाशकी भाँति स्वर्णिम आभूषण पहनकर अपने कान्तके प्रति उन्नत

प्रकारका मान कर बैठती है, तब वह कान्त उनके चरणोंके समीप स्थित होकर मनाने लगते हैं, उस समयावस्थाका वर्णन रामकरी रागमें होता है।

जहाँ श्रीराधाजी अपनी सखीके साथ विद्यमान हैं, उनसे थोड़ी ही दूर श्रीकृष्ण केलिपरायण तथा विलासयुक्त नायिकाओंके समूहमें विलासविहार कर रहे हैं, जिसे देखकर राधाजीके मनमें भी श्रीकृष्णके साथ रमण करनेकी लालसा जाग उठती है। श्रीकृष्ण निकुञ्जवनमें किसी व्रजसुन्दरीको आलिङ्गन करते हैं तो कृष्णके हृदयमें राधाजीकी स्फूर्त्ति होने लगती है॥१॥

मुग्ध—मुग्ध शब्द मुग्धा नायिकाके भेद तथा सुन्दर दोनोंका वाचक है। मुग्धके ये दोनों ही अर्थ यहाँ अभिप्रेत हैं।

विलास—एक हावभावविशेषका नाम है। नाट्यशास्त्रमें भरतमुनिने कहा है—

स्थाने यानासने वापि नेत्र वक्त्रादि कर्मणा।
उत्पाद्यते विशेषो यः स विलासः प्रकीर्त्तितः॥

अर्थात् चलते, बैठते तथा यात्रा करनेके समय नेत्र एवं मुख आदिकी क्रिया और भङ्गीके द्वारा जो मनोहर चेष्टा होती है, वही विलास शब्दसे अभिहित है।

स्मित—श्रीकृष्ण मुस्करा रहे हैं। ईषत् हासको स्मित कहते हैं। भरत मुनिके शब्दोंमें—

ईषद् विकसितैर्गण्डैः कटाक्षैः सौष्ठवान्वितैः।
अलक्षितद्विजं धीरमुत्तमानां स्मितं भवेत्॥

अर्थात् जो व्यक्ति मुस्कराता है, उसके दाँत दिखलायी नहीं पड़ते हैं। स्मितमें मनोहर कटाक्षके द्वारा कपोल थोड़े विकसित अवश्य हो जाते हैं।

पीन–पयोधर–भार–भरेण हरिं परिरभ्य सरागं।
गोपवधूरनुगायति काचिदुदञ्चित–पञ्चम–रागम्—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥२॥]

अन्वय—सखि, काचित् गोपवधूः पीनपयोधर-भार-भरेण (पीनयोः विशालयोः पयोधरयोः स्तनयोः भारभरेण भारातिशयेन; निविड़-स्तनभारातिशयेन इत्यर्थः) सरागं [यथास्यात् तथा] हरिं परिरभ्य (निर्भरमालिङ्ग्य) उदञ्चितपञ्चमरागं (उदञ्चित उद्घोषित उच्चैर्गीत इति यावत् पञ्चमरागो यस्मिन् तद् यथा तथा) अनु (पश्चात् परिरम्भणानन्तरमित्यर्थः) गायति। हरिरिहेत्यादि सर्वत्र योज्यम्॥२॥

अनुवाद—देखो सखि! वह एक गोपाङ्गना अपने पीनतर पयोधर-युगलके विपुल भारको श्रीकृष्णके वक्षस्थलपर सन्निविष्टकर प्रगाढ़ अनुरागके साथ सुदृढ़रूपसे आलिङ्गन करती हुई उनके साथ पञ्चम स्वरमें गाने लगती है।

पद्यानुवाद—

कोई पीन पयोधर गोपी युग भुजमें बँध जाती
हरि गायनके अन्त साथ उठ पञ्चम स्वरमें गाती॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे गोपियोंकी श्रीकृष्णके साथ की जानेवाली चेष्टाओंका वर्णन करती हुई कहती है—हे राधे, तुम्हारे साथ श्रीकृष्णका जो विलास है, वह असमोर्द्ध है। विपुल स्तनवाली गौरवातिशय युक्ता गोपीके द्वारा अतिशय अनुरागके साथ श्रीकृष्णका आलिङ्गन किया जाना तो एक आभास मात्र है। भला ये सुन्दरियाँ तुम्हारी समानता कहाँ कर सकती हैं।

आगे-आगे श्रीहरि पञ्चम रागमें गा रहे हैं और गोपी उनके गानेके बाद उसी प्रकारसे गा रही है।

गोपीको पीन पयोधरवती बताना उसकी सौन्दर्यातिशयताको सूचित करना है।

इसमें श्रीकृष्णकी अनिपुणता भी प्रदर्शित हो रही है। अतएव उनके द्वारा आलिङ्गनका प्रयास किये बिना ही गोपी उनका आलिङ्गन कर रही है। अतः यह केलि रहस्य मधुर होनेपर भी श्रीराधाजीके अभावमें कैसे श्रेष्ठ हो सकता है?

परस्पर आलिङ्गन किये जानेपर ही शृङ्गार रस परिपुष्ट होता है, जो तुम्हारे (श्रीराधाजीके) साथ ही सम्भव है। फिर भी तुम्हारा स्मरण करते हुए श्रीश्यामसुन्दरकी लीलाचेष्टा देखो।

शृङ्गार रसमें पञ्चम रागका ही प्रायः गान किया जाता है।

भरत मुनिने कहा भी है—

पञ्चमं मध्य भूयिष्ठं हास्य शृङ्गारयोर्भवेत्।

अर्थात् हास्य तथा शृङ्गार रसमें मध्यताल प्रचुर पञ्चम राग ही गाया जाता है॥२॥

कापि विलास–विलोल–विलोचन–खेलन–जनित–मनोजं।
ध्यायति मुग्धवधूरधिकं मधुसूदन–वदन–सरोजम्—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥३ ॥]

अन्वय—सखि, कापि मुग्धवधूः (नवीना रमणी) विलास-विलोल-विलोचन-खेलन-जनित-मनोजम् (विलासेन विलोलयोः चटुलयोः विलोचनयोः नयनयोः खेलनेन चालनभङ्ग्या कटाक्षपातेनेत्यर्थः जनितः मनोजः कामः यत्र तत् यथास्यात् तथा) मधुसूदन-वदन-सरोजम् (श्रीहरिमुख-पङ्कजम्) अधिकं (अतिमात्रं) ध्यायति (चिन्तयति निरीक्षते; भ्रमरवत् रसविशेषा-न्वेषणपर इति श्लिष्ट-मधुसूदन-पदोपन्यासः) [अन्यत् पूर्ववत्]॥३॥

अनुवाद—देखो सखि! श्रीकृष्ण जिस प्रकार निज अभिराम मुखमण्डलकी शृङ्गार रस भरी चञ्चल नेत्रोंकी कुटिल दृष्टिसे कामिनियोंके चित्तमें मदन विकार करते हैं, उसी प्रकार यह एक वराङ्गना भी उस वदनकमलमें अश्लिष्ट (संसक्त) मकरन्द पानकी अभिलाषासे लालसान्वित होकर उन श्रीकृष्णका ध्यान कर रही है।

पद्यानुवाद—

कोई लास लोल लोचनसे बने सहज मतवाले।
मधुसूदनके मुख सरसिजमें ठगी, दीठ–मधु ढाले॥

बालबोधिनी—मुग्धानायिकाकी चेष्टाओंका वर्णन करती हुई सखी कह रही है—वह नायिका श्रीकृष्णके मुख कमलका ध्यान कर रही है। श्रीश्यामसुन्दर प्रेमविलासके कारण विलसित अपने चञ्चल नेत्रोंसे दृष्टि डालकर वर रमणियोंके मदनविकारको अभिवर्द्धित कर रहे हैं और अत्यधिक आनन्दका अनुभव मन-ही-मन कर रहे हैं। मुग्धा नायिकामें लज्जाका प्राचुर्य होता है, अतएव उसकी शृङ्गारिक चेष्टाएँ बड़ी ही मर्यादित होती हैं॥३॥

कापि कपोलतले मिलिता लपितुं किमपि श्रुतिमूले।
चारु चुचुम्ब नितम्बवती दयितं पुलकैरनुकूले—
[हरिरिह-मुग्ध-वधुनिकरे... ॥४॥]

अन्वय—सखि, नितम्बवती (विपुलनितम्बा) कापि (तरुणी गोपाङ्गना) श्रुतिमूले (कर्णमूले) किमपि लपितुं (भाषितुं) मिलिता (किञ्चित् कथनच्छलेन सङ्गता सती) पुलकैः (रोमाञ्चैः) [प्रियतम-स्पर्शसुखेन-अधीरा सतीति भावः] अनुकूले (अभिलाषुके, प्रियाभिलाषसूचके इति यावत्) कपोलतले (प्रियतमस्य गण्डदेशे) चारु (मनोज्ञं यथास्यात् तथा) दयितं (प्रियं हरिं) चुचुम्ब॥४॥

अनुवाद—वह देखो सखि! एक नितम्बिनी (गोपी) ने अपने प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके कर्ण (श्रुतिमूल) में कोई रहस्यपूर्ण बात करनेके बहाने जैसे ही गण्डस्थलपर मुँह लगाया तभी श्रीकृष्ण उसके सरस अभिप्रायको समझ गये और रोमाञ्चित हो उठे। पुलकाञ्चित श्रीकृष्णको देख वह रसिका नायिका अपनी मनोवाञ्छाको पूर्ण करने हेतु अनुकूल अवसर प्राप्त करके उनके कपोलको परमानन्दमें निमग्न हो चुम्बन करने लगी।

पद्यानुवाद—

चारु नितम्बवती कोई मिस कानोंमें कुछ कहने—
पुलक कपोल चूम श्रीहरिके लगी प्रेम रस बहने॥

बालबोधिनी—नितम्बवती किसी प्रौढ़ा नायिकाकी सौन्दर्यातिशयताको इस पद द्वारा सूचित किया गया है। सखियोंके बीचमें प्रियतमका चुम्बन करना अनुचित है, इसलिए कार्यान्तर बोधनका बहाना बनाकर उसने श्रीकृष्णके कपोलप्रान्तको चूम लिया—इस वाक्यांशके द्वारा नायिकाके शृङ्गार वैदग्ध्यको सूचित किया गया है, यहाँ श्रीकृष्ण अनुकूल नायक हैं॥४॥

केलि–कला–कुतुकेन च काचिदमुं यमुनावनकुले।
मञ्जुल–वञ्जुल–कुञ्जगतं विचकर्ष करेण दुकूले—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥५॥]

अन्वय—सखि, काचित् (गोपललना) यमुनाकूले (यमुनातीरे) मञ्जुल–वञ्जुल–कुञ्जगतं (मञ्जुलः मनोहरः यः वञ्जुलकुञ्जः लतादिपिहितो वेतसकुञ्जः तत्र गतं) अमुं (हरिं) केलिकला–कुतुकेन (केलिकलायां सुरतनैपुण्ये यत् कुतुकम् औत्सुक्यं तेन हेतुना) करेण (हस्तेन) दुकूले (पीताम्बरे) विचकर्ष (आकृष्टवती)॥५॥

अनुवाद—सखि! देखो, यमुना पुलिनपर मनोहर वेतसी (वञ्जुल या वेंत) कुञ्जमें किसी गोपीने एकान्त पाकर काम रस वशवर्त्तिनी हो क्रीड़ाकला कौतूहलसे उनके वस्त्रयुगलको अपने हाथोंसे पकड़कर खींच लिया।

पद्यानुवाद—

केलि कलाकुल कोई गोपी, यमुना जलके तीरे।
ले जाने हरि, वसन खींचती, वञ्जुल वनमें धीरे॥

बालबोधिनी—सखी किसी अधीरा नायिकाका वर्णन करते हुए श्रीराधासे कहती है, श्रीकृष्ण जब मनोहर वेतसी लताकुञ्जमें गये हुए थे, तब वह अधीरा नायिका श्रीकृष्णका वस्त्र पकड़कर उन्हें यमुना किनारे ले गयी; क्योंकि वह रहकेलि कलाकौतूहलसे आविष्ट हो गई थी। 'च' कारसे तात्पर्य है कि उसने विजन स्थान देखकर श्रीकृष्णके साथ अनेक प्रकारसे परिहास किया।

यमुनातीरे न कहकर यमुना जलतीरे कहनेका अभिप्राय है कि जलके समान ही तटपर शैत्य (शीतलता) तथा पावनता भी है।

अन्य नायिकामें अनुरक्त श्रीकृष्णका वस्त्र खींचकर ले जाना अधीरताका अभिव्यञ्जक है॥५॥

करतल-ताल-तरल-वलयावलि-कलित-कलस्वन-वंशे।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवतिः प्रशंससे—
[हरिरिह-मुग्ध-वधुनिकरे... ॥६॥]

अन्वय—सखि, हरिणा (श्रीकृष्णेन) करतल-ताल-तरल-वलयावलि-कलित-कलम्बने-वंशे (करतलयोः पाणितलयोः तालेन ध्वनिविशेषेण तरला चञ्चला या वलयावलिः कङ्कणश्रेणिः तया कलितः अनुपूरितः कलम्बनः मधुरस्वरो वंशः वाद्यविशेषः यस्मिन् तादृशे) रासरसे (रासोत्सवे) सहनृत्यपरा (सहनृत्यन्ती) काचित् युवतिः प्रशंशसे (साधु साध्विति प्रशंसिता)॥६॥

अनुवाद—हाथोंकी तालीके तानके कारण चञ्चल कंगण-समूहसे अनुगत वंशीनादसे युक्त अद्भुत स्वरको देखकर श्रीहरि रासरसमें आनन्दित नृत्य-परायणा किसी युवतीकी प्रशंसा करने लगे।

पद्यानुवाद—
जिसकी ताल समय कर-चूड़ी वंशी-स्वरमें खनकी।
रास-सखी की स्तुति श्रीहरिने जी भर भर कर की॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे कह रही है कि रासलीलामें श्रीकृष्णके साथ नृत्य करती हुई कोई युवती तान, मान, लयके साथ हाथोंसे ताली बजाने लगी, जिससे उसकी चूड़ियाँ एक दूसरेसे टकराकर अभिघातके कारण मधुर ध्वनि प्रकट करने लगीं और इस प्रकार वलयकी खनकाहट और वंशीध्वनि मिलकर अद्भुत मधुर नाद प्रस्तुत करने लगी, जिसे सुनकर श्रीकृष्ण पुनः पुनः उस रमणीकी प्रशंसा करने लगे॥६॥

श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामां।
पश्यति सस्मित–चारुतरामपरामनुगच्छति बामां—
[हरिरिह–मुग्ध–वधुनिकरे... ॥७ ॥]

अन्वय—सखि, [हरिः] कामपि (तरुणीं) श्लिष्यति (आलिङ्गति),; कामपि चुम्बति; कामपि रामां रमयति (क्रीड़ाकौतुकेन सुखयति); सस्मित–चारुतराम् (सस्मिता अतएव चारुतरा ताम्; मृदुमधुर–हासेन अतिमनोहरामित्यर्थः) [कामपि] पश्यति; [तथा] अपरां वामाम् (प्रतिकूलाम्, प्रणयकोपवशात् अभिमानभरेण स्थानान्तर–गामिनीम्) अनुगच्छति॥७॥

अनुवाद—शृङ्गार–रसकी लालसामें श्रीकृष्ण कहीं किसी रमणीका आलिङ्गन करते हैं, किसीका चुम्बन करते हैं, किसीके साथ रमण कर रहे हैं और कहीं मधुर स्मित सुधाका अवलोकन कर किसीको निहार रहे हैं तो कहीं किसी मानिनीके पीछे–पीछे चल रहे हैं।

पद्यानुवाद—

किसी सखीको भुजमें भरते और किसीसे रसते।
गीले कर फिर किसी अधरको, किसी आँखमें हँसते॥
कहीं किसीके पीछे पीछे छायासे हरि चलते।
वृन्दावनके लताकुञ्जकी क्रीड़ा कहते कहते॥

बालबोधिनी—रासक्रीड़ामें श्रीकृष्ण विविध रूप धारण करके क्रीड़ोन्मुख नायिकाओंके साथ विविध शृङ्गारिक चेष्टाओंको किया करते हैं। सम्भोग सुखकी लालसाके वशीभूत होकर श्रीकृष्ण कभी किसी कामिनीका आलिङ्गन करते हैं तो कभी किसीका चुम्बन। कहीं किसीके साथ विहार कर रहे हैं तो कहीं सरस रसपूर्ण नेत्रोंसे किसी वर सुन्दरीका सतृष्ण भावसे निरीक्षण कर रहे हैं और कभी विभ्रमके कारण किसी वराङ्गनाको 'श्रीराधा' कहकर सम्बोधित कर रहे हैं, जिससे वह मानिनी हो जाती है। रतिकी भावना तीव्र होनेपर चेष्टाविशेषके साथ उसका अनुगमन करते हैं।

मानिनी गोपीके रति परान्मुख होनेपर बार-बार अनुनय विनय करते हुए उसके क्रोध (रोष) को विगलित करनेका प्रयास करते हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें श्रीकृष्णका शठत्व, धृष्टत्व, दक्षिणत्व, अनुकूलत्व तथा धूर्त्तत्व दिखायी देता है। सभी नायिकाएँ अभिसारिका नायिकाएँ हैं।

शृङ्गारतिलक ग्रन्थमें धृष्ट नायकके लक्षण इस प्रकार बताये हैं—

अभिव्यक्तान्य तरुणी भोगलक्ष्मापि निर्भयः।
मिथ्यावचन दक्षश्च धृष्टोऽयं खलु कथ्यते॥

(शृ. ति. १-१७)

अर्थात् अन्य तरुणीके साथ सम्भोगके चिह्नोंके स्पष्ट रहनेपर भी बिना भयके निपुणताके साथ जो झूठ बोलता है, उसे धृष्ट नायक कहते हैं।

शठके लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

प्रियं व्यक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
निगूढमपराद्धं च शठोऽयं कथितो बुधैः॥

(शृ. ति. १-१८)

अर्थात् विद्वानोंने उस नायकको शठ नायक कहा है, जो अपने अपराधको छिपाये रहता है। किसी दूसरी नायिकाके प्रति आसक्त रहता है और अपनी नायिकाके समक्ष मीठी-मीठी बातें करता है॥७॥

श्रीजयदेव-भणितमिदमद्भुत-केशव-केलि-रहस्यं ।
वृन्दावन-विपिने ललितं वितनोतु शुभानि यशस्यम्—
[हरिरिह-मुग्ध-वधुनिकरे... ॥८ ॥]

अन्वय—श्रीजयदेव-भणितम् (श्रीजयदेवेन भणितम् उक्तम्) वृन्दावन-विपिने ललितं (मनोहरं) यशस्यम् (यशस्करम्) इदम् अद्भुत-केशव-केलिरहस्यं (अद्भुतम् वैदग्धी-विशेषेण

विचित्रं श्रीराधाविलापपरीक्षणरूपं केशवस्य केलिरहस्यं) [भक्तानां] शुभानि वितनोतु (विस्तारयतु)॥८॥

अनुवाद—

श्रीजयदेव कवि द्वारा रचित यह अद्भुत मङ्गलमय ललित गीत सभीके यशका विस्तार करे। यह शुभद गीत श्रीवृन्दावनके विपिन विहारमें श्रीराधाजीके विलास परीक्षण एवं श्रीकृष्णके द्वारा की गयी अद्भुत कामक्रीड़ाके रहस्यसे सम्बन्धित है। यह गान वन बिहारजनित सौष्ठवको अभिवर्द्धित करनेवाला है॥

पद्यानुवाद—

मग्न हुए रस सरिमें कवि 'जय' निशिदिन बहते बहते।
श्रोता भी हों मुक्त क्लेशसे सब कुछ सहते सहते॥

बालबोधिनी—गीतके उपसंहारमें कहा गया है कि कवि जयदेवजीने श्रीकेशवकी अद्भुत केलिक्रीड़ा-रहस्यका इस गीतमें निरूपण किया है। अद्भुत रहस्य यह है कि एक ही श्रीकृष्णने एक ही समयमें अनेक वराङ्गनाओंकी अभिलाषाओंकी पूर्त्ति करते हुए उनके साथ क्रीड़ा की। ताल और रागमें आबद्ध होनेके कारण यह गीत अति ललित है। इसके लालित्यका सबसे बड़ा कारण यह है कि इसमें श्रीकेशवकी केलि-कलाका रहस्य वर्णित है। यह मञ्जुल मधुर गीत पढ़ने और सुननेवाले भक्तजनोंका कल्याण करे और उनके सुयशकी वृद्धि करे॥८॥

विश्वेषामनुरञ्जनेन जनयन्नानन्दमिन्दीवर-
श्रेणीश्यामल-कोमलैरुपनयन्नङ्गैरनङ्गोत्सवम् ।
स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीभिरभितः प्रत्यङ्गमालिङ्गितः
शृङ्गारः सखि मूर्त्तिमानिव मधौ मुग्धो हरिः क्रीड़ति॥१॥

अन्वय—सखि, अनुरञ्जनेन (स्वस्ववाञ्छातिरिक्त-रसदान-प्रीणतेन) विश्वेषाम् (जगताम्) आनन्दं जनयन्, मुग्धः (सुन्दरः)

हरिः मधौ (वसन्ते) इन्दीवर-श्रेणी-श्यामल-कोमलैः (नीलोत्पल-श्रेणीतोऽपि श्यामलैः सुकुमारैश्च) अङ्गैः अनङ्गोत्सवं (कामोल्लासं) उपनयन् (संवर्द्धयन्) [अत्र इन्दीवर-शब्देन शीतलत्वं, श्रेणीशब्देन नवनवायमानत्वं, श्यामलपदेन सुन्दरत्वं, कोमलशब्देन सुकुमारत्वञ्च सूचितम्] अभितः, (समस्ततः, सर्वैरङ्गैरित्यर्थः) व्रजसुन्दरीभिः स्वच्छन्दं, [यथास्यात् तथा] प्रत्यङ्गम् (प्रत्यवयम्) आलिङ्गितः (प्रगाढ़ाश्लिष्टः; आलिङ्गनानु-रञ्जनेनानुरञ्जित इत्यर्थः) मूर्त्तिमान् (देहधरः) शृङ्गारः (शृङ्गाररसः) इव क्रीड़ति (एक एव विश्वमनुरञ्जयन् आनन्दयति) [शृङ्गार-रसोऽपि श्यामवर्णः—यथा—स्थायी भावो रतिः श्यामवर्णोऽयं विष्णुदैवतः इति]॥९॥

अनुवाद—

हे सखि! इस वसन्तकालमें विलास-रसमें उन्मत्त श्रीकृष्ण मूर्त्तिमान शृङ्गार रसस्वरूप होकर विहार कर रहे हैं। वे इन्दीवर कमलसे भी अतीव अभिराम कोमल श्यामल अङ्गोंसे कन्दर्प महोत्सवका सम्पादन कर रहे हैं। गोपियोंकी जितनी भी अभिलाषा है, उससे भी कहीं अधिक उनकी उन्मत्त लालसाओंको अति अनुरागके साथ तृप्त कर रहे हैं। परन्तु व्रजसुन्दरियाँ विपरीत रतिरसमें आविष्ट हो विवश होकर उनके प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गको सम्यक् एवं स्वतन्त्र रूपसे आलिङ्गित कर रही हैं॥१॥

पद्यानुवाद—

हैं विहर रहे मधु ऋतुमें, अनुरागमयी आँखोंसे—
कोमल श्यामल सरसिजकी, मधु स्निग्धमयी पाँखोंसे॥
है अङ्ग अङ्ग आलिङ्गित, मृदु गोपीजन-अङ्गोंमें।
शृङ्गार-मूर्त्ति हरि दीपित, जन करते रस-रङ्गोंसे॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीकी उद्दीपना भावनाको अभिवर्द्धित करने हेतु उन्हें प्रियतम श्रीहरिकी शृङ्गारिक चेष्टाओंको दिखलाती हुई कहती है—सखि! देखो, इस समय वसन्तकाल है, इसमें भी मधुमास है और श्रीहरि मुग्ध होकर

समस्त गोपीयोंके साथ साक्षात् शृङ्गार रसके समान क्रीड़ा विलास कर रहे हैं, शृङ्गारः सखिः मूर्त्तिमानिव—श्रीकृष्णको मूर्त्तिमान शृङ्गार रसके समान बनाकर सखीके द्वारा उनका प्रमदासङ्गत्व स्वरूप व्यक्त हुआ है। पुरुषः प्रमदायुक्तः शृङ्गार इति संज्ञितः—प्रमदासे युक्त पुरुष शृङ्गार कहलाता है। गोपियोंकी जितनी भी अभिलाषा रही, उससे भी कहीं अधिक रूपमें श्रीकृष्ण अनङ्ग-उत्सव द्वारा उनका अनुरञ्जन कर रहे हैं, आनन्दवर्द्धन कर रहे हैं। वे श्रीहरि अनुरागके द्वारा समस्त जीवोंको आनन्द प्रदान कर रहे हैं।

श्रीकृष्णके अङ्गोंका सौन्दर्य वर्णन करते हुए सखी कहती है कि वे नीलकमलसे भी अधिक श्यामल तथा कोमल हैं। इन्दीवर शब्दसे शीतलत्व, श्यामलत्व और कोमलत्व सूचित होता है। और भी इन्दीवर शब्दसे शैत्य और श्रेणी शब्दसे नव-नवायमानत्व समझा जाता है। श्यामल शब्दसे सुन्दरत्व और कोमल शब्दसे सुकुमारत्व घोषित होता है। अपने इन कोमलतम अङ्गोंके द्वारा श्रीकृष्ण कामोत्सव मना रहे हैं।

व्रजसुन्दरियाँ बिना किसी अवरोधके स्वछन्दतापूर्वक उनके उन-उन अङ्गोंका आलिङ्गन किये हुए हैं।

रस निष्पत्ति दो प्रकारसे होती है। नायकका नायिकाके प्रति तथा नायिकाका नायकके प्रति अनुरागसे। नायकका नायिकाके प्रति अनुराग रहनेपर भी नायिकाका नायकके प्रति जबतक अनुराग नहीं होता तब तक रसकी निष्पत्ति नहीं हो सकती है।

प्रश्न होता है कि यहाँ तो परस्पर अनुरञ्जन मात्र हुआ है, तब रस कहाँ है?

विभाव, अनुभाव, सात्त्विक तथा सञ्चारी भावोंके सम्मिलनमें रसकी स्थिति है। यही रस स्नेह, मान, प्रणय,

राग-अनुराग, भाव-महाभाव आदिके क्रमसे अभिवर्द्धित होता है। अतः जब प्रेमका परिपाक हो जाता है तब रसका अभ्युदय होता है। यह प्रेम-रस जब प्रकाशित होने लगता है, तब नायक-नायिकामें काल, देश और क्रियाके सम्बन्धमें कोई सङ्कोच नहीं रहता। निःसङ्कोच भाव रहनेपर भी मिलनमें सम्पूर्णता नहीं हो सकती, इसके उत्तरमें कहते हैं कि महाभाव रसके द्वारा सर्वाङ्ग मिलन सिद्ध होता है।

पुनः शङ्का होनेपर कि श्रीकृष्णने अङ्गनाओंका केवल एकदेशीय रूपमें अवलोकन किया है तो इसका निराकरण यह है कि प्रत्यङ्गमालिङ्गित—अर्थात् श्रीकृष्णने सर्वाङ्ग—एक-एक अङ्गको यथोचित क्रियाओं द्वारा आलिङ्गन, चुम्बन, स्पर्श आदिके द्वारा उन सबका अनुरञ्जन किया है। अब फिर यह प्रश्न सामने आया कि एकाकी श्रीकृष्णने सबका आलिङ्गन कैसे किया? समाधान यह है कि जैसे शृङ्गार रस एक होकर भी समस्त जगतमें परिव्याप्त है, उसी प्रकार श्रीकृष्णमें भी सर्वव्यापकत्व है। इसी गुणसे वह अखिल विश्वका अनुरञ्जन करते हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें दीपकालङ्कार है, वैदर्भी रीति है, शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है, शृङ्गार रस है तथा वाक्यौचित्य है। सम्पूर्ण गीतकी नायिका श्रीराधा उत्कण्ठिता नायिका हैं। नायकके द्वारा विपरीत आचरण किये जाने पर जो नायिका विरहोत्कण्ठिता तथा उदास रहती है, वह उत्कण्ठिता नायिका कहलाती है॥१॥

रासोल्लासभरेण विभ्रम-भृतामाभीर-वामभ्रुवा-
मभ्यर्णे परिरभ्य निर्भरमुरः प्रेमान्धया राधया।
साधु तद्वदनं सुधामयमिति व्याहृत्य गीतस्तुति-
व्याजादुद्भटचुम्बितः स्मितमनोहारी हरिः पातु वः॥२॥

इति श्रीगीतगोविन्द महाकाव्ये सामोद दामोदर नाम प्रथमः सर्गः।

अन्वय—[अधुना कविर्वसन्तरासमनुवर्णयन् शारदीय-रासकृत-श्रीराधाकृष्ण-विलासमनुस्मरयन् तद्वर्णनरूपया आशिषा भक्तान् संवर्द्धयति]—प्रेमान्धया (अनुरागभरेण ज्ञानशून्यया) राधया रासोल्लासभरेण (रासोत्सवानन्दातिशयेन) विभ्रमभृताम् (हावभाव-समन्विताम्) आभीर-वामभ्रुवाम् (गोप-ललनानां) [मध्ये] अभ्यर्णं (समीपे) निर्भरं (गाढ़ं यथा तथा) उरः (वक्षः) परिरभ्य (आश्लिष्य), त्वद्वदनं (तव मुखं) साधु सुधामयम् (पीयूषपूर्णम्) इति गीतस्तुतिव्याजात् (गानप्रशंसाच्छलेन) व्याहृत्य (उक्त्वा) उद्भटचुम्बितः (प्रगाढ़चुम्बितः) [अतएव] स्मितमनोहारी (स्मितेन मनोहरणशीलः) हरिः वः (युष्मान्) [भक्तामिति भावः] पातु॥ [अतएव सर्गोऽयं श्रीराधा-विलासानुभवेन सम्यङ्मोदेन सह वर्त्तमानो दामोदरो यत्र स इति सामोद-दामोदरः प्रथमः]॥१०॥

अनुवाद—जिस श्रीकृष्णके प्रेममें अन्धी होकर विमुग्धा श्रीराधा लज्जाशून्य होकर रासलीलाके प्रेममें विह्वला शुभ्रा गोपाङ्गनाओंके समक्ष ही उनके वक्षःस्थलका सुदृढ़रूपसे आलिङ्गन कर 'अहा नाथ' तुम्हारा वदनकमल कितना सुन्दर है, कैसी अनुपम सुधाराशिका आकर है—इस प्रकार स्तुति-गान करती हुई सुचारु रूपसे चुम्बन करने लगी तथा श्रीराधाकी ऐसी प्रेमासक्ति देखकर हृदयमें स्वतःस्फूर्त्त आनन्दके कारण जिस श्रीकृष्णका मुखकमल मनोहर हास्यभूषणसे विभूषित होने लगा, ऐसे हे श्रीकृष्ण! आप सबका मङ्गलविधान करें।

पद्यानुवाद—

मधु रास-मुग्ध सखि सम्मुख मातल राधा भर भुजमें—
हरिको; बोली—'प्रिय, कितना है अमृत मुख सरसिजमें।'
फिर गीत-स्तुति मिस सत्वर वह चूम उठी मुख उनका।
प्रिय चुम्बनसे प्रमुदित हरि अब दूर करें दुःख सबका॥

बालबोधिनी—यह प्रथम सर्गका अन्तिम श्लोक है। इस सर्गका नाम सामोद-दामोदर है।

सखी वासन्ती रातका चित्राङ्कन करते हुए श्रीराधाजीको शारदीया रासस्थित श्रीकृष्णके विलासका स्मरण कराने लगी।

श्रीकृष्ण वसन्त ऋतुमें कामोत्सवमें मग्न हैं। लीलानायक श्रीकृष्ण आभीर वामनयना गोपियोंके मध्य विराजमान हैं। पहले तो श्रीराधा विरहोत्कण्ठिता थी, किन्तु सखीसे प्रेरित होने पर उनके हृदयमें उत्कट अभिलाषा जाग उठी। लज्जाशीला होनेपर भी प्रेमावेशके कारण सभी सखियोंके समक्ष सुधामय वाक्योंसे स्तुतिगान करनेके बहाने श्रीकृष्णके वक्षःस्थलका सुदृढ़ आलिङ्गन कर उनका चुम्बन करने लगी।

समस्त व्रजरम्भाओंके समक्ष राधाके हृदयका भाव निःसङ्कोच उद्घाटित होनेपर श्रीकृष्णका मुखमण्डल मञ्जुल हर्षसे परिपूर्ण हो गया। शील-स्वभावा श्रीराधिकाकी विदग्धता एवं रासोल्लासके कारण विभ्रम भावोन्मत्ता प्रेमान्धतासे अभिभूत हुए श्रीकृष्ण सबका मङ्गल विधान करें।

प्रस्तुत श्लोकमें नायिका प्रगल्भा है और नायक मुग्ध है। शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है। आशीः, अप्रस्तुत प्रशंसा, व्याजोक्ति आदि अलङ्कार हैं।

इति बालबोधन्यां श्रीगीतगोविन्दटीकायां प्रथमः सर्गः।

卐卐卐

द्वितीयः सर्गः

(अक्लेश–केशवः)

विहरति वने राधा साधारण–प्रणये हरौ
विगलित–निजोत्कर्षादीर्ष्यावशेन गतान्यतः।
क्वचिदपि लताकुञ्जे गुञ्जन्मधुव्रत–मण्डली–
मुखर–शिखरे लीना दीनाप्युवाच रहः सखीम्॥१॥

अन्वय—[अथ सखीवचनं निशम्य श्रीकृष्णस्य साधारण-विहरणं विलोक्य ईर्ष्योदयात् तद्दर्शनमप्यसहमाना अन्यतोगता राधा सखीमुवाच]—साधारण-प्रणये (साधारणः समानः सर्वास्वेव गोपाङ्गनासु इति शेषः प्रणयः प्रीतिः यस्य तथाभूते) हरौ (कृष्णे) वने विहरति (विहारं कुर्वति सति) राधा विगलित-निजोत्कर्षात् (विगलितो निजोत्कर्षः अहमेव असाधारणी प्रिया इत्येवं रूपेण यतस्तस्मादित्यर्थः (ईर्षावशेन) (अन्योत्कर्षा-सहिष्णुतया) दीना (कातरा) [सती] [प्रणयतारतम्यादपि विहारस्य साम्यव्यवहरणात् श्रीकृष्णस्य स्वभावान्यथात्वदर्शनाक्षमतया] अन्यतः (अन्यस्मिन्) गुञ्जन्मधुव्रत-मण्डली-मुखर-शिखरे (गुञ्जन्तो ये मधुव्रताः (भ्रमरास्तेषां मण्डलीभिः श्रेणीभिः मुखरं ध्वनितं शिखरम् अग्रं यस्य तादृशे) क्वचिदपि लताकुञ्जे लीना लुक्कायिता सती) रहः (निर्जने) सखीम् [अत्यन्तगोप्यमपि] उवाच॥१॥

अनुवाद—समस्त गोपाङ्गनाओंके साथ एक समान स्नेहमय श्रीकृष्णको वृन्दाविपिनमें विहार करते हुए देखकर अन्य गोपिकाओंकी अपेक्षा अपना वैशिष्ट्य न होनेसे प्रणय-कोपके आवेशमें वहाँसे दूर जाकर भ्रमर-मण्डलीसे गुञ्जित दूसरे लताकुञ्जमें श्रीराधा छिप गयी एवं अति दीन होकर गोपनीय बातोंको भी सखीसे कहने लगी।

पद्यानुवाद—

राधा बोल उठी मनकी
लख हरि गोपीजनकी क्रीड़ा निशिदिन वृन्दावनकी
अलिकुल–गुञ्जित लता–कुञ्जमें छिपकर जीवन–धनकी।
लीलासे ईर्षाहत होकर भूली सुध–बुध तनकी
राधा बोल उठी मनकी॥१॥

बालबोधिनी—इस द्वितीय सर्गका नाम अक्लेश–केशव है। तात्पर्य यह है कि स्वयं–भगवान् रसिक–शेखर श्रीकृष्ण सदैव क्लेशरहित हैं। उनमें क्लेशका संक्लेश मात्र भी नहीं है। भगवान्के दो असाधारण चिह्न हैं—

१. अखिलहेयप्रत्यनिकत्त्व, अर्थात् भगवान्से किसी प्रकारके क्लेश–कर्म–विपाक आदि प्राकृतिक दोषोंका सम्पर्क नहीं होता है। वे सभी दोषोंके प्रत्यनीक हैं अर्थात् प्रबल शत्रु हैं।

योगसूत्रकारने भी साधनपादमें कहा है—

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

अर्थात् क्लेश कर्म, उनके परिणाम तथा वासनादि दोषोंके सम्पर्कसे रहित पुरुषविशेषको ईश्वर शब्दसे अभिहित किया जाता है।

२. अखिल कल्याण गुणाकरत्व—श्रीकृष्ण सम्पूर्ण संसारका कल्याण करनेवाले अप्राकृत सद्गुणोंके आकर हैं।

इन्हीं अर्थोंके कारण इस सर्गका नाम अक्लेश–केशव है।

मानवती श्रीराधा सखीके समझाये जानेपर श्रीकृष्णके मदन–महोत्सवमें सम्मिलित हो गयीं। इस मदन–उत्सवमें श्रीकृष्ण सभी सखियोंके प्रति समान स्नेह रखते हुए विहार कर रहे थे। जब कि श्रीराधाको यह गर्व था कि मैं उनकी सर्वश्रेष्ठा वल्लभा हूँ, नित्य सहचरी हूँ, परन्तु आज अपने प्रति विशिष्ट स्नेह प्रदर्शित न होनेसे श्रीराधा प्रणय–कोपके

आवेशमें अन्यत्र एक कुञ्जमें चली आयीं और छिपकर बैठ गयीं। ईर्ष्याकषायिता श्रीराधाको वहाँ भी कहीं शान्ति नहीं मिली। इस लताकुञ्जके शिखरपर पुष्पोंमें मँडराता हुआ अलिवृन्द गुञ्जार कर रहा था। उस समय श्रीराधा अपनी मानकी वेदनासे पीड़ित होकर अपनी सखीसे उन रहस्यात्मक बातोंको कहने लगी, जिन्हें किसीके समक्ष कहा नहीं जाना चाहिए।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छन्द है। हरिणी छन्दका लक्षण है—**'रसयुग हयैः न्सौ म्नौ स्लौ गो यदा हरिणी।'** नायिका प्रौढ़ा है। रतिभावके उद्रेकातिशयके कारण रसवदलङ्कार तथा अनुप्रास अलङ्कार हैं।

अपि—सोत्कर्ष भावमयी राधा कुछ न बोल सकनेकी स्थितिमें थीं, रहस्यमयी बातें बतलाने वाली नहीं थीं, यह 'अपि' शब्दके द्वारा घोषित है। अतः 'अपि' शब्द चमत्कारातिशय युक्त है।

गुर्ज्जरी रागेण यति तालेन गीयते॥ प्रबन्ध ५॥

प्रस्तुत श्लोक पञ्चम प्रबन्धकी पुष्पिका रूप है। दूसरे श्लोकसे इसका समुचित प्रारम्भ है। यह प्रबन्ध गुर्ज्जरी-राग तथा यति-तालसे गाया जाता है॥१॥

गीतम् ॥५॥

गुर्ज्जरीराग यतितालाभ्यां गीयते

सञ्चरदधर-सुधा-मधुर-ध्वनि-मुखरित-मोहन-वंशं
बलित-दृगञ्चल-चञ्चल-मौलि-कपोल-विलोल-वतंसम्।
रासे हरिमिह विहित-विलासं
स्मरति मनो मम कृत-परिहासम्॥१॥ध्रुवम्॥

अन्वय—सखि, सञ्चरदधर-सुधा मधुर-ध्वनि-मुखरित-मोहन-वंशं (सञ्चरन्ती उद्गच्छन्ता अधरसुधा यत्र तेन

''हरि–मूरतका ध्यान, हो आता अनजान''

मधुरेण ध्वनिना मुखरितः शब्दितः मोहनः मनोमोहकरः वंशः वेणु येन तादृशं) वलित-दृगञ्चल-चञ्चल-मौलि-कपोल-विलोल-वतंसं (वलितेन इतस्ततः प्रचलता दृगञ्चलेन दृशोः नेत्रयोः अञ्चलं चक्षुःप्रान्तभागः तेन कटाक्षेणेत्यर्थः योऽसौ चञ्चलमौलिः कम्पितशिरोभूषणं तेन कपोलयोः गण्डयोः विलोलौ चञ्चलौ वतंसौ मणिकुण्डले यस्य तादृशं) इह रासे (शारदीय-रासलीलायां) विहितविलासं (विहितः कृतः विलासः हावभावो येन तादृशं) [तथा] कृतपरिहासं (कृतः परिहासो येन तादृशं) हरिं मम मनः स्मरति॥१॥

अनुवाद—सखि, कैसी आश्चर्यकी बात है कि इस शारदीय रासोत्सवमें श्रीकृष्ण मुझे छोड़कर अन्य कामिनियोंके साथ कौतुक आमोदमें विलास कर रहे हैं। फिर भी मेरा मन उनका पुनः पुनः स्मरण कर रहा है। वे सञ्चरणशील अपने मुखामृतको अपने करकमलमें स्थित वेणुमें भरकर फुत्कारके साथ सुमधुर मुखर स्वरोंमें बजा रहे हैं, अपाङ्ग-भङ्गीके द्वारा अपने मणिमय शिरोभूषणको चञ्चलता प्रदान कर रहे हैं, उनके कानोंके आभूषण कपोल देशमें दोलायमान हो रहे हैं, उनके इस श्याम रूपका, उनके हास-परिहासका मुझे बारम्बार स्मरण हो रहा है॥१॥

पद्यानुवाद—

हे सखि!
कम्पित अधर मधु-ध्वनित वेणु-स्वर
चलित दृगञ्चल चञ्चल शिर, भर—
गति कपोल द्वय लोल वलय वर
रास विलास हास कृत मनहर
हरि मूरतका ध्यान,
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—सखिने कहा—प्रिय राधिके! जब श्रीकृष्णने तुम्हारा प्रत्याख्यान किया है, तब तुम क्यों उनके प्रेममें इतनी अधीर हो रही हो?

सखीके द्वारा अपनी भर्त्सना सुनकर श्रीराधा अति दीन भावसे कहने लगी—सखि! तुम ठीक कह रही हो, श्रीकृष्ण मेरा परित्याग कर दूसरी रमणियोंके साथ अतिशय अनुरागयुक्त होकर विहार कर रहे हैं, तब उनके प्रति मेरा अनुराग प्रकाशित होना व्यर्थ ही है, पर मैं क्या करूँ? मुझे उनकी नर्मकेलिका अनुभव है, उनके विलासोंका स्मरण हो रहा है, सखि! ये वे ही केलिवन हैं, जहाँ हमने केलिसुख प्राप्त किया था, उनके प्रति मेरी प्रबल आसक्ति है, मुझसे उनका त्याग नहीं होता। सब समय उनके गुणोंका ही स्मरण होता रहता है। मेरे हृदयमें उनके दोषका लेशमात्र भी भाव नहीं उठता, मुझे सदैव सन्तुष्टि रहती है। जब श्यामसुन्दर रास-रजनीमें व्रजाङ्गनाओंके साथ हास-परिहास करते हैं तब—**सञ्चरदधर सुधा मधुर ध्वनि मुखरित विग्रहम्—सञ्चरन्त्या अधरसुधया मधुरो ध्वनि यत्र तद् यथा स्याद् तथा मुखरिता मोहिनी वंशी येन तम्।** वे जब अधरसुधासे संक्रान्त मधुर-ध्वनि करनेवाली उस वंशीको बजाते हैं, जिसका मोहनकारित्व प्रख्यात है, उस समय मेरा मन अस्थिर हो जाता है, मैं अपना धैर्य खो बैठती हूँ। उनके अङ्गोंका सौन्दर्य, चञ्चल शिरोभूषण, दोलायमान कर्णकुण्डल तथा विशेषकर गोप-युवतियोंका आलिङ्गन चुम्बन स्मरण करते ही मैं सुधबुध खो बैठती हूँ—सखि मैं क्या करूँ?॥१॥

चन्द्रक-चारु-मयूर-शिखण्डक-मण्डल-वलयित-केशं।
प्रचुर-पुरन्दर-धनुरनुरञ्जित-मेदुर-मुदिर-सुवेशं ॥
रासे हरिमिह ... ... ॥२॥

अन्वय—सखि, चन्द्रक-चारु-मयूर-शिखण्डक-मण्डल-वलयितकेशं (चन्द्रकेण अर्द्धचन्द्राकारेण चारूणां मयूरशिखण्डकानां मयूरपुच्छानां मण्डलेन वलयितः वेष्टितः केशो यस्य तादृशं) [अतएव] प्रचुरपुरन्दर-धनुरनुरञ्जित-चित्रितः मेदुरः स्निग्धो यो

मुदिरो नवजलधरः तद्वत् सुशोभनो वेशो यस्य तादृशं) [रासे विहितविलासमित्यादि]॥२॥

अनुवाद—अर्द्धचन्द्रकारसे सुशोभित अति मनोहर मयूर-पिच्छसे वेष्टित केशवाले तथा प्रचुर मात्रामें इन्द्रधनुषोंसे अनुरञ्जित नवीन जलधर पटलके समान शोभा धारण करनेवाले श्रीकृष्णका मुझे अधिक स्मरण हो रहा है।

पद्यानुवाद—

चन्द्रक चारु मयूर शिखण्डित
कोमल केश वलय आमण्डित।
प्रचुर पुरन्दर धनु अनुरञ्जित
सघन मेघ–छवि वपु बहु सज्जित॥

बालबोधिनी—मोर पंखके अन्तिम भागमें बने हुए वृत्ताकार मण्डलको 'चन्द्रक' कहा जाता है। चन्द्रमाके समान यह भी आह्लाददायक होता है। इन्हीं मधुर पिच्छोंसे श्रीकृष्णका केशपाश वलयित हो रहा है। उससे उनका श्यामवर्ण ऐसे प्रतीत हो रहा है, मानो सजल मेघ अनेक इन्द्रधनुषोंसे सुसज्जित हो, उन्हींके कमनीय दिव्य विग्रहका मुझे बारबार स्मरण हो रहा है॥२॥

गोप–कदम्ब–नितम्बवती–मुख–चुम्बन–लम्भित–लोभं।
बन्धुजीव–मधुराधर–पल्लवमुल्लसित–स्मित–शोभम्॥
रासे हरिमिह ... ... ॥३॥

अन्वय—सखि, गोप–कदम्ब–नितम्बवती–मुखचुम्बन–लम्भित–लोभम् (गोप–कदम्बस्य गोपकुलस्य या नितम्बवत्यः नितम्बिन्यः तरुण्यः तासां मुख–चुम्बने लम्भितः प्रापितः लोभः यस्य तं) [तथा] बन्धुजीव–मधुराधर–पल्लवम् (बन्धुक–पुष्पवत् अरुणः मधुरः मनोहरश्च अधरपल्लवो यस्य तादृशम्) [तथा] उल्लसित–स्मित–शोभम् (उल्लासिता परिवर्द्धिता स्मितेन मृदुमधुरहासेन शोभा यस्य तथोक्तम्) [मम मनः रासे विहितविलासमित्यादि]॥३॥

अनुवाद—गोपललनाओंके मुखकमलका चुम्बन करनेकी अभिलाषासे इस अनङ्ग उत्सवमें अपने मुखको झुकाये हुए, उनका सुकुमार अधर पल्लव बन्धुक कुसुमवत् मनोहारी अरुण वर्णीय हो रहा है, स्फूर्त्तियुक्त मन्द-मुस्कानकी अपूर्व शोभा उनके सुन्दर मुखमण्डलमें विस्तार प्राप्त कर रही है, ऐसे उन श्रीकृष्णका मुझे अति स्मरण हो रहा है।

पद्यानुवाद—

गोप वधू चुम्बन-रस लोभित
अधर वधूक स्मित मधु शोभित।
पुलक युवति-भुज अति आलिङ्गित
पद-कर मणि-द्युति निशि-तमचूर्णित॥
हरि मूरतका ध्यान
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—गोपवधुओंके मुख चुम्बनका लोभ धारण करनेवाले श्रीकृष्णकी मुझे याद आ रही है। जिस समय वे रहस्यमयी कुञ्जक्रीड़ामें निमग्न रहते हैं, उस समय उन गोपियोंके मुखका बारंबार चुम्बन करनेका लोभ बढ़ता जाता है। श्रीकृष्णके बन्धुक अर्थात् दुपहरियाके पुष्पके समान लाल-लाल होंठका मुझे स्मरण आता है। सखि! मुस्करानेपर तो उनकी शोभा और भी बढ़ जाती है।

विपुल-पुलक-भुज-पल्लव-वलयित-वल्लव-युवति-सहस्रं।
कर-चरणोरसि-मणिगण-भूषण-किरण-विभिन्न-तमिस्रं—
रासे हरिमिह ... ...॥४॥

अन्वय—सखि, विपुल-पुलक-भुजपल्लव-वलयित-वल्लव-युवति- सहस्रं (विपुलाः अगाधाः पुलका रोमाञ्चा ययोस्ताभ्यां भुजपल्लवाभ्यां पल्लव-पेलव-भुजाभ्यां वलयितं परिवेष्टितम् आलिङ्गितमित्यर्थः वल्लव-युवतीनां गोप-तरुणीनां सहस्रं येन तम्; एकदानेकालिङ्गनात् नैकनिष्ठप्रेमाणमित्यर्थः);

[तथा] करचरणोरसि (हस्तपदवक्षसि) मणिगण–भूषण–किरण–विभिन्न–तमिस्रं (मणिगणभूषणानां मणिमयालङ्काराणां किरणेन विभिन्नं निराकृतं तमिस्रम् अन्धकारो येन तादृशम्) [मम मनः रासे विहितविलासमित्यादि]॥४॥

अनुवाद—अतिशय रोमाञ्चसे परिप्लुत होकर अपने सुकोमल भुज–पल्लवके द्वारा हजारों–हजारों गोप–युवतियोंको समालिङ्गित करनेवाले एवं कर, चरण और वक्षस्थलमें ग्रथित मणिमय आभूषणोंकी किरणोंसे दिशाओंको आलोकित करनेवाले श्रीकृष्णका मुझे स्मरण हो रहा है।

पद्यानुवाद—

पुलक युवती भुज अति आलिङ्गित
पद कर मणि द्युति निशि तम चुर्णित॥
हरि मूरतका ध्यान
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—इस समय श्यामसुन्दरके उन कोमल–कोमल पल्लवोंके समान हस्तोंका मुझे स्मरण हो रहा है, जो प्रभूत रोमाञ्चसे युक्त हैं और जिनसे वे सहस्र गोपियोंको परिवेष्टित कर उनका समालिङ्गन करते हैं। उनके कर, चरण तथा हृदयस्थलके आभूषणोंके सौन्दर्यकी किरणोंसे सम्पूर्ण अन्धकार विदूरित हो गया है॥४॥

जलद–पटल–बलदिन्दु–विनिन्दक–चन्दन–तिलक–ललाटं।
पीन–पयोधर–परिसर–मर्दन–निर्दय–हृदय–कवाटम्—
रासे हरिमिह ... ... ॥५॥

अन्वय—सखि, जलद–पटल–बलदिन्दु–विनिन्दक–चन्दन–तिलक–ललाटं (जलद–पटलेन मेघसमूहेन बलन् परिस्फुरन् यः इन्दुः चन्द्रः तस्य विनिन्दकः तिरस्कारकः चन्दनतिलकः ललाटे यस्य तादृशं) [तथा] पीन–पयोधर–परिसर–मर्दन–निर्दय–

हृदय-कवाटम् (पीनयोः स्थूलयोः पयोधरयोः स्तनयोः यः परिसरः परिणाहः विस्तार इति यावत् तस्य मर्दनाय निर्दयः हृदयकवाटः विशालं वक्षः यस्य तादृशम्; अत्र हृदयस्य दृढ़त्व-विस्तीर्णत्वाभ्यां कवाटत्वेन निरूपणम्) [मम मनः रासे विहित-विलास-मित्यादि] ॥५ ॥

अनुवाद—अपने ललाटमें मनोहर चन्दनके तिलकको धारणकर नवीन जलद मण्डलमें विद्यमान चञ्चल चन्द्रमाकी महती शोभाको पराभूतकर अनिर्वचनीय सुषमाको धारण करनेवाले एवं वर युवतियोंके पीन पयोधरोंके अमूल्य प्रान्त भागको अपने सुविशाल सुदृढ़ वक्षःस्थलसे निपीड़ित करनेमें सतत अनुरक्त कवाटमय (किवाड़ स्वरूप) निर्दय-हृदय श्रीकृष्णका मुझे बार-बार स्मरण हो रहा है।

पद्यानुवाद—

चन्दन तिलक ललाट विचर्चित,
जलद पटलमें विधु सम दर्शित।
युवती पीन पयोधर मर्दित,
अपनी निर्दयता पर हर्षित।
हरि मूरतका ध्यान,
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—सजल बादलोंके बीच चञ्चल चन्द्रमाकी शोभा अत्यधिक प्रेक्षणीय होती है। श्रीकृष्णके श्यामवर्णका विस्तृत ललाट-पटल ही सजल मेघतुल्य है और उसपर श्वेतवर्णका चन्दन तिलक आह्लादप्रदायी चन्द्रमाकी छटाओंका भी तिरस्कार करनेवाला है। रतिकालमें युवतियोंके कोमल स्तनोंको अपने विशाल वक्षःस्थलसे बड़ी ही निर्दयतापूर्वक मर्दन करनेवाले श्रीकृष्णका मुझे अतिशय स्मरण हो रहा है ॥५ ॥

मणिमय—मकर मनोहर—कुण्डल—मण्डित—गण्डमुदारं।
पीतवसन मनुगत—मुनि—मनुज—सुरासुरवर—परिवारं—
रासे हरिमिह ... ... ॥६॥

अन्वय—सखि, मणिमय-मकर-मनोहर-कुण्डल-मण्डित-गण्डं (मणिमयाभ्यां मणिप्रचुराभ्यां मकराभ्यां मकराकार-मनोहर-कुण्डलाभ्यां मण्डितौ शोभितौ गण्डौ यस्य तम्) [तथा] अनुगत-मुनि-मनुज-सुरासुर-वर-परिवारम् (अनुगताः सौन्दर्यादिना आकृष्टाः मुनि-मनुज-सुरासुराणां वराः श्रेष्ठाः परिवाराः परिग्रहाः येन तादृशम्) उदारं (महान्तम्) पीत-वसनम् (पीताम्बरम्) [हरिं मम मनः रासे विहितविलास-मित्यादि॥६॥

अनुवाद—जिनके कपोल-युगल मणिमय मनोहर मकराकृति कुण्डलोंके द्वारा सुशोभित हो रहे हैं, जिन्होंने कामिनी जनोंके मनोभिलाषको पूर्ण करनेमें महान उदार भाव अर्थात् दक्षिण नायकत्वको धारण किया है, जिन पीताम्बरधारी श्रीकृष्णने अपनी माधुरीका विस्तारकर सुर, असुर, मुनि, मनुष्य आदि अपने श्रेष्ठ परिवारको प्रेमरसमें सराबोर कर दिया है, उन श्रीकृष्णका मुझे बरबस ही स्मरण हो रहा है।

पद्यानुवाद—

युग्म कपोल रत्न—मणि मण्डित,
मकर मनोहर कुण्डल लम्बित
सुन्दर पीत वसन परिवेष्टित,
मुनि, सुर, असुर, पद्म—पद पूजित
हरि मूरतका ध्यान,
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णके कानोंमें लटकनेवाले कुण्डल मकराकृतिके हैं, जिनसे उनके कपोलद्वय समलंकृत हैं। दक्षिण नायक हैं, पीताम्बर धारण करते हैं। नारदादि मुनि, भीष्मादि मनुष्य, प्रह्लादादि असुर तथा इन्द्रादि देवगण उनका श्रेष्ठ परिवार है। ऐसे श्रीकृष्णका मुझे स्मरण हो रहा है॥६॥

विशद–कदम्बतले मिलितं कलि–कलुषभयं शमयन्तं
मामपि किमपि तरङ्गदनङ्गदृशा मनसा रमयन्तं—
रासे हरिमिह ... ... ॥७॥

अन्वय—विशद–कदम्बतले (पुष्पित–कदम्बतरुतले) मिलितं (मया सह सङ्गतं) कलि–कलुषभयं शमयन्तं (कलिः कलहः कलुषं मालिन्यः प्रेमकलहोद्भूतं चित्तमालिन्यं तदपनयन्तं चाटुभिरितिशेषः; यद्वा कलिजनित–पाप–तापभयं निवारयन्तं) किमपि (अनिर्वचनीयं यथा तथा) तरङ्गदनङ्ग–दृशा (तरङ्ग इव आचरन् अनङ्गो यत्र तया दृशा दृष्ट्या) मामपि (मामेव) रमयन्तं (मया सह रतिं ध्यायन्तमित्यर्थः) [रासे विहित–विलासमित्यादि] ॥७॥

अनुवाद—विशाल एवं सुविकसित कदम्ब वृक्षके नीचे समागत होकर मेरी अपेक्षामें प्रतीक्षा करनेवाले विविध प्रकारके आश्वासनयुक्त चाटुवचनोंके द्वारा विच्छेद भयको सम्यक् रूपसे अपनयन (दूरीभूत) करनेवाले प्रबलतर अनङ्ग रसके द्वारा चञ्चल नेत्रोंसे तथा नितान्त स्पृहायुक्त मानसमें मेरे साथ मन–ही–मन रमण करनेवाले श्रीकृष्णका स्मरण कर मेरा हृदय विकल हो रहा है।

पद्यानुवाद—

विशद कदम्बतले उपवेष्टित,
जन मनसे कलि भय अपसारित
निज अपाङ्गसे मम मन पूरित,
सुन्दर मोहन कवि जय वर्णित
हरि मूरतका ध्यान,
हो आता अनजान॥

बालबोधिनी—श्रीराधा कहती हैं—हे सखि! वे अतिशय उत्कण्ठाके साथ इस विशाल कदम्बके नीचे सङ्केत स्थानपर मेरी प्रतीक्षा करते रहते हैं। प्रणय कलह होनेपर विच्छेदके भयसे चाटु वाक्यों द्वारा मनाते रहते हैं। इस तरह वे मुझे

अपनी सरस दृष्टि तथा सानुराग मनसे आनन्दित करते रहते हैं।

'मामपि'—मुझे भी आनन्दित करते रहते हैं, अर्थात् प्रियतम श्रीकृष्णकी चेष्टाएँ इतनी मनोज्ञ हैं कि उनको देखकर मैं भी हर्ष–प्रकर्षका अनुभव करती हूँ॥७॥

श्रीजयदेव–भणितमतिसुन्दर–मोहन–मधुरिपु–रूपं।
हरि–चरण–स्मरणं संप्रति पुण्यवतामनुरूपं॥
रासे हरिमिह ... ... ॥८॥

अन्वय—अति–सुन्दर–मोहन–मधु–रिपु–रूपं (अतिशयेन सुन्दरं मोहनं मनोहरं मधुरिपोः श्रीकृष्णस्य रूपं यत्र तादृशं) श्रीजयदेव–भणितं (श्रीजयदेवोक्तं) सम्प्रति (अधुना) पुण्यवतां (सुकृतिशालिनां भगवद्भक्तानां साधूनां) हरि–चरण–स्मरणं प्रति अनुरूपं (योग्यं तादृशभावेन आस्वादनीयमिति भावः) [भवतु इति शेषः] [रासे विहितविलासमित्यादि]॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कविने सम्प्रति हरिचरण स्मृतिरूप इस काव्यको भगवद्–भक्तिमान पुण्यशाली पुरुषोंके लिए प्रस्तुत किया है, जिसमें श्रीकृष्णके अतिशय सुन्दर मोहन रूपका वर्णन हुआ है। इसका आस्वादन मुख्यरसके आश्रयमें रहकर ही किया जाना चाहिये।

बालबोधिनी—पञ्चम प्रबन्धका उपसंहार करते हुए श्रीजयदेव कविने कहा है कि इस प्रबन्धका प्रणयन प्रेमाभक्तियुक्त पुण्यवान पुरुषोंके द्वारा श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंका स्मरण करनेके लिए किया गया है। 'चरण' का अर्थ रासलीला आदिसे है, जो भक्तोंके लिए आज भी अनुकूल है। यह अतीव सुन्दर लीला है और वही श्रीकृष्णके श्रीचरणकमलोंके स्मरणका साधन है, जिसे श्रीराधा कभी भुला नहीं पाती।

इस अष्टपदी प्रबन्धमें लय छन्द है। जिसका लक्षण है—'**मुनिर्यगणैर्लयमामनन्ति**'।

इस पाँचवे प्रबन्धका नाम है '**मधुरिपुरत्नकण्ठिका**'।

गणयति गुणग्रामं भ्रामं भ्रमादपि नेहते
वहति च परितोषं दोषं विमुञ्चति दूरतः।
युवतिषु वलत्तृष्णे कृष्णे विहारिणि मां विना
पुनरपि मनो वामं कामं करोति करोमि किम्॥१॥

इति श्रीगीतगोविन्दे पञ्चमः सन्दर्भः।

अन्वय—[ननु श्रीकृष्णस्त्वां विहाय अन्याभिश्चेत् विहरति तर्हि तं किमिति स्मरसीति स्वाभिप्रायं वक्ष्यमाणं सखीं प्रत्याह]—सखि, युवतिषु (गोपाङ्गनासु) वलत्तृष्णे (वलन्ती प्रस्फुरन्ती तृष्णा रमणाकाङ्क्षा यस्य तादृशे) [अतएव मां बिना विहारिणि (मां विहाय अन्यया सह रममाणेऽपीति भावः) कृष्णे [मम] वामं (प्रतिकूलम् अवाध्यमिति यावत्) मनः पुनरपि कामं (अभिलाषं) करोति, गुणग्रामं (श्रीहरेः गुणसमूहं) गणयति (विचारयति); भ्रमादपि भ्रामं (विस्मरणं) न ईहते (चेष्टते; न कथमपि विस्मरतीत्यर्थः); परितोषं (तृप्तिं) [तत्स्मरणेन इति शेषः] वहति; [तथा] दोषं (अवज्ञाजनितमपराधं) दूरतः मुञ्चति (परिहरति, न गणयतीत्यर्थः); किं करोमि [नास्त्यन्या मे गतिरिति भावः]॥१॥

अनुवाद—"श्रीकृष्णने तुम्हें प्रत्याख्यान किया है, फिर भी तुम क्यों उनके प्रेममें व्याकुल हो रही हो"—प्रियसखिके द्वारा इस प्रकार भर्त्सना किये जानेपर श्रीराधा कहने लगी—सखि! श्रीकृष्ण मुझे परित्यागकर दूसरी-दूसरी युवतियोंके साथ अतिशय अनुरागके साथ विहार कर रहे हैं, यह देखकर उनके प्रति अनुराग दिखाना व्यर्थ है, यह मैं जानती हूँ, फिर भी मैं क्या करूँ, उनके प्रति मेरी प्रबल आसक्ति किसी तरह से दूर नहीं होती है, मैं तो उनके गुणोंकी गणना ही करती रहती हूँ, अपने उत्कर्षका अनुभवकर आनन्दमें उन्मत्त हो जाती हूँ, भ्रमसे भी मुझे उनके प्रति क्रोध नहीं होता, उनके दोषोंको देखे बिना ही सन्तोषका अनुभव करती

हूँ, उनकी बार–बार स्पृहा करती हूँ, सखि, वे मुझसे भुलाये नहीं जाते—मैं क्या करूँ?

पद्यानुवाद—

सपनोंमें सुधि बनकर आते।
सखि वे भुला भुला कर भाते॥
निरगुणियाके गुण ही मनमें 'गुन–गुन' स्वर भर जाते।
पर–रत होने पर भी मुझमें रति बनकर ढर जाते॥
सखि! वे भुला–भुला कर भाते।
सपनोंमें सुधि बन कर आते॥

बालबोधिनी—षष्ठ प्रबन्धके प्रारम्भमें अपनी रहःवार्त्ताकी ओर अधिक विवृति करते हुए श्रीराधाजी कहती हैं—सखि! अन्य गोपियोंके साथ विहार करनेवाले उन श्रीकृष्णके प्रति मेरे मनने दाक्षिण्य भावको धारण किया है, मेरे न चाहने पर भी यह उनकी गुणावलीका स्मरण करता रहता है, उनको प्राप्त करनेकी कामना करता है।

'भ्रामं भ्रमादपि नेहते'—यहाँ 'भ्राम' शब्द क्रोधका वाचक है। मेरा मन भूलसे भी उनके प्रति क्रोध करना नहीं चाहता। उनकी 'परनायिकासक्ति', 'मदुपेक्षाकारिता' आदि दोषोंको देखना नहीं चाहता, पूर्णरूपेण सन्तुष्ट ही रहता है, मैं क्या करूँ?

इस श्लोकमें श्रीराधा उत्कण्ठिता नायिकाके रूपमें प्रस्तुत है। उत्कण्ठिताका लक्षण है—

उत्का भवति सा यस्या वासके नागतः प्रियः।
तस्यानागमने हेतुं चिन्तयन्त्याकुला यथा॥

अर्थात् जिस नायिकाकी शय्यापर नायक नहीं आता है, वह अपने प्रियतमके नहीं आनेके कारणके विषयमें व्याकुल होकर सोचती रहती है—इसलिए उसे उत्कण्ठिता कहा जाता है।

इस श्लोकमें हरिणी नामक छन्द, यमक नामक

शब्दालङ्कार, संशय एवं दीपक नामक अर्थालङ्कार एवं क्रियौचित्य है। प्रस्तुत श्लोक षष्ठ प्रबन्धकी पुष्पिका मात्र है॥१॥

इति श्रीगीतगोविन्दे पञ्चमः सन्दर्भः।

गीतम् ॥६॥

मालव गौड़ रागेण एक ताली तालेन च गीयते

निभृत–निकुञ्ज–गृहं गतया निशि रहसि निलीय वसन्तं
चकित–विलोकित–सकल–दिशा रति–रभस–भरेन हसन्तं॥१॥
सखि हे केशि–मथनमुदारम्।
रमय मया सह मदन–मनोरथ–भावितया सविकारम्॥ध्रुवम्॥

अन्वय—सखि, निभृत-निकुञ्ज-गृहं गतया (निर्ज्जननिकुञ्ज-गृहं प्रस्थितया) [मया सह] निशि (रात्रौ) [तदलाभात् मम वैकल्यादि-दिदृक्षया] रहसि (एकान्ते) निलीय (आत्मानं संगोप्य) वसन्तं (तिष्ठन्तं) [केशिमथनम्.....]; [तथा] चकित-विलोकित-सकलदिशा (चकितं कृष्णं कुत्र निलीयते इति इति सशङ्कं यथा तथा विलोकिता दृष्टा सकला दिक् यया तादृश्या) [मया सह] रति-रभस-भरेण (रतौ यः रभसः औत्सुक्यं तस्य भरेण आतिशय्येन) हसन्तं (मद्वैकल्यं समीक्ष्येतिशेषः) [केशिमथनम् ....]; [तथाच] मदन-मनोरथ-भावितया (मदनेन प्रेम्णा यः मनोरथः अभिलाषः तेन भावितया युक्तया) [मया सह] सविकारम् (कामवशेन भावान्तरगतम्) उदारः (महान्तं मनोरथदातारमित्यर्थः) केशिमथनं रमय (रतिं कारय)॥१॥

अनुवाद—मालव राग तथा एकताली तालके द्वारा यह गीत गाया जाता है, इसकी गति द्रुत है।

हे सखि! वह केशिमथन श्रीकृष्ण, जो मदन-सन्तापका शान्तिविधान करनेमें कभी अनुदार नहीं होते और जिनका

मन मेरे प्रति अतिशय अनुरागके कारण विमोहित हुआ है, उनके साथ मेरा अनङ्ग विषयक मनोरथ कैसे सिद्ध होगा? इसी भावनासे मैं व्याकुल हो रही हूँ।

अब तुम उनके साथ मेरा मिलन सम्पादन करा दो। जो विहित पूर्व सङ्केतानुसार निशीथमें निभृत निकुञ्ज-गृहमें आकर, मैं उनके लिए कैसी उत्कण्ठिता हूँ अथवा उनके अदर्शनसे मुझमें कितनी तड़प है, इस कौतुक भावके साथ निकुञ्जवनके गोपनतम स्थानमें छिपकर देखनेवाले, वे कब आयेंगे? ऐसी चिन्तामें निमग्ना जब थकित चकित नेत्रोंसे देखती थी, तब मेरी कातरताको देखकर शृङ्गार रसभरी हास्यसुधासे मुझको आनन्दित करनेवाले उदार तथा केशी नामक दैत्यका वध करनेवाले श्रीकृष्णका मुझ—कामकेलिकी इच्छासे परिपूर्ण अन्तःकरणवाली तथा रतिचेष्टाएँ करनेवालीके साथ अनङ्ग सम्बन्धीय मनोरथ सिद्ध कराओ॥१॥

पद्यानुवाद—

निशि अन्धियारी ऋतु वसन्त सखि! घन निकुञ्ज वन नन्दन री।
खोज रहे कबसे दिशि दिशिमें, थकित चकित दृग् खंजन री।
ले चल वहीं थमे जिससे यह शाश्वत जी का क्रन्दन री।
रति-रस-भीने जहाँ विहँसते छिपे खड़े नन्दनन्दन री॥

बालबोधिनी—काम ज्वरसे सन्तप्ता हृदया श्रीराधा सखीसे कृष्णानुसन्धानकी अभिलाषा व्यक्त करती हैं। प्रस्तुत श्लोकमें उस प्रसङ्गका प्रकाश है, जिसमें उन्होंने अपने प्राणनाथको रतिक्रीड़ाके द्वारा सुख प्रदान किया था, यह गाढ़तम रहस्यपूर्ण लीला है।

'सखि! रमय केशिमथनमुदारम् मया सह'—हे सखि! केशिनिसूदनके साथ मेरा रमण कराओ। यहाँ तो श्रीराधाजीकी स्वाभिलाषा व्यक्त हुई है, अपने सुखकी वासना प्रकट हुई है, यह शुद्धभक्तिकी परिभाषाके विपरीत है। अतः ऐसी अभिलाषा क्यों?

इसके उत्तरमें कहते हैं कि गोपियोंने सबकुछ त्यागकर श्रीकृष्णसे प्रीति की है, उनमें अपने सुखका लेशमात्र भी नहीं है। पुनः जबतक परस्पर गाढ़ अनुराग न हो तबतक प्रेम परिस्फुट नहीं होता। प्रेमीके हृदयमें प्रेमकी वासना जाग्रत कराने हेतु प्रेयसीको स्वानुराग प्रदर्शित करना होता है, यह प्रेमका स्वभाव है।

एकदेशीय प्रेममें रसाभास दोष आ जाता है। कहा गया है—

अनुरागोऽनुरक्तायां रसावह इति स्थितिः।
अभावेत्वनुरागस्य रसाभासं जगुर्वुधाः॥

अर्थात् प्रीति जब अनुरक्ता स्त्रीमें होती है, तब वह रसवर्द्धनकारी होती है, परन्तु अनुरागके अभावमें तो रसाभास ही हो जाता है, ऐसा विद्वानोंका मत है।

अतः यहाँ श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति अनुराग रस-वर्द्धनकारी है।

सखि! कृष्णने सर्वप्रथम मेरे साथ रमणकर रतिसुखका अनुभव किया था, उनके विरहमें वही क्रीड़ा-सुख मुझे बार-बार स्मरण हो रहा है, जिससे मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। सम्प्रति मेरा हृदय 'मादनाख्य' मदन रसमें विभावित हो रहा है। मनोरथके प्रदाता केशीमथनका विरह मुझे असहनीय हो रहा है। सखि! उनसे मेरा रमण कराओ।

इस प्रकार कविने श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति और श्रीकृष्णका श्रीराधाके प्रति अनुराग प्रदर्शित किया है। यदि मिलन प्रसङ्ग पहले दिखाया होता तो रसाभास दोष हो जाता।

'सविकारम्' पदके द्वारा श्रीराधा कह रही हैं—मुझमें काम विकार उत्पन्न हो गये हैं। कामजनित विकार मनमें उत्पन्न होनेपर नारियाँ व्याजान्तरसे अर्थात् बहाना बनाकर अपने प्रियतमको नाभि, स्तन आदि दिखाती हैं।

रसिक सर्वस्व नामक व्याख्यामें कहा गया है कि—

नाभिमूलकुचोदरप्रकटनव्याजेन यद्योषितां
साकांक्षं मुहुरीक्षणं स्खलितता नीवीनिबन्धस्य च।
केशभ्रंसन संयमौ चकमितुर्मित्रादि सन्दर्शनैः
सौभाग्यादि गुण प्रशस्ति कथनैः तत्सानुरागेङ्गिकतम्॥

अर्थात् कामविकार उत्पन्न होनेपर स्त्रियाँ अनुरागपूर्ण चेष्टाएँ करती हैं। जैसे किसी माध्यमसे अपनी नाभि, स्तन तथा उदर दिखलाती हैं, अपने प्रेमीको सस्पृह दृष्टिसे बारम्बार देखती हैं, नीवी–बन्धन स्खलित हो जाता है, केशोंका भ्रंशन और संयमन होता है, प्रियतमके मित्रोंको सम्यक् प्रकारसे देखती हैं, उनके साथ अपने इष्टके सौभाग्य तथा गुणोंकी प्रशंसा करती हैं। इस प्रकारकी रतिपूर्ण चेष्टा करनेवाली मेरे साथ श्रीकृष्णको मिला दो।

'मदन मनोरथ भावितया'—मेरा अन्तःकरण कामजनित कामनाओंसे परिपूर्ण हो गया है।

चेष्टा भवति पून्नार्यो रत्युत्थानातिसक्तयोः।
सम्भोगो विप्रलम्भश्च स शृङ्गारो द्विधामतः॥

अर्थात् जहाँपर रतिकी उद्दीपन क्रियामें अत्यासक्त स्त्री तथा पुरुष शृङ्गारिक चेष्टाएँ किया करते हैं, वहाँ पर शृङ्गार दो प्रकारका होता है—सम्भोग तथा विप्रलम्भ। मुझ विरहिणीकी जैसी अभिलाषा श्रीकृष्णमें है, वैसी ही अभिलाषा वे मुझमें रखते हैं, सखि! मुझे उनसे मिला दो। यहाँपर शृङ्गार रसकी सम्पूर्त्ति हुई है।

श्रीराधाजी कह रही हैं—जब मैं निशीथ रात्रिमें निभृत निकुञ्जके अभिसार स्थानमें पहुँची, तब उस लतागृहमें श्रीश्यामसुन्दरको न देखकर बड़ी विकलतासे चतुर्दिग् देखने लगी, उस समय सघन–कुञ्जमें छिपकर निवास करनेवाले श्रीकृष्ण मेरी उत्कण्ठाको देखने लगे।

जब मैं चकित नेत्रोंसे उनका अनुसन्धान करने लगी,

तब वे रतिके उत्साहसे युक्त होकर समस्त दिशाओंको उल्लसितकर हँसते-हँसते मेरे सामने प्रकट हो गये। सखी री, उन्हीं कृष्णसे मुझे मिला दो॥१॥

प्रथम समागम लज्जितया पटु-चाटु-शतैरनुकूलम्।
मृदु-मधुर-स्मित-भाषितया शिथिलीकृत-जघन-दुकूलम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥२॥

अन्वय—प्रथम-समागम-लज्जितया (प्रथमः आद्यः यः समागमः सङ्गमः तेन लज्जितया जातलज्जया) [मया सह] पटुचाटुशतैः (पटूनि नारी-मनोहरण-निपुणानि-निपुणानि यानि चाटूनां प्रियवादनां शतानि तैः) अनुकूलं (अनुकूलयन्तं कृतापराधं मां क्षमस्वेति असकृत् कथयन्तं) [केशिमथनम्..], [तथा] मृदु-मधुर-स्मित-भाषितया (मृदु मधुरं यत् स्मितम् ईषद्धासः तेन सह भाषितं भाषणं यस्याः तथाभूतया) [मया सह] शिथिलीकृत-जघन-दुकूलं (शिथलीकृतं प्रभ्रंशितं जघनस्थं दुकूलं वसनं येन तादृशं) [केशिमथनम्.....]॥२॥

अनुवाद—प्रथम मिलनमें स्वभावसुलभ लज्जासे अत्यन्त विमुग्ध देखकर मेरी लज्जाको दूर करनेके लिए उन्होंने अनेक प्रकारकी अनुनय-विनयरूप वचन परम्पराका प्रयोग किया। उनकी चाटुकारितापूर्ण बातोंसे विमुग्ध होकर मैं कोमल तथा मधुर मुस्कानके साथ उनसे वार्तालाप करने लगी, उस समय मेरे जघन-प्रदेशके वस्त्रको हटानेवाले विदग्ध श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो॥१॥

पद्यानुवाद—

प्रथम मिलनकी बेला आयी, चढ़ु ब्रीड़ाके स्यन्दन री।
किन्तु मधुर बोलोंसे उनके, बनी स्वयं रस-रञ्जन री॥

बालबोधिनी—श्रीराधा सखीसे कहती हैं—यद्यपि प्रियतम श्रीकृष्णसे यह मेरा प्रथम मिलन नहीं था, फिर भी मैं उनके समक्ष ऐसी चेष्टा कर रही थी, जिस प्रकार कोई नायिका

प्रथम समागमके कालमें अपने प्रियतमके समीप बहुत लज्जित होती है। श्रीकृष्ण उसी समय अपने चाटुवाक्योंसे मुझे अपने मनोनुकूल बनाते जाते थे। मैं उनके उन मधुर वचनोंसे आह्लादित होती थी और मधुर मुस्कानके साथ उनसे मृदु भाषण करती थी। जैसे ही वे मुझे मनोनुकूल देखते थे—तभी मेरी जंघाके वस्त्रोंको उन्मोचित कर देते थे। मैं उन्हीं श्रीकृष्णके साथ रमण करना चाहती हूँ—सखी! मुझे उनसे मिलाओ।

प्रथम समागम—यह रति-रस नवनवायमान रूपमें ही नित्य अनुभूत होता है॥३॥

किशलय-शयन-निवेशितया चिरमुरसि ममैव शयानम्।
कृत-परिरम्भण-चुम्बनया परिरभ्य कृताधरपानम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥३॥

अन्वय—किशलय-शयन-निवेशितया पल्लव-शय्याशायितया) [मया सह] चिरं (बहुक्षणं) ममैव उरसि (वक्षसि) शयानं [केशिमथनम्.....] [तथा] कृत-परिरम्भण-चुम्बनया (कृतं परिरम्भणं चुम्बनञ्च यया) [मया सह] पररिभ्य [आलिङ्ग्य] कृताधरपानं (कृताधरचुम्बनं) [केशिमथनम्.....]॥३॥

अनुवाद—मनोरम, नवीन एवं कोमल पल्लवोंकी शय्यापर जिन्होंने मुझे सुलाकर मेरे हृदयके ऊपर बड़े उल्लसित होकर सुखसे शयन किया था, जिनका मैंने प्रगाढ़रूपसे आलिङ्गन एवं चुम्बन किया था, पुनः जिन्होंने उसी प्रबलतर अनङ्ग रसमें निमज्जित होते हुए मेरा परिरम्भण कर मेरे अधरसुधाका बारम्बार पान किया था, सखि! उन्हीं प्राणप्रियतम श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो॥३॥

पद्यानुवाद—

भूली वदन वसनकी सुधि सब, भूली पूजा-वन्दन री।
मेरी शय्या किशलय उनकी, मेरे उरका स्पन्दन री॥

भूली किन अधरोंने किनका, लिया मधुर कब चुम्बन री।
किन घड़ियोंमें हुआ हमारा, युग-युगका परिरम्भण री॥

बालबोधिनी—सखि! वे श्रीकृष्ण सङ्केत-स्थानमें मुझे कोमल पल्लवोंसे रचित शय्यापर सुला देते थे, इसके पश्चात् वे मेरे वक्षःस्थलपर चिरकालतक रमण करते थे। मैं उन श्रीकृष्णका आलिङ्गन कर उनका चुम्बन कर लेती थी। उस समय श्रीकृष्ण भी मुझे आलिङ्गन करके मेरे अधरसुधाका पान करते थे। सखी मुझे उन श्रीकृष्णसे मिलन करा दो।

कृत परिरम्भण—इस प्रकारके आलिङ्गनको रसमञ्जरीकारने क्षीरनीर नामक आलिङ्गन बताया है और कथनकी पुष्टिके लिए पञ्चसायक नामक ग्रन्थका प्रमाण दिया है। रसिकप्रियाकारने इस प्रकारके आलिङ्गनको तिल-तण्डुल नामक आलिङ्गन माना है और अपने कोकशास्त्रका प्रमाण दिया है॥३॥

अलस-निमीलित-लोचनया पुलकावलि-ललित-कपोलम्
श्रमजल-सकल-कलेवरया वरमदन-मदादतिलोलम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥४॥

अन्वय—अलस-निमीलित-लोचना (अलसेन सुरतश्रमजातेन आलस्येन निमीलिते मुकुलिते विलोचने यस्याः तादृश्या) [मया सह] पुलकावलि-ललित-कपोलं (पुलकानां रोमाञ्चानाम् आवल्या श्रेण्या चुम्बनादिति भावः ललितौ कपोलौ गण्डौ यस्य तादृशं) [केशिमथनम्.....] [तथा] श्रमजल-सकल-कलेवरया (श्रमजलं स्वेदाम्बु सकलकलेवरे यस्याः तादृश्या) [मया सह] वर-मदनमदात् (प्रवृद्ध-मनसिज-विकारात् हेतोः) अतिलोलं (मां प्रति नितरां साकाङ्क्षं) [केशिमथनम्.....]॥४॥

अनुवाद—जिनके साथ मदन-आमोदमें अप्रत्याशित सुखसे मेरी आँखें अलसा गयीं, मुँद गयीं, उस विलास सुखसे श्रीकृष्णके कपोलयुगलने अत्यन्त मनोज्ञ तथा ललित रूप

धारण किया था, मदन-आमोदजनित श्रमके कारण निःसृत स्वेदविन्दुओंसे मनोहर देहवाली मुझे देखकर उस प्रबलतर मदन रसमें मत्त होकर अनङ्ग रसका रसास्वादन करनेवाले अति चञ्चल श्रीकृष्णसे हे सखि! मुझे अति शीघ्र मिला दो॥४॥

पद्यानुवाद—

मेरे मिलित लोचन उनका, पुलक ललित वपु-कम्पन री।
श्रम-सीकरसे सिञ्चित तन यह, उनमें रतिका गुञ्जन री॥

बालबोधिनी—सखि! रतिसुखसे क्लान्त हुआ मेरा शरीर अलसा जाता था और मेरी आँखें मुँद जाती थीं। कामजनित चिन्ताके कारण सारा शरीर स्वेद-विन्दुओंसे सिक्त हो जाता था। उस समय मेरी यह दशा देखकर श्रीकृष्णके हृदयमें कामोद्रेक जनित हर्ष उदित होता था, जिससे उनके कपोलयुगलमें सुमनोहर लावण्य प्रकाशित होने लगता था। वे प्रबलतर मदन आमोदमें निमग्न हो जाते थे। मेरी देहलताको देखकर वे चञ्चल हो उठते थे, हे सखि! उन्हीं श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो।

सुरतानन्दसे श्रीराधाके शरीरकी पसीनेसे लथपथता श्रीराधाके पूर्वानुभूत सुखानन्दकी सम्पूर्त्ति व्यक्त कर रही है॥४॥

कोकिल-कलरव-कूजितया जित-मनसिज-तन्त्र-विचारम्।
श्लथ-कुसुमाकुल-कुन्तलया नखलिखित-घन-स्तनभारं—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ... ॥५॥

अन्वय—कोकिल-कलरव-कूजितया (कोकिलस्य कलरव इव कूजितं अव्यक्त-भाषितं यस्याः तया) [मया सह] जित-मनसिज-तन्त्र-विचारं (जितः अभिभूतः मनसिज-तन्त्रस्य कामशास्त्रस्य विचारः येन तं कामशास्त्रविशारदमित्यर्थः; अतएव शास्त्रोक्त-क्रियातिक्रमो नाशङ्कनीयः) [केशिमथनम्.....] [तथा] श्लथ-कुसुमाकुलकुन्तलया (श्लथानि सुरतलीला स्खलितानि

कुसुमानि येभ्यस्तादृशाः, आकुलाः बन्धनराहित्यात् विक्षिप्ताः कुन्तलाः यस्यास्तादृश्या) [मया सह] नख-लिखित-घन-स्तन-भारं (नखैः लिखितौ अङ्कितौ घनयोः पीवरयोः स्तनयोः भारौ विस्तारौ येन तम्) [केशिमथनम्.....]॥५॥

अनुवाद—रतिशास्त्रके निगूढ़ तत्त्वको सम्यक् रूपसे जाननेवाले तथा उसका अनुष्ठान करनेवाले जिन श्रीकृष्णके साथ सुरतकालमें मैं कोकिलके कलरवके समान कुहक उठी, मेरा कबरी-बन्धन खुल गया और उसमें संयुक्त कुसुमावली शिथिल होकर गिर गयी, उन्होंने अपने नखोंके आघातसे मेरे पीन स्तनयुगल पर न जाने क्या-क्या लिख दिये, हे सखि! उन प्रियतम श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो॥५॥

पद्यानुवाद—

नख-क्षत उर यह नव कुसुमोंका, बिखरा कबरी-बन्धन री॥५॥

बालबोधिनी—श्रीराधा अपनी सखीसे श्रीकृष्णके साथ अनुभूत वाम्य रतिका वर्णन कर रही है। सुरतकालके समय मैं कोयलके समान शब्द करती थी।

'कलरव' शब्दः पारावत पर्य्यायः। रसिक सर्वस्वकारने कहा है "रतिकाल" के समय नायकके द्वारा चुम्बन इत्यादि किये जानेके समय नायिका कोयल, पारावत आदिके समान सीत्कारकी आवाज करती है।

श्रीकृष्ण मेरे केशोंको पकड़कर मेरा चुम्बन करते थे तथा मेरे अधरोंका पान करते थे। रतिक्रीड़ामें प्रवृत्त होकर वे मेरे पीन तथा सघन स्तनों पर नखक्षत करते थे—सखी, मुझे उनसे मिला दो॥५॥

चरण-रणित-मणि-नूपुरया परिपूरितं सुरत-वितानम्।
मुखर-विशृंखल मेखलया सकच-ग्रह-चुम्बनदानम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥६॥

अन्वय—चरण–रणित–मणि–नूपुरया (चरणयोः पादयोः रणितौ शब्दितौ मणिनुपूरौ मणिमय–मञ्जीरौ यस्याः तादृश्या) [मया सह] परिपूरित–सुरत–वितानं (परिपूरितः सम्पूर्णतां प्रापितः सुरतवितानः परि–रम्भण–विस्तारः येन तादृशं) [केशिमथनम्....] [तथा] मुखर–विशृंखलामेखलया (पूर्वं मुखराः शब्दायमानाः पश्चाच्च विशृंखला त्रुटितगुणा मेखला काञ्ची यस्याः तादृश्या) [मया सह] सकच–ग्रह–चुम्बन–दानं (सकचग्रहंकेशग्रहणपूर्वकं यथा तथा चुम्बनदानं येन तथोक्तं) [केशिमथनम्....]॥६॥

अनुवाद—केलिक्रीड़ा कालमें मेरे चरणोंके मणिखचित नूपुरोंकी रुन्‌झुन्‌ ध्वनि गूँज उठती थी, करघनी मुखरित होकर क्रमानुसार विशृंखलित हो गयी थी। उस सुरतक्रीड़ाका परिपूर्ण विस्तार करनेवाले, मेरे केशपाशको ग्रहणकर मुखमण्डल पर बारम्बार चुम्बन करनेवाले श्रीकृष्णसे मुझे मिला दो।

पद्यानुवाद—

मेरी ये पायल बज उठती रह रहकर मृदु झन–झन री॥६॥

बालबोधिनी—सखि! जिस समय श्रीकृष्ण सुचारु रूपसे सुरतक्रीड़ाका सम्पादन करते थे, उस समय मेरे पैरोंके मणिपूरित नूपुर झंकृत हो उठते थे। पहले तो मेरी कटि–करघनी बजने लगती थी, किन्तु बादमें वह टूट जानेके कारण निःशब्द हो जाती थी। मेरे केशोंको पकड़कर वे मेरा चुम्बन करते थे, हे सखि! मुझे उन्हीं श्रीकृष्णसे मिला दो॥६॥

रति–सुख–समय–रसालसया दरमुकुलित–नयन–सरोजम्।
निःसह–निपतित–तनुलतया मधुसूदनमुदितमनोजम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥७॥

अन्वय—रतिसुख–समय–रसालसया (रत्या यत्‌ सुखं तस्य यः समयः कालः तत्र यः रसः चेतसो द्रवीभावः तेन

अलसया निश्चेष्टया) [मया सह] दरमुकुलित-नयन-सरोजम् (दरमुकुलिते ईषन्मुद्रिते नयनसरोजे लोचनपङ्कजे यस्य तादृशं) [केशिमथनम्...] [तथा] निःसह-निपतित तनुलतया [निःसहं शिथिलम् अपाटवं यथा तथा निपतिता तनुलता यस्याः तादृश्या [मया सह] उदित-मनोजं (उदितः आविर्भूतः मनोजः कामो मयि अभिलाष इति यावत् यस्य तादृशं) मधुसूदनं [केशिमथनम्....]॥ [अत्र मधुसूदनमिति श्लिष्टम्; अनेन भृङ्गो यथा अन्यकुसुमावलीनां मधु क्रमेणास्वादयन् कमलिन्या उत्कर्षमनुभूय तस्यामेवासक्तो भवति तद्वदयमपीति स्वमससो वैदग्ध्यमेव बोधितम्; अतएव उदितमनोजम् इतिविशेषणं सर्वथा सङ्गच्छते॥७॥

अनुवाद—उनके साथ रति-विलास करती हुई अतिशय अनङ्गसुखके अनुभवसे अलसा गयी थी, मेरा अङ्ग-अङ्ग अवसन्न हो गया था, मेरी देहलता रतिश्रमके कारण सामर्थ्यरहित होकर एकान्तमें निर्जीव होकर निढाल हो गयी, उस समय जिन श्रीकृष्णके नयनकमल अनङ्ग-रससे सिक्त

---

७ नं. श्लोकका तात्पर्य—

अलसाका अर्थ है मन्थरा। रतिसुख समये द्वयोरेककालं रेतःकण क्षरण समये यो रसः तदेकाग्री भावस्तेन अलसा मन्थरा।

दर मुकुलिते अर्थात् ईषत् निमीलिते।

निःसहा—असमर्थः। उदित मनोजम् अर्थात् अभ्युदित कामम्। निपतित तनुलता अर्थात् विपरीत रति। असमर्था—च्युति कालोत्तरावस्था इत्यर्थ।

भरत मुनिने कहा है—

अङ्गे स्वेदः श्लथत्वं च केशवस्त्रादि संवृत्ति।
जाते च्युति सुखे नार्या विरामेच्छा च गम्यते॥

होकर ईषत् खुले हुए थे और जिनके मनमें विषमतर मदनविकार निरन्तर विहार कर रहा था, सखि री! उन प्रियतम श्रीकृष्णसे मेरा मिलन करा दो॥७॥

पद्यानुवाद—

मुरझाई मैं इधर, उधर वे मुकुलित केशि-निकन्दन री॥७॥

बालबोधिनी—श्रीराधा रतिसुखके अनुभवमें डूबकर अलसा गयी तथा श्रीकृष्णने अपने नेत्रकमलोंको सामान्य रूपसे बन्द कर लिये हैं। भ्रमर जैसे एक-एक कर सभी पुष्पोंपर बैठकर मधुपान करता है, परन्तु कमलिनीका उत्कर्ष देखकर उसमें अतिशय आसक्त रहता है तथा प्रमत्त होकर मधुपान करते हुए उसीमें ही विश्राम करता है, वैसे मधुसूदन पुष्पोंके जैसे समस्त गोपियोंका मधुपान करने पर भी सबको छोड़कर राधा-कमलिनीमें अतिशय आसक्त हैं तथा वहीं उनका विश्राम स्थल है। उसीमें ही समस्त प्रकारके रतिसुखका आनन्द अनुभव करते हैं।

इस प्रकार श्रीराधाके मनमें श्रीकृष्णकी विदग्धताका अनुभव होनेपर वह भी अनुरागिणी हो गयी।

आज श्रीराधाके मनमें श्रीहरिके साथ लीलाविनोद करते हुए पूर्व अनुभूत विषय स्मरण होनेसे व्याकुल होकर सखीसे कहने लगी—सखि! उन श्रीकृष्णसे मिला दो॥७॥

श्रीजयदेव-भणितमिदमतिशय-मधुरिपु-निधुवन-शीलम्।
सुखमुत्कण्ठित-गोपवधू-कथितं वितनोतु सलीलम्—
सखि हे केशीमथनमुदारम् ... ...॥८॥

अन्वय—इदम् उत्कण्ठित-गोप-वधू-कथितं (उत्कण्ठितायाः कृष्णप्राप्तौ उत्सुकाया गोपवध्वा राधिकायाः कथितं यत्र तत्) सलीलम् (सविलासम्) अतिशय-मधुरिपुनिधुवन-शीलं (अतिशयेन मधुरिपोः कृष्णस्य निधुवनं सुरतं शीलयति स्मारयतीति तत्)

श्रीजयदेवभणितम् (श्रीजयदेवोक्तिः) [भक्तानां] सुखं वितनोतु (विस्तारयतु) सखिहे.... ॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कविद्वारा विरचित विरह-विधुरा उत्कण्ठिता नायिकाद्वारा वर्णित श्रीकृष्णके प्रगाढ़तर शृङ्गार विषयक सुरत-वृत्तान्त पढ़ने और सुननेवाले भागवत-जनोंका कल्याण वर्द्धन करें॥८॥

पद्यानुवाद—

राधा वर्णित मधुक्रीड़ाका, करता 'कवि' अभिनन्दन री॥८॥

बालबोधिनी—इस गीतका उपसंहार करते हुए श्रीजयदेव कवि कहते हैं कि यह गीत मैंने प्रतिपादित किया, परन्तु इस गीतमें वर्णित समस्त प्रसङ्गका वर्णन श्रीराधाजीने अपनी सखीके समक्ष प्रस्तुत किया है। इस गीतका वर्णन करनेवाली श्रीराधा उत्कण्ठिता नायिका हैं और गीतमें विदग्ध श्रीकृष्णकी कामक्रीड़ा-विषयक चरित्रोंका विस्तारके साथ वर्णन हुआ है।

भ्रमर जैसे एक-एक करके फूलोंपर बैठकर मधुपान करता है, परन्तु कमलिनीका उत्कर्ष देखकर उसीमें आसक्त हो जाता है और प्रसन्न होकर मधुपान करते हुए उसीमें विश्राम करता रहता है, उसी प्रकार श्रीमधुसूदन भी पुष्पवत् समस्त गोपियोंका त्याग कर मेरा उत्कर्ष जानकर मेरे प्रति अत्यासक्त रूपसे अनुरागी हुए हैं। मैं भी कृष्णकी रति-विदग्धताका अनुभवकर उनकी अनुरागिणी हो गयी हूँ।

श्रीराधाके मनमें पूर्व अनुभूत लीलाओंका स्मरण होनेपर अतिशय अधीर होकर उन्होंने श्रीश्यामसुन्दरसे मिलनेके लिए अपनी सखीको अपनी हृदयकी बात सुनायी।

श्रीजयदेव कवि वर्णित परम उत्कण्ठिता निधुवन-नागरी श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति अनुराग तथा सुरत-क्रीड़ाका यह वर्णन सबका मङ्गल विधान करे।

इस सम्पूर्ण गीतमें विप्रलम्भ शृङ्गार-रस है तथा लय छन्द है॥८॥

हस्त–स्त्रस्त–विलास–वंशमनृजु–भ्रूवल्लिमद्वल्लवी–
वृन्दोत्सारि–दृगन्त–वीक्षितमति स्वेदार्द्र–गण्डस्थलम्।
मामुद्वीक्ष्य विलज्जित–स्मित–सुधा–मुग्धाननं कानने
गोविन्दं व्रजसुन्दरीगण–वृतं पश्यामि हृष्यामि च॥१॥

अन्वय—[सख्या आनीता श्रीराधा गोपयुवती–परिवृतं कृष्णम–वलोक्याह]—सखि, कानने (वने) व्रजसुन्दरीगणवृतम् (व्रजयुवती–गणवेष्टितम्) अनृजुभ्रूवल्लिमद्वल्लवी–वृन्दोत्सारि–दृगन्त–वीक्षितं (अनृजवः कुटिलाः भ्रुवल्लयः भ्रूलताः यासां तादृशीनां वल्लवीनां गोपाङ्गनानां वृन्दैः समूहैः उत्सारी भङ्ग्या उत्क्षिप्तः दृशाम् अन्तो यस्मिन् तत् सकटाक्षमित्यर्थः वीक्षितं दृष्टं), [अतएव] माम् उद्वीक्ष्य विलज्जितस्मित–सुधामुग्धाननं (विलज्जितया सविशेष– लज्जा–मिश्रितया स्मितसुधया सुधावन्मधुरस्मितेन मुग्धं मोहकरम् आननं वदनं यस्य तम्) अतिस्वेदार्द्रगण्डस्थलम् (अतिस्वेदेन मयि अत्यावेशेनेति शेषः, आर्द्रं सिक्तं गण्डस्थलं यस्य तादृशं), [तथा] हस्तस्त्रस्तविलासवंशम् (हस्त्याभ्यां स्त्रस्तः स्खलितः विलासवंशः मोहन–वेणुर्यस्य तं) गोविन्दं पश्यामि हृष्यामि (आनन्दमनुभवामि) च॥१॥

अनुवाद—हे सखि! कुटिलतर भ्रुलतामयी गोपवल्लभियोंके साथ लीला विलास करते हुए उनके किसी मनोरम अङ्ग पर दृष्टि निक्षिप्त किये हुए, नेत्रोंके सङ्केतसे उन्हें दूर हटानेवाले, ब्रजसुन्दरियोंके समूहसे आवृत श्रीकृष्ण मुझे देखते ही विस्मयाविष्ट हो गये। उस समय मदनावेशके कारण उनके ललित हाथोंसे वंशी गिर पड़ी, गण्डस्थल पसीनेसे भीग गया। हर्षोल्लाससे उनका मुखकमल मन्द–मुस्कान सी मकरन्द सुधासे परिपूर्ण हो गया। उनकी ऐसी स्थिति देखकर मुझे एक अनिर्वचनीय आनन्द हो रहा है।

पद्यानुवाद—

ले चल उन कुञ्जोंमें जिनमें, ब्रजबालायें घेरे–
रहती हैं श्रीहरिको आतुर, पर दिखते ही मेरे–
हाथोंसे उनके गिर पड़ती, बंशी सहज सबेरे[१]।
दूर कटाक्षोंसे कर देते, गोपीजनके भेरे[२]॥

बालबोधिनी—विरहमें तीन प्रकारका अनुभव होता है—स्मरण, स्फूर्त्ति और आविर्भाव। श्रीराधाका कृष्ण-विरहमें पहले स्मरण हुआ, सुदीप्त महाभावमें उनके हृदयमें लीलाएँ स्वतःस्फूर्त्त हुई और अब उन्हें साक्षात् अनुभव हो रहा है। वे सखीसे कहती हैं—देख सखि! मैं इस व्रजकाननमें ब्रजसुन्दरियोंके साथ विराजमान श्रीगोविन्दको देखकर हँस रही हूँ और आनन्दित हो रही हूँ।

सखिने प्रश्न किया—अरी मुग्धे! जब श्रीकृष्ण तुम्हें छोड़कर दूसरी गोपललनाओंके साथ विहार कर रहे हैं, तब तुम्हें आनन्द क्यों हो रहा है? श्रीराधा कहती हैं—जब ऐसी स्थितिमें वे मुझे देखेंगे तो बहुत अधिक लज्जित हो जायेंगे, लज्जाके मारे वे पसीने-पसीने हो जायेंगे, उनके कपोल भी पसीनेसे भीग जायेंगे। मेरे सात्त्विक भावोंको देखकर उनके अङ्गोंमें भी सात्त्विक भाव उदित हो जायेंगे। लज्जाके कारण उनके हाथोंसे बंशी स्खलित हो पड़ेगी। उस समय वे अपने भ्रु-भङ्गियोंसे—इशारेसे उन मनोहर भ्रुलताओंसे युक्त व्रजवल्लभियोंको अपने पाससे हटा देंगे। उस समय उनका मुख-मण्डल मन्द-मुस्कानसे अतीव मनोहर होगा। इस प्रकार प्रियतमको देखकर परमानन्दित होऊँगी। सखि! ऐसे प्रियतम श्रीकृष्णसे कब मिलूँगी?

इस श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा दीपकालङ्कार, विप्रलम्भ-शृङ्गार-रस, पञ्चाली रीति, लारानुप्रासालङ्कार तथा दक्षिण नायक है॥१॥

---

१ सबेरे = शीघ्र; २ भेरे = समूह

दुरालोकः स्तोक–स्तवक–नवकाशोक–लतिका–
विकाशः कासारोपवन–पवनोऽपि व्यथयति।
अपि भ्राम्यद्भृङ्गी रणित–रमणीया न मुकुल–
प्रसूतिश्चूतानां सखि शिखरिणीयं सुखयति॥२॥

अन्वय—[इदानीं विरहव्याकुलतां दर्शयति]—सखि, [अधुना] स्तोकस्तवक–नवकाशोक–लतिका–विकाशः (स्तोकस्तवका अल्पगुच्छा या नवका नवपुष्पिता अशोकलतिका तस्याः विकाशः) दुरालोकः (उद्दीपकत्वात् नितरां दुर्दृशः); [तथा] कासारोपवन–पवनोऽपि (कासारः सरोवरः तेन सम्पृक्तं यत् उपवनं तस्य पवनोऽपि [एतेन वायोः शैत्यसौगन्ध्यमान्द्यगुणो ध्वनितः] व्यथयति (सन्तापयति); [तथा] भ्राम्यद्भृङ्गी–रणित–रमणीया (भ्राम्यन्तीनां भृङ्गीणां रणितैः गुञ्जितैः रमणीया मनोहारिणी) शिखरिणी (प्रशस्ताङ्कुरसमन्विता) इयं चूतानां (आम्राणां) मुकुलप्रसूतिः (मुकुलोद्गमः) अपि न सुखयति [अपितु सन्तापयत्येव; अधुना अशोकोऽपि शोकदायी, समीरणोऽपि पीड़कः; रमणीयापि उद्वेगकरीति—अहो विरहवैपरीत्यम्]॥२॥

अनुवाद—सखि! श्रीकृष्णके विरहमें मेरा मन अब किसी भी प्रकारसे परितृप्त नहीं हो रहा है। देखो! यह ईषत् विकसित अशोककी नयी लताकी प्रफुल्ल शोभा मेरे नयनोंका शूल बन गयी है। इस सरोवरके समीप स्थित उपवनोंसे आनेवाली समीरण (बयार) भी मेरा अङ्ग–अङ्ग दुःखा रही है। चारों ओर भ्रमण करनेवाले भौरोंके सुन्दर गुञ्जन भी अच्छे नहीं लग रहे हैं। उनके गुञ्जनसे मनोज्ञ बने हुए वृक्षोंके अग्रभागमें निकले हुए आमोंके नये–नये बौर भी मुझे सुखी नहीं बनाते।

पद्यानुवाद—

मुझे जलाते हैं अशोकके कोमल किशलय फूल।
बहने वाला मृदु समीर भी, छू उपवन सर–कूल॥

अलि गुञ्जित मधु आम्र–मञ्जरी चुभती है ज्यों शूल।
जग सरसा है, पर मेरे तो हियमें उड़ती है धूल॥

बालबोधिनी—श्रीराधा विप्रलम्भ-शृङ्गारके विभावोंका वर्णन करती हुई सखीसे कह रही हैं—इस वासन्तिक वेलामें अशोक वृक्षोंको देखना कठिन हो गया है। वृक्षके नवीन पल्लव विरहाग्निको उद्दीप्त कर रहे हैं। छोटे-छोटे गुच्छोंसे युक्त अशोक लताओंको विकसित करनेवाली जो वायु सरोवरोंके उपवनोंसे होकर आ रही है, वह अति पीड़ादायिनी हो रही है।

दुरालोकका विग्रह है—दुःखेन आलोक अवलोकनम् यस्याऽसौ।

आम्रवृक्षके अग्रभागमें जो आम्रमञ्जरियाँ निकल रही है और उनके चारों ओर मँडराती हुई भ्रमरियाँ गुञ्जार कर रही हैं। अतःपर यह आम्र मञ्जरी श्रीकृष्ण मिलनमें जो मुझे सुखी बनाया करती थीं, वह अब दुःखी बना रही हैं।

भ्राम्यद्‌भृङ्गी पदमें भ्रमरियोंका निर्देश करके श्रीराधा अपने मनका यह भाव प्रकाशित कर रही हैं कि उनके हृदयमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त किसी भी दूसरे पुरुषकी कामना नहीं है। उनकी दृष्टिमें एकमात्र कमनीय पुरुष श्रीकृष्ण ही हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें शिखरिणी छन्द है। रसैरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला सः शिखरिणी। इसमें समुच्चय एवं अनुप्रास अलङ्कार, क्रियोचित्य तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार, मागधी एवं गौड़ीया रीति है॥२॥

साकूत–स्मितमाकुलाकूल–गलद्धम्मिल्लमुल्लासित–
भ्रु–वल्लीकमलीक–दर्शित–भुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् ।
गोपीनां निभृतं निरीक्ष्य गमिताकांक्षश्चिरं चिन्तय–
न्नन्तर्मुग्ध–मनोहरं हरतु वः क्लेशं नवः केशवः॥३॥

इति श्रीगीतगोविन्द महाकाव्ये अक्लेश–केशवो नाम द्वितीयः सर्गः।

अन्वय—[राधायां नीतं कृष्णाभिप्रायं व्यञ्जयन्नाशास्ते कविः]— गोपीनां (गोपाङ्गनानां) साकूतस्मितम् (साकूतं प्रेमाभिलाषसमेतं स्मितं मन्दहासः यस्मिन् तत्) आकुलाकुल-गलद्धम्मिल्लम् (आकुलाकुलम् अति शिथिलं यथास्यात् तथा गलन्तः स्खलन्तः धम्मिल्लाः केशबन्धः यत्र तत्) उल्लासित-भ्रूवल्लीकम् (उल्लासिता कुटिलता भ्रूवल्ली भ्रूलता यत्र तत्) अलीकदर्शित-भुजामूलार्द्धदृष्टस्तनम् (अलीकं सव्याजं यथा तथा दर्शितेन भुजामूलेन बाहुमूलेन अर्द्धं दृष्टौ स्तनौ यत्र तत्) [अतएव] मुग्धमनोहरं निभृतं रहस्यं तद्भावप्रकाशनं) निरीक्ष्य [श्रीराधायाः सर्वोत्तमतां] चिरम् अन्तः (चित्ते) चिन्तयन् (विचारयन्) [तथा] [अतः उत्तमा अन्या नास्तीति] गमिताकाङ्क्षः (गमिता तस्यामेव प्रापिता आकाङ्क्षा येन स तथोक्तः) नवः (श्रीराधिकोत्कर्षनिश्चयेन नव इव जातः) केशवः (हरिः) वः (युष्माकं) क्लेशं (संसारतापं) हरतु (दूरीकरोतु) [अतः सर्गोऽयमक्लेशो गतः श्रीराधिकासम्बन्धि-मनःसाधारण्याभासरूपः क्लेशः यस्मात् स केशवो यत्र सः]॥३॥

अनुवाद—अविवेकी मनको आकर्षित करनेवाली गोपियोंकी साकूत मुस्कान, कामोद्रेकके कारण रोमाञ्च आदि हो जानेसे खुले केशवाली, ऊपर उठे हुए हाथोंके कारण व्यर्थ ही दिखाये गये दोनों स्तनोंका अवलोकन करके अपने हृदयमें चिरकाल चिन्तन करके श्रीकृष्णने उनके प्रति अपनी आकांक्षाओंको विनष्ट कर दिया है, अब राधाभावसे उल्लसित होकर नवनवायमान रूपसे चमत्कृत हो रहे हैं,— ऐसे तरुण केशव आप सबके क्लेशोंको विनष्ट करें।

बालबोधिनी—दूसरे सर्गके अन्तिम श्लोकमें महाकवि श्रीजयदेव भक्तजनोंको आशीर्वाद देते हुए कहते हैं कि विदग्ध श्रीकृष्णने गोपियोंकी चार प्रकारकी चेष्टाओंका अपने हृदयमें विचार किया,—इन चेष्टाओंको देखकर कोई भी मूर्ख आकर्षित हो जाया करता है।

(१) साकूतास्मितम्—गोपियोंकी मुस्कान स्वाभाविक तो है ही, अपितु साभिप्राय भी है। अवश्य उस स्मितमें कामवासनाका पुट था। तरुण पुरुषको देखकर कामिनियोंकी कामचेष्टाओंका विजृम्भण होना स्वाभाविक ही है।

(२) आकुलाकुललगद्धम्मिलम्—कामोद्रेकके कारण रोमाञ्च इत्यादि हो जानेसे उन गोपियोंके केशबन्ध विस्रस्त हो जाते थे।

(३) श्रीकृष्णको देखकर कामोद्रेकसे उनके नयनयुगल चञ्चल हो गये।

(४) यद्यपि अपने भुजामूलों अथवा हाथोंको ऊपर उठानेका कोई भी कारण नहीं था, फिर भी जम्भाई आदिके बहानेसे वे अपने उन्नत स्तनोंको कृष्णको दिखा रही थीं।

परमविवेकी श्रीकृष्णने इन चेष्टाओंका अपने हृदयमें विचारकर उन्हें व्यर्थ कर दिया। श्रीराधाकी अपेक्षा दूसरी कोई श्रेष्ठ नहीं है, इस प्रकार अपने भक्तोंके द्वारा स्तुति किये जानेवाले श्रीकेशव समस्त भक्तोंके क्लेशोंको दूर करें।

प्रस्तुत श्लोकमें समुच्चय, आशीः तथा परिकर अलङ्कार है। शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है।

इस प्रकार अक्लेश-केशव-कुञ्जर-तिलक नामक षष्ठ प्रबन्ध वर्णन हुआ है।

इति द्वितीयः सर्गः।

卐卐卐

तृतीयः सर्गः

मुग्ध–मधुसूदनः

कंसारिरपि संसार–वासना–बन्ध–शृंखलाम्।
राधामाधाय हृदये तत्याज ब्रजसुन्दरीः ॥१॥

अन्वय—[एवं सर्गद्वयेन राधा–माधवयोः उत्कर्षवर्णन–प्रसङ्गतः श्रीराधाया उत्कण्ठां निरूप्य इदानीं कृष्णोत्कण्ठां वर्णयति महाकविः]—[यथा सा तस्मिन् उत्कण्ठिता तथा] कंसारिः (श्रीकृष्णः) अपि संसार–वासना–बन्ध–शृंखलां (सम्यक्सारभूता या वासना तस्या बन्धे दृढ़ीकरणे शृंखला निगड़रूपिणी तां) राधां हृदये (चेतसि) आधाय (आ सम्यक् प्रकारेण निवेश्य) व्रजसुन्दरीः [अन्याः व्रजाङ्गनाः इति शेषः] तत्याज [यथा विवेकी तारतम्येण परमपदार्थ–निश्चयात् तदेकचित्तः अन्यत् सर्वं त्यजति तद्वदिति भावः]॥१॥

अनुवाद—कंसारि श्रीकृष्णने श्रीराधाके पूर्व प्रणयका स्मरण कर उसे सर्वश्रेष्ठ प्रेमका सार अनुभव करते हुए संसार वासनाके बन्धनकी शृंखलारूपी श्रीराधाको अपने हृदयमें धारणकर अन्य ब्रजाङ्गनाओंके प्रेमको अकिञ्चित्कर जानकर उन सबका परित्याग कर दिया।

पद्यानुवाद—

जग बन्धन सम प्राणोंकी मानिनि राधाको मनमें—
अङ्कित कर भूल गये हरि, प्रिय ब्रजवधुओंको क्षणमें॥

बालबोधिनी—पूर्व वर्णित दो सर्गोंमें श्रीराधामाधवके उत्कर्षका निरूपण करते हुए अन्तमें श्रीराधाका श्रीकृष्णके प्रति अनुराग–उत्कण्ठाका निरूपण किया है। अब इस सर्गके प्रारम्भमें श्रीकृष्णका श्रीराधाके प्रति अनुराग एवं उत्कण्ठा प्रदर्शित की जा रही है।

शारदीय रासलीलाकी स्मृति जाग उठी—समस्त गोपियोंके मध्य अन्तर्हित हो श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ रासस्थलीसे चले गये तथा केश-प्रसाधन आदि शृङ्गारिक चेष्टाओंसे श्रीराधाका प्रेमवर्द्धन किया। किन्तु अब श्रीराधाके सामने न होनेसे श्रीकृष्णके हृदयमें विरहजनित सन्ताप जाग उठा और सन्तप्त होकर उन्होंने ब्रजसुन्दरियोंका परित्याग कर दिया।

कंसारि—श्रीकृष्ण कंस नामक राक्षसराजके शत्रु हैं, कं सुखं सारयति विस्तारयति कंसारिः। अर्थात् सुखके विस्तार करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण ही कंसारि हैं।

संसार वासना-बद्ध-शृंखलाम्—संसार = सम्यक् सार, इस समास-वाक्यके अनुसार संसार पद आनन्दमय तथा भावमय मधुररसका वाचक है। मधुर-रस विषयिणी सतत प्रवृत्त रहनेवाली वृत्ति ही संसार-वासना है। श्रीकृष्णको अपने वशमें बनाये रखनेके कारण रासमें श्रीराधा ही शृंखला है।

जिस प्रकार किसी वस्तुका श्रेष्ठत्व निश्चित हो जाने पर अन्यान्य वस्तुओंको छोड़कर उस श्रेष्ठ-वस्तुको प्राप्त करनेकी सुदृढ़ अभिलाषा होती है—वह श्रेष्ठ वस्तु ही उसके लिए आश्रय-स्वरूप हो जाता है। वैसे ही इस प्रसङ्गमें श्रीराधा श्रीकृष्णके लिए सुदृढ़ आश्रय स्वरूप है अथवा जैसे कोई विवेकी पुरुष तारतम्यके द्वारा सारवस्तुका निश्चय कर उसमें दत्तचित्त होकर अन्य वस्तुओंका परित्याग कर देता है, वैसे ही यहाँ श्रीकृष्णने साक्षातरूपमें अन्यान्य गोपियोंका त्याग कर दिया।

व्रजसुन्दरीः—इस पदमें बहुवचनका प्रयोग होनेका अभिप्राय यह है कि सौन्दर्यसम्पन्न अनेक युवतियोंका श्रीकृष्णने श्रीराधाके वियोगसे सन्तप्त होकर परित्याग कर दिया। इससे श्रीकृष्णकी श्रीराधामें अनुराग-अतिशयता सूचित हो रही है।

इस पद्यमें 'पथ्या' छन्द है॥१॥

इतस्ततस्तामनुसृत्य राधिकामनङ्ग–बाण–व्रण–खिन्न–मानसः।
कृतानुतापः स कलिन्दनन्दिनी–तटान्त–कुञ्जे विषसाद माधवः ॥२॥

अन्वय—सः माधवः अनङ्ग–बाण–व्रण–खिन्नमानसः (अनङ्गस्य मदनस्य बाणजनितेन व्रणेन खिन्नं कातरं मानसं यस्य तादृशः सन्) इतस्ततः तां राधिकाम् अनुसृत्य (अन्विष्य) कृतानुतापः (कथमहं तस्याः सर्वोत्तमतां जानन्नपि अवज्ञातवान् इति जातमनस्तापः सन् इत्यर्थः) कलिन्द–नन्दिनी–तटान्तकुञ्जे (कलिन्दनन्दिनी यमुना तस्याः तटान्ते कुलप्रान्ते यः कुञ्जः तत्र) विषसाद (विषादं कृतवान्)॥२॥

अनुवाद—अनङ्गबाणसे जर्ज्जरित श्रीकृष्ण 'हाय'! मैंने श्रीराधाका क्यों परित्याग किया—मेरा उनके साथ कैसे मिलन होगा—इसप्रकार अनुतापयुक्त होकर श्रीराधाका इधर उधर अन्वेषण करने लगे। कहीं भी न मिलने पर यमुनाके निकटवर्त्ती निकुञ्जमें विषण्णचित्त होकर पश्चात्ताप करने लगे।

पद्यानुवाद—

अनुतापित पीड़ित फिरते, मनसिज बाणोंके व्रणमें।
हूले से जमुन–पुलिन पर, भूले से वृन्दावनमें॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णके अनुभावका वर्णन किया जा रहा है। विरहमें श्रीराधाजीकी जो स्थिति थी, वही स्थिति अब श्रीकृष्णकी हो गयी है। श्रीकृष्ण श्रीराधाके विरहमें कामबाणोंसे विक्षत हो गये थे। यद्यपि वहाँ ब्रजसुन्दरियाँ समुपस्थित थीं, तथापि उन्हें उनसे उदासीनता ही बनी रही। मनःकान्ता श्रीराधाकी उपस्थिति उन्हें अधिक विषादयुक्त बना रही थी। सोचा कि आज श्रीराधाका मैं समादर नहीं कर पाया, अतः वे यमुनातट प्रान्तके कुञ्जमें चली गयी हों। विषादयुक्त मनसे उनका अन्वेषण करने लगे—न मिलने पर अनुतप्त हो गये। यदि श्रीराधाको अनुनयविनयके द्वारा मना लिया होता, तो वे फिर यहाँसे कहीं न जातीं।

''मैं अपराधी रोक न पाया, उसको आकुल क्षणमें''

इसप्रकार पश्चात्ताप करते हुए अनङ्गबाणसे आहत श्रीराधाके लिए विषाद करने लगे।

माधवः यह श्रीकृष्णका नाम साभिप्राय है। मा—लक्ष्मी + धव—पति = लक्ष्मीपति; या मा—राधा + धव—प्रियतम = माधव; अर्थात् जो श्रीराधाके प्राणप्रियतम हैं, उनका श्रीराधाके विरहमें व्याकुल होना उनकी (श्रीराधाकी) सौभाग्य-अतिशयताका प्रतीक है।

प्रस्तुत श्लोकमें 'वंशस्थविला' नामका वृत्त है। वदन्ति वंशस्थविले जतौ जरौ—यह वंशस्थविला वृत्तका लक्षण है।

गीतम् ॥७॥

गुर्जरी रागेण यति तालेन च गीयते।

मामियं चलिता विलोक्य वृतं वधू-निचयेन।
सापराधतया मयापि न निवारितातिभयेन॥
हरि हरि हतादरतया गता सा कुपितेव॥१॥ध्रुवम्

अन्वय—इयं (राधा) वधूनिचयेन (वधुनां नारीणां निचयेन समूहेन) वृतं (परिवेष्टितं) मां [दूरतएव] विलोक्य चलिता [अनेन अन्योन्यावलोकनं जातमिति गम्यते]; कथं तदैव नानुनीता मया दृष्टापि] सापराधतया (आत्मानं सापराधं मन्यमानेन इत्यर्थः) अतिभयेन (अतिभीतेनेत्यर्थः) मयापि न वारिता (निवारिता)। हरि हरि (खेदसूचकमव्ययं—हा कष्टम्) हतादरतया (अनादरवशेन) सा (श्रीराधा) कुपितेव (सञ्जात-कोपेव) गता (प्रस्थिता)॥१॥

अनुवाद—वह श्रीराधा व्रजाङ्गनाओंसे परिवेष्टित मुझको देखकर मान करके चली गयीं। अपनेको अपराधी समझकर भयके कारण मैं उसे रोकनेका साहस भी न कर सका।

हाय! वह समादृत न होनेके कारण क्रुद्धसी होकर यहाँसे चली गयी।

पद्यानुवाद—

रूठ गयी अपमानित हो लख मुझको गोपीजनमें।
मैं अपराधी रोक न पाया उसको आकुल क्षणमें॥

बालबोधिनी—हरिहरीति-खेदे—श्रीकृष्ण अपने विषादकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं। हाय! बड़े कष्टकी बात है कि प्रभूत गुणसम्पन्ना श्रीराधा मुझे ब्रजसुन्दरी समूहसे घिरा हुआ देखकर अपनेको अनादृत एवं उपेक्षित समझकर यहाँसे दूर चली गयीं। वे मेरे हृदयमें प्रेयसीके रूपमें विद्यमान हैं, मेरे प्रति उनके आन्तरिक प्रेमका कभी व्यतिक्रम भी नहीं हुआ है, फिर भी श्रीराधाके प्रति यह मेरा अपराध हो गया है। अपराधी होनेके कारण मैं भयभीत हो गया, उनसे अनुनय विनय भी नहीं कर सका, उन्हें मना भी न सका। वे कुपित-सी होकर यहाँसे चली गयीं। मुझे बड़ा विषाद हो रहा है॥१॥

किं करिष्यति किं वदिष्यति सा चिरं विरहेण।
किं धनेन किं जनेन किं मम जीवितेन गृहेण—
हरि हरि हतादरतया... ॥२॥

अन्वय—सा चिरं विरहेण (दीर्घेण मद्विच्छेदेन) [काववस्थां प्राप्य] किं करिष्यति (किमुपायं विधास्यति); [सखीं प्रति], किं वदिष्यति [इत्यहं न जाने]। [तया बिना] मम धनेन (गोधनेन) किं? जनेन (व्रजजनेन) किं? गृहेण (गृहावस्थानेन) किं? [किं बहुना] जीवितेन [वा] किम्; [तां बिना सर्वमेवाकिञ्चित्करमिति भावः] [हरि हरि हतादरेत्यादि सर्वत्र योजनीयम्]॥२॥

अनुवाद—चिरकालतक निदारुण विरहके तापसे परितप्त होकर न जाने वह क्या करेगी, न जाने क्या कहेगी? अहो!

श्रीराधाके विरहमें मुझे धन, जन, जीवन तथा निकेतन सब कुछ असार बोध हो रहा है।

पद्यानुवाद—

क्या न करेगी, क्या बोलेगी विरह–विदग्धा वनमें।
राधा बिन है शेष मुझे क्या जगती में, जीवन में॥

बालबोधिनी—विरही श्रीकृष्णकी अवस्थाका वर्णन करते हुए कहते हैं कि श्रीराधाके वियोगमें जो मुझपर बीत रही है, वही उसपर भी बीत रही होगी। कितनी आकुलता व्याकुलता अनुभव कर रही होगी? इस वियोगजनित दुःखानुभवका कारण मेरा अपराध ही है। मेरे ही कारण उसे इतना कष्ट हो रहा है। जब उससे मिलूँगा तो न जाने वह कोप तथा ईर्ष्या आदिकी अभिव्यक्ति कैसे करेगी? अपनी प्रिय सखीके निकट 'निर्दय', 'निष्ठुर' कहकर मुझपर अभियोग लगायेगी, न जाने क्या-क्या कहेगी? उसके अनन्तर मैं कहूँगा कि राधे, तुम्हारे अभावमें धन, जन, गोधन और गृह सम्पदा सब कुछ तुच्छ प्रतीत होता है॥२॥

चिन्तयामि तदाननं कुटिल भ्रु–कोपभरेण।
शोणपद्मिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण—
हरि हरि हतादरतया... ॥३॥

अन्वय—कोपभरेण (कोपातिशयेन) कुटिलभ्रू (कुटिले वक्रे भ्रूवौ यत्र तादृशं) तदाननम् (तस्याः प्रियतमाया आननम्) उपरि भ्रमता भ्रमरेण आकुलं (व्याप्तं) शोणपद्ममिव (रक्तपङ्कजमिव) चिन्तयामि॥३॥

अनुवाद—मैं श्रीराधाके मँडराते हुए श्याम भ्रमरोंके द्वारा परिवेष्टित आरक्त मुखकमलको प्रत्यक्षकी भाँति देख रहा हूँ, जो रोष-भारसे कुटिल भ्रूलतायुक्त रक्तपद्मकी शोभाको धारण किये हुए हैं।

पद्यानुवाद—

झुल रहा टेढ़ी भौंहोंमय, भौंर भ्रमित मुख उसका।
रंगा हुआ है रिससे सत्त्वर, लाल कमल-सा जिसका॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि सम्प्रति मुझे श्रीराधाके मुखपद्मका स्मरण हो रहा है। उनकी भौंहें क्रोधके कारण और अधिक कुटिल हो गयी होंगी। कोपके भारसे श्रीराधाका गोरा तथा लाल मुखड़ा कुटिल कान्तिवाली भौंहोंसे उसी प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे लाल कमलके ऊपर मँडराते हुए काले भ्रमरोंकी पंक्ति व्याप्त हो।

प्रस्तुत श्लोकमें वाक्यार्थी उपमा अलङ्कार है, क्योंकि यहाँ रोषमय मुखकी उपमा लाल कमलसे तथा कुटिल काली भौंहोंकी समानता काले भ्रमरोंकी पंक्तिसे की गयी है॥३॥

तामहं हृदि सङ्गतामनिशं भृशं रमयामि।
किं वनेऽनुसरामि तामिह किं वृथा विलपामि—
हरि हरि हतादरतया...॥४॥

अन्वय—किम् (कथं) वने ताम् अनुसरामि (अन्वेषयामि) [न करकलितरत्नं मृग्यते नीरमध्ये इत्याभिप्रायः]; [तामुद्दिश्य] वृथा किं (कथं) विलपामि [एतद्विलपनं निष्फलमित्यर्थः]; अहं हृदि सङ्गताम् (हृदयस्थां) [अपि] ताम् (राधाम्) अनिशं (निरन्तरं) भृशं (अत्यर्थं) रमयामि (तया सह विहरामि इत्यर्थः)॥४॥

अनुवाद—हाय! जब मैं सदासर्वदा श्रीराधाको अपने हृदय-मन्दिरमें प्रत्यक्ष अनुभव कर मन-ही-मन प्रगाढ़रूपसे आलिङ्गन करता हूँ, तब मैं उसके लिए क्यों वृथा ही विलाप कर रहा हूँ, क्यों उसको वन-वनमें ढूँढ़ता फिर रहा हूँ?

पद्यानुवाद—

राजित है वह सुन्दर प्रतिमा मन–मन्दिरमें मेरे,
साँसें करती रहतीं जिसके फेरे साँझ–सबेरे।
किस वनमें प्रिय जाऊँ, खोजूँ पदचिह्नोंको तेरे?
कब तक रहुँ बरसता, आँखोंमें बदलीको घेरे?

बालबोधिनी—विरहमें अतिशय व्याकुल अन्तर्मनमें श्रीराधाकी स्फूर्त्ति प्राप्त होनेपर श्रीकृष्ण कहते हैं, श्रीराधा तो अहर्निश मेरे मन–मन्दिरमें रहनेवाली मेरी प्रियतमा प्रेयसी हैं और अपनी हृदयस्थिता उन श्रीराधाके साथ मैं अत्यधिक रमण करता रहता हूँ। वे मुझसे कभी वियुक्त होतीं ही नहीं। वनमें जब है ही नहीं, तो उसमें उनको खोजनेसे क्या लाभ है और यहाँ देखकर मैं जो विलाप कर रहा हूँ वह भी व्यर्थ है॥४॥

तन्वि खिन्नमसूयया हृदयं तवाकलयामि।
तन्न वेद्मि कुतो गतासि तेन तेऽनुनयामि—
हरि हरि हतादरतया... ॥५॥

अन्वय—हे तन्वि (कृशाङ्गि) तव हृदयं (चेतः) असूयया (तदुत्कर्षज्ञानारोद्यमरूपे गुणे दोषारोपणरूपया ईर्ष्यया) खिन्नम् (नितरां व्यथितम्) आकलयामि (सम्भावयामि); तत् (तस्मात्) कुतः (कुत्र) गतासि इति न वेद्मि (न जानामि); तेन (हेतुना) ते (तुभ्यं) न अनुनयामि (पादग्रहणादिना न क्षमापयामि)॥५॥

अनुवाद—हे कृशाङ्गि! प्रतीत होता है, तुम्हारा हृदय असूयासे कलुषित हो गया है, परन्तु मैं क्या करूँ, तुम अभिमानिनी होकर कहाँ चली गयी हो—पर मैं नहीं जानता हूँ कि तुम्हारे मानको दूर करनेके लिए कैसे अनुनय विनय करूँ?

पद्यानुवाद—

जान रहा ईर्ष्यासे तन्वी! छिन्न हृदय है तेरा।
कहाँ गयी है? सुन पायेगी क्या यह अनुनय मेरा?

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण श्रीराधाकी वियोगावस्थासे अत्यन्त व्याकुल हैं, उद्विग्न हैं। वे अपने समक्ष ही विद्यमान-सी श्रीराधाको मानकर, स्फूर्त्तिके उद्गमित होनेपर श्रीराधाको 'तन्वि' पदसे सम्बोधित करने लगे—हे राधे! मैंने तुम्हें छोड़कर दूसरी ब्रजाङ्गनाओंके साथ विहार किया। इसलिए तुम्हारा हृदय कलुषित हो गया है, तुम्हारे हृदयमें अपनी उत्कर्षताके कारण दूसरोंके प्रति ईर्ष्या भर गयी है। दोषारोपणके कारण तुम्हारा हृदय खेदमय हो गया है। तुम यहाँसे अन्यत्र चली गयी हो। यदि मैं जानता कि तुम कहाँ गयी हो तो तुम्हारा पादस्पर्श करके तुम्हें मना लेता—तुमसे क्षमा माँग लेता॥५॥

दृश्यसे पुरतो गतागतमेव मे विदधासि।
किं पुरेव ससंभ्रमं-परिरम्भणं न ददासि—
हरि हरि हतादरतया... ॥६॥

अन्वय—[प्रिये,] मे (मम) पुरतः (अग्रतः) एव गतागतं (यातायातं) विदधासि (करोषि); [पुरतः] दृश्यसे [तथापि] किं (कथं) पुरा इव (पूर्ववत्) ससम्भ्रमं (सावेगं यथा स्यात् तथा) परिरम्भणं (आलिङ्गनं) न ददासि [पुरः स्थितायाः प्रियतमाया ईदृशी निष्ठुरता न युक्ता इत्यभिप्रायः]॥६॥

अनुवाद—हाय! तुम मेरे सामने आती जाती सी दिखायी दे रही हो, पर पहलेकी भाँति अतिशय प्रेमोल्लासके कारण सम्भ्रमके साथ तुम सहसा ही मेरा आलिङ्गन क्यों नहीं करती हो?

पद्यानुवाद—

मेरे सम्मुख दीख रही तू, पल पल आती जाती।
क्यों न सजनि! फिर सहज भावसे भुज युगमें बँध जाती॥

बालबोधिनी—हे प्रिये कृशाङ्गि! अपने सामने मैं तुमको यातायात करता हुआ देख रहा हूँ, बस केवल तुम आती जाती ही हो, पर क्या कारण है कि आज तुम मुझे आलिङ्गन पाशमें नहीं बाँध रही हो? तुम इतनी निष्ठुर क्यों बन गयी हो? सच है कि विरही पुरुषकी उद्विग्नावस्था जब पराकाष्ठापर पहुँच जाती है, तब उस समय उसकी भावना चरम अवस्थाको प्राप्त हो जाती है। उस समय उसे लगता है कि उसका प्रेमी वहीं है। श्रीराधाके वियोगके कारण श्रीकृष्ण इतने विकल हो गये हैं कि उनकी भावना साक्षात्कृतावस्था तक पहुँच गयी है, सभी ओर श्रीराधा ही श्रीराधा दिखायी दे रही है। वही, वही, बस वही श्रीराधा सम्पूर्ण संसारमें दिखायी दे रही है॥६॥

क्षम्यतामपरं कदापि तवेदृशं न करोमि।
देहि सुन्दरि दर्शनं मम मन्मथेन दुनोमि—
हरि हरि हतादरतया... ॥७॥

अन्वय—हे सुन्दरि, क्षम्यतां [अपराधमिमम् इति शेषः] कदापि तव अपरम् ईदृशम् (एवम्प्रकारं) [अप्रियमिति शेषः] न करोमि (करिष्यामि); [अतः] मम दर्शनं देहि; मन्मथेन (मनो मथ्नातीति मन्मथो विरहः तेन) दुनोमि (क्लेशं प्राप्नोमि)॥७॥

अनुवाद—हे सुन्दरि! मुझे क्षमा कर दो। अब तुम्हारे सामने ऐसा अपराध कभी नहीं करूँगा। अब दर्शन दो, मैं कन्दर्प पीड़ासे व्यथित हो रहा हूँ।

पद्यानुवाद—

क्या न क्षमा अब कर दोगी निज अपराधीको रानी?
मधुमयि! दर्शन दे कष्टोंकी कर दो अन्त कहानी॥
भूल न होगी; अब भविष्यमें यह आँखोंका पानी—
साक्षी है, कवि 'जय' के स्वरमें गूँजी मोहन-वाणी॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णकी उद्वेगावस्थाकी चरम सीमा यहाँ कविद्वारा अभिव्यक्त हो रही है। मनमें श्रीराधाकी स्फूर्त्ति होने लगी है, उनके सामने वे अपने आराध्यकी स्वीकृति करते हुए कह रहे हैं, हे राधे! मेरे अपराधोंको क्षमा करो, जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ, भविष्यमें अब कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगा। मुझे दर्शन दो, मैं तुम्हारा अति प्रिय हूँ, तुम मेरी आँखोंसे ओझल मत होओ। तुम्हारे विरहमें मैं कामतापसे झुलसा जा रहा हूँ।

प्रस्तुत गीतमें वर्णित नायक श्रीकृष्ण धीर ललित हैं तथा परस्पर अनुराग जनित विप्रलम्भ-शृङ्गार इस गीतका प्रधान रस है।

वर्णितं जयदेवकेन हरेरिदं प्रवणेन।
केन्दुविल्व-समुद्रसम्भव-रोहिणी-रमणेन—
हरि हरि हतादरतया... ॥८॥

अन्वय—केन्दुबिल्व-समुद्र-सम्भव-रोहिणी-रमणेन (केन्दु-बिल्वनामा ग्रामः स एव समुद्रं तस्मात् सम्भवतीति तथोक्तः यः रोहिणीरमणः चन्द्रः तेन) जयदेवकेन प्रवणेन (प्रणतेन सता; नम्रेण इत्यर्थः) हरेः (कृष्णस्य) इदं (विरहगीतं) वर्णितं (रचितम्) ॥८॥

अनुवाद—केन्दुविल्व नामक ग्रामरूप समुद्रसे जो चन्द्रमाकी भाँति आविर्भूत हुए हैं, जिन्होंने श्रीकृष्णकी विलापसूचक वचनावलीका संग्रह किया है—ऐसे कवि श्रीजयदेव विनम्रताके साथ इस गीतका वर्णन कर रहे हैं।

बालबोधिनी—कवि श्रीजयदेवजीने अत्यन्त विनयपूर्वक श्रीराधाके प्रति श्रीकृष्णके विरह-विलापका वर्णन किया है। समुद्रसे जैसे चन्द्रमाका उद्भव होता है, उसी प्रकार केन्दुविल्व गाँवमें जयदेव नामक कविका आविर्भाव हुआ है। श्रीजयदेव

कविका एक नाम पीयूषवर्षी है। पीयूषवर्षी चन्द्रमाका भी एक नाम है। रोहिणीरमण चन्द्रमाका ही नाम है। चन्द्रमासे जैसे सभी लोग आनन्दित होते हैं, उसीप्रकार इस गीतिकाव्यसे भी सभी लोग आनन्दित होंगे॥८॥

हृदि विसलता-हारो नायं भुजङ्गम-नायकः
कुवलय-दल-श्रेणी कण्ठे न सा गरल-द्युतिः
मलयज-रजो नेदं भस्म-प्रिया-रहिते मयि
प्रहर न हर-भ्रान्त्याऽनङ्ग क्रुधा किमु धावसि?॥९॥

अन्वय—[अधुना मन्मथमुपालभते]—हे अनङ्ग, क्रुधा (कोपेन) किमु (कथं) धावसि? [मदर्थञ्चेत्, तर्हि] हरभ्रान्त्या (शङ्करभ्रमेण) प्रियारहिते मयि न प्रहर (प्रहारं मा कुरु) [हरस्तु प्रियार्द्धाङ्गयुक्तः अतो नाहं हरोऽस्मि; तल्लक्षणादिकं चेत् दृश्यते मयि इत्यपि न; तथाच हरभ्रान्तिं वारयति] हृदि (मम वक्षसि) अयं विसलताहारः (विसलताया मृणालस्य हारः); [विरहतापशान्त्यर्थं ध्रियते इति भावः] भुजङ्गम-नायकः (भुजगपतिः शेषः यः हरेण मालाकारेण हृदि ध्रियते इति सः) न। कण्ठे कुवलय-दलश्रेणी (कुवलयानां नीलोत्पलानां दलश्रेणी दलपङ्क्तिः), [शैत्याय ध्रियते इति भावः]; सा (प्रसिद्धा) गरलद्युतिः (हलाहलकान्तिः या हरकण्ठे विराजते सा) न। [किञ्च] इदं (मम गात्रलग्नं) मलयज-रजः (चन्दनरेणुः) विरहताप-शान्त्यर्थं शैत्याय सौगन्धाय ध्रियते इति भावः] भस्म (हरगात्रलग्नं भषितं) न॥९॥

अनुवाद—हे अनङ्ग! क्या तुम मुझे चन्द्रशेखर जानकर रोष भरकर कष्ट दे रहे हो? तुम्हारी यह कैसी विषमता है? मेरे हृदयमें जो कुछ देख रहे हो, वह भुजङ्गराज वासुकी नहीं है, यह तो मृणाल लता निर्मित हार है। कण्ठदेशमें विषकी नीलिमा नहीं है, नील कमलकी माला है। यह प्रियाविहीन मेरी इस देहपर चिताभस्म नहीं, यह तो चन्दनका

अनुलेपन है। इसलिए हे मन्मथ! तुम निवृत्त हो जाओ, भ्रममें पड़कर मुझपर व्यर्थ ही विषम बाणकी वर्षा मत करो, क्रोध करके मेरी ओर क्यों दौड़ रहे हो? और देखो! महादेव पार्वतीके साथ अर्द्धाङ्गमें मिलित होकर सुखसे विराज रहे हैं, परन्तु मेरी प्राणाधिका राधिकाके साथ मिलन तो बहुत दूरकी बात, वह कहाँ है, मैं भी नहीं जानता हूँ॥९॥

पद्यानुवाद—

उर पर नाग नहीं है यह तो, श्रेणी कुवलय दलकी।
विषकी आभा नहीं कण्ठमें, माला नील कमल की॥
भस्म नहीं है शीतल करने, विरह तापकी ज्वाला—
लगा रहा मलयज-रज तनमें, मैं विरही मतवाला॥

बालबोधिनी—प्रेयसी श्रीराधाके विरहमें कामदेवके बाणोंसे श्रीकृष्णका अन्तःकरण जर्जरित हो गया है। श्रीकृष्णको ऐसा प्रतीत हो रहा है, जैसे कामदेवने उसे चन्द्रमौली समझ लिया है, तभी तो अपने अभेद्य बाणोंका प्रहार उन पर कर रहा है, विह्वल होकर श्रीकृष्ण कहते हैं—हे अनङ्ग! देखो, महादेव सर्वदा अपनी प्रियतमा पार्वतीके साथ अर्द्धाङ्गमें मिलित होकर कैसे सुखसे विराजमान हैं, परन्तु प्राणाधिका श्रीराधिकाके साथ मेरा मिलन तो बहुत दूरकी बात है, वह कहाँ है, यह भी मुझे पता नहीं है। मन्मथ-सन्तापसे पीड़ित श्रीकृष्णको श्रीराधाकी स्फूर्त्ति हो रही है। अतः वे साक्षात् रूपमें कह रहे हैं—हे अनङ्ग! तुम क्यों व्यर्थ ही क्रोध करके मुझे शङ्कर समझकर बार-बार मेरे ऊपर आघात करनेके लिए दौड़ रहे हो। तुम्हें जो यह साँपकी तरह कमलनालके सूतोंकी माला दिखती है, यह तो मृणाल-दण्डका हार है, मेरे गलेमें जो नील-कमलोंकी पंक्ति है, उसे तुम शङ्करके गलेमें विषकी नीलकान्ति मान रहे हो, मेरे शरीर पर जो यह देख रहे हो वह भस्म नहीं है, वह तो

प्रियतमाके वियोगजनित सन्तापको दूर करनेके लिए मलयज चन्दनका लेप लगाया है, जो सूखकर भस्ममें परिणत हो गया है। मैं तो प्रियाके बिना वैसे ही निष्प्राण हो रहा हूँ; क्यों मेरे ऊपर प्रहार कर रहे हो?

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छन्द, अपह्नुति अलङ्कार तथा विप्रलम्भ-शृङ्गार चित्रित है। कुछ विद्वानोंके मतानुसार यहाँ भ्रान्तिमान अलङ्कार है।

पाणौ मा कुरु चूत-शायकममुं मा चापमारोपय
क्रीड़ा-निर्जित-विश्व! मुर्च्छित-जनाघातेन किं पौरुषम्।
तस्या एव मृगीदृशो मनसिज! प्रेङ्खत्कटाक्षाशुग-
श्रेणी-जर्जरितं मनागपि मनो नाद्यापि सन्धुक्षते॥१०॥

अन्वय—[न केवलमङ्गदाहात् शिवो मम वैरी, भवानपि उल्लङ्घित- शासन-त्वात्, अतस्त्वय्यपि प्रहरिष्यामीत्यत आह]—हे क्रीड़ानिर्ज्जितविश्व (क्रीड़या निर्ज्जितः विश्वं येन तत्सम्बुद्धौ) हे मनसिज (हे अनङ्ग) अमुं चूतशायकं (आम्रमुकुलरूपं बाणं) पाणौ (हस्ते) मा कुरु (मा गृहाण); [यदि पाणौ कृतवानसि तर्हि पाणौ एव आस्ताम्] चापं (धनुः) मा आरोगय (शयेण मा सन्धेहि इत्यर्थः); [कथमेवं विधेयमित्यत आह]—मूर्च्छितजनाघातेन (मूर्च्छितस्य शरप्रहारेण मोहं गतस्य जनस्य आघातेन प्रहारेण प्रहृत-प्रहारेण इत्यर्थः) किं पौरुषं (कः पुरुषकारः)? (कथं त्वं मूर्च्छितः इत्यत आह)—[मम] मनः तस्या एव मृगीदृशः (मृगाक्ष्याः राधायाः) प्रेङ्खत्कटाक्षाशुग-श्रेणीजर्जरितं (प्रेङ्खन्तः उच्छलन्तं ये कटाक्षाः ते एव आशुगाः बाणाः तेषां श्रेणीभिः पङ्क्तिभिः जर्जरितं नितरां विद्धम्) [अतएव] अद्यापि मनागपि (अत्यल्पमपि) न सन्धुक्षते (न प्रकृतिं गच्छति)॥२॥

अनुवाद—हे कन्दर्प! क्रीड़ाके छलसे शरासनके बलपर समस्त विश्वको जीतनेवाले, स्मर-ज्वरसे पीड़ित अत्यन्त दीनहीन जर्जरित मेरे जैसे व्यक्तिके ऊपर प्रहार करनेसे

तुम्हारा कौनसा पराक्रम सिद्ध होगा? तुम इस आम्रमञ्जरीके बाणको अपने हाथमें मत लो और यदि लेते भी हो तो उसे धनुषपर मत चढ़ाओ। देखो! उस मृगनयना श्रीराधाके ही प्रसृमर कटाक्षोंसे जर्जरित मेरा मन अभी तक स्वस्थ नहीं हो पाया है, अतएव मदनविकारसे मूर्च्छित उसपर प्रहार मत करो॥१०॥

पद्यानुवाद—

शिवके धोखे 'अशिव' कृत्य क्यों करते मनसिज भोले!
रोष भरे बरसाते हो शर निशिदिन तरकस खोले।
आम्रमञ्जरीके बाणोंको मत निज करमें धरना।
यदि धरना तो धनुपर धरकर सन्धान न करना॥
देख रहे हो मृगनयनीके शरसे हियका छिदना।
पुनः तुम्हारे बाणोंका क्या सह पाऊँगा बिधना॥
निज क्रीड़ासे जीत विश्वको उस पर शासन करते।
मूर्च्छित जनपर कर प्रहार क्यों शौर्य प्रदर्शन करते?

बालबोधिनी—कामदेवने मानो श्रीकृष्णसे कहा—मेरे शरीरको जलानेवाला वह शिव तो शत्रु है ही, परन्तु आप भी मेरे शासनका उल्लंघन करनेवाले हैं, अतः आप पर भी बाणोंका अनुसन्धान करूँगा। तब श्रीकृष्ण कामको उपालम्भ देते हुए कहते हैं कि—हे मनसिज! मत लो हाथमें आमके बौरोंका बाण।

कामदेवके पुष्पबाण पाँच प्रकारके होते हैं—

(१) आम्र मुकुल, (२) अशोक पुष्प, (३) मल्लिका पुष्प, (४) माधवी पुष्प, (५) बकुल पुष्प (मौलश्री)।

वसन्त ऋतु होनेके कारण आम्रमञ्जरी वृक्षोंके अग्रभागमें निकल आयी है। श्रीकृष्ण विचार कर रहे हैं कि कामदेव इसी आम्रमञ्जरीको अपना बाण बनाकर राधा-विरहमें व्यथित मुझपर ही आघात करेगा। अतएव उसे विरमित कर रहे हैं—तुम आम्रमञ्जरीके उस बाणको अपने करोंमें ग्रहण मत करो।

मा चापमारोपय—यदि तुमने निज हाथोंमें धारण कर ही लिया है, तो भी इसे अपने धनुषकी प्रत्यंचापर मत चढ़ाओ। हे क्रीड़ानिर्जित विश्व—अपने खेलसे ही विश्वको जीतनेवाले! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, वह बाण मुझ निष्प्राणका वध कर डालेगा। तुम विश्वविजयी हो, मैं श्रीराधाके वियोगके कारण मृततुल्य हूँ। तुम्हारे जैसा वीर किसी मरेको मारने लगे, तो तुम्हारा ही अपयश होगा, तुम्हारे पराक्रमकी प्रशंसा न होगी।

'मनसिज' इस पदसे श्रीकृष्ण कह रहे हैं कि तुम तो मेरे मनसे ही उत्पन्न हुए हो। जिससे उत्पन्न हुए हो, उसीको मारने लग जाना तो कोई उचित कार्य नहीं है।

तुम श्रीराधाके लिए मेरे प्रति बाणोंका प्रहार करना चाहते हो तो श्रीराधाके प्रसृमर कटाक्षपातरूपी बाण जो तुम्हारे बाणोंसे भी अधिक तीक्ष्ण है, उसीसे जर्ज्जरित हो गया हूँ। इस घायल पर असाध्य विषबाणका प्रहार क्यों?

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द तथा आक्षेपालङ्कार है॥१०॥

भ्रूपल्लवो धनुरपाङ्ग-तरङ्गितानि
बाणा गुणः श्रवण-पालिरिति स्मरेण।
तस्यामनङ्ग-जय-जङ्गम-देवताया-
मस्त्राणि निर्जित-जगन्ति किमर्पितानि॥११॥

अन्वय—भ्रूपल्लवः (भ्रूः पल्लव इव तथोक्तः) धनुः (कार्मुकं) अपाङ्गतरङ्गितानि (कटाक्षप्रेक्षितानि) बाणाः (शराः), श्रवणपालिः (कर्णप्रान्तभागः) गुणः (मौर्वी) इति (एतानि) निर्जित-जगन्ति (निर्जितानि जगन्ति यैः तादृशानि) अस्त्राणि स्मरेण (कामेन) अनङ्ग-जय-जङ्गम-देवतायाम् (अनङ्गस्य जयः त्रिभुवनपराभव स्तस्य या जङ्गमा चञ्चला देवता तदधिष्ठात्री देवीत्यर्थः तथाभूतायां) तस्याम् (राधायाम्) अर्पितानि

(न्यस्तानि) किम्? [तत्प्रसादलब्धैरस्त्रैः जगज्जित्वा पुनस्तत्रै-वार्पितानीति भावः]॥३॥

अनुवाद—अहो! भ्रु-पल्लवरूपी धनुष, अपाङ्ग-भङ्गिमा, तरङ्गरूपी बाण, नयन अवधि श्रवण प्रान्ततक विस्तृत ज्या अर्थात् धनुषकी डोरी—इस सम्पूर्ण अमोघ अस्त्रविद्याके साधनरूपी उपकरणोंको कामदेवने सम्पूर्ण जगतको निर्विशेषरूपमें जीतकर उन अस्त्रोंकी स्वामिनी, अपनी विजयकी जङ्गम देवता श्रीराधाको पुनः अर्पित कर दिया है।

पद्यानुवाद—

त्रिभुवन विजयी अस्त्रोंको, अर्पित राधाको ऐसे—
कर समा गया स्मर उसमें, कोई हारा हो जैसे।
भौंहोंमें 'धनुष' बसा है, शर-पाँत दीठमें बैठी!
कानोंकी पाली दिखती, मानो प्रत्यंचा ऐंठी॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण श्रीराधामें कामबाण-समूहका आरोपण करते हुए कहते हैं कि संसारको जीतनेवाले अस्त्रोंको कामदेव श्रीराधामें ही निक्षिप्त कर दिया है क्या? 'तत्' शब्दसे यहाँ 'पूर्वानुभूति' अभिव्यक्त हुई है। 'तस्याम्' पदसे सूचित किया है कि जिस श्रीराधाके वियोगसे मैं व्याकुल हूँ, जो मेरी मनःकान्ता है, उसीमें श्रीकृष्णने जगद्विजयी अस्त्रोंको निक्षिप्त कर दिया है।

श्रीराधाके द्वितीय वैशिष्ट्यका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि श्रीराधा अनङ्गजयी जङ्गम देवता है। कामदेव तो जगद्विजय करनेवाले चलते-फिरते देवता हैं। श्रीराधासे ही अस्त्रोंको उपलब्ध करके कामदेवने जगत् जीता और पुनः उद्देश्यकी पूर्त्ति हो जानेपर उसी देवताको उन अस्त्रोंको समर्पित कर दिया है।

कामदेवका जगद्विजयी अस्त्र है—भ्रूपल्लव-धनुः। श्रीराधाकी भौंहें नीली एवं स्निग्ध हैं; इसलिए उनमें भ्रूपल्लवका आरोप है और टेढ़ी होनेसे उनमें धनुषका आरोप है। श्रीराधाके

'अपाङ्ग-तरङ्ग' ही कामदेवके अपाङ्ग वीक्षणरूपी कटाक्षवेधक बाण हैं। बाण जिसप्रकार अभिलक्ष्यका भेदन कर डालते हैं, उसी प्रकार श्रीराधाने भी मेरे मनको भेद डाला है। 'अस्त्र' शब्दसे अस्त्रविद्या साधनके उपकरण कहे जाते हैं।

इसप्रकार श्रीकृष्णने तत् तत् आविष्कार समर्थ अवयवोंमें कामदेवके तत् तत् अस्त्रविद्या साधनोपकरणोंकी उत्प्रेक्षा की है।

इस श्लोकमें 'वसन्त तिलका' छन्द है, उत्प्रेक्षा एवं रूपक अलङ्कारोंकी संसृष्टि है॥११॥

भ्रूचापे निहितः कटाक्ष-विशिखो निर्मातु मर्मव्यथां
श्यामात्मा कुटिलः करोतु कबरी-भारोऽपि मारोद्यमम्।
मोहन्तावदयञ्च तन्वि तनुतां विम्बाधरो रागवान्
सद्वृत्तं स्तन-मण्डलं तव कथं प्राणैर्मम क्रीड़ति॥१२॥

अन्वय—[अधुना तत्कटाक्षादि-स्मरणेन स्वस्य सातिशय-पीड़ां वर्णयति]—हे तन्वि (कृशाङ्गि) भ्रूचापे (भ्रूरेव चापो धनुः तत्र) निहितः (अर्पितः) कटाक्षविशिखः (कटाक्ष एव विशिखः शरः) मर्मव्यथां (मर्माणि व्यथां) निर्मातु (विदधातु) [नात्राप्यनौचित्यं चापार्पितबाणस्य मर्मव्यथादायक-स्वभावत्वादिति भावः; श्यामात्मा (श्यामवर्णः; अन्यत्र मलिनस्वभावः) कुटिलः (भङ्गिभृत्; अन्यत्र वक्रस्वभावः) कबरीभारः (केशपाशः) अपि मारोद्यमं (मारस्य अन्यत्र मारणस्य उद्यमं) करोतु [कुटिलस्य मलिनस्वभावस्य च मारक-स्वभावत्वादितिभावः]; अयञ्च रागवान् (रक्तवर्णः; अन्यत्र क्रोधनः) विम्बाधरः (विम्बफलवत् अधरः) मोहं तावत् तनुतां (विदधातु) [स्वभावकोपनस्य प्रहारादिना मोहजनकत्वादिति भावः]; तव सद्वृत्तं (सुगोलं अन्यत्र सुचरित्रं) स्तनमण्डलं कथं मम प्राणैः क्रीड़ति (प्राणहरणरूपां क्रीड़ां किमिति करोतीत्यर्थः) [सद्वृत्तस्य परपीड़ाकरणमनुचितमिति भावः]॥१२॥

अनुवाद—हे छरहरी देहयष्टिवाली (इकहरे बदन वाली) राधे! तुम्हारे भ्रूचापसे निक्षिप्त कटाक्ष विशिख (बाण) मेरे हृदयको निदारुण पीड़ासे पीड़ित करे, तुम्हारा श्यामल कुटिल केशपाश मेरा वध करनेका उपक्रम करे, तुम्हारा यह बिम्बफलके समान राग-रञ्जित अधर मुझमें मोह उदित करे, किन्तु तुम्हारा यह सद्वृत्त (सुगोल) मनोहर मण्डलाकार स्तनयुगल सुचरित होकर क्रीड़ाके छलसे मेरे प्राणोंके साथ क्यों क्रीड़ा कर रहा है?

पद्यानुवाद—

हे तन्वि, नेत्र-शर तेरे, नित छेद रहे हैं उरको
वे व्याल केश भी रह-रह, डँसते रहते हैं मुझको।
वे सरस मधुर बिम्बाधर, मुझको मोहाकुल करते
उन्नत उरोज सखि! तेरे, क्यों जी में जीवन भरते॥

बालबोधिनी—श्रीराधाका ध्यान करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं, राधे! तुम्हारे भ्रूकुटि धनुषमें आरोपित बाण ही मेरे अन्तःकरणको प्रपीड़ित कर रहे हैं, तुम्हारे कटाक्षकी लहरें ही बाण हैं, उनका ऐसा करना उचित ही है, क्योंकि धनुषसे सम्बन्धित बाण स्वाभाविकरूपसे दूसरोंके लिए दुःखदायी होते हैं—दूसरोंको विदीर्ण करना ही तो इनका धर्म है।

तुम्हारे काले कुञ्चित स्वाभाविक रूपसे वक्रता धारण किये हुए केश भी मारनेका पराक्रम करते हैं, यह भी अनुचित नहीं है, क्योंकि जिसका हृदय कुटिल एवं मलिन होता है, वह दूसरोंको मारनेका प्रयास स्वाभाविकरूपसे करते ही हैं।

हे कृशाङ्गि राधे! बिम्बफल सदृश तुम्हारा यह रक्तिम अधर मुझे मूर्च्छित कर रहा है, उसमें भी कोई अनौचित्य नहीं हैं, क्योंकि जो रागी होता है वह अनुरागमें क्या नहीं करता? दूसरोंको मोहित करनेका काम स्वाभाविकरूपसे करता है।

किन्तु यह अवश्य ही अनुचित लगता है कि तुम्हारा

सुवर्त्तुल स्तनयुगल क्रीड़ाके छलसे मेरे प्राणोंको हरण करनेकी चेष्टा क्यों कर रहा है? सज्जनोंका ऐसा आचरण तो अस्वाभाविक ही है। जो सद्‌वृत्त होता है, वह दूसरोंके प्राणोंके साथ खिलवाड़ नहीं करता।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द तथा विरोधालङ्कार है॥१२॥

तानि स्पर्श–सुखानि ते च तरलाः स्निग्धा दृशोर्विभ्रमा–
स्तद्वक्त्राम्बुज–सौरभं स च सुधास्यन्दी गिरां वक्रिमा।
सा विम्बाधर–माधुरीति विषयासङ्गेपि चेन्मानसं
तस्यां लग्न–समाधि हन्त विरह–व्याधिः कथं वर्द्धते॥१३॥

अन्वय—तानि (पूर्वानुभूतानीत्यर्थः) स्पर्शसुखानि (अङ्गस्पर्श–जनितानि सुखानि) [एतेन त्वगिन्द्रिय–विषयासङ्गः प्राप्तः]; ते च (पूर्वानुभूताः) तरलाः (चञ्चलाः) स्निग्धाः (स्नेहवर्षिणः) दृशोः (चक्षुषोः) विभ्रमाः (विलासाः) [एतेन चक्षुरिन्द्रिय–विषयासङ्गलाभः]; तद्वक्त्राम्बुज–सौरभं (तत् पूर्वानुभूतं वक्त्रमेव अम्बुजं तस्य सौरभं) [एतेन घ्राणेन्द्रिय–विषयासङ्ग उक्तः]; स च (पूर्वानुभूतः) सुधास्यन्दी (अमृतस्रावी) गिरां (वाचां) वक्रिमा (वक्रता भङ्गिविशेष इत्यर्थः) [एतेन श्रवणेन्द्रिय–विषयासक्तिः सूचिता]; सा च विम्बाधर–माधुरी (विम्बाधरस्य माधुरी मधुरता) [एतेन रसनेन्द्रिय–विषयासक्तिः सूचिता]; सा च विम्बाधर–माधुरी (विम्बाधरस्य माधुरी मधुरता) [एतेन रसनेन्द्रिय–विषयासङ्गः प्राप्तः]। इति (एवं) विषयासङ्गेऽपि (विषयेषु आसङ्गे व्यासक्तौ अपि) [मम] मानसं तस्यां (राधायां) लग्नसमाधि (लग्नः समाधिरेकाग्रता यस्य तादृशं; तदेकासक्तमित्यर्थः) हस्त (खेदे) विरहव्याधिः (विच्छेदयन्त्रणा) कथं वर्द्धते [वियुक्तयोरेव विरहः स्यात् अत्र मनसः संयोगो वर्त्तते तत्कथमियं यातना इत्यभिप्रायः]॥१३॥

अनुवाद—एकान्तमें प्रियाका ध्यान करते हुए मैं इसके उसी सुविमल स्पर्शजनित सुखका अनुभव कर पुलकित हो रहा हूँ, उसके नयनयुगलकी चञ्चलता, सुस्निग्ध भङ्गिमा, विभ्रमता और दृष्टिक्षेपता मुझे संजीवित कर रही है, उसके मुखारविन्दका सौरभ मुझे आप्लावित कर रहा है, उसकी उस अमृत निस्यन्दी वचन-परम्पराकी वक्रिमाको श्रवण कर रहा हूँ। उसके बिम्बफल सदृश मनोहर अधरका मधुर सुधारसका मैं आस्वादन कर रहा हूँ। उसमें समाधिस्थ मेरे मनकी विषयासक्ति बनी हुई है, फिर भी मुझमें विरह व्याधिकी यातना अधिकाधिकरूपमें क्यों बढ़ती जा रही है?

पद्यानुवाद—

वे स्पर्शजनित सुख कोमल, चल दृष्टिक्षेप रस भीने
वह वदन कमल मधु सौरभ, वे वचन सुधा मधुलीने।
वे मधुर अधर बिम्बा सम, तन्मय करते यों मनको
जैसे समाधिमें योगी, विस्मृत कर देते तनको।
संलग्न ध्यान सखि! तुझमें पर विरह व्यथा यह मेरी
भूली है लेश न मुझको, घेरे हैं बनी अहेरी॥१३॥

बालबोधिनी—भावनाकी प्रबलतासे श्रीराधाके साथ विलासकी स्फूर्त्ति होनेपर अन्तःकरणमें बहती हुई विरह-व्याधिकी प्रतिकूलताका वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं—श्रीराधामें मेरा मन समाधिस्थ हो गया है, तथापि विरह क्यों मुझे सता रहा है, क्योंकि विरह तो वहाँ होता है जहाँ खेद एवं वियोग होता है, जबकि मेरा मन तो श्रीराधामें संलग्न है।

मनः संयोगके अभावमें विरह माना जा सकता है, परन्तु मन तो यहाँ संयुक्त है, फिर भी विरह इसलिए है कि इन्द्रिय संयोगका अभाव है। अतःपर यह भी कहा गया है कि विषयोंके न रहने पर भी मन-ही-मन इन्द्रियसुखका अनुभव होनेसे उसे संयोग कहा जा सकता है, परन्तु विरह बना हुआ होता है।

यथार्थ क्या है? मिलनमें जो अनुभव होता था, वही अनुभव विरहमें भी हो रहा है। त्वचासे श्रीराधाके स्पर्शजनित पूर्वानुभूत सुखको ही अनुभव कर रहा हूँ, चक्षुसे उसके प्रेमाद्रनेत्रोंकी तरल प्रीति रसधारको देख रहा हूँ, नासिकासे श्रीराधिकाके मुखकमलके पूर्वानुभूत सौगन्धका आघ्राण कर रहा हूँ। समाधिमें प्रत्यक्षमाणा श्रीराधाकी वाणीकी अमृत-स्राविणी वक्रिमाका श्रवणास्वादन कर रहा हूँ, तथैव बिम्बफल सदृश अरुणिम सुकुमार अधराधरकी मधुर सुधारस माधुरीमें अवगाहन कर रहा हूँ। इसप्रकार पाँचों प्रकारके विषयोंका सम्बन्ध मेरे साथ बना हुआ है। तथापि न जाने क्यों विरहजनित समाधि बढ़ती जा रही है?

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द है, समुच्चयालङ्कार तथा विप्रलम्भ शृङ्गार है॥१३॥

तिर्य्यक्-कण्ठ-विलोल-मौलि-तरलोत्तंसस्य वंशोच्चरद्
गीति-स्थान-कृतावधान ललना-लक्षै र्न संलक्षिताः।
सम्मुग्धं मधुसूदनस्य मधुरे राधामुखेन्दौ सुधा-
सारे कन्दलिताश्चिरं ददतु वः क्षेमं कटाक्षोर्म्मयः॥१४॥

अन्वय—[अधुना आशिषा सर्गं समापयति]—तिर्य्यक्-कण्ठ-विलोल-मौलि-तरलोत्तंसस्य (तिर्य्यक् ईषद्वक्रः कण्ठः यस्य सः विलोलः चञ्चलः मौलिः मस्तकं तत्रत्य चूड़ा वा यस्य तथाभूतः तथा तरलौ चञ्चलौ उत्तंसौ कुर्णकुण्डलौ यस्य सः; विशेषण-समासः तादृशस्य) मधुसूदनस्य मधुरे (मनोहरे) राधामुखेन्दौ (राधायाः मुखम् इन्दुरिव तस्मिन्) मृदुस्पन्दम् (ईषचञ्चलं यथास्यात् तथा) कन्दलिताः (पल्लविताः, अन्यगोपाङ्गनावदनोडुगणमपहारा तत्रैव उल्लसिताः (वंशोच्चरद्-गीति-स्थान-कृतावधान-ललनालक्षैः (वंशात् वेणुतः उच्चरत् या गीतिः तस्याः स्थानेषु पदेषु कृतम् अवधानं यैः तादृशैः

ललनानां गोपसुन्दरीणां लक्षैः) न संलक्षिताः (अविज्ञाता इत्यर्थः) कटाक्षोर्म्मयः (कटाक्षाणाम् ऊर्म्मयः तरङ्गाः अपाङ्गदर्शन-श्रेणीत्यर्थः) वः (युष्माकं) चिरं क्षेमं दधतु। [अतएव मुग्धमधुसूदनो रसविशेषास्वाद-चतुरस्ततो मुग्धो मधुसूदनो यत्र इत्ययं सर्गस्तृतीयः]॥१४॥

इति श्रीगीतगोविन्द महाकाव्ये मुग्ध-मधुसूदनो नाम तृतीयः सर्गः।

अनुवाद—त्रिभङ्ग भावसे अपनी ग्रीवाको बङ्किम करनेके कारण जिनका शिरोभूषण (मुकुट) एवं कुण्डल दोलायमान हो रहे हैं, लक्ष-लक्ष गोप-रमणियाँ वेणु-ध्वनिके सुदीप्त उच्चारण स्थानपर ध्यान लगायी हुई उनके मध्यमें स्थित श्रीराधाके मनोहर तथा अमृतमय मुखारविन्दको स्नेहातिशयताके कारण स्थिरदृष्टिसे देखते हुए श्रीकृष्णकी कटाक्षपात राशिकी उर्मियाँ आप सबका मङ्गल विधान करें॥

बालबोधिनी—तृतीय सर्गके अन्तिम श्लोकमें कविने श्रीराधाके वचनोंको प्रमाणित किया है। गोपाङ्गनाओंके मध्यमें अवस्थित श्रीकृष्णको श्रीराधा-दर्शनसे भावानुभूति हुई है, उसीको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। कविने पाठकों एवं श्रोताओंको आशीर्वाद प्रदान किया है कि मुग्ध-मधुसूदन आपका कल्याण विधान करें।

मधुसूदन—जो श्रीराधाके मुखकमलकी ईषत् चञ्चलता एवं संमुग्धताका दर्शनकर अतिशय उल्लसित हुए हैं, सम्पूर्ण इतर कामनाओंका परित्याग कर श्रीराधामें एकनिष्ठ हुए हैं—उनके कटाक्षपातकी उर्मियाँ स्नेहातिशयताके कारण श्रीराधाके सुललित एवं मधुमय मुखचन्द्रपर स्थिर हो गयी हैं।

संमुग्ध—पदसे श्रीराधाके मुखकी मनोज्ञ अतिशयता बतायी गयी है। 'मधुर' पदसे श्रीराधाके मुखको अमृतसे भी मधुर बताया गया है। मोहकता एवं माधुर्यके कारण श्रीराधाके मुखको श्रीकृष्ण बड़े चावसे देखते हैं। 'सुधासार'

से भी श्रीराधाके मुखका पीयूषत्व अभिव्यक्त हो रहा है। श्रीकृष्णको आह्लादित करनेके कारण श्रीराधामें विधुत्वका आरोप किया गया है।

स्थिर दृष्टिसे श्रीकृष्ण श्रीराधाके मुखको देख रहे थे, परन्तु श्रीकृष्णकी इस क्रियाको वहाँ अवस्थित गोपियाँ देख न सकीं। गोपियोंसे आवृत श्रीकृष्ण बाँसुरीके दीप्तस्थानसे स्वरालाप कर रहे थे, सभीका ध्यान उन सुरोंमें ही लगा हुआ था। सभी श्रवणजनित आनन्दमें मग्न थीं। वंशीध्वनिसे सभीके चित्तको आकर्षित करनेके साथ श्रीकृष्णने अपनी वंशीकी तानसे श्रीराधाको भी मोहित कर लिया, जिसका अनुभव किसी गोपीको भी न हो सका—इससे श्रीकृष्णका चातुर्य प्रकाशित होता है।

श्रीकृष्णकी मुखमुद्राका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—'तिर्यक्-कण्ठ-विलोल-मौली-तरलोत्तंस्य' अर्थात् श्रीकृष्णकी ग्रीवाको तिरछे किये हुए बङ्किम मुद्राके कारण उनके मुकुट तथा कर्णाभरण चञ्चल हो रहे थे। 'मौलि' पदसे मुकुट और शिर दोनों वाच्य हैं, तथापि शिरका हिलना वेणुवादकका दोष है और न हिलना दक्षता। श्रीकृष्णमें अद्भुत नैपुण्य था, अतः शिर नहीं हिल रहा था। मुकुट और कर्णाभूषण ही आन्दोलित हो रहे थे।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द तथा रूपकालङ्कार है।

इस प्रकार गीत गोविन्द महाकाव्यमें मुग्ध-मधुसूदन नामक तृतीय सर्गकी बालबोधिनी व्याख्या पूर्ण हुई।

❂❂❂

''और सखीकी व्यथा–कथा सब धीरे–धीरे बोली।''

चतुर्थः सर्गः

स्निग्ध–मधुसूदनः

यमुना–तीर–वानीर–निकुञ्जे मन्दमास्थितम्।
प्राह–प्रेम–भरोद्भ्रान्तं माधवं राधिका–सखी॥१॥

अन्वय—[अथ राधिकाविरहोत्कण्ठं श्रीकृष्णं] राधिकासखी (राधिकायाः काचित् सहचरी) प्रेमभरोद्भ्रान्तं (प्रेम्णां भरेण उद्भ्रान्तम् उन्मत्तं) [अतएव तदन्वेषणं विहाय] यमुनातीर–वानीर–निकुञ्जे (यमुनातीरे यत् वानीरनिकुञ्जं वेतसलता–कुञ्जं तस्मिन्) मन्दं (विषण्णं निरुद्यमं वा यथास्यात् तथा) आस्थितम् (उपविष्टं) माधवं प्राह (उवाच)॥१॥

अनुवाद—यमुनाके तटपर स्थित वेतसीके निकुञ्जमें श्रीराधाप्रेममें विमुग्ध होकर विषण्ण (विषाद) चित्तसे बैठे हुए श्रीकृष्णसे श्रीराधाकी प्रिय सखी कहने लगी।

पद्यानुवाद—

यमुनातीरे वेतसकुञ्जे, बैठे हैं यदुवंशी
राधाके चिन्तनमें अपनी भूले लकुटी–वंशी।
इसी समय सम्मुख हो कोई छाया–सी आ डोली
और सखीकी व्यथा–कथा सब धीरे–धीरे बोली॥

बालबोधिनी—अब दोनोंकी पृथक् कामावस्थाका निरूपण करके उन दोनोंका संयोजन करानेकी इच्छासे दूतीयोगका निरूपण करते हैं। श्रीराधिकाकी सखीने माधवसे कहा।

पूर्वरागमें श्रीराधाने अपनी सखीसे श्रीकृष्ण–मिलनकी वासना अभिव्यक्त की थी। तब वह सखी श्रीराधाको आश्वासन देकर श्रीकृष्णके पास गयी तो देखा, उनका चित्त श्रीराधा–विषयक प्रेमाधिक्यके कारण उद्भ्रान्त अर्थात्

उन्मत्त-उद्विग्न हो रहा था। अन्वेषण करने पर भी जब उनकी श्रीराधा नहीं मिलीं तो वे यमुना पुलिन पर विद्यमान वेतसी निकुञ्जमें निरुत्साहित और उदास होकर बैठ गये।

गीतम् ८

कर्णाटरागैकतालीतालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—यह आठवाँ प्रबन्ध कर्णाटराग तथा एकताली तालसे गाया जाता है। जब शिखिकण्ठ—नीलकण्ठ महादेव एक हाथमें कृपाण और दूसरे हाथमें एक विशाल गजदन्त धारणकर दाहिने कन्धेमें रखकर चलते हैं, सुर-चारण आदि उनकी स्तुति करते हैं, ऐसे समयमें कर्णाट राग प्रस्तुत होता है।

निन्दति चन्दनमिन्दु-किरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।
व्याल-निलय-मिलनेन गरलमिव कलयति मलय-समीरम्॥
सा विरहे तव दीना।
माधव मनसिज-विशिख-भयादिव भावनया त्वयि लीना॥१॥
ध्रुवपदम्

अन्वय—हे माधव, तव विरहे दीना (कातरा) सा (राधा) मनसिजविशिखभयादिव (मनसिजस्य कामस्य विशिखेभ्यः बाणेभ्यः भयादिव) भावनया (उद्वेगेन) त्वयि लीना (ध्यानेन लयप्राप्ता) [इव आस्ते इति शेषः, कामरूपे त्वयि प्रसन्ने तद्भयं न करिष्यतीत्यभिप्रायः]; [सा अधुना] चन्दनम् इन्दुकिरणं (चन्द्रमयुखं) निन्दति, [स्वभावशीतलो यन्मां दहतः तन्ममैव दुर्दैवमिति] अनु (पश्चात्) अधीरं [यथा तथा] खेदं (तापं) विन्दति (लभते); [तथा] मलय-समीरं व्याल निलयमिलनेन (व्यालानां सर्पाणां निलयः चन्दनतरुः तस्य मिलनेन) गरलमिव कलयति (सम्भावयति) [सर्पभुक्तोज्झितो वायुः विषमिलितत्वात् विषवत् उत्प्रेक्षते]॥१॥

अनुवाद—हे माधव! वह श्रीराधा आपके विरहमें कातर होकर मदन-बाणके वर्षणके भयसे भीत होकर उस मन्द-सन्तापकी शान्तिके लिए ध्यान-योगके द्वारा आपमें निमग्न होकर आपके शरणागत हुई हैं। आपसे विच्युत होकर वह चन्दनको विनिन्दित करती हैं, चन्द्र-किरणोंको देखकर उनकी देह दग्ध होने लगती है, मलय-समीरण भी उसके अङ्गोंमें सन्ताप बढ़ा रहा है। विषधर सर्पोंसे परिवेष्टित चन्दन वृक्षोंसे प्रवाहित फुत्कार-मिश्रित होनेके कारण मलय-समीरको भी गरल समान मान रही हैं।

पद्यानुवाद—

वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुममें है तल्लीना।
वह विरह विदग्धा दीना
चन्दन और चन्द्र-किरणोंसे होती अधिक अधीर,
अहिगण गरल समान विमूर्च्छित करना मलय समीर।
वह विरह विदग्धा दीना
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुममें है तल्लीना।

बालबोधिनी—सखी श्रीकृष्णके सन्निकट उनकी विरहवेदना सुनाती है। वह कहती है कि श्रीराधा अत्यन्त दुःखित हैं। कामबाणके त्राससे आपका ध्यान करती हुई आप ही में समाधिस्थ हो गयी हैं। बाणके भयसे जैसे प्राणी रक्षार्थ दूसरेकी शरणमें चला जाता है, उसी प्रकार वह आपके शरणापन्न हुई हैं; क्योंकि आप कामस्वरूप हैं, आपके प्रसन्न होनेपर किसीका भय नहीं रहता है। हे माधव! आपके विरहमें श्रीराधाकी ऐसी स्थिति हो गई है कि अपने शरीरमें लगे हुए चन्दनकी निन्दा करती हैं, क्योंकि यह चन्दन उनके लिए आह्लादकारी नहीं अपितु प्रदाह रूप है। चन्द्र-किरणोंको देखकर भी उनका हृदय प्रज्वलित होने लगता है; क्योंकि चन्द्रिका भी उनकी कामाग्निको उद्दीपित कर रही है। चन्दन

वृक्षके सम्पर्कसे मलय-पवनको भी वह गरलवत् अनुभव करती हैं। मलयाचलके चन्दनवृक्षोंसे लिपटे हुए विषैले सर्पोंकी फुत्कारोंसे वायु दूषित हो गयी है।

'मनसिज-विशिख-भयादिव' में उत्प्रेक्षा अलङ्कारका सौष्ठव है, साथ ही इस श्लोकमें रूपक और विरोधालङ्कारोंकी भी संसृष्टि है।

अविरल-निपतित-मदन-शरादिव भवदवनाय विशालम्।
स्वहृदय-मर्माणि वर्म करोति सजल-नलिनी-दल-जलम्॥
सा विरहे तव दीना... ॥२॥

अन्वय—[किञ्च अतिस्निग्धायां तस्यां कथमिव त्वमेवं निष्ठुरो- ऽसीत्याह]—अविरल-निपतित-मदन-शरादिव (अविरलं निरन्तरं निपतितं) (पतनं, भावोक्त) यस्य तादृशस्य मदनस्य यः शरः तस्मादिव) भवदवनाय (भवतः हृदयस्थस्येति भावः अवनाय रक्षणाय) [तस्या हृदये भवान् तिष्ठति, हृदयञ्च कामो विध्यति, हृदयवेधनाद्भवतोऽपि वेधः स्यादित्याशङ्क्य भवद्रक्षणार्थमेवेति भावः] स्वहृदय-मर्म्माणि (निजहृदयरूपे मर्म्मस्थाने) विशालं (पृथुलं) सजल-नलिनी-दल-जालं (सजलनलिनीदलानां जालं समूहमेव) वर्म्म (कवचं) करोति॥२॥

अनुवाद—हृदय पर अनवरत गिरते हुए कामबाणोंसे अपने हृदयके भीतर विराजमान आपकी रक्षा करनेके लिए श्रीराधा विशाल सजल कमल-पत्र-समूहको अपने हृदयके मर्मस्थलका कवच बना रही हैं।

पद्यानुवाद—

मदन शरोंसे अपने प्रियकी रक्षामें बेहाल।
उर पर बिछा रही है रह रह सजल कमलिनी-जाल॥
वह विरह विदग्धा दीना।
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुममें है तल्लीना॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णका निरन्तर ध्यान करनेसे श्रीराधा एकात्मकताको प्राप्त हो गयीं। यही सूचित करती हुई सखी कहती है—हे माधव! आप श्रीराधाके हृदयमें निरन्तर विद्यमान हैं। कामदेव अपने बाणोंको अजस्र रूपसे छोड़ रहा है। आपको कहीं कष्ट न हो जाये, इसलिए अपने हृदयके मर्मस्थलको जलकणोंके साथ बड़े-बड़े कमलदल-समूहसे आवृत कर रही हैं। वह आपकी रक्षाके लिए सारे उपायोंको कर रही हैं। उत्प्रेक्षा करते हुए कहती हैं कि नलिनदल-जालको उसने हृदयमें इसलिए आच्छादित किया है कि उसके हृदयसे आप कहीं निकल न जायें।

कामदेवका तूणीर (तरकश) अक्षय है—एकके बाद दूसरा बाण फेंका जा रहा है। हे माधव! तुम्हारे विरहमें वह निरुपाय होकर उपाय भी सोचती है तो क्या सोचती है? कमल-दल तो वैसे ही उसके बाण हैं और वह कवच कहाँसे होगा? उसे अपना कवच बनाकर अपना कष्ट और बढ़ा रही हैं॥२॥

कुसुम-विशिख-शर-तल्पमनल्प-विलास-कला-कमनीयम्।
व्रतमिव तव परिरम्भ-सुखाय करोति कुसुम-शयनीयम्॥
सा विरहे तव दीना... ॥३॥

अन्वय—[अपि च] अनल्प-विलासकला-कमनीयं (अनल्पाभिः बहुभिः विलास-कलाभिः विलासभावैः कमनीयं मनोज्ञं) कुसुम-शयनीयं (पुष्पशय्यां) [अपि] [तव विरहे] कुसुमविशिख-शरतल्पम् (कुसुम-विशिखस्य कामस्य शरतल्पं शरशय्याभूतं) तव परिरम्भसुखाय (गाढ़ालिङ्गनसुख-लाभाय) व्रतमिव करोति [सुदुर्लभं तव परिरम्भणसुखम्, अतस्तल्पाभाय व्रतचर्यामिव करोतीत्यर्थः]॥३॥

अनुवाद—हे माधव! विविध विलासोंसे रमणीय कुसुम-शय्या श्रीराधाके द्वारा रचायी जा रही है, जो कामदेवके बाणोंकी शय्याके समान प्रतीत हो रही है। आपके गाढ़ आलिङ्गनकी प्राप्तिकी आशासे वह कठोर-शरशय्याव्रतके अनुष्ठानका पालन कर रही है।

बालबोधिनी—हे श्रीकृष्ण! महान केलि-कला-विलासरूप पुष्प-शय्याकी रचना आपके विरहमें विदग्ध होकर श्रीराधा करती तो हैं, पर वह सेज काम-शरोंकी सेज सदृश ही है। उत्प्रेक्षा करते हुए सखी कहती है—जैसे कोई व्यक्ति किसी बड़े सुखकी प्राप्तिके लिए कोई व्रत करता है, उसी प्रकार श्रीराधा भी दुष्प्राप्य आपके आलिङ्गन-सुखकी प्राप्तिके लिए दुष्कर शरशय्या-व्रतकी साधना कर रही है।

वहति च चलित-विलोचन-जलभरमानन-कमलमुदारम्।
विधुमिव विकट-विधुन्तुद-दन्त-दलन-गलितामृतधारम्॥
सा विरहे तव दीना... ॥४॥

अन्वय—[किञ्च] वलित-विलोचन-जलधरं (वलितानि अविरतं गलितानि विलोचनयोः नेत्रयोः जलानि धारयतीति तथोक्तम्) उदारम् (विकस्वरम्) आननकमलं (मुखपद्मं) विकट-विधुन्तुद-दन्त-दलन गलितामृतधारं (विकटस्य करालस्य विधुन्तुदस्य राहोः दन्तदलनेन चर्वणेन गलिता अमृतधारा यस्मात् तं) विधुम् (चन्द्रम्) इव बहति (रोदितीति भावः; तेन च वदनमस्याः निष्पीड़ितसुधासारं सुधाकरमिव सम्भावयामि) ॥४॥

अनुवाद—जैसे कराल राहुके दशनसे संदशित होकर सुधांशुसे पीयूषधारा स्रवित होती है, वैसे श्रीराधाके उत्कृष्ट मुखकमलके चञ्चल नेत्रोंसे अनवरत नयन-वारि विगलित हो रहा है।

पद्यानुवाद—

शोभित लोल विलोचन जल ढल आनन कमल उदार।
राहु दलित विधुसे बह उठती ज्यों अमृतकी धार॥
वह विरह विदग्धा दीना।
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुममें है तल्लीना॥

बालबोधिनी—सखी कह रही है—हे माधव! आपके विरहमें सन्तप्ता श्रीराधाके चञ्चल तथा विस्तृत नेत्रोंसे आँसुओंका तार टूट ही नहीं रहा है। ऐसा लगता है मानो भयङ्कर राहुने अपने दन्तोंसे चन्द्रमाको काट लिया हो और जिनसे अविरल अमृतकी धारा प्रवाहित हो रही हो। श्रीराधाका मुख मानो कमल नहीं, चन्द्रमा हो और आँखोंसे बहते अश्रुबिन्दु अमृत सरीखे हैं।

प्रस्तुत पद्यमें उपमा अलङ्कार है।

विलिखति रहसि कुरङ्ग–मदेन भवन्तमसमशर–भूतम्।
प्रणमति मकरमध्ये विनिधाय करे च शरं नवचूतम्—
सा विरहे तव दीना... ॥५॥

अन्वय—[पुनश्च] रहसि (एकान्ते) कुरङ्गमदेन (कस्तूर्य्या) असमशरभूतं (कामस्वरूपं) भवन्तं [स्वचित्तोन्मादकत्वात्] विलिखति, अधः (तस्य कामरूपस्य भवतः अधस्तात्) मकरं (कामवाहनं) [विन्यस्य] [लिखितस्य मदनभूतस्य भवतः] करे (हस्ते) नवचूतं (चूताङ्कुरस्वरूपं) शरं विनिधाय (लिखित्वा) [त्वदन्यः कामो नास्तीति मत्वा] प्रणमति च॥४॥

अनुवाद—हे श्रीकृष्ण! श्रीराधा एकान्तमें कस्तूरीसे, तुम्हें साक्षात् कन्दर्प मान आम्रमञ्जरीका बाण धारण किये हुए तुम्हारी मोहिनी मूर्त्ति चित्रित करती हैं और वाहन स्थान पर मकर (घड़ियाल) बनाकर प्रणाम करती हैं।

पद्यानुवाद—

मृगमदसे हरि—चित्र खींचती, फिर लख उसमें 'काम'
आम्र–मञ्जरी शर धर करमें, करती सलज प्रणाम।

जिन चरणोंमें रत माधव! वह, वही बँधासे धीर।
देख विमुख, यह चन्द्र जलाकर बढ़ा रहा है पीर॥
वह विरह विदग्धा दीना।
माधव, मनसिज विशिख भयाकुल तुममें है तल्लीना॥

बालबोधिनी—जब श्रीराधा एकान्तमें बैठी होती हैं तो कस्तूरीके रससे आपका चित्र रचती हैं—कामदेवके रूपमें। क्योंकि आपके अतिरिक्त चित्त-उन्मादकारी और कौन हो सकता है अथवा आप ही उसकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। इसके पश्चात् आपके हाथमें कामका सबसे शक्तिशाली बाण—आम्रमञ्जरीको अङ्कित कर देती है। कामदेवताके रूपमें आपको अभिलिखितकर वाहनके स्थानपर मकर बना देती हैं, पुनश्च काम-तापसे मुक्ति पानेके लिए आपको प्रणाम करती हैं, स्तवन करती हैं।

प्रस्तुत पद्यमें उपमा अलङ्कार है।

प्रतिपदमिदमपि निगदति माधव तव चरणे पतिताऽहम्।
त्वयि विमुखे मयि सपदि सुधानिधिरपि तनुते तनुराहम्॥
सा विरहे तव दीना... ॥६॥

अन्वय—[न केवलं प्रणमति, परन्तु]—प्रतिपदम् (प्रतिक्षणम्) इदं निगदति च—हे माधव (हे मधुसख) अहं तव चरणे पतिता (त्वामेव शरणं व्रजामीत्यर्थः); [यतः] त्वयि विमुखे [सति] सुधानिधिरपि (अमृतकिरणोऽपि चन्द्रः) मयि सपदि (तत्क्षणादेव) तनुदाहं तनुते (शरीरं भस्मीकरोति)॥६॥

अनुवाद—हे माधव! (उस मूर्त्तिके रूपमें तुम्हें अङ्कित कर बार-बार प्रार्थना करती हैं)—हे श्रीकृष्ण! मैं आपके चरणोंमें पड़ती हूँ देखो, जैसे ही तुम मुझसे विमुख हो जाते हो, यह अमृत-कलशको धारण करनेवाला चन्द्रमा भी मेरे शरीर पर दाह-वृष्टि करने लगता है।

बालबोधिनी—सखी कह रही है—हे श्रीकृष्ण! श्रीराधा जहाँ-जहाँ भी जाती हैं, वहीं प्रत्येक पग-पग पर कहती हैं—मैं आपके चरणोंमें पड़ी हूँ, आप मुझसे विमुख न हो, आप जब कभी भी मुझसे असन्तुष्ट होते हैं, उसी समय अमृत-निधि चन्द्रमा भी मेरे शरीरमें दाह ही पैदा करता है।

रसमञ्जरीकारने 'माधव' शब्दसे श्रीराधाका तात्पर्य सङ्केतित करते हुए कहा है कि कृष्ण, 'मा' शब्दसे कही जानेवाली लक्ष्मीके धव अर्थात् पति हैं। जब श्रीकृष्ण श्रीराधाके सन्निकट रहते हैं, तब सपत्नी लक्ष्मी भी श्रीराधाका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती, पराङ्मुख होनेपर तो लक्ष्मीका भाई चन्द्रमा श्रीराधाको अपनी बहनकी सौत समझकर अत्यन्त सन्तप्त करता है।

प्रस्तुत श्लोकमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है। चन्द्रमा अपने स्वभावके विरुद्ध कार्य कर रहा है, अतएव 'विरुद्ध' अलङ्कार भी है।

ध्यान-लयेन पुरः परिकल्प्य भवन्तमतीव दुरापम्।
विलपति हसति विषीदति रोदिति चञ्चति मुञ्चति तापम्॥
सा विरहे तव दीना... ॥७॥

अन्वय—[पुनश्च अतिव्यग्रतया ध्यानलयेन भवन्तं साक्षादिव कृत्वा विलपति]—[हे कृष्ण] अतीव दुरापं (दुर्लभं) भवन्तं ध्यानलयेन (समाधियोगेन) पुरः परिकल्प्य (सम्भाव्य) विलपति; [त्वत्प्राप्त्यानन्दोच्छलिता सती] हसति; [पुनस्तवान्तर्द्धाने] विषीदति, रोदिति च; [पुनः स्फुरन्तं भवन्तमुद्दिश्य] चञ्चति (इतस्ततो धावति); [पुनश्च प्राप्तमिति सम्भाव्य आलिङ्गनादिना] तापं (मनःक्षोभं) मुञ्चति (त्यजति च)॥७॥

अनुवाद—श्रीराधा तुम्हारे ध्यानमें लीन होकर तुम्हें प्रत्यक्ष रूपमें कल्पित करके विच्छेद यन्त्रणासे कभी विलाप करती हैं, कभी हर्ष प्रकाशित करती हैं तो कभी रोती हैं और कभी स्फूर्तिमें आलिङ्गिता हो सन्तापका परित्याग करती हैं।

पद्यानुवाद—

ध्यानमग्न हो चौंक समझती, सम्मुख हैं यदुवीर
कभी विलपती, कभी कलपती, होकर अधिक अधीर।

बालबोधिनी—सखी कह रही है—हे श्रीकृष्ण! अन्वेषण आदिके द्वारा श्रीराधाके लिए आप दुष्प्राप्य हो गये हैं, ध्यानमें लीन होकर परिकल्पना करती हैं कि तुम उसके समीप ही हो। सम्मुख अनुभव होनेपर चित्र बनाती है और चित्रलिखित तुम्हें देखने पर अपने निकट जानकर हँसने लगती हैं, मनमें प्रसन्नताकी हिलोरें तरङ्गायित होने लगती हैं, लेकिन आपके द्वारा आलिङ्गन न किये जाने पर उनका उन्मादित अट्टहास क्रन्दनमें बदल जाता है, तुम्हारी कल्पित प्रतिमूर्त्तिके तिरोहित होनेपर पुनः आलिङ्गित करनेका उपक्रम करती हैं। सोचती हैं, यदि श्रीकृष्ण मुझे देखेंगे तो मेरे वशवर्ती हो जाएँगे—इस आभाससे अपनी छटपटाहट, छनछनाहट और सन्तापका परित्याग करती हैं।

रसिकप्रियाके अनुसार विलपति न होकर 'विलिखति' होना चाहिए। इसमें दीपक अलङ्कार है। नायिकाका किलकिञ्चित् भाव है॥७॥

श्रीजयदेव-भणितमिदमधिकं यदि मनसा नटनीयम्।
हरि-विरहाकुल-वल्लव-युवति-सखी-वचनं पठनीयम्—
सा विरहे तव दीना... ॥८॥

अन्वय—यदि मनसा नटनीयं [नर्त्तयितव्यं], [तर्हि] श्रीजयदेव-भणितम् (जयदेवोक्तम्) इदं हरिविरहाकुल-वल्लव-युवति-सखी-वचनम् (हरेः कृष्णस्य विरहेण आकुलायाः वल्लवयुवत्याः श्रीराधायाः सख्याः वचनं दूतीवाक्यम्) अधिकं (यथास्यात् तथा) पठनीयम्॥८॥

अनुवाद—श्रीराधाकी प्रिय सखीद्वारा कथित और श्रीजयदेव द्वारा विरचित यह अष्टपदी मानस-मन्दिरमें अभिनय करने

योग्य है और साथ ही हरिके विरहमें व्याकुल श्रीराधाकी सखीके वचन बार-बार पढ़ने योग्य है।

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें गीतगोविन्दकार महाकवि श्रीजयदेव कहते हैं कि तरुणी श्रीराधा श्रीकृष्णके विरहमें व्याकुल हैं। सखीने श्रीकृष्णके पास श्रीराधाके प्रणयका निवेदन किया है। सखी द्वारा यह प्रणय-वचनावली मनके द्वारा अभिनय करणीय है। नाट्यमें अभिनय प्रधान होता है, अतः 'नटनीयम्' का अर्थ हुआ अभिनीत किये जाने योग्य। 'नटनीय' का अर्थ रसनीय तथा आस्वादनीय भी है। नाट्यशास्त्रमें भरतमुनिने कहा है—'नटशब्दो रसे मुख्यः'। नट शब्दका मुख्यार्थ 'रस' है। 'श्रीजयदेवभणितमिदमधिकम्'—इस वाक्यांशका अभिप्राय यह है कि श्रीजयदेव कविकी सम्पूर्ण उक्तियोंमें श्रीराधाकी सखीकी उक्ति ही सार-सर्वस्व है। यही वैष्णवों द्वारा भजनीय एवं आस्वादनीय है।

आवासो विपिनायते प्रिय-सखी-मालापि जालायते
तापोऽपि श्वसितेन दाव-दहन-ज्वाला-कलापायते।
सापि त्वद्विरहेण हन्त हरिणी-रूपायते हा कथं
कन्दर्पोऽपि यमायते विरचयञ्शार्दुल-विक्रीड़ितम्॥१॥

अन्वय—[त्वां बिना न कुत्रापि सा निर्वृतिं लभते इत्याह]—हन्त (खेदे) [हे कृष्ण] त्वद्विरहेण (तव विच्छेदेन) सापि (राधापि) हरिणी-रूपायते (आत्मानं हरिणीरूपामिव आचरतीत्यर्थः; श्लेषोक्त्या पाण्डुवर्णा जाता इत्यर्थः); [तथाहि] [तस्याः] आवासः (वसतिस्थानं) विपिनायते (विपिनमिव आचरति; वनीभूतं मन्यते इतिभावः); [तस्याः] प्रियसखीमालापि (प्रियसखीसमूहोपि) जालायते (जालमिव आचरति; स्थानान्तरं गन्तुं प्रतिवध्नातीति भावः); तापः (देह-सन्तापः) अपि

श्वसितेन (श्वासानिलेन) दाव-दहन-ज्वालाकलापायते (दावदहनस्य दावाग्नेः ज्वाला-कलाप इव आचरति; यथा वातेन अग्नरुल्का निर्दहन्ति तद्वदिति भावः); [किं बहुना] हा, (अत्यन्त-शोक-क्षोभसूचकमव्ययम्) कन्दर्पोऽपि (मदनोऽपि) शार्दूल-विक्रीड़ितं (शार्दुलस्य विक्रीड़ितम् आचरितं) विरचयन् (कुर्वन्) कथं समायते (यम इव आचरति; महदेतदनुचितं मम प्राणहरणचेष्टना-दित्यभिप्रायः); [प्रत्येकेनानेन हरिण्याइव श्रीराधायाः प्रियतमे दृढ़ानुरागः श्रीकृष्णस्य च स्निग्धायामस्नेहव्यवसायात् काठिन्यं प्रदर्शितम्] ॥१ ॥

अनुवाद—हे श्रीकृष्ण! मेरी सखी श्रीराधा एक हिरनीकी भाँति आचरण करने लगी है, अपने आवासको तो उसने अरण्य मान लिया है, सखीवृन्द उसे किरात-जाल सा भासता है, निज सन्तप्त निःश्वासोंसे अभिवर्द्धित शरीरका सन्ताप दावानल-शिखाकी भाँति प्रतीत हो रहा है। हाय! कन्दर्प भी शार्दूल स्वरूप होकर क्रीड़ा करता हुआ उसके प्राणोंका हनन करनेका उपक्रम करते हुए यम बन गया है।

पद्यानुवाद—

गृह भी वन सा भास रहा है, (बजी कौन सी भेरी?)
उसे सखी भी दीख रही हैं, घेरे बनी अहेरी
श्वासोंका उत्ताप जलाता है, दावा की आगी
'काम' व्याघ्रसे डरी-डरी फिरती हरिणी-सी भागी॥

बालबोधिनी—सखीके द्वारा श्रीराधाकी दैन्य-स्थितिका चित्रण हो रहा है। श्रीराधा श्रीकृष्णके वियोगमें हरिणीके समान आचरण कर रही हैं। पाण्डुवर्णा वह श्रीराधा अपने निवास-स्थानको विपिन समझ बैठी हैं। प्रिय-समागम न होनेसे विरह-विदग्धा वह इधर-उधर जाना चाहती है, किन्तु सामने बिछा हुआ है बहेलियारूपी सखियोंका जाल, जिससे

वह विवश हो मन मसोस कर रह जाती हैं। उसकी प्रिय सखियाँ ही उसके लिए व्याध–जालके समान बन्धनकारी हो रही हैं। जैसे वनमें लगी अग्निको देखकर हरिणी घबराकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाती है, उसी प्रकार देहके सन्तापके साथ मिलकर दीर्घ निःश्वास दावाग्निके समान अथवा उल्कापातके समान उन्हें तपा रहा है। ओह! ये निःश्वास दावानलकी ज्वालाके समान लगते हैं। मुखसे केवल हाहाकार करती हैं। श्रीकृष्णका सान्निध्य रहने पर जो कामदेव अनुकूल बना रहता है, वह तो शार्दुल–क्रीड़ा कर रहा है, यमराज जैसा लगता है, वह श्रीराधाको मानो मार डालना चाहता है।

शार्दूलविक्रीड़ित काम है, बाघकी तरह झपट्टा मारता हुआ उस मासूम हरिणीको और इस श्लोकका छन्द है शार्दूलविक्रीड़ित और यह पूरा छन्द ही जैसे कामदेवकी क्रीड़ा हो।

श्रीराधाजीको हरिणीकी उपमा देनेमें भी सार्थकता है। सखी कहना चाहती है कि बुद्धिमान व्यक्ति किसी स्नेहवानके साथ प्रेम करता है। श्रीराधाने तो आपके साथ स्नेह किया है, स्नेहके सागरमें सराबोर रहती हैं और आप कैसे स्नेह–रहित हैं। एकपक्षीय प्रेम तो कोई पशुजाति जीव ही कर सकता है। पुनश्च हरिणी तो वैसे ही देहसे दुर्बल एवं किंकर्तव्यविमूढ़ होती है। निरीह मासूम श्रीराधाको श्रीकृष्णका स्नेह सता रहा है और ऊपरसे उसपर काम अपना पराक्रम दिखा रहा है। यह तो वही विचारी श्रीराधा हैं जो निःस्पृह व्यक्तिसे प्रेम करती हैं।

शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है। लुप्तोत्मा एवं विरोधाभास अलङ्कार है।

अथ नवमः सन्दर्भः

गीतम् ॥९॥

देशाखरागैकतालीतालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—यहाँ नवें प्रबन्धका प्रारम्भ होता है। यह गीत देशराग तथा एकताली तालसे गाया जाता है।

बालबोधिनी—जब चन्द्रमाकी किरणें चतुर्दिक दीप्तिशाली हो रही हों और नायक मल्ल-मूर्त्तिमें विशाल भुजाओंके द्वारा विस्फोटका आविष्कार कर लोम हर्षका प्रकाश करता हो, उस समय देशाख राग गाया जाता है।

स्तन-विनिहितमपि हारमुदारम्,
सा मनुते कृश-तनुरिव भारम्—
राधिका विरहे तव केशव॥१॥ ध्रुवम्

अन्वय—[पुनस्तचेष्टामेव विशेषतया आह]—हे केशव, तव विरहे कृशतनुः (क्षीणाङ्गी) सा राधिका स्तनविनिहितम् (स्तनन्यस्तम्) उदारम् (मनोहरम्) अपि हारं [शरीरदौर्वल्यात्] भारमिव मनुते (हारवहनस्यापि सामर्थ्यं तस्या नास्तीत्यर्थः)॥१॥

अनुवाद—केशव! आपके विरहकी अतिशयताके कारण श्रीराधा ऐसी कृशकाया हो गयी हैं कि स्तनपर रखे हुए मनोहर हारको भी भारस्वरूप समझ रही हैं।

पद्यानुवाद—

है विरहकी पीर भारी।
छीजती जाती 'बिचारी'॥
हार उरका भार बनता।

बालबोधिनी—इस प्रबन्धमें सखी पुनः नयी शैलीसे श्रीराधाकी व्यथाका वर्णन करती है। श्रीकृष्णके विरहके कारण श्रीराधाके अङ्ग अत्यधिक कृश हो गये हैं। वक्षःस्थल

पर पहनी हुई कमल-पुष्पोंकी मनोहर मालाको भी अपनी शारीरिक दुर्बलताके कारण धारण करनेकी सामर्थ्य उसमें नहीं रही।

गीतगोविन्दके दीपिकाकारका कहना है कि 'कम्' सुखका नाम है। श्रीकृष्ण कम्के नियन्ता हैं, इसीलिए केशव कहे जाते हैं। दीपिकाकार आगे कहते हैं 'केश' शब्दका अर्थ है सभीको सुख प्रदान करना। केशव पदका 'व' शब्द युवतियोंके जीवनस्वरूप अमृतका वाचक है। श्रीकृष्ण युवतियोंके जीवनस्वरूप होनेसे केशव कहे जाते हैं। फिर केशवसे स्नेह करनेवाली श्रीराधा दुःखी क्यों? वह विरहमें ऐसी विचित्र बातें कहती हैं जो कही नहीं जातीं—सारे आभूषण भारी ही नहीं, अपितु शाप बन गये हैं—मालाको फेंक देना चाहती हैं।

सरस-मसृणमपि मलयज-पङ्कम्
पश्यति विषमिव वपुषि सशङ्कम्—
राधिका विरहे.... ॥२॥

अन्वय—[न केवलं हार-वहनासमर्था अपि तु] सरसं (आर्द्रं) मसृणम् (सुघृष्टम्) अपि मलयज-पङ्कं (चन्दन-विलेपनं) वपुषि (शरीरे) विषमिव (गरलं यथा) सशङ्कं [यथा स्यात् तथा] पश्यति॥२॥

अनुवाद—केशव! विरहवियुक्ता वह श्रीराधा अपने शरीरमें संलग्न सरस, कोमल एवं सुचिक्कण चन्दन-पंकको सशंकित होकर विषकी भाँति देख रही हैं।

पद्यानुवाद—

मलय विषका सार बनता

बालबोधिनी—मलय चन्दनका लेप अत्यन्त चिकना और अतिशय सरस होता है, परन्तु वह समझती हैं कि विषसे उसका लेपन किया गया है। श्रीकृष्णकी विरहव्यथाकी

व्याकुलतासे सम्प्रति चन्दन-विलेपन श्रीराधाको सुखदायी न होकर दुःखकारी हो रहा है।

श्वसित-पवनमनुपम-परिणाहम्।
मदन-दहनमिव वहति सदाहम्—
राधिका विरहे.... ॥३॥

अन्वय—अनुपम-परिणाहं (अनुपमः अतुलः परिणाहः दैर्घ्यं यस्य तं सुदीर्घमित्यर्थः) सदाहं (दाहसहितं) श्वसित-पवनं (निश्वास-मारुतं) मदन-दहनं (कामाग्निम्) इव बहति [सन्तप्ताया निःश्वासोऽपि सन्तप्त इत्यर्थः]॥३॥

अनुवाद—मदनानलकी ज्वालाओंसे सन्तप्त दीर्घ निःश्वास उनके शरीरको दग्ध किये जा रहे हैं, फिर भी वह उनका वहन कर रही है।

पद्यानुवाद—

श्वासका आधार बनता।
दहनका उपचार बनता॥

बालबोधिनी—विरह-विच्छेदसे अन्तःकरणमें सन्ताप अति असहनीय हो गया है, उपचार करनेके लिए गरम-गरम उसाँस छोड़ती हैं तो लगता है सारा शरीर धधक रहा है, मदन ही इस आगमें धधक रहा है।

दिशि दिशि किरति सजल-कण-जालम्।
नयन-नलिनमिव विदलितनालम्—
राधिका विरहे.... ॥४॥

अन्वय—विदलितनालं (छिन्नवृन्तं) [नलिनमिव] दिशि दिशि (प्रतिदिशं) नयननलिनं सजलकणजालं (जलकणजालैः सह वर्त्तमानं यथातथा) किरति; [नयनादश्रुपातः पद्मात् नीरच्यूतिरिव प्रतिभातीत्यर्थः]॥४॥

अनुवाद—मृणालसे विच्छिन्न होकर सजल कमलवत्

नयन-कमलको चारों दिशाओंमें विक्षिप्त कर अश्रुकणकी वृष्टि कर रही है।

पद्यानुवाद—

आँखमें आँसू उमंगते
कमल-कण सरमें तरंगते
खोजती दिशि दिशि सहमते
प्रिय! कहाँ हो तुम विरमते?

बालबोधिनी—उसकी आँखें ऐसी लगती हैं, जैसे कमल हों, पर उस कमलका नाल विगलित हो गया है। आँसुओंसे भरे नेत्र जलकणोंसे युक्त नीलकमलोंके समान मनोहर लगते हैं। आँसुओंके तारोंसे दिशाएँ आबद्ध हो जाती हैं, एक जाल-सा तन जाता है, अवरुद्ध हो जाती हैं दिशाएँ। आपके आगमनकी प्रतीक्षामें चारों ओर देखती रहती हैं कि आप किसी दिशासे आते हुए दिखायी पड़ जाएँ। नाल गल जाने पर जैसे कमलकी स्थिति नहीं रहती, वैसे ही उनकी आँखें कहीं नहीं ठहरतीं। कहीं कोई आधार नहीं, जिसपर वह अपनी दृष्टि टिका सकें।

इस श्लोकमें उपमा तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

त्यजति न पाणि-तलेन कपोलम्।
बाल-शशिनमिव सायमलोलम्—
राधिका विरहे.... ॥५॥

अन्वय—सायं (सन्ध्यायां) (रागरञ्जिते आकाशतले संलग्नमिति शेषः) अलोलं (अचञ्चलं) बालशशिनमिव (तरुणचन्द्रमिव) पाणितलेन (करतलेन सुलोहितेनेत्यर्थः) कपोलं (विरहपाण्डुरं गण्डदेशं) [कपोलस्य अर्द्धभागमात्रदर्शनात् आताम्रत्वात् पाण्डुत्वाच्च बालचन्द्रेण अस्योपमा] न त्यजति (धारयतीति भावः) ॥५॥

अनुवाद—अरुणवर्णके कर-कमल पर कपोलको सन्ध्या समयमें आकाश-स्थित चन्द्रकलाकी शोभाके समान धारण किये एकान्तमें बैठी रहती हैं।

पद्यानुवाद—

हाथ पर हनु धर सरसती
बाल विधु शोभा बरसती।

बालबोधिनी—किंकर्तव्यविमूढ़ श्रीराधा जड़-सी हो गयी हैं। उनकी एक हथेली बराबर उनके गालों पर लगी रहती है, चिन्तामग्न होनेके कारण उसे छोड़ती नहीं। दिन किसी प्रकार निकल जाता है, पर क्या होगा जब रात आयेगी, वह तो मेरे लिए एक युगके समान होगी। सायंकालके चन्द्रमाके समान उनका मुख क्षीणकान्ति निस्तेज, शान्त तथा हाथसे आधा ढका हुआ द्वितीयाके चन्द्रमाके समान लगता है।

सन्ध्या जैसे बाल चन्द्रमाको टिकाये रहती है, उसी प्रकार हथेलीका कवच मानो उसे सुरक्षा प्रदान कर रहा है।

हाथसे ढके हुए अर्द्धदृश्यमान मुखकी उपमा चन्द्रमासे दी गयी है।

नयन-विषयमपि किसलय-तल्पम्।
कलयति विहित-हुताशवि-कल्पम्—
राधिका विरहे.... ॥६॥

अन्वय—किशलय-तल्पमपि (पल्लव-शय्यामपि) नयन-विषयं (नेत्रगोचरं) विहित-हुताश-विकल्पं (विहितः जनितः हुताशस्य अग्नेः विकल्पः भ्रमो यत्र तादृशं यथा स्यात् तथा) गणयति (मन्यते)॥६॥

अनुवाद—मनोरम नवीन पल्लवोंकी शय्याको साक्षात् रूपसे विद्यमान देखकर भी उसे विभ्रमके कारण प्रदीप्त हुताशन (आग) के समान मान रही हैं।

पद्यानुवाद—

पल्लवोंकी सेज लखती
'आग–सी' कहती—सुलगती।

बालबोधिनी—विरहमें श्रीराधा उद्विग्ना हो गयी हैं। सामने नये–नये लाल–लाल किसलयोंसे निर्मित शय्याको देखती हैं तो उसे लगता है जैसे चिता रची गयी है, उस चितामें आग धधक रही है। प्रत्यक्षमें श्रीराधाको भ्रम हो रहा है, क्योंकि उनकी आँखें आपमें लगी हुई हैं। अग्निके समान ताम्र–वर्ण वाले नवीन पल्लवोंसे रचित शय्यामें अग्निका भ्रम हो रहा है उसे। सदृश वस्तुमें ही सदृश वस्तुका संशय होता है। अग्नि ताम्रवर्णका तथा सन्तापकारक होती है, किसलय भी ताम्रवर्णका विरहणियोंके लिए सन्तापकारी होता है। श्रीराधाको किसलयमें आगका भ्रम हो रहा है।

हरिरिति हरिरिति जपति सकामम्।
विरह–विहित–मरणेव निकामम्—
राधिका विरहे.... ॥७॥

अन्वय—विरहविहित–मरणा (त्वद्विरहेण विहितम् अवधारितं मरणं यस्याः सा) इव [सती] निकामं (मरणे या मतिः सा एव जीवस्य गतिरिति मत्वा अनवरतं) सकामं (साभिलाषं) हरिरिति हरिरिति जपति॥७॥

अनुवाद—विरहके कारण उनका प्राणत्याग निश्चित–सा हो गया है, श्रीराधा निरन्तर 'श्रीहरि, श्रीहरि' इस नामका आपकी प्राप्तिकी कामनासे जप करती रहती हैं।

पद्यानुवाद—

अहर्निश हरि–नाम जपती
मृत्यु क्षण क्षण झलक टलती।

बालबोधिनी—श्रीराधाका विरहानलमें दग्ध होनेके कारण यह निश्चित–सा ही हो गया है कि अब उनके प्राण बचेंगे

नहीं। संसारसे निराश तथा मुमुर्षु जन जैसे श्रीहरिका अहर्निश नाम जपते हैं, उसी प्रकार श्रीराधा भी आपकी प्राप्तिकी अभिलाषासे सर्वदा श्रीहरिका नाम जपती रहती हैं। प्रणत-क्लेश-नाशन होनेसे श्रीकृष्ण हरि कहे जाते हैं। हरि-हरि जप करनेसे इस जन्ममें न सही, दूसरे जन्ममें वे अवश्य ही प्रियतमके रूपमें प्राप्त होंगे—इसी कामनाको लेकर जप कर रही हैं।

श्रीजयदेव-भणितमिति गीतम्।
सुखयतु केशव-पदमुपनीतम्॥
राधिका विरहे.... ॥९॥

अन्वय—इति (उक्तप्रकारेण) श्रीजयदेव-भणितं (श्रीजयदेवोक्तं) गीतं केशव-पदं (श्रीकृष्णपदम्) उपनीतं (प्राप्तं; तत्पदयोः समर्पित-चित्तमिति यावत्) [भक्तम्] सुखयतु (सुखीकरोतु)॥९॥

अनुवाद—श्रीजयदेव प्रणीत यह गीत श्रीकृष्णके चरणोंमें शरणागत हुए वैष्णवोंका सुख विधान करे।

पद्यानुवाद—

गीतमें 'कवि' भींगते हैं
हरि स्वयं आ रीझते हैं।
है विरहकी पीर भारी
छीजती जाती बिचारी॥

बालबोधिनी—श्रीजयदेवके द्वारा नवें प्रबन्धके रूपमें श्रीहरिका यह गीत प्रस्तुत हुआ है। यह गीत 'भक्तजनोंको सुख देगा', श्रीराधाकी इस चित्त-भूमिका स्मरण सीधे केशव-चरणोंमें पहुँचेगा। इस गीतको कविने वैष्णवोंके सान्निध्यमें गाया है। यहाँ 'केशव' पद वैष्णवोंका वाचक है।

'केशवः पदं = स्थानं यस्याऽसौ तं केशवपदम्' अर्थात् भगवान् जिनके द्वारा प्राप्य हैं, वे वैष्णव ही केशव पद-वाच्य हैं।

इस सम्पूर्ण गीतमें मालाचतुष्पदी नामक छन्द तथा उपमा अलङ्कार है।

सा रोमाञ्चति शीत्करोति विलपत्युत्कम्पते ताम्यति
ध्यायत्युद्भ्रमति प्रमीलति पतत्युद्याति मूर्च्छत्यपि।
एतावत्यतनु-ज्वरे वरतनु-र्जीवेन्न किं ते रसा-
त्स्ववैंद्य-प्रतिम! प्रसीदसि यदि त्यक्तोऽन्यथा हस्तकः॥१॥

अन्वय—[पुनरतीव कैवल्यं वर्णयति]—हे स्ववैंद्यप्रतिम (अश्विनी-कुमार-सदृश-सुचिकित्सक) यदि त्वं प्रसीदसि (प्रसन्नो भवसि) [तर्हि] एतावति (उत्कटेऽपि इत्यर्थः) अतनु-ज्वरे (कामज्वरे; अन्यत्र अनल्पे हिते ज्वरे) सा वरतनुः (वरवर्णिनी) राधा ते (तव) रसात् (अनुग्रह-जनितात् अनुरागात्; अन्यत्र रस-प्रयोगात् औषधात्) किं न जीवेत् [अपि तु जीवेदेव]; [वरतनुरिति तत्समा अन्या नास्तीति तस्या रक्षणं युक्तमिति ध्वनिः]; अन्यथा (नोचेत्) हस्तकः (हस्तक्रिया; पाचनाद्यौषधान्तर-दानरूपा) [वैद्यैः] त्यक्तः [दानेऽपि औषधस्य विषयाप्राप्तेरित्याशयः; कामज्वरपक्षेऽपि शीतलाद्युपचारः सखीभिस्त्यक्ते इत्यर्थः] [ज्वरावस्थां दर्शयति]—सा रोमाञ्चति (रोमाञ्चिता भवति) शीत्करोति (शीत्कारं करोति) विलपति (रोदिति) उत्कम्पते (उच्चैःकम्पते) ताम्यति (ग्लानिमाप्नोति) ध्यायति (कथं लभ्यते इति चिन्तयति) उद्भ्रमति (उच्चैः भ्रान्तिमाप्नोति) प्रमीलति (अक्षिणी सङ्कोचयति) पतति (भूमौ लुठति) उद्याति (उत्थातुमिच्छति) मूर्च्छति (मोहं प्राप्नोति) अपि॥१॥

अनुवाद—हे अश्विनीकुमार सदृश वैद्यराज श्रीकृष्ण! वराङ्गना श्रीराधा विरह-विकारमें विमोहित होकर कभी रोमाञ्चित होती हैं, कभी सिसकने लगती हैं, कभी चकित हो जाती हैं, कभी उच्च स्वरसे विलाप करती हैं, कभी कम्पित होती हैं, कभी एकाग्रचित्त होकर तुम्हारा ध्यान

करती हैं, क्रीड़ास्थलोंमें भ्रमण करती हैं, विषम विभ्रमके कारण विह्वल हो नेत्रोंको निमीलित कर लेती हैं, कभी वसुधा पर गिर पड़ती हैं, पुनः उठकर चलनेकी तैयारीमें फिर मूर्च्छित हो गिर जाती हैं, उन्हें सन्निपात ज्वर हो गया है। यदि आप प्रसन्न होकर इस घोरतर मदन-विकारमें उसे औषधिरूप रसामृत प्रदान करें, तो उन्हें प्राण-दान मिलेगा। अन्यथा अब तो उनकी हाथोंकी चेष्टाएँ भी समाप्त हो जायेंगी—मर जायेंगी वह।

पद्यानुवाद—

कभी पुलकती, कभी विलपती और विसुध है होती
'सी सी' करके कभी सिहरती कभी बिहँसती, रोती।
गिरती उठती, चलती, फिरती, जगती-सी सो जाती
तीव्र ज्वराकुल-सी लगती है, पीड़ामें खो जाती॥

बालबोधिनी—श्रीराधाको महाज्वरकी पीड़ा है—कामज्वर अब सन्निपात अवस्थामें पहुँच गया है। वह श्रीराधा न केवल बाह्यवृत्तिसे आपमें अनुरक्त हैं, अपितु सात्त्विक भावसे भी वह आपमें ही जी रही हैं। सात्त्विक भावसे प्रख्यात वह अनेकों चेष्टाएँ कर रही हैं, जिनके नाम हैं—

स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभङ्गोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलयावित्यष्टौ सात्त्विका मताः॥

रोमाञ्चति—इस पदके द्वारा श्रीराधाके रोमाञ्च नामके सात्त्विक भावका वर्णन किया है। **'रोमाञ्च विद्यते यस्य स रोमाञ्चः। रोमाञ्चित इत्यर्थः। तद्वदाचरति रोमाञ्चति।'** जिसको रोमाञ्च हो गया है, उसको रोमाञ्चित कहते हैं और रोमाञ्चितके समान आचरण करनेकी क्रियाको 'रोमाञ्चति' कहा जाता है।

वैवर्ण्य—आपकी चिन्ता और स्मृति बनी रहनेसे वह सीत्कार करती हैं।

अश्रु एवं वेपथु—आपके (श्रीकृष्णके) गुणोंका स्मरण

करके वह रोने लगती है, श्रीकृष्णके वियोगजन्य दुःखको कैसे सहन कर पाऊँगी, यह सोचकर काँपने लगती हैं।

स्वेद—ग्लानियुक्त होकर पसीने-पसीने हो जाती हैं।

स्तम्भ—नित्य निरन्तर आपका ध्यान करती हैं। आँखें मूँद लेती हैं, मानो सारे इन्द्रिय व्यापार स्थगित हो गये हों।

वेपथुका द्वितीय उदाहरण 'उद्भ्रमति' क्रीड़ादि स्थलोंमें आपको प्राप्त करनेकी इच्छासे भ्रमण करती हैं।

स्वरभङ्ग—'प्रमीलति' का अर्थ है आपके आलिङ्गन आदिका ध्यान करके अपनी आँखोंको बन्द कर लेती हैं। वह कुछ बोल नहीं पातीं।

स्तम्भका द्वितीय उदाहरण 'पतति' पदका अभिप्राय यह है कि वह, चलती हुई अत्यन्त क्षीण तथा दुर्बल शरीरके कारण गिर पड़ती हैं।

प्रलय—'उद्यति' पदके द्वारा बतलाया है कि वह गिरकर पुनः उठ खड़ी होती हैं और 'मूर्च्छति' पदके द्वारा प्रलय नामक सात्त्विक भावको सखी निर्दिष्ट करती है।

इस प्रकार श्रीराधाकी प्रिय सखीने श्रीकृष्णसे कहा है, अश्विनीकुमारकी भाँति स्ववैद्य सुचिकित्सक यदि आप श्रीराधा पर प्रसन्न हो जाएँ तो क्या यह उनकी कन्दर्प-विकार जनित बीमारी दूर नहीं होगी? यद्यपि बुखारकी इस अवस्थामें रसायन निषिद्ध हैं तथापि उनके शरीरमें नलिनी (कमल) दलका स्थापन, तालके पंखा आदिसे वीजन—कुछ भी उस विरह-व्याधिको उपशमित नहीं करता है, अपितु क्रमशः वर्द्धित होता जाता है। वह इतनी दुर्बल हो गयी हैं कि बस हाथोंको ही हिला पाती हैं—यदि वह यह जान ले कि आप उन्हें नहीं मिलेंगे तो उनका मरण सुनिश्चित ही है।

आपमें ही दत्तचित्तवाली उसे आप दर्शन देकर जीवित नहीं करते हैं, तो फिर आपको आश्रितोंके परित्यागका पाप भी लगेगा।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित नामक छन्द है। दीपक अलङ्कार है। विप्रलम्भ शृङ्गार-रस है। नायक अनुकूल अथवा दाक्षिण है। नायिका उत्कण्ठिता है। सखी कहती है जो नायिकाकी सहायिका है।

स्मरातुरां दैवत-वैद्य-हृद्य! त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्यम्।
निवृत्तबाधां कुरुषे न राधामुपेन्द्र! वज्रादपि दारुणोऽसि॥२॥

अन्वय—हे दैवतवैद्यहृद्य, (देववैद्यादपि हृदयङ्गम! वैद्याभ्यास-कृत्यनिपुण इति वा) त्वदङ्गसङ्गामृतमात्रसाध्यां (तव अङ्गसङ्ग एव अमृतं तन्मात्रेण साध्यां प्रतिकार्यां) स्मरातुरां (कामार्त्तां) राधां [यदि] विमुक्त-वाधां (रोगमुक्तां) न कुरुष्वे (तर्हि) हे उपेन्द्र, त्वं वज्रादपि दारुणः (कठोरः) असि (भवसि) [यद्वा त्वम् उपेन्द्रवज्रादपि इन्द्रवज्रात् उप अधिकम् उपेन्द्रवज्रं तदपि चेद्भवेत् तस्मादपि, दारुणः असि]। [अङ्गसङ्ग-मात्र-साध्य-कर्माकरणेन काठिन्यमेव ते पर्यवसितमित्यर्थः]॥२॥

अनुवाद—देववैद्य अश्विनीकुमारसे भी सुनिपुण सुचिकित्सक श्रीकृष्ण! हे उपेन्द्र! अनङ्गतापसे पीड़िता श्रीराधा एकमात्र आपके अङ्ग-संयोग रूप औषधामृतसे ही जीवन धारण कर सकती हैं। उस दुःसाध्य रोगवाली कामातुर श्रीराधाको इस मुमुर्षु दशामें यदि आप बाधा-रहित नहीं बनाते हैं तो निश्चय ही आप वज्रसे भी कठोर समझे जायेंगे।

पद्यानुवाद—

वैद्य! रसौषधि दे उसको अब फिरसे चेतन कर दो
इङ्गित-भाषिणिकी जिह्वामें फिरसे वाणी भर दो॥
स्पृशामृतसे 'स्मर'-बाधाको हे हरि! सत्वर हर लो।
काँप रही हूँ—कहीं न उरको, निठुर वज्र सा कर लो॥

बालबोधिनी—सखीने श्रीकृष्णको दो विशेषणोंसे विभूषित किया—

(१) दैवतवैद्यहृद्य—श्रीकृष्णकी अभिरामता एवं मनोरमता स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारोंसे भी बढ़कर है।

(२) उपेन्द्र—दुःखी देवताओंका कल्याण करनेके लिए श्रीकृष्णने माता अदितिके गर्भसे वामन भगवान्‌के रूपमें भी अवतार लिया था। इन्द्रके छोटे भाई होनेके कारण वे उपेन्द्र कहलाये। इस विशेषणसे श्रीकृष्णका आश्रितजनतासंरक्षणैकव्रतित्व का निदर्शन हुआ है।

श्रीराधा काम-व्याधिसे आतुर बनी हुई हैं।

उनके इस असाध्य रोगकी एकमात्र औषधि आपका संयोग है। आपके अङ्गोंका स्पर्श उनके लिए अमृतवत् है। कोई प्रयास भी तो नहीं करना है आपको। यदि आप अपने अङ्ग-सङ्गसे उनको संजीवित नहीं करते तो आप निश्चय ही वज्रसे भी अधिक कठोर माने जायेंगे। इस श्लोकका उपेन्द्रवज्रा वृत्त है।

कन्दर्प-ज्वर-सञ्ज्वरातुर- तनोराश्चर्यमस्याश्चिरं
चेतश्चन्दनचन्द्रमः-कमलिनी-चिन्तासु सन्ताम्यति
किन्तु क्लान्तिवशेन शीतलतनुं त्वामेकमेव प्रियं
ध्यायन्तीं रहसि स्थिता कथमपि क्षीणां क्षणं प्राणिति॥३॥

अन्वय—कन्दर्पज्वरसंज्वरातुरतनोः (कन्दर्पज्वरेण यः संज्वरः सन्तापः तेन आतुरा कातरा तनुर्यस्य तस्याः) अस्याः (राधायाः) चेतः (चित्तं) चन्दन-चन्द्रमः-कमलिनी-चिन्तासु (चन्दनस्य चन्द्रसमः कमलिन्याः पद्मिन्याश्च स्पर्शनादिकन्तु दूरे आस्तां तेषां चिन्तासु) चिरं सन्ताम्यति (ग्लानिमृच्छति) [तर्हि कथं सा जीवतीत्याह]—किन्तु [असौ] क्षान्तिरसेन (त्वदागमन-प्रतीक्षा क्षान्तिः, तत्र यो रसोऽनुरागः तेन (शीतलतरं; चन्दनादयः शीतलाः त्वं शीतलतरः; यतः तदीयदोषेऽपि क्षमाशीलः; क्षमावतां देहे उष्णता न जायते इति भावः) एकम् (अद्वितीयम्; एतेन अनन्यगतित्वं सूचितं) प्रियं [त्वां] रहसि (एकान्ते) स्थिता ध्यायन्ती [सती] क्षीणापि (नितरां कृशापि) कथं (कथमपि) क्षणं प्राणिति (जीवति) [तत्तद्वस्तुस्मरणे ताम्यति भवद्ध्यानेतु जीवतीति] आश्चर्यमेतत्॥३॥

अनुवाद—हे माधव! कैसे आश्चर्यकी बात है कि मदन-ज्वरके प्रबल सन्तापसे समाकुला क्षीणाङ्गी श्रीराधा चन्दन, चन्द्रमा और नलिनी आदि शीतोपचारके साधनका विचार करते ही सन्तप्त होने लगती हैं। अहो, क्लान्तिके कारण वह दुर्बला शीतल तनु आपका ही एकान्तमें ध्यान करती हुई किसी प्रकार कुछ क्षणोंके लिए जी रही है।

पद्यानुवाद—

चन्दन, चन्द, कमल—शीतल द्रव उसे जलाते रहते।
किन्तु तुम्हारे शीतल तनका चिन्तन करते करते—
विगत-ताप वह हो जाती है और विहँस है जाती।
जादूगर! है क्या रहस्य यह, मैं न समझ हूँ पाती?

बालबोधिनी—हे माधव! इस सन्निपातकी अवस्थाको प्राप्त हुई वह आपके सङ्गमकी आकांक्षासे ही जी रही हैं, ज्वरको दूर करनेवाले सारे उपाय व्यर्थ हो गये हैं। न चन्दनका लेप काम करता है, न चन्द्रमाकी शीतल चाँदनी और न ही कमलिनी ही। स्थिति तो ऐसी चरम सीमा पर पहुँच गयी है कि इन साधनोंको सोचते हुए वह और अधिक जलने लगती हैं। ज्वर कभी-कभी चढ़ते-चढ़ते इतना थका देता है कि शरीर एकदम स्वेदके प्रभावके कारण शीतल हो जाता है। वह विरहिनी अपने अशान्त मनमें केवल तुम्हारा ही ध्यान करती हैं और विरहमें क्षीण होकर वह कातर विजातीय यन्त्रणामें भी उस ध्यानके क्षणको उत्सव मानकर प्राण प्राप्त करती हैं।

यदि आप सोचें कि वह इस समय कैसे जी रही है, कैसे साँस ले रही हैं, तो उत्तर यही है कि आप ही उसके एकमात्र प्रियतम हैं, आपका शीतल वपु उसे स्पर्श करनेके लिए प्राप्त हो जाय। इस प्राप्त्याशामें कुछ क्षणों तक जी रही हैं। यदि आप अविलम्ब नहीं मिले तो हो सकता है वह पुनः जीवित न मिलें।

प्रस्तुत श्लोकमें विरोधालङ्कार है, अद्भुत रस है तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।

क्षणमपि विरहः पुरा न सेहे
नयन–निमीलन–खिन्नया यया ते।
श्वसिति कथमसौ रसालशाखां
चिरविरहेण विलोक्य पुष्पिताग्राम्॥४॥

अन्वय—[हे कृष्ण] नयन–निमीलन–खिन्नया ("हा कथं नयने निमेषो मिलितः येन क्षणं कान्तदर्शनं विहन्यते इति" नयनयोः निमीलनेऽपि खिन्नया) यया पुरा ते (तव) क्षणमपि विरहो न सेहे, असौ पुष्पिताग्रां (सञ्जात–कुसुमाग्रां) रसालशाखां विलोक्य चिर–विरहेण कथं श्वसिति (प्राणिति); [निमेषविरहासहन–शीलायाः चिरविरह–सहनमतीवाश्चर्यम्]॥४॥

अनुवाद—जो एक क्षणके लिए भी आपके दर्शनमें अन्तराल डालने वाले निमेष–निमीलनको सह नहीं पाती थीं, वही श्रीराधा तुम्हारे इस दारुण विरहमें सुललित सुपुष्पित आम्रवृक्ष (जिसके ऊपरकी शाखाओंमें नवीन पुष्प मञ्जरी संलग्न हैं) के समक्ष ही इस दीर्घकालिक विरहमें अवलोकन करते हुए कैसे जीवन अतिवाहित कर रही हैं—यह मैं नहीं समझ पा रही?

पद्यानुवाद—

जो राधा पल भर भी पहले, विरह न थी सह सकती,
"पलकें क्यों बरबस लगती हैं"—विधिको कोसा करती।
वही आज पुष्पित मधुऋतुमें, निरख तरुण आमोंको,
क्या जाने कैसे रख पाती है, पापी प्राणोंको?

बालबोधिनी—हे कृष्ण! इससे पूर्व श्रीराधाने क्षणभरके लिए भी आपका वियोग नहीं सहा है। वह तो सदा–सर्वदा आपके पास रहती थीं। जब उनके नेत्रोंके पलक गिरते थे

तो उस समय भी उनको बड़ा कष्ट होता था—सोचती थी ब्रह्माने यह पलक गिरनेकी प्रक्रिया क्यों बनायी है। आपके मुखावलोकनमें जरा-सी बाधा पड़ने पर भी जिनको अपार दुःख होता था, वह अब चिरकालसे इस विरहको रसालकी पुष्पिताग्रा शाखाओंको देखकर भी कैसे सह पा रही हैं? कैसे उसकी साँसें चलती हैं? हर डालके सिरे पर बौरे आ गये हैं, मञ्जरियाँ निकल आयी हैं। रसाल अर्थात् रसका समूह उसकी डालियाँ पुष्पिताग्रा हो गयी हैं। यह वसन्त ऋतुकी बेला है। वसन्त कालमें तो विरहियोंको वैसे ही मृत्युके तुल्य कष्ट होता है। अतएव हे श्रीकृष्ण! श्रीराधासे अविलम्ब मिलें।

श्रीराधा यह भी अपने मनमें सोचकर जी रही हैं कि पुष्पिताग्रा रसाल शाखाको देखकर जिस प्रकारसे मैं कामार्त हूँ, उसी प्रकारसे श्रीकृष्ण भी मेरे लिए कामार्त होंगे। अतः वे अवश्य ही मुझसे मिलने आयेंगे।

प्रस्तुत श्लोकमें पुष्पिताग्रा छन्द है।

वृष्टि-व्याकुलगोकुलावन-रसादुद्धृत्य गोवर्धनं
विभ्रद्बल्लव-वल्लभिरधिकानन्दाच्चिरं चुम्बितः
दर्पेणेव तदार्पिताधर-तटी-सिन्दूर-मुद्राङ्कितो
बाहुर्गोपतनोस्तनोतु भवतां श्रेयांसि कंसद्विषः ॥५॥

इति गीतगोविन्दे नवम सन्दर्भः इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये स्निग्ध-मधुसूदनो नाम चतुर्थः सर्गः।

अन्वय—[इदानीमाशिषा सर्गं समापयति महाकविः]—गोपतनोः (गोपाल-रूपस्य) कंसद्विषः (कृष्णस्य) वृष्टिव्याकुलगोकुलावन-रसात् (वृष्टिभिः व्याकुलं यत् गोकुलं तस्य अवनं रक्षणं तस्य रसः अनुरागः तस्मात्) गोवर्द्धनम् (तन्नामानं गिरिम्) उद्धृत्य (उत्तोल्य) विभ्रत् (दधानः) अधिकानन्दात् (वैदग्ध्य-सौन्दर्यादिकमुद्वीक्ष्य हर्षातिशयेनेत्यर्थः) वल्लव-वल्लभाभिः (गोपसुन्दरीभिः) चिरं चुम्बितः (दत्तचुम्बनः) [तथा] दर्पेण

(अहङ्कारेणैव इन्द्रस्य विजिगीषया) तदर्पिताधरतटीसिन्दुर-मुद्राङ्कितः (ताभिर्गोपाङ्गनाभिः) अर्पिता दत्ता या अधरतट्यः अधरप्रदेशाः तासां सिन्दूर-मुद्रया सिन्दूर-चिह्नेन अङ्कितः युक्तः) बाहुः श्रेयांसि (मङ्गलानि) तनोतु (विस्तारयतु) [अतएव श्रीराधावैकल्य-श्रवणेन स्निग्धश्चेष्टारहितो मधुसूदनो यत्र स-इत्ययं सर्गश्चतुर्थः]॥५॥

अनुवाद—जिन्होंने वारि-वर्षणसे व्याकुल गोकुलवासियोंकी रक्षाके लिए इन्द्रसे प्रतिस्पर्द्धा करते हुए गिरि गोवर्धनको ऊपर उठाकर धारण किया था, जो गोप युवतियोंके द्वारा दीर्घकाल पर्यन्त अतिशय रूपसे चुम्बित हुए थे, जिन पर गोपबधुओंके अधर-स्थित कुङ्कुम तथा ललाट स्थित सिन्दूर अङ्कित हुआ था, वे कंस विध्वंसकारी, गोपतनुधारी श्रीकृष्णकी भुजाएँ सबका मङ्गल विधान करें।

बालबोधिनी—'मङ्गलान्तानि च शास्त्राणि प्रथन्ते' अर्थात् जिस शास्त्रके आदि, मध्य तथा अन्तमें मङ्गल होता है, उस शास्त्रका प्रचुर प्रचार होता है। इस नियमके अनुसार कवि जयदेवने ग्रन्थके चतुर्थ सर्गकी समाप्ति पर आशीर्वादात्मक मङ्गलाचरण प्रस्तुत किया है कि श्रीकृष्णकी वे भुजाएँ पाठकों एवं श्रोताओंका मङ्गल विधान करें। उन भुजाओंकी विशेषताएँ हैं—

वृष्टि-व्याकुल-गोकुला वनरसादुद्धृत्य गोवर्धनं विभ्रत्। अर्थात् क्रुद्ध होकर जब इन्द्रने गोकुलवनको विनष्ट करने हेतु पुष्कर एवं आवर्तक मेघोंसे भयङ्कर वर्षा करना प्रारम्भ किया था, उस समय समस्त गोपमण्डली व्याकुल हो गयी थी। यह देखकर गोकुलकी रक्षाके लिए श्रीकृष्णने गोवर्धनाद्रिको उखाड़कर अपने हाथपर उठा लिया था। तब शृङ्गार-उद्दीपक वीर रसका प्रकाश उनकी भुजाओंमें हुआ था।

जब श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत धारण किये हुए थे, तब गोपियाँ अतिशय आनन्दमग्न होकर श्रीकृष्णकी भुजाओंका चुम्बन करने लगी थीं।

श्रीकृष्णके वैदग्ध्य, माधुर्य एवं सौन्दर्य आदिका अवलोकन करके चुम्बन करनेवाली इन गोपियोंका ललाट-स्थित सिन्दूर और लाल-लाल ओंठोंकी लालिमा भी उन भुजाओंमें चिह्नित हो गई थी।

इस प्रकार अपने इस सौभाग्यमदसे अङ्कित श्रीकृष्णकी भुजाएँ सबका कल्याण करें।

स्निग्ध मधुसूदन—इस प्रकार श्रीराधाकी विकलताका श्रवणकर श्रीकृष्ण स्निग्ध—चेष्टाशून्य हो गये।

श्रीगीतगाविन्द महाकाव्यमें स्निग्ध-मधुसूदन नामक चतुर्थ सर्गकी बालबोधिनी व्याख्या समाप्त।

❁ ❁ ❁

पञ्चम सर्गः

आकाङ्क्ष–पुण्डरीकाक्षः

अहमिह निवसामि याहि राधा–
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः।
इति मधु–रिपुणा सखी नियुक्ता
स्वयमिदमेत्य पुनर्जगाद राधाम्॥१॥

अन्वय—अथ तदार्त्तिश्रवण–व्याकुलोऽपि स्वापराधचिन्तया निरतिशय–भीतः तत्कोपशिथिलीकरणाय श्रीहरिः सखीमेव प्रेषितवानित्याह—अहम् इह (अस्मिन् निर्जन प्रदेशे) निवसामि (तिष्ठामि); त्वं याहि (गच्छ); मम वचनेन राधाम् अनुनय (सान्त्वय) [यदि त्वया तन्मानोऽपनेतुं शक्यते तर्हि] इह आनयेथाश्च [सहसा मम गमनेन मानोऽतिगाढ़ो भवेदित्यभिप्रायः] इति (इत्थं) मधुरिपुणा (कृष्णेण) नियुक्ता सखी स्वयम् एत्य (आगत्य) पुनः राधां जगाद॥१॥

अनुवाद—राधा–सखीकी बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—मैं यहीं रहता हूँ, तुम श्रीराधाके पास जाओ और मेरे वचनोंके द्वारा उनको अनुनय–विनयके साथ मनाकर यहाँ ले आओ। इस प्रकार मधुरिपु कृष्णके द्वारा नियुक्त होकर वह सखी स्वयं श्रीराधाके पास आकर इस प्रकारसे कहने लगी।

पद्यानुवाद—

मैं बैठा हूँ यहीं और सखि!
राधासे जा कहना—
कब तक निठुर! और उत्पीड़न
मुझको है यह सहना?

बालबोधिनी—चतुर्थ–सर्गके प्रबन्धोंमें श्रीराधाकी विषम विरह–वेदनाका वर्णन हुआ है। सखीसे श्रीराधाकी विषम

''तव विरहे वनमाली, पल पल आकुल आली।''

आर्त्ति सुनकर अपनी आपराधिक भावनासे बड़े लज्जित और भयभीत हुए तथा अपनी नित्य-प्रेयसी श्रीराधासे मिलनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हुए, किन्तु स्वयं वहाँ नहीं गये, सखीसे अपना दुःख व्यक्तकर अनुनय-विनय आदिके द्वारा श्रीराधाके कोपको दूर करनेके लिए उसे भेजा। सखीसे कहा कि तुम मेरी ओरसे श्रीराधाजीसे प्रार्थना करना और उसे जैसे-तैसे प्रसन्न करके यहाँ ले आना। जब तक वे नहीं आती हैं, तब तक मैं यहीं प्रतीक्षा करूँगा—इसी यमुना तटपर रहता हूँ। इस आदेशको प्राप्तकर सखी श्रीराधासे कहने लगी—

कृष्णके मनमें अपनी नित्य प्रेयसी श्रीराधाजीसे मिलनेकी आकांक्षा उत्पन्न हुई है, अतः इस सर्गको सकांक्ष-पुण्डरीकाक्ष कहा गया है।

पुण्डरीकाक्ष—यह पद श्रीकृष्णके मनोज्ञतम नेत्रोंकी ओर भी पाठकोंका ध्यान आकृष्ट करता है। 'तस्य यथा पुण्डरीकमेवमेवाक्षिणी'—उपनिषदोंमें श्रीकृष्णके नेत्रोंको लाल कमलके समान माना है।

प्रस्तुत श्लोकमें पुष्पिताग्रा वृत्त है।

अथ दशमः सन्दर्भः

गीतम् ॥१०॥

देशीवराडीरागेण रूपकतालेन गीयते॥प्रबन्धः॥

अनुवाद—यह प्रबन्ध देशीवराड़ी रागसे तथा रूपक तालसे गाया जाता है।

बालबोधिनी—सुकेशी नायिका जब हाथोंमें कङ्कण, कानोंमें देवपुष्प लगाये हुए हाथमें चँवर लिये वीजन करती हुई निज दयितके साथ विनोदन करती है, तब देशीवराड़ी राग प्रस्तुत होता है।

वहति मलय-समीरे मदनमुपनिधाय,
स्फुटति कुसुमनिकरे विरहि-हृदय-दलनाय
सखि! सीदति तव विरहे वनमाली॥१॥ध्रुवम्

अन्वय—सखि, तव विरहे वनमाली [त्वत्-कर-कल्पित-वनमालावलम्बनेन जीवतीति वनमालि-शब्दोपन्यासः] मदनम् उपनिधाय (उप समीपे-संस्थाप्य) मलय-समीरे बहति [सति], [तथा] कुसुमनिकरे कुसुम-समूहे) विरहि-हृदय-दलनाय (विरहिणां मर्मपीड़नाय) स्फुटति (विकसति) [सति] सीदति (अवसादं गच्छति; सन्तप्यते इत्यर्थः)॥१॥

अनुवाद—सखि! राधे! राधे! देखो, मदन-रसमें सिक्त करने हेतु मलयानिल प्रवाहित हो रहा है, विरही जनोंके हृदयको विदीर्ण करने वाला विविध कुसुमसमूह प्रस्फुटित हो रहा है। ऐसे उस वसन्त समयमें श्रीकृष्ण सकाम होकर तुम्हारे विरहसे दुःखी हो रहे हैं।

पद्यानुवाद—

विवश बनाती मदन-लहरियाँ, मिलकर मलय समीरे
चलदल-सा चल जाता जी जब, हँसती कलियाँ धीरे॥
तव विरहे वनमाली!
पल पल आकुल आली।

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कह रही है—हे सखि! यह वसन्तकी बेला है, इसमें विरहीजनोंको मार्मिक पीड़ा पहुँचाने वाला मलय समीरण बह रहा है, कामके उद्दीपनके रूपमें हृदयविदारक कुसुम-समुदाय विकसित हो रहा है। तुम्हारे विरहमें कृष्ण अतिशय विषण्ण हैं, तुम चलो और उनसे मिल लो।

वनमाली—तुम्हारे हाथकी बनी हुई वनमाला धारण कर किसी प्रकारसे जीवन धारण कर रहे हैं। इसी अभिप्रायसे श्रीकृष्णको वनमाली कहा गया है।

दहति शिशिरमयूखे मरणमनुकरोति।
पतति मदन–विशिखे विलपति विकलतरोऽति—
सखि! सीदति तव विरहे... ॥२॥

अन्वय—शिशिरमयूखे (शीतरश्मौ चन्द्रे) दहति (दहनवत् किरणं वितरति सति) मरणम् अनुकरोति (मृतवन्निश्चेष्टो भवति; मूर्च्छतीति भावः) [तथा] मदनविशिखे (कामबाणे) पतति [सति] अतिविकलतरः [सन्] विलपति [कुसुमपतने हृदि विध्यत्कामबाणभ्रमात् आक्रोशतीत्यर्थः]॥२॥

अनुवाद—वे चन्द्र–किरणोंसे संदग्ध होकर मुमुर्षु प्रायः हो रहे हैं। वृक्षोंसे मदन–शरके सदृश पुष्पोंके गिरनेसे उनका हृदय विद्ध हो गया है। ऐसी स्थितिमें वे अति विकल होकर विलाप कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

प्राण जलाने आती हैं नभसे चन्दाकी किरनें।
मदन–शरोंसे व्याकुल होकर लगते उठने–गिरने॥
तव विरहे वनमाली
पल–पल आकुल आली!

बालबोधिनी—तुम्हारे विरहसे सन्तप्त वनमालीको चन्द्रमा शीतल नहीं करता, अपितु उन्हें प्रदाहका अनुभव होता है। इस चन्द्रसे ज्वाला निकल रही है, जो उन्हें जलाये जा रही है, मानो मृत्यु ही साक्षात् उपस्थित हुई है। मृतप्राय व्यक्ति जैसी चेष्टा करता है, उसी प्रकार वे भी चेष्टा करते हैं। वृक्षोंके पत्ते तथा फूलोंके गिरनेसे उनको ऐसा लगता है कि मानो कामदेव उनके हृदय पर बाण मार रहा हो। वे कुसुम–शय्या पर ऐसे पड़ जाते हैं, मानो बाणोंकी शय्या हो और अधिक विकल होकर बिलखने लगते हैं।

ध्वनति मधुप–समूहे श्रवणमपिदधाति।
मनसि कलित–विरहे निशि निशि रुजमुपयाति—
सखि! सीदति तव विरहे... ॥२॥

अन्वय—मधुपसमूहे (भ्रमरचये) ध्वनति (गुञ्जति सति) श्रवणम् (कर्णम्) अपिदधाति (आच्छादयति; उद्दीपनत्वेन असह्यत्वादिति भावः); [तथा] निशि निशि (प्रतिरात्रं) वलितविरहे (अत्युद्रिक्त-विरहे) मनसि रुजम् (पीड़ाम्) उपयाति (अधिकमाप्नोति)। [निशायाः तत्प्राप्तिकालत्वात् त्वदप्राप्त्या अलिध्वनिश्रवणात् पीड़ामनुभवतीत्यर्थः] ॥३॥

अनुवाद—मधुकरोंकी गुञ्जारको सुनकर वे अपने कानोंको हाथोंसे ढक लेते हैं। प्रत्येक रात्रिमें तुमको पावेंगे सोचते हैं, किन्तु पाते नहीं; अतएव दिन-प्रतिदिन विरह-व्यथामें विजातीय यन्त्रणाको सहन करते हुए अधिकाधिक रुग्न होते जा रहे हैं।

पद्यानुवाद—

मधुपोंकी 'गुनगुन' से मूँदे हैं कानोंको रहते।
रात रात भर सुधि—पीड़ामें हैं आँखोंसे बहते॥
तव विरहे वनमाली!
पल-पल आकुल आली॥

बालबोधिनी—यद्यपि चहुँदिशि भौंरोंकी झौर-की-झौर गुनगुना रही है, परन्तु अलियोंका गुञ्जन श्रीकृष्णको प्रसन्न नहीं कर रहा, अपितु कर्णकटु हो रहा है। अतएव हाथोंसे अपने कानोंको बन्द कर देते हैं। प्रत्येक रात्रिमें ऐसा मानते हैं कि आप उनके पास हैं, परन्तु आपको न पानेसे उनकी विरह-वेदना और बढ़ गयी है। हृदय विरहसे सराबोर हो गया है, इसलिए वे करवटें बदलते रहते हैं, छटपटाते रहते हैं।

प्रस्तुत पद्यमें सखीके द्वारा विप्रलम्भके उद्दीपन विभावोंका वर्णन हुआ है।

वसति विपिन-विताने त्यजति ललित-धाम।
लुठति धरणि-शयने बहु विलपति तव नाम—
सखि! सीदति तव विरहे... ॥४॥

अन्वय—विपिनविताने (वनगहने) वसति; ललितधाम (रुचिरमपि गृहं) त्यजति [विरहवैकल्यात् एकत्र स्थित्यभावाद् वितान- शब्दोपादानम्]; धरणिशयने (भूशय्यायां) लुठति; तव नाम बहु (बारं बारं) विलपति (जपति; तव नामधेयादन्यत् तस्यमुखात् न निःसरतीत्यर्थः)॥४॥

अनुवाद—वे अपने मनोहर शयन-मन्दिरका परित्याग करके अरण्यमें निवास करते हैं और भूमि-शय्या पर लुण्ठित होते हुए बार-बार राधे! राधे! तुम्हारे ही नामका उच्चारण करते हैं।

पद्यानुवाद—

कलित धाम परित्याग बसे हैं, वनमें तप-सा साधे
दर्दीसे धरती पर लेटे रटते राधे! राधे!
तव विरहे वनमाली,
पल पल आकुल आली।

बालबोधिनी—सखी कह रही है—राधे! तुम्हारे वियोगमें श्रीकृष्णने अपने मनोहर धाममें रहना छोड़ दिया है। उन्हें जङ्गलोंके वितानमें रहना ही अच्छा लगने लगा है। शय्या पर न सोकर वे तुम्हारे विरहकी पीड़ासे भूमि पर ही सोते हुए लोट-लोट कर निशा-कालको व्यतीत करते हैं, बस तुम्हारा ही नाम करते हैं—राधे, हा राधे!

भणति कवि-जयदेव इति विरह-विलसितेन।
मनसि रभस-विभवे हरिरुदयतु सुकृतेन—
सखि! सीदति तव विरहे... ॥५॥

अन्वय—कवि जयदेवे इति (एवं) भणति (गदति सति) विरहविलसितेन (विच्छेदविलासेन हेतुना) सुकृतेन (पुण्येन हरिः रभसविभवे (रभसस्य प्रेमोत्साहस्य विभवो यत्र तस्मिन्) [गायतां शृण्वताञ्च भक्तानां] मनसि (चित्ते) उदयतु [हरिविरहविलसितेन हेतुना यदुत्पन्नं सुकृतं तेन गायतां शृण्वताञ्च मनसि हरिरुदितो भवतु इति भावः]॥५॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा वर्णित श्रीकृष्णकी विरह-व्यथासे पूर्ण इस गानसे जो सुकृति सञ्चित होती है, उस सुकृतिके फलस्वरूप जिन पाठकोंका मन विरहके विलासमें निरतिशय रूपसे निमग्न हो गया है, उनके हृदयमें श्रीकृष्ण सम्यक् रूपसे उदित हों।

पद्यानुवाद—

कवि जयदेव लीन हैं अतिशय हरिके विरह-विलासे।
भाता है यह रस जिसको अति उसमें ज्ञान प्रकाशे॥

बालबोधिनी—कवि जयदेव कह रहे हैं कि उनके इस 'गरुडपदंनाम' के दशम प्रबन्धके पाठकों एवं श्रोताओंको बहुत-सी सुकृति प्राप्त होगी, उन सुकृतियोंका मन श्रीहरिके विरहविलास जन्य उत्साहसे सम्पन्न होगा। रसोत्कण्ठित उन हृदयोंमें श्रीभगवान्‌का आविर्भाव हो।

इस प्रबन्धको केदार रागमें गाया जाता है।

श्रीराधाने जैसे ही निज प्राणकोटि निर्मञ्छनीय-चरण प्राणनाथ श्रीकृष्णके विरह-विलापका श्रवण किया, वैसे ही मूर्च्छित होकर गिर पड़ी, तब सखीने बोलना बन्द कर दिया, आगे कुछ कह ही न सकी। इसीलिए यह गीति मात्र पाँच पदोंमें ही वर्णित है।

पूर्वं यत्र समं त्वया रतिपतेरासादिताः सिद्धय-
स्तस्मिन्नेव निकुञ्ज-मन्मथ-महातीर्थे पुनर्माधवः।
ध्यायंस्त्वामनिशं जपन्नपि तवैवालाप-मन्त्रावलीं
भूयस्त्वत्कुचकुम्भ-निर्भरपरीरम्भामृतं वाञ्छति॥१॥

इति दशमः सन्दर्भः।

अन्वय—पूर्वं यत्र त्वया समं (सह) रतिपतेः (मदनस्य) सिद्धयः (त्वया सह आश्लेषादिकाः) आसादिताः (प्राप्ताः) [माधवेनेति शेषः] तस्मिन्नेव निकुञ्ज-मन्मथ-महातीर्थे (निकुञ्जरूपे मन्मथ-केलिसिद्धिक्षेत्रे) [त्वमेव तस्यैष्टदेवतेति त्वत्साक्षात्कार-

लाभाय] माधवः पुनः त्वाम् [प्राप्तूकाम एव] अनिशं (निरन्तरं) ध्यायन् [तथा] [मन्त्रजपस्तरेण इष्टदेवता नाचिरात् प्रत्यक्षभूता भवतीति] तवैव आलापमन्त्रावलीं (आलापरूपां मन्त्रसमूहम्) जपन् भूयः (प्रचुरं यथा तथा) त्वत्कुचकुम्भ निर्भरपरीरम्भामृतं (तव कुचकुम्भयोः निर्भरालिङ्गनरूपममृतं) वाञ्छति॥१॥

अनुवाद—राधे! माधवने पहले निकुञ्ज रूपी महातीर्थमें तुम्हारे आलिङ्गन आदि मनोरथोंकी सिद्धिके लिए मन्मथकी सिद्धियाँ प्राप्त की थीं। उसी महातीर्थमें कामदेवकी सिद्धियोंके लिए सदैव तुम्हारा ध्यान करते हैं। तुम्हारे साथ किये गये वार्तालापवली-मन्त्रको जपते हुए तुम्हारे कुचकुम्भोंके गाढालिङ्गनरूपी अमृतमोक्षकी पुनः-पुनः अभिलाषा कर रहे हैं।

बालबोधिनी—अतःपर सखी श्रीराधाकी मूर्च्छाका निवारण करनेके लिए कृष्ण-चरित्रका पुनः सिञ्चन करती हुई श्रीराधाका अभिसारिका नायिकाके रूपमें वर्णन करने लगी। वह श्रीराधाको यह कहकर प्रसन्न करना चाहती है कि माधवका मन उसमें ही अवस्थित है। राधे! माधवने जिस निकुञ्ज रूपी मन्मथ-महातीर्थमें तुम्हारे साथ रहकर चुम्बन, आलिङ्गन आदि कामकी महासिद्धियोंको प्राप्त किया था, वे फिर आज उसी परिरम्भ-अमृतकी अभिलाषा कर रहे हैं। तुम्हारे कुचकुम्भका गाढालिङ्गन ही अमृत है, उस महातीर्थका जल—अमृत है। वे उसी कामदेवके महातीर्थमें रहकर तुम्हारे स्वरूपका ध्यान करते हुए तुम्हारे साथ हुए वार्तालापोंका मन्त्रावलीके रूपमें अहर्निश जप कर रहे हैं। देवताके सामने एकान्त ध्यान-जपके द्वारा ही सिद्धि प्राप्त होती है। अतः कृष्ण निकुञ्जरूपी कामतीर्थमें रतिपति अर्थात् आपके सम्मुख आपको ही उपलक्षित करके आपकी प्रसन्नता रूपी कामसिद्धिको प्राप्त करना चाहते हैं। इन्हीं निकुञ्जोंमें ही उन्हें कामकी सिद्धि प्राप्त हुई थी। कामकी सिद्धिके लिए

तुम्हारा वार्तालाप मन्त्र बन गया। तुम ही उस निकुञ्जकी देवता हो। मन्त्रजपके द्वारा तुम्हारे कुम्भके समान उन्नत उरोजोंका गाढ़ालिङ्गन रूपी अमृतको वे प्राप्त करना चाहते हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है, काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

एकादश सन्दर्भः

गीतम् ॥११॥

गुर्जरीरागेण एकतालीतालेन गीयते॥

अनुवाद—यह ग्यारहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा एकताली तालसे गया जाता है।

रति–सुख–सारे गतमभिसारे मदन–मनोहरवेषम्।
न कुरु नितम्बिनि! गमन–विलम्बनमनुसर तं हृदयेशम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली।
गोपीपीनपयोधरमर्दनचञ्चलकरयुगशाली॥१॥ध्रु.

अन्वय—[अभिसाराय प्रार्थयते—अभिसारिका-लक्षणं यथा— "अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा। स्वयं वाभिसरत्येषा धीरैरुक्ताऽभिसारिका॥" इति साहित्यदर्पणे।] हे नितम्बिनि (निविड़नितम्बवति) रतिसुख सारे (रतौ यत् सुखं तस्य सारः यत्र तादृशे) अभिसारे (सङ्केतस्थाने) गतं (प्राप्तमभिसृतमित्यर्थः) मदन–मनोहर–वेशं (मदनेन प्रेम्ना मनोहरो वेशो यस्य तादृशं) तं हृदयेशम् (प्राणवल्लभम्) अनुसर। गमनविलम्बनं न कुरु (गुरुनितम्बतया सहजगमन–वैलम्ब्यशङ्कयेदयुक्तम्); [त्वद्विरह–खिन्नस्य अनुसरणे विलम्बो न युक्तः]; वनमाली (श्रीकृष्णः) धीरसमीरे (धीरसमीराख्ये यद्वा धीरः मन्दः समीरः समीरणो यत्र तादृशे; अनेन सुखदत्वं निविड़त्वात् निर्जनत्वञ्चोक्तम्) यमुनातीरे वने वसति॥१॥

अनुवाद—सुमन्द मलय मारुत सेवित यमुना तीरवर्ती निकुञ्जवनमें बैठकर वनमालाधारी (श्रीकृष्ण) गोपियोंके पयोधरमण्डलको निपीड़ित करनेमें चञ्चलशाली कर-युगलसे सुशोभित हो प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रशस्त नितम्बोंवाली श्रीराधे! रतिसुखके सारभूत सङ्केतस्थानमें मदनके समान मनोहरवेशको धारण किये हुए हृदयवल्लभ श्रीकृष्णके पास अभिसरण करो, अब विलम्ब मत करो।

पद्यानुवाद—

''रति-सुख-सारे गत अभिसारे, मदन मनोहर वेशम्।''
न कर नितम्बिनि! गमन विलम्बन, अनुसर निज हृदयेशम्॥
धीर समीरे यमुना-तीरे, राज रहे वनमाली।
गोपी-पीन-पयोधर-मर्दन-चञ्चलकर-युगशाली॥

बालबोधिनी—अब सखी श्रीकृष्णके पास अभिसरण करानेके लिए श्रीराधाको प्रोत्साहित करती हुई कहती है—हे नितम्बिनि! अर्थात् प्रशस्त नितम्बोंवाली श्रीराधे! चलनेमें तुम अब देर मत करो, कालका अतिक्रमण मत करो, श्रोणीभारसे तुम वैसे ही धीरे-धीरे मन्द-मन्द चलती हो। उनके पीछे-पीछे तुम उस सङ्केतस्थानमें त्वरित पहुँचो। इस सङ्केत-स्थलमें रतिजन्य सुखकी प्रधानता है। वहीं तुम्हारे हृदयेश, वनमाली श्रीकृष्ण मदन मनोहर वेश धारण किये हुए अभिसारगामी हो रहे हैं, उत्सुकतापूर्वक तुम्हारी बाट जोह रहे हैं।

सङ्केतस्थलका स्पष्ट निदर्शन हुआ है। यमुनाके तट पर वेतसीका वन है। हवा मन्द-मन्द चलते हुए कुछ-कुछ थिर-सी हो गयी है। यह मन्द समीरण रतिकालमें अति सुखदायी होता है, कानन तो अति निविड़-निर्जन है ही। श्रीकृष्णका वेश मदन-सेवाके अनुकूल है, अभिसारगामी हो रहे हैं। चाँदनी रातमें समयानुरूप वेषभूषा धारणकर अभिसरण करना अभिसार कहा जाता है। उस कुञ्ज-प्रदेशमें वनमालीके पास पहुँचनेमें अब किञ्चित् भी विलम्ब मत करो।

नाम-समेतं कृत-सङ्केतं वादयते मृदुवेणुम्।
बहु मनुतेऽतनु ते तनु-सङ्गतपवन-चलितमपि रेणुम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥२॥

अन्वय—नाम-समेतं (नाम्ना समेतं यथास्यादेवं) कृतसङ्केतं (कृतं सङ्केतः इङ्गितं यथा स्यात् तथा; अहमिह तिष्ठामि त्वमप्यत्रागच्छति नाम-समेत-कृतसङ्केतार्थः इति सर्वाङ्गसुन्दरी) मृदु (कोमलं यथा भवेदेवं) वेणुं वादयते; [किञ्च] ते (तव) तनुसङ्गत-पवन-चलितमपि (तनु-सङ्गतेन गात्रस्पृष्टेन पवनेन चलिमपि) रेणुं (रजः) ननु (निश्चये) बहु मनुते (अधिकं मन्यते) [धन्योऽयं रेणुः यतस्तस्याः शरीरस्पृष्ट-वायोः स्पर्शसुखमन्वभूत्, ममेदृशं भाग्यं नास्तीति बहुमानार्थः]॥२॥

अनुवाद—हे राधे! तुम्हारे नामका सङ्केत करते हुए वे कोमल वेणु बजा रहे हैं। तुम्हारे शरीरको संपृक्त करके वायुके साथ आये हुए बहुत अधिक धूलि-कणोंके स्पर्शसे स्वयंको अति सौभाग्यशाली मानकर उनका सम्मान कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

नाम सहित सङ्केत ध्वनित कर-कोमल वेणु बजाते।
तव तन चुम्बित पवन-रेणुसे डरको समुद सजाते॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीको स्पष्ट कर रही है कि यदि तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास न हो तो वहाँसे आती हुई श्रीकृष्णकी वंशीकी टेर सुन लो, तुम्हारा ही नाम लेकर वह तुम्हें मिलनका संकेत दे रही है। श्रीकृष्ण इसी प्रकारसे तुम्हें राह बता रहे हैं। यदि तुम्हें यह आशंका है कि वहाँ जाने पर प्रतारणा होगी, किसी अन्य रमणीके साथ उनका अभिसार होगा तो तुम्हारी शंका निर्मूल है क्योंकि बालूके उन कणोंको भी रत्न जानकर वे अति सम्मान कर रहे हैं जो तुम्हारे चरणोंके आघातसे हवाके साथ उनके पास पहुँचे हैं।

पतति पतत्रे विचलति पत्रे शङ्कित-भवदुपयानम्।
रचयति शयनं सचकित-नयनं पश्यति तव पन्थानम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥३॥

अन्वय—पतत्रे (विहङ्गमे) [वृक्षात् भूमौ] पतति (अवतरति सति) [तथा] पत्रे विचलति [सति] शङ्कित-भवदुपयानं (शङ्कितम् अनुमितं भवत्याः उपयानं आगमनं यस्मिन् तद् यथा तथा) शयनं (शय्यां) रचयति (निर्मिमीते) [तथा] सचकित-नयनं [यथा स्यात् तथा] तव पन्थानं (आगमनवर्त्म) पश्यति॥३॥

अनुवाद—राधे! श्रीकृष्ण अति उल्लास और अतिशय स्फूर्त्तिसे शय्याका निर्माण कर रहे हैं और जैसे ही किसी पक्षीके वृक्ष पर बैठनेसे पत्ते चंचल होकर थोड़ा-सा भी शब्द करने लगते हैं, तो वे तुम्हारे आगमनके मार्गका चकित दृष्टिसे अवलोकन करने लगते हैं।

पद्यानुवाद—

पक्षीके उड़नेसे तरुके पत्ते जब हिल जाते
आती हो यह जान हृदयमें शंकासे खिल जाते।
शीघ्र वहीं पर किसलय-दलकी शय्या ललित रचाते
और पंथ पर चौंक-चौंक कर आँखें सजल बिछाते॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कह रही है कि वृक्षके पत्ते गिरनेसे या वायुके संचालनसे अथवा पक्षियोंके इधर-उधर घूमने-फिरनेसे सामान्य 'मर्मर' शब्द होते ही वे मनमें शंका करते हैं—कहीं श्रीराधा तो नहीं आ रही हैं। अतः बड़े ही उल्लाससे वे जल्दी ही शय्या-निर्माण करनेमें लग जाते हैं और चकित दृष्टिसे तुम्हारे आगमन-पथकी ओर देखने लगते हैं।

मुखरमधीरं त्यज मञ्जीरं रिपुमिव केलिषु लोलम्।
चल सखि! कुञ्जं सतिमिर-पुञ्जं शीलय नील-निचोलम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥४॥

अन्वय—हे सखि, अधीरं (चञ्चलं) [अतएव] मुखरं (सशब्दं) मञ्जीरं (नूपुरं) केलिषु (क्रीड़ासु) लोलं (अतिचपलं); [अतः अभीष्टविरोधित्वात्] रिपुमिव (शत्रुवत्) त्यज; सतिमिरपुञ्जं (तमसावृतं) कुञ्जं चल; नीलनिचोलं (तामस्यभिसारिकोचितं नीलवसनं) शीलय (परिधेहि)॥४॥

अनुवाद—सखि! चलो, कुंजकी ओर चलें। चलनेमें मुखरित होने वाले, विलास केलिमें अति चंचल होनेवाले इन नूपुरोंको तुम शत्रुके समान त्याग दो, तिमिर युक्त नीलवसनको धारण कर लो।

पद्यानुवाद—

त्याग मुखर नूपुर सखि! सत्वर साड़ी नीले रंगकी।
पहिन, चलें इस तिमिर पुंजमें कुंज-ओर, क्यों ठिठकी?

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कह रही है—हे राधे! इस समय अंधकार है जो अभिसारके लिए उचित समय है। इस अंधकारमें अभिसारिकाएँ अपने प्रेमियोंसे मिला करती हैं। अतः तुम इस अंधकारमें उस निभृत कुंजकी ओर चलो। सखि, इन नूपुरोंको उतार दो, ये तो तुम्हारे शत्रु ही हैं। अति चंचल होनेके कारण ये चलनेके समय तथा विलास-केलिमें ध्वनि उत्पन्न करते हैं, शत्रुके समान अवसरको जाने बिना ही मुखरित हो जाते हैं! ये मंजीर अभीष्ट सिद्धिके प्रतिकूल हैं। अब अपना नील वसन पहन लो। इस अभिसरणीय नील वसनके अवगुण्ठनसे तुम्हारा गौर वर्ण इस तिमिरमें एकाकार हो जायेगा, श्याममय हो जायेगा, तुम्हारे पथका अन्धकार और भी बढ़ जायेगा।

उरसि मुरारेरुपहित-हारे घन इव तरल-बलाके।
तड़िदिव पीते! रति-विपरीते राजसि सुकृत-विपाके॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥५॥

अन्वय—अयि पीते (गौराङ्गि) सुकृतविपाके (सुकृतानां पुण्यानां विपाके फलस्वरूपे) रति विपरीते (विपरीतरतौ) उपहितहारे (आन्दालित–हारे) मुरारेः (कृष्णस्य) उरसि (वक्षसि) तरल–वलाके तरला चञ्चला वलाका वकपङ्क्तिः यस्मिन् तादृशे) घने (मेघे) तड़ित् (सौदामिनी) इव राजसि (वर्त्तमान–सामीप्ये लट् शोभिष्यसे) [अत्र उरसो घनेन, हारस्य वलाकया, गौर्यास्तड़िता सह साम्यमवगन्तव्यम्]॥५॥

अनुवाद—हे विद्युतके समान पीतवर्णमयी राधे! अपने कृतपुण्यके परिणामस्वरूप विपरीत रतिमें श्रीकृष्णके मणिमय हारसे सुशोभित वक्षःस्थलके ऊपर ऐसे सुशोभित होओगी, जैसे मेघके ऊपर चंचल बक–पंक्ति प्रकाशित हो रही है।

पद्यानुवाद—

रति–विपरीते, पीते! राजित घन पर बिज्जु शलाका।
हरि–उर–उपहित मौक्तिक माला, होगी तरल बलाका॥

विगलित–वसनं परिहृत–रसनं घटय जघनमपिधानं।
किशलय–शयने पङ्कज–नयने निधिमिव हर्ष–निधानं॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥६॥

अन्वय—[अतो गत्वा] हे पङ्कज–नयने (सरोजाक्षि) किशलय–शयने (वालपल्लवशय्यायां) विगलित–वसनं (श्रीकृष्णेन हेतुना विगलितं वसनं यस्मात् तादृशं) परिहृत–वसनं (तेनैव परिहृता दूरीकृता रसना काञ्ची यस्मात् तादृशं) [अतएव] अपिधानं (नास्ति पिधानम् आच्छादनं यस्य तत् आवरणरहितमित्यर्थः) जघनं (कटिपुरोभागं) [तस्यैव] निधिमिव (रत्नमिव) हर्षनिधानं (आनन्दनिकेतनं) घटय (कुरु) [गतावरणस्य निधेर्दर्शने हर्षो जायत एवेत्यर्थः]॥६॥

अनुवाद—हे इन्दीवरनयन राधे! नवीन किसलयकी शय्या पर तुम आवरणरहित होकर, करधनी रहित होकर प्रियतमके प्रीतिविधान स्वरूप अपने निधि–रत्न जंघाओंको स्थापित कर दो।

पद्यानुवाद—

पंकजनयने! दल–शय्या पर अपने जीवन–धनसे।
बाह्य आवरण त्याग न मिलती कैसे प्रमुदित मनसे॥

बालबोधिनी—इसके पहलेके पद्यमें सखीने श्रीराधामें विपरीत रतिकी उत्कण्ठा जाग्रत की। अब श्रीकृष्णके द्वारा की जानेवाली रतिक्रीड़ाके प्रति श्रीराधाकी उत्कण्ठा उत्पन्न करती हुई सखी आगे कह रही है—हे पंकजके समान मनोहर नेत्रोंवाली राधे! कोटिकन्दर्प अभिराम श्रीकृष्णकी सुन्दरताको देखकर वस्त्र तो तुम्हारी जाँघोंसे स्वयं ही खिसक जायेगा, मेखलामें संलग्न क्षुद्र घंटिकाएँ भी परिहृत हो जाएँगी, तुम आनन्दके निधान श्रीकृष्णके सुखका विधान करनेवाली इस निधिरत्न जंघा–भागको श्रीकृष्ण द्वारा रचित नवपल्लवोंकी शय्या पर रखना।

हरिरभिमानी रजनिरिदानीमियमपि याति विरामम्।
कुरु मम वचनं सत्वर–रचनं पूरय मधुरिपुकामम्—
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥७॥

अन्वय—हरिः (श्रीकृष्णः) अभिमानी (अतिशयेन त्वां मानयितुं शीलं यस्य तादृशः, त्वदेकपर इत्यर्थः); इयं रजनिः (रात्रिः) अपि विरामं (अवसानं) याति (तस्मात्) मम वचनं सत्वर–रचनं (सत्वरा रचना अनुष्ठानं यस्य तादृशं), अथवा सत्वरा रचना वेश परिपाटी यत्र तद् यथा तथा कुरु); मधुरिपु–कामं (मधुरिपोः हरेः कामं मनोरथं पूरय)॥७॥

अनुवाद—इस समय श्रीकृष्ण अभिमानी हो रहे हैं, रात्रिका अवसान भी हो रहा है, अतएव मेरी बातोंको स्वीकार करो और अविलम्ब चलकर मधुरिपु श्रीकृष्णकी कामनाएँ पूर्ण करो।

पद्यानुवाद—

रैन सिरानी, पिय अभिमानी कर न सजनि! अब देरी।
जाकर उनसे सत्वर मिल ले—इतनी अनुनय मेरी॥

बालबोधिनी—सखी कह रही है—श्रीकृष्ण बड़े मनस्वी हैं, लाक्षणिक अर्थ यह है कि श्रीकृष्ण अन्यमनस्क हो रहे हैं, तुम्हें मनानेके लिए अत्यन्त प्रयत्नशील हैं, तुम दूसरेके साथ उनके अभिसारकी चिन्ता मत करो। मनस्वीके संदर्भमें यह कथनीय है कि वे अपने स्वाभिमानकी सुरक्षाके लिए तुम्हारे पास तक नहीं आ सके, कहीं वे तुम्हारा त्याग न कर दें—'हरिरभिमानी, त्वत्तो लाघवं न सहते, पश्चात्त्वा त्यक्षति'। जो कार्य तुम्हें बादमें करना है, उसे अभी क्यों नहीं कर लेतीं? रात बीतती जा रही है। अभिसरणीय बेला समाप्त हो रही है। मेरी बात मानो, तुम श्रीकृष्णके पास सत्वर ही चलो और उनकी अभिलाषाएँ पूर्ण करो।

श्रीजयदेवे कृत–हरि–सेवे भणति परमरमणीयम्।
प्रमुदित–हृदयं हरिमतिसदयं नमत सुकृत–कमनीयम्॥
धीर समीरे यमुना तीरे... ॥८॥

अन्वय—कृत–हरि–सेवे (कृत्वा हरिसेवा येन तस्मिन्) श्रीजयदेव भणति [सति] [भोः साधवः] प्रमुदितः–हृदयं (प्रमुदितं हृदयं यथा तथा अथवा सदानन्द–चेतसं हरिम्) अतिसदयं (परमकृपालुं) परमरमणीयं (एकान्तमनोहरं) सुकृतकमनीयं (सुकृतेन शोभन–चरितेन कमनीयं; सर्वैर्विशेषेण वाञ्छनीयमित्यर्थः) हरिं [यूयं] नमत॥८॥

अनुवाद—हे साधुजन! परम मनोहर काव्य–रचयिता, श्रीहरि–सेवी जयदेवकृत इस गीतिसे प्रमुदित हृदय, अतिशय सदय, परम मधुर, शोभन–चरित तथा कमनीय गुणोंसे युक्त श्रीकृष्णको प्रमुदित हृदयसे नमस्कार करो।

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव कथित यह वाणी, हरि–राधा–रस सानी।
मुदित हृदय उसका करती है, जिसने ध्वनि पहचानी॥

बालबोधिनी—इस अष्टपदीके अन्तमें कवि जयदेव कहते हैं कि हे भागवतजन! श्रीकृष्णकी सेवामें सदैव तत्पर रहने वाले उन्होंने सुमधुर इस कथा–काव्यकी रचना की है। अतः श्रीकृष्ण उन पर सदैव प्रसन्न रहते हैं। अपनी–अपनी स्फूर्तिके कारण जो सबकी कामनाके विषय बने हुए हैं, ऐसे दयाके सिन्धु, परम रमणीय श्रीकृष्णको आप सभी प्रमुदित हृदयसे नमस्कार करें।

विकिरति मुहुः कुश्वासानाशाः पुरो मुहुरीक्षते
प्रविशति मुहुः कुञ्जं गुञ्जनमुहुर्बहू ताम्यति।
रचयति मुहुः शय्यां पर्याकुलं महुरीक्षते
मदन–कदन–क्लान्तः कान्ते! प्रियस्तव वर्तते॥१॥

अन्वय—[अतिशीघ्रमभिसारयितुं प्रियतमदुःखं वर्णयति]—हे कान्ते (चार्वङ्गि) तव प्रियः (कृष्णः) [प्रिया मे नागता इति मत्वा] मुहुः (बारंबारं) श्वासान् (निश्वासान् विरहजनितान् आयातीति सम्भाव्य] पुरः (अग्रतः) मुहुः आशाः (दिशः) ईक्षते (आलोकयति); [कदाचित् अन्येन पथा आगतेति मत्वा] मुहुः कुञ्जं प्रविशति; [तत्रापि त्वामपश्यन् कथं नागतेति] मुहुः (पुनःपुनः) गुञ्जन् (कथं नागता, किंवा पथि काचित् दुर्घटना जातेत्यादि अव्यक्तं वदन्) बहु (अत्यन्तं) ताम्यति (ग्लायति); [मयि बद्ध–दृढ़ानुरागा सा साम्प्रतमेवा–गमिष्यतीति] मुहुः शय्यां रचयति; [मच्चित्त–जिज्ञासार्थं कदाचित् इतो निर्गता तिष्ठतीति मत्वा] मुहुश्च पर्याकुलं (परितः आकुलं यथा तथा) ईक्षते (पश्यति) [इत्थं] मदन–कदन–क्लान्तः (मदनस्य कदनेन पीड़नेन क्लान्तः कातरः सन्) वर्त्तते॥१॥

अनुवाद—हे कामिनि! तुम्हारे प्रिय श्रीकृष्ण मदन-यन्त्रणासे सन्तप्त होकर निकुंज-गृहमें तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे बार-बार दीर्घ श्वास लेते हुए चकित नेत्रोंसे चहुँदिशि देखते हैं। बार-बार अस्फुट शब्दोंसे विलाप करते हुए लताकुंजसे बाहर आते हैं और पुनः उसमें प्रवेश करते हैं एवं दुःखी होते हैं। बार-बार शय्याका निर्माण करते हैं और आकुल होकर बार-बार तुम्हारा आगमन-पथ देखते हैं।

पद्यानुवाद—

तेरे आनेकी आशा जब लगती पल पल घटने।
तभी विकलता बढ़ जाती है, लगता धीरज हटने॥
कभी प्रतीक्षा-दृगसे लखते और उसासें भरते।
होकर भ्रान्त कुंजमें जाते फिर आँखोंसे ढरते॥
बार-बार शय्या रचते हैं, खूब साधना साधे।
मदन-कदन-परिक्लान्त कान्त हैं तेरे री सखि! राधे॥

बालबोधिनी—इस प्रबन्धकी उपसंहृति करते हुए कवि कहते हैं कि सखी श्रीराधाको श्रीकृष्णके सन्निकट पहुँचनेके लिए अनेक प्रकारसे प्रेरित कर रही है कि श्रीकृष्ण तुम्हारे विरहमें कामजन्य कष्टसे दुःखी हैं। तुम अभी तक आयी नहीं हो—ऐसा सोचकर बार-बार साँस लेते हैं, दीर्घ-निःश्वासधारा छोड़ते हैं। तुम अभी तक उनके पास पहुँची नहीं हो—प्रतीक्षारत होकर बार-बार चारों दिशाओंमें देखते हैं। तुम किस दिशासे आ रही हो, यह देखनेके लिए लताकुंजसे बाहर आते हैं। पुनः लताकुंजमें प्रवेश करते हैं, यह समझकर कि तुम कहीं आकर वहाँ छिप तो नहीं गयी हो? कभी बाहर, कभी अन्दर, बार-बार क्यों ऐसा करते हैं? इसलिए कि 'वह आ तो नहीं रही हैं, वह क्यों नहीं आयीं, किस कारणसे रुक गयीं अथवा कहीं डर तो नहीं गयीं'—इस प्रकारसे उसके अनागमनके कारणका विचार करके बार-बार बहुत प्रकारसे अव्यक्त शब्द करते हैं। पुनः

यह सब सोच-विचारना व्यर्थ है—वह अवश्य ही आयेंगी—ऐसा निश्चय कर शय्याकी रचना करना प्रारम्भ कर देते हैं। 'कदन' शब्दसे तात्पर्य है—मुझसे अनुराग होनेके कारण अवश्य ही आयेंगी। अतः उत्कण्ठित होकर बार-बार देखते हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छन्द तथा 'दीपक' अलंकार है।

त्वद्वाम्येन समं समग्रमधुना तिग्मांशुरस्तं गतो
गोविन्दस्य मनोरथेन च समं प्राप्तं तमःसान्द्रताम्।
कोकानां करुणस्वनेन सदृशी दीर्घा मदभ्यर्थना
तन्मुग्धे! विफलं विलम्बनमसौ रम्योऽभिसार-क्षणः ॥२॥

अन्वय—[अतः सम्प्रत्येव गमनं साम्प्रतमिति समयानुकूल्य-माह]—अधुना त्वद्वाम्येन (तव प्रतिकूलतया अभिमान-वशात् मौनभावेन इति भावः) समं (सह) तिग्मांशुः (सूर्यः) समग्रं (सम्पूर्णं यथा तथा) अस्तं गतः गोविन्दस्य मनोरथेन च समं तमः (तिमिरं) सान्द्रतां (निविड़तां) प्राप्तम् [त्वयि गोविन्दस्य अनुरागः यथा क्रमशः गाढ़तां गतः तद्वदन्धकारोऽपि क्रमशः निविड़ः सञ्जात इत्यर्थः) मदभ्यर्थना (मम अभ्यर्थना अनुरोधश्च) कोकानां (चन्द्रकाराणां) करुणस्वरेन (कातरविलापेन) [रात्रौ तेषां विच्छेदादिति भावः]; तत् (तस्मात्) अयि मुग्धे, विलम्बनं विफलम्; [यतः] असौ अभिसारक्षणः (कान्ताभिगमन-कालः) रम्यः (प्रीतिप्रदः) [प्रियतमः उत्कण्ठितः रम्यश्च अभिसारक्षणः, चिरमभ्यर्थनपरा सखी, तथापि वेशादिव्याजेन गमनविलम्बनमिति मौग्धम्]॥२॥

अनुवाद—हे मुग्धे! तुम्हारी वामता (प्रतिकूलता) के साथ-साथ यह दिवाकर भी सम्पूर्ण रूपसे अस्त हो गया। श्रीकृष्णके मनोरथके साथ ही अन्धकार सान्द्रता (घनत्व) को प्राप्त हो गया। विरह-विकल चक्रवाक पक्षीके रात्रिकालमें करुण स्वर निरन्तर विलापके समान मेरी अभ्यर्थना भी

व्यर्थ हो गयी। मैं अति दीर्घकालसे करुण प्रार्थना कर रही हूँ। अब विलम्ब करना व्यर्थ है। अभिसारकी रमणीय बेला उपस्थित है।

बालबोधिनी—हे राधे, हे मुग्धे! यह प्रियतमके समीप जानेका उपयुक्त समय है। अपने वाम स्वभावके अधीन होकर तुम मान करके बैठी ही रहीं, अब तो मान समाप्त हो गया है और इधर सूर्य भी अस्त हो गया। तुम्हारे रति–अभिसरणमें अब कोई बाधा नहीं है। गोविन्दके मनमें तुम्हारे प्यारके जो मनोरथ उठे थे, उनके साथ–साथ अन्धकार भी और गहरा हो उठा, मिलनकी आशा और तीव्र हो उठी। रात्रिकालमें चकवा–चकवी दोनों एक–दूसरेसे अलग–अलग होकर विरहाधिक्यके कारण दीर्घ करुण क्रन्दन करने लगते हैं। उसी दीर्घ पुकारके समान तुम्हारे समक्ष श्रीकृष्ण–मिलनके लिए की गयी मेरी अभ्यर्थना व्यर्थ ही चली गयी। हे मुग्धे, अब समय व्यर्थ मत गँवाओ, अभिसारका विशेष समय होता है, घना अन्धकार है, प्रियतम तुम्हारे लिए उत्कण्ठित हैं, तुम वेश–भूषादिके बहाने आगमनमें अब विलम्ब मत करो, जल्दी करो।

प्रस्तुत श्लोकमें सहोक्ति अलंकार है तथा शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।

आश्लेषादनु चुम्बनादनु नखोल्लेखादनु स्वान्तज–
प्रोद्बोधादनु सम्भ्रमादनु रतारम्भादनु प्रीतयोः।
अन्यार्थं गतयोर्भ्रमान्मिलितयोः सम्भाषणैर्जानतो–
र्दम्पत्योरिह को न को न तमसि व्रीड़ाविमिश्रो रसः ॥३॥

अन्वय—[अथ उत्कण्ठावर्द्धनाय सुरतप्रीतेरत्याधिक्यं दर्शयति] —अन्यार्थं (अन्योन्यसङ्गलाभाय कार्यान्तरमुपलक्ष्य) गतयोः (सङ्केतस्थानं प्राप्तयोः) भ्रमात् (अन्वेषणाय भ्रमणात्) इह (ईदृशे सान्द्रे) तमसि (गाढ़ान्धकारे) मिलितयोः (सङ्गतयोः) सम्भाषणैः (कण्ठध्वनिभिः) जानतोः (केयं कश्चायमिति

विन्दतोः) दम्पत्योः (स्त्रीपुंसयोः) [यथाक्रमं] आश्लेषात् (आलिङ्गनात्) अनु (पश्चात्), चुम्बनात् अनु, नखोल्लेखात् (नखानाम् उल्लेखात् आघातात्) अनु, स्वान्तजप्रोद्वोधात् (स्वान्तजस्य कामस्य प्रोद्वोधात् प्रकाशनात्), अनु, सम्भ्रमात् (साध्वसात्) अनु, रतारम्भात् (शृङ्गारारम्भणात्) अनु, प्रीतयोः (परितोषं गतयोः) कः कः व्रीड़ाविमिश्रः (व्रीड़या, कथं सहसैवं कर्त्तुमारब्धमित्येवं लज्जया विमिश्रः संवलितः) रसः (सम्भोगाद्यास्वादः) न [भवति] न [अपितु सर्वत्रैव सलज्जः रसास्वादः भवत्येव इत्यर्थः]। [एतेन अभिसर्त्तुं श्रीराधिका-प्रोत्साहनमुक्तम्]॥३॥

अनुवाद—इस निविड़ तिमिरमें नायक-नायिका एक-दूसरेको प्राप्त करने हेतु अन्वेषणके लिए भ्रमण करते हुए अन्य नायक तथा नायिकाके भ्रमसे मिले हुए सम्भाषण द्वारा एक दूसरेको पहचान लेने पर परस्पर आलिङ्गन, पश्चात् चुम्बन, उसके बाद नख-क्षत अर्पण, पश्चात् कामोद्रेक होने पर मदनके आवेशमें सम्भ्रमके साथ रतिकेलिका प्रारम्भ होने पर सुरतक्रीड़ाके पश्चात् दोनों एक चमत्कारपूर्ण प्रीतिका अनुभव करोगे। इस अन्धकारमें व्रीड़ामिश्रित कौन-सा रस प्राप्त नहीं होगा? अतएव हे सुन्दरि! चलो, शीघ्रातिशीघ्र केलि-कुंजमें चलें, भला ऐसे सुअवसरका क्या कभी त्याग किया जाता है?

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाको प्रलोभन दे रही है कि हे सखी राधिके! वहाँ श्रीकृष्णके समीप पहुँचने पर तुम्हें अनेक प्रकारका केलि-कौतुक प्राप्त होगा—इस कथनसे सखी श्रीराधाकी उत्कण्ठा बढ़ाकर उन दोनोंके मनोरथका अभिव्यञ्जन कर रही है।

अन्धकार हो जाने पर नायक अन्य नायिकाको तथा नायिका अन्य नायकको प्राप्त करनेके लिए यदि निकले हों और जब वे परस्पर मिलित हो जाएँ, तब जिस व्रीड़ा मिश्रित शृङ्गार रसकी अनुभूति होती है। तब ऐसा कौन-सा

रस है, जिसे प्राप्त करना अवशिष्ट रह जाय। उस व्रीड़ा–मिश्रित रसमें सब प्रकारके रसोंका समागम हो जाता है।

भ्रमात् से तात्पर्य है—कुंजकी ओर भ्रमण करते हुए परस्पर मिल गये हों, अन्धकारमें परस्पर वार्तालापसे पहचान लिये गये हों अथवा अन्य किसी प्रयोजनसे गये हों और मिल गये हों। वार्तालाप होनेसे सात्विक भावके द्वारा स्वर–भंगसे पहचान लिये गये हों। मिलनके साथ ही वे सहसा आलिंगन करते हैं, किन्तु दोनोंको भय रहता है कि कहीं किसीने देख न लिया हो। अतः 'भयानक रस' प्रादुर्भूत होता है, जिसका 'भय' स्थायी भाव है। कान्ताके बार–बार मना किये जाने पर भी नायक अपनी हठवृत्तिके कारण उसका चुम्बन करता है, दन्तक्षत करता है। पर पुनः उसे शोक होता है—मैंने व्यर्थ ही इसे कष्ट पहुँचाया, लाख मना करने पर भी माना नहीं। अतः करुणासे उनका अन्तःकरण विगलित होता है। अतः यहाँ 'करुण रस' प्राप्त होता है। कामको प्रोत्साहित करनेके लिए परस्पर नखोल्लेख करते हैं, जिसका स्थायी भाव है 'उत्साह'।

तत्पश्चात् परस्पर दोनों एक दूसरेके साथ रतिक्रीड़ाके लिए तत्पर होते हैं। इस क्रीड़ामें उन्हें विस्मय–प्रधान अद्भुत रसकी सुखानुभूति होती है। तत्पश्चात् कामोद्‌बोध होने पर नाना विलासोंसे विलसित हो परस्पर हास्य प्रधान बातें करते हैं और तब रतिक्रीड़ामें लिप्त होने पर दोनोंको हास्य रस अनुभूत होता है। सुरत–क्रीड़ा सम्पन्न होनेपर जब वे परस्पर आनन्दका अनुभव करते हैं, तब उन्हें सकल–रस–चक्रवर्ती रसराज शृङ्गार रसकी मधुरानुभूति होती है। इस प्रकार तिमिरमें मिलित पहले अनजान, फिर परस्पर पहचान लिये जानेपर दोनोंको लज्जा होती है, परन्तु परस्पर दोषारोपण अथवा क्रोध नहीं करते, क्योंकि दोनोंका समान दोष होता

है। अतःपर नायक-नायिकाओंको अन्धकारमें लज्जामिश्रित सम्पूर्ण रसोंका अनुभव होता है। राधे! तुम्हें ऐसी प्रतीति होगी कि अहो! इतने दिनोंके पश्चात् जब हम दोनों मिले, तब इतने गहरे शृङ्गार रसमें क्यों डूबे?

प्रस्तुत सन्दर्भमें चौर्यरतके सम्पूर्ण क्रमको भी बतलाया गया है। भरतमुनिने कहा है—

आश्लेषचुम्बननखक्षतकामबोधशीघ्रत्वमैथुनमनन्तसुखप्रबोधम् ।
प्रीतिस्ततोऽपि रसभावनमेव कार्यमेवं नितान्तनतुराः सुचिरं रमन्ते॥

प्रस्तुत श्लोकमें दीपक, समुच्चय तथा भ्रान्तिमान अलङ्कार द्रष्टव्य हैं। शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है।

सभय-चकितं विन्यस्यन्तीं दृशौ तिमिरे पथि
प्रतितरु मुहुः स्थित्वा मन्दं पदानि वितन्वतीम्।
कथमपि रहःप्राप्तामङ्गैरनङ्ग-तरङ्गिभिः
सुमुखि! सुभगः पश्यन् स त्वामुपैतु कृतार्थताम्॥४॥

अन्वय—[अथैतच्छ्रवणव्यग्रतया गमनाय उद्यतामवलोक्य गमनप्रकार-माह]—अयि सुमुखि (सुवदने) सुभगः (भाग्यवान्; तव प्रणय- सौभाग्यशालीति यावत्) [हरिः] तिमिरे (तमसावृते इत्यर्थः) पथि (वर्त्मनि) प्रतितरु (प्रतिवृक्षे) सभयचकितं [यथा तथा; कुत्रचित् तिष्ठता केनचित् द्रक्षेऽहमिति नेत्रस्य सभयचकितत्वम्) दृशं (नेत्रं) विन्यस्यन्तीं (निक्षिपन्तीं) मुहुः (पुनः पुनः) स्थित्वा (ससाध्वसं विश्रम्य) मन्दं [यथा तथा] पदानि वितन्वतीं (विक्षिपन्तीं) [दौर्बल्यात् शीघ्रगमनाशक्त्या पदयोः मन्द-मन्द- विन्यासत्वम्] [अतः] कथमपि (अतिक्लेशेन) रहःप्राप्तां (एकान्ते उपस्थितां) अनङ्ग-तरङ्गिभिः (कामतरङ्गपूर्णैः, उत्कण्ठया अनङ्ग-तरङ्गित्वसङ्गनानाम्) अङ्गैः [उपलक्षितां] त्वां पश्यन् कृतार्थतां (साफल्यं) उपेतु (प्राप्नोतु; कृतार्थो भवतु इत्यर्थः)॥४॥

अनुवाद—हे शोभने! तिमिरमय पथपर भय और चकित दृष्टिसे देखती हुई, तरुवरोंके समीप खड़ी होकर पुनः शनैः-शनैः पग बढ़ाती हुई, किसी प्रकार एकान्तमें पहुँची हुई, कामकी तरंगोंसे कल्लोलित होती हुई तुम्हें देखकर सौभाग्यवान श्रीकृष्ण कृत्कृत्य होंगे।

बालबोधिनी—तुम्हारी प्राप्ति ही श्रीकृष्णका सर्वस्व है, इसका दिग्दर्शन करते हुए सखी श्रीराधासे कह रही है—हे अतिशय सुन्दरि! जब तुम यहाँसे चलने लगोगी, तब तुम्हारा मार्ग अन्धकारसे परिपूर्ण होगा। उस अन्धेरे पथपर चलते हुए भयभीत होकर चकित-सी तुम आगे पैर बढ़ाओगी। अन्धकारमें भयका होना तो स्वाभाविक ही है, कहीं कोई देख न ले, अतः चकित होना भी सहज ही है। ऐसे निविड़ अन्धकारमें मैं श्रीकृष्णसे मिलनेके संकेत-स्थानपर जा रही हूँ—ऐसा विस्मय तो होगा ही, जाने पर श्रीकृष्णसे मिलन होगा या नहीं—यह शंका भी होगी। स्तन एवं नितम्ब भारसे तुम्हारा शरीर शीघ्र ही अतिशय क्लान्त हो जाता है, अतः शीघ्र जानेमें असमर्थ अलसायी-सी तुम प्रत्येक वृक्षके नीचे ठहर-ठहर कर चलना। अनङ्गकी लहरें तुम्हारे शरीर पर क्रीड़ा कर रही हैं, इस शिथिलतासे उपलक्षित संकेत स्थानपर तुम्हें देखकर शुभग श्रीकृष्ण कृत्कृत्य हो जाएँगे। वे प्रसन्नताके अतिशय आवेगमें अवगाहन करने लगेंगे।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छन्द तथा अतिशयोक्ति नामक अलंकार है।

राधा-मुग्ध-मुखारविन्द-मधुपस्त्रैलोक्य-मौलि-स्थली
नेपथ्योचित-नील-रत्नमवनी-भारावतारान्तकः ।
स्वच्छन्दं व्रज-सुन्दरी-जन-मनस्तोष प्रदोषोदयः
कंस-ध्वंसन-धूमकेतुरवतु त्वां देवकी-नन्दनः ॥५॥

इति श्रीगीतगोविन्दे अष्टमः सन्दर्भः इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्येऽभिसारिका वर्णने साकाङ्क्षो नाम पञ्चमः सर्गः।

अन्वय—[अथ विरहं वर्णयन् व्याकुलः कविः तयोर्मिथो-मिलनकाल-स्मरणजातहर्षः आशिषा सर्गमुपसंहरति] राधामुग्ध-मुखारविन्दमधुपः (राधायाः मुग्धं सुन्दरं यत् मुखारविन्दं वदनकमलं तस्य मधुपः भ्रमरः) त्रैलोक्य-मौलि-स्थली-नेपथ्योचित-नीलरत्नं (त्रैलोक्यस्य त्रिभुवनस्य या मौलिस्थली शिरोभागः श्रीवृन्दावन-भूमिरित्यर्थः तस्या नेपथ्योचितम् अलङ्कारभूतं नीलरत्नम्) अवनीभारावतारक्षमः (अवन्याः क्षितेः भारस्य अवतारे दुर्वृत्तदमनादिना हरणे क्षमः समर्थः), [तथा] व्रज-सुन्दरी-जन-मनस्तोष-प्रदोषः (व्रजसुन्दरीजनानां मनसां तोषाय प्रदोषः रजनीमुखस्वरूपः) [तथा] कंस-ध्वंसन-धूमकेतुः (कंसस्य ध्वंसने धूमकेतुः) देवकीनन्दनः त्वां चिरम् अवतु (रक्षतु)॥ [अतएव श्रीराधाया गमनकाङ्क्षया सहितः पुण्डरीको यत्र इति सर्गोऽयं पञ्चमः]॥५॥

अनुवाद—जो श्रीराधाजीके मनोहर मुखारविन्दका मधुपान करनेमें मधुपस्वरूप हैं, जो त्रिभुवनके मुकुटमणि-सदृश वृन्दावनधामके इन्द्रनीलमणिमय विभूषण सदृश हैं, जो अनायास प्रदोषकी भाँति ब्रजसुन्दरियोंका सन्तोष विधान करनेमें समर्थ हैं, जो पृथ्वीके भाररूपी दैत्यदानवोंका संहार करते हैं—ऐसे कंस-विध्वंसके धूमकेतु स्वरूप देवकीनन्दन श्रीकृष्ण आप सबकी रक्षा करें।

बालबोधिनी—श्रीराधा और श्रीकृष्णके विरह वर्णन करनेके पश्चात् कवि दोनोंके मिलनके संभोग पक्षीय श्रृंगार-रसका चित्रण करते हुए पाठकों तथा श्रोताओंको आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहते हैं कि—

मुग्धमुखारविन्दमधुप—श्रीराधाका मुख कमलवत् है। जिस

प्रकार भ्रमर कमलका सेवन करते हुए उसके पराग मधुका पान करता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधाके मुख-कमल-माधुर्यका आस्वादन करते हैं। इसलिए वे 'मुग्धमधुप' पदसे संबोधित हुए हैं। प्रस्तुत श्लोकांशसे संयोग व्यक्त हुआ है।

त्रैलोक्यमौलिस्थलीनेपथ्योचितनीलरत्नः—त्रिभुवनमें किरीट स्थानीय अर्थात् सर्वोत्कृष्ट स्थानोंको विभूषित करनेवाले वे नील-रत्न हैं। नेपथ्योचितका अर्थ है 'भूषणोचित'।

अवनीभारावन्तारान्तक—शिशुपाल, दन्तवक्र तथा कंस आदि पृथ्वीका भार बढ़ानेके लिए उत्पन्न हुए थे, इन्हीं 'राक्षसों' का विनाश करनेके लिए श्रीकृष्ण अवतीर्ण हुए थे। अन्तकका अर्थ है 'यम'। श्रीकृष्ण अवनीभारावन्तारोंके लिए यमके समान है।

स्वच्छन्दं व्रजसुन्दरीजनमनस्तोषप्रदोषोदयः—श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंके मनोंको तोषप्रदानकारी सायंकालवत् हैं। सायंकाल होनेपर जैसे द्विजराज चन्द्रमा उदित होता है तथा कामिनियोंको अपने प्रेमियोंसे मिलनेका अवसर करता है, वैसे ही श्रीकृष्ण व्रजसुन्दरियोंके हृदयोंको स्वच्छन्दतापूर्वक आनन्द प्रदानकर उनकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं।

कंसध्वसनधूमकेतुः—कंस नामक असुरके विनाशकारी श्रीकृष्ण धूमकेतु तारेके समान हैं। धूमकेतु एक तारा विशेष है। मान्यता है कि जब यह उदित होता है, तब राजाका विनाश अवश्यम्भावी होता है। श्रीकृष्णका अवतार कंसके विनाशका सूचक है।

धूमकेतुका अन्य अर्थ है—भानुके समान प्रकाशक। श्रीराधाके कामको शान्त करनेवाले श्रीकृष्ण धूमकेतु हैं।

प्रदोष अर्थात् प्रगतो दोषादयः।

प्रस्तुत श्लोकमें श्लेष, लुप्तोपमा, परिकर तथा वर्णोपमा

नामक अलंकारोंका समावेश है। शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा पाञ्चाली रीति है।

इस प्रकार श्रीजयदेव प्रणीत गीतगोविन्द काव्यके अभिसारिका वर्णनमें 'साकांक्षपुण्डरीकाक्ष' नामक पाँचवाँ सर्ग पूर्ण हुआ।

श्रीराधाके आगमनकी प्रतीक्षामें पुण्डरीकाक्ष विराजमान हैं—ऐसा यह पाँचवाँ सर्ग सबके प्रति आनन्ददायी हो।

इति गीतिगोविन्द महाकाव्ये एकादश सन्दर्भे टीकायां बालबोधिनी वृत्ति।

षष्ठः सर्गः

'धृष्ट–वैकुण्ठः'

अथ तां गन्तुमशक्तां चिरमनुरक्तां लतागृहे दृष्ट्वा।
तच्चरितं गोविन्दे मनसिजमन्दे सखी प्राह॥१॥

अन्वय—अथ (अनन्तरं) चिरम् अनुरक्तां (एकान्तानुरागिणीं) तां प्रियतम–वैकल्यश्रवणेन दशमीदशोन्मुखीमिव) राधां लतागृहे (कुञ्जे) [अपेक्षमाणां] [तथा सामर्थ्याभावात् स्वयं] गन्तुमशक्तां दृष्ट्वा [अति व्याकुला] सखी (दूती) मनसिजमन्दे (मनसिजेन प्रियार्त्तिश्रवणजात–मनोदुःखेन मन्दे निरुत्साहीकृते) गोविन्दे (कृष्णे) तच्चरितं (तस्याः राधायाः चरितं) प्राह। अनेन राधाया वासकसज्जावस्था प्रकटिता। तल्लक्षणो यथा—"कुरुते मण्डनं यातु सज्जिते वास–वेश्मनि। सातु वासकसज्जा स्याद् विदित–प्रिय–सङ्गमा॥" इति साहित्यदर्पणे]॥१॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके पास जानेमें असमर्थ तथा चिरकालसे उनमें अनुरक्त श्रीराधाको लतागृहमें देखकर मदन–विकारसे आर्त गोविन्दसे सखीने कहा—

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णके प्रति प्रबल अनुरागिणी होनेपर भी विरहवेदनाजनित क्षीणताके कारण उनके सन्निकट अभिसारके लिए नहीं जा सकीं। प्रियसखी लतागृहमें राधिकाको इस स्थितिमें रखकर श्रीकृष्णके निकट जाकर उनकी चेष्टाओंका वर्णन करती है। श्रीकृष्ण मदन–सन्तापके कारण विषण्ण चित्तसे बैठे हुए हैं। अतएव उनकी गति मन्द पड़ गयी है। श्रीराधा श्रीगोविन्दमें अनुरक्ता हैं। लतागृहसे संकेतस्थलका तात्पर्य है।

प्रस्तुत श्लोकमें आर्या छन्द है।

''हे हरि, राधा आवास गृहे—
पल–पल दिशि दिशि देख रही है।''

द्वादशः सन्दर्भः।

गीतम् ॥१२ ॥

गुणकरी रागेण रूपकतालेन गीयते।

यह बारहवाँ प्रबन्ध गुणकरी राग तथा रूपक तालद्वारा गाया जाता है।

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम्।
तदधर-मधुर-मधूनि पिवन्तम्॥
नाथ हरे! सीदति राधाऽऽवासगृहे॥१ ॥ध्रुवपदम्

अन्वय—[राधा] रहसि (एकान्ते) दिशि दिशि (प्रतिदिशं) तदधरमधुर-मधुनि (तस्याः एव राधायाः अधरस्य मधुराणि मधुनि) पिवन्तं भवन्तं पश्यति; हे नाथ हरे, [त्वयि अनुरक्ततया सन्ताप एवानुभूतस्तया इति नाथशब्दः, त्वया च तस्या लज्जाधैर्यादि-हरणात् हरिशब्दोऽपि प्रयुक्तः] राधा वासगृहे (सङ्केतभवने) सीदति (त्वदागमनप्रतीक्षया क्रमशः अवसन्ना भवति) [त्वन्मयं जगत् प्रतिभाति तस्याः तथापि त्वं मनसापि तां न स्मरसीति सन्तापकत्वमेवेत्यर्थः]॥१ ॥

अनुवाद—हे नाथ! हे हरे! श्रीराधा अपने आवास गृहमें सीझ रही हैं, अत्यन्त दुःखी हो रही हैं, स्वाधरके मधुर सुधापानमें सकुशल आपको मन-ही-मन सकल दिशाओंमें देख रही हैं।

पद्यानुवाद—

पल-पल दिशि दिशि देख रही है
मधुर अधर रस पीते,
कहाँ दूर हो, कहाँ निकट हो
हे मेरे मनचीते?
हे हरि, राधा आवास गृहे
कब तक वियोगका त्रास सहे॥

बालबोधिनी—श्रीराधाकी चेष्टाओंका वर्णन करती हुई

सखी कहती है—हे श्रीकृष्ण! श्रीराधा आवासगृहमें अर्थात् संकेतस्थान पर अवसादको प्राप्त हो रही हैं। एकान्तमें बैठी हुई वह प्रत्येक दिशाओंमें अपनी भावनाकी तीव्र प्रबलतासे सर्वत्र आपको देख रही हैं। सभी दिशाएँ उनके लिए कृष्णमयी हो गयी हैं। लता-गृहमें आपके चरित्रकी मधुर-मधुर बातोंका वह सप्रेम श्रवण-पान कर रही हैं—ऐसा अर्थ भी किया जा सकता है। चिरकालीन प्रेमकी प्रकृति ही ऐसी होती है कि मन और शरीरमें तालमेल नहीं रहता, मन कुछ करना चाहता है, पर शरीर साथ नहीं देता। निढाल पड़ी हैं वह।

त्वदभिसरण-रभसेन वलन्ती।
पतति पदानि कियन्ति चलन्ती—
नाथ हरे! सीदति... ॥२॥

अन्वय—[यद्येतादृशी सा तर्हि कथं ना गच्छतीत्याह]—त्वदभिसरण-रभसेन (तव अभिसरणे यः रभसः उत्साहः हर्षो वा तेन) वलन्ती (उत्सहमाना वलयुक्ता वा) [सती] कियन्ति पदानि चलन्ती [सामर्थ्याभावात् मूर्च्छिता] पतति [अतः स्वयमागन्तुमसमर्था] हे नाथ....एवं सर्वत्र]॥२॥

अनुवाद—श्रीराधा अपने अभिसरणके उत्साहसे उत्सुक हो प्रसाधनादि कार्योंमें व्यस्त होती हुई ज्यों ही कुछ कदम चलती हैं, त्यों ही गिर जाती हैं।

पद्यानुवाद—

यह कहकर तुमसे मिलनेको,
ज्यों व्याकुल हो बढ़ती।
गिर पड़ती है पथमें क्षणमें,
क्षणमें है उठ पड़ती॥
हे हरि राधा आवास गृहे।
कब तक वियोगका वास गृहे॥

बालबोधिनी—हे श्रीकृष्ण! प्रसाधनादि कार्योंमें लगी हुई श्रीराधा अभिसार करनेके लिए बड़े वेगसे उठती हैं, किन्तु विरहमें अत्यन्त क्षीण होनेके कारण विवश होकर वह कुछ ही कदम चलकर भूमिपर मूर्च्छित होकर गिर जाती हैं।

विहित-विशद-विस-किसलय-वलया।
जीवति परमिह तव रति-कलया—
नाथ हरे! सीदति... ॥३॥

अन्वय—[कथं तर्हि जीवतीत्याह]—विहित-विशदविस-किशलय-वलया (विहितं कृतं विशदविसानां शुभ्रमृणालानां किसलयानाञ्च वलयं यया तादृशी) [सती] परं (केवलं) तव रतिकलया (रमणावेशेन) इह जीवति॥३॥

अनुवाद—विमल-धवल मृणाल एवं नव-पल्लव विरचित वलय-समूहको पहने वह केवल आपके साथ रमण करनेकी इच्छासे जी रही हैं।

पद्यानुवाद—

किसलय कोमल वलय धार कर
रति-चिन्ता-रस साने।

बालबोधिनी—मृणालके सूत्रोंसे और उसकी कोपलोंसे श्रीराधाने स्वयंको वलयित कर लिया है, जिससे कामजन्य संतापसे मुक्ति मिले। अतिशय क्षीण और कृशा होनेपर भी आपके साथ रमण करनेकी इच्छासे आनन्दित होकर उन्होंने अभी तक प्राणोंको धारण कर रखा है। तुम्हारे प्रेमकी विधि अभी भी उनके प्राणोंमें बसी है। तुम्हारे प्रेमका एक पूरा तन्त्र प्राणकी तन्त्रीमें बज रहा है। रमणका आवेश ही उनके प्राण धारणका कारण है।

मुहुरवलोकित-मण्डन-लीला।
मधुरिपुरहमिति भावन-शीला—
नाथ हरे! सीदति... ॥४॥

अन्वय—[तत्प्रकारमेवाह—मुहुः (पुनः पुनः) [स्वस्मिन्नेव] अवलोकित-मण्डनलीला (अवलोकिता तवैव मण्डनस्य बर्हगुञ्जादिभूषणस्य लीला विलासो यया सा) [अतएव] अहं मधुरिपुः (श्रीकृष्णः) इति भावनशीला (भावनपरा; कृष्ण एवाहमिति चिन्तनपरा इति भावः)॥४॥

अनुवाद—'मैं ही मधुरिपु हूँ' इस प्रकारकी भावनामयी होकर वह मुहुःमुहुः आपके आभूषणों और अलंकरणोंको देखती हैं।

पद्यानुवाद—

कभी रचाती रास मुग्ध हो,
माधव निज अनुमाने।
हे हरि राधा आवास गृहे,
कब तक वियोगका त्रास सहे?

बालबोधिनी—हे श्रीकृष्ण! आपके साथ एकप्राण हो 'मैं ही मधुसूदन हूँ, मैं ही श्रीराधाप्राण श्रीकृष्ण हूँ, ऐसी भावना करती हुई स्वयंमें आपका आरोपण कर लेती हैं, तद्रूप हो जाती हैं। ये मुकुट, कुण्डल, वनमाला आदि अलङ्कार श्रीराधाके साथ रमण करने योग्य हैं—इस भावनासे पुनः पुनः उन अलङ्कारोंको धारण करती हैं। स्त्री-योग्य आभूषणोंको छोड़कर तुम्हारे विरहके दुःखसे पुरुषायित सुरत योग्य आभूषणोंको धारण करती हुई तद्रूपताको प्राप्त हुई वह अपना समय बिताती हैं। वह माधव बनकर श्रीराधाका शृङ्गार देखती हैं।

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम्।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम्—
नाथ हरे! सीदति...॥५॥

अन्वय—[पुनः स्फूर्त्त्यपगमेतु आत्मानं पृथङ्मत्वा] हरिः

कथं त्वरितम् अभिसारं (सङ्केतस्थानं) न उपैति (आगच्छति) इति अनुवारं (पुनः पुनः) सखीं (मां) वदति (पृच्छति)॥५॥

अनुवाद—बार–बार अपनी सखीसे पूछती हैं—सखि! श्रीकृष्ण अभिसरणके लिए शीघ्र ही क्यों नहीं आते?

पद्यानुवाद—

बार–बार कहती है 'सखि!
कब आयेंगे वनमाली?'

बालबोधिनी—सखी श्रीकृष्णसे कहती है—हे श्रीकृष्ण! कभी–कभी तो ऐसा होता है कि श्रीराधा बार–बार मेरे सामने आती हैं और यही पूछती हैं—श्रीहरि इस संकेत स्थान पर मुझसे मिलनेके लिए त्वरित क्यों नहीं आते?

श्लिष्यति चुम्बति जलधर–कल्पम्।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम्—
नाथ हरे! सीदति... ॥६॥

अन्वय—[पुनश्च अत्यावेशेन] हरिः उपगतः (आयातः) इति [बुद्धा] जलधर–कल्पं (मेघसदृशं) अनल्पं (प्रगाढ़ं) तिमिरं (अन्धकारं) श्लिष्यति (आलिङ्गति) चुम्बति च॥६॥

अनुवाद—जलधरके समान प्रतीत होनेवाले घने अन्धकारको "हरि आ गये"—ऐसा समझकर आलिङ्गन और चुम्बन करती हैं।

पद्यानुवाद—

जान जलद सम तम को—"तुम हो"
फूल उठी मतवाली।
करने लगी उसीका चुम्बन,
आलिङ्गन मधुमाती॥

बालबोधिनी—जब वह कुछ जलभरे मेघके समान स्निग्ध नीलकान्तिवाले विपुल अन्धकारको देखती हैं तो उन्हें लगता है—'श्रीकृष्ण, तुम आ गये हो' और उस स्निग्ध अंधकारको ही अङ्कमें भर लेती हैं और चुम्बन करने लगती हैं।

भवति विलम्बिनि विगलित-लज्जा।
विलपति रोदिति वासक-सज्जा—
नाथ हरे! सीदति... ॥७॥

अन्वय—[पुनस्तदपगमे] भवति (त्वयि) विलम्बिनि (कृतविलम्बे) वासकसज्जा (वासक-सज्जावस्थां प्राप्ता; सज्जित-विलासगृहा इत्यर्थः) [सा] विगलित-लज्जा (विगलिता लज्जा यस्याः तादृशी सती) विलपति रोदिति च॥७॥

अनुवाद—जब श्रीराधाको बाह्यज्ञान होता है कि आप वह नहीं हैं, आप आनेमें देर कर रहे हैं, तो वह वासकसज्जा श्रीराधा लाज खोकर विलखने लगती हैं, रोने लगती हैं।

पद्यानुवाद—

लख विलम्ब वह वासकसज्जा,
लज्जा खो तन-छीनी।
रोती और विलपती रहती,
कवि 'जय'की यह वाणी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा वासकसज्जा नायिकाके रूपमें यहाँ निरूपित हुई हैं। जब श्रीराधा यह जान लेती हैं कि मैं जिसको आलिङ्गनकर चूम रही हूँ, वह श्रीकृष्ण नहीं प्रत्युत घना अन्धकार है तो वह अपने कृत्य पर लज्जित हो रोने-कलपने लगती हैं। उनकी बेसुधी ऐसी है कि आसपासके अंधकारके प्रसारको ही वह वर्ण-भ्रान्तिसे अपना प्रियतम मान लेती हैं। और फिर मेरे प्रियतम अभी तक क्यों नहीं आये कहकर बिलखने लगती हैं।

वासकसज्जा—जो नायिका संकेत-कुञ्जमें उपस्थित होकर बड़े उत्साहसे नायककी प्रतीक्षा करती हुई कुञ्जको और उसमें पुष्प-शय्याको तथा स्वयंको सजाती हैं तथा नायकके पास बारम्बार दूतीको भेजती हैं, उसे वासकसज्जा नायिका कहते हैं।

श्रीजयदेव-कवेरिदमुदितम् ।
रसिकजनं तनुतामतिमुदितम्—
नाथ हरे! सीदति... ॥८॥

अन्वय—श्रीजयदेव-कवेः उदितम् (उक्तम्) इदं [शृङ्गार-रस भावितान्तःकरणं] रसिकजनम् अतिमुदितं (अतिप्रीतं) तनुताम् (कुरुताम्)। [एतेन शृङ्गार-रसाविष्टैर्भक्तैरिव श्रीजयदेवोक्तवचन-मास्वादनीयमित्युक्तम्] ॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा रचित इस गानसे रसिक जनोंके हृदयमें अतिशय हर्षका उदय हो।

पद्यानुवाद—

सुनते हैं जो जन इस जगमें,
पाते गति कल्याणी॥
हे हरि राधा आवास गृहे,
कब तक वियोगका त्रास सहे?

बालबोधिनी—कवि जयदेव कहते हैं कि सखीने जो श्रीराधाकी चेष्टा निवेदन-विषयक गीत गाया है, वह गीत शृंगार-रस द्वारा विभावित चित्तमय रसिक भक्तोंको अतिशय आनन्द प्रदान करे।

प्रस्तुत गीतमें शृंगार-रसके विप्रलम्भ भाव-रसका चित्रण है। समुच्चय स्वर है। शठ नायक है। चिन्तासे व्याकुल होनेवाली वासकसज्जा नायिका है।

विपुल-पुलक-पालिः स्फीत-सीत्कारमन्त-
र्जनितजड़िमु काकु-व्याकुलं व्याहरन्ती।
तव कितव! विधायामन्द-कन्दर्प-चिन्तां
रस-जलनिधि-मग्ना ध्यानलग्ना मृगाक्षी ॥१॥

अन्वय—[स्व-सख्यार्त्ति-स्मरणेन व्याकुला सा सेर्षमिव पुनराह]—हे कितव (धूर्त्त; गतप्राणामिव तां वनमानीय निश्चिन्तोऽसीति धूर्त्ततया सम्बोधनम्) विपुल-पुलक-पालिः

(विपुला महती पुलकानां रोमाञ्चानां पालिः पङ्क्ति यस्याः तवाङ्ग-स्पर्श-चिन्तनेन सञ्जातरोमाञ्चा इत्यर्थः) स्फीत-शीत्कारं (स्फीतः प्रवृद्धः शीत्कारः तव दशन-क्षतादि-कल्पनेन जनित इति भावः यत्र तद् यथा स्यात् तथा) अन्तः (अभ्यन्तरे) जनित-जड़िम-काकु-व्याकुलं (जनितो योऽसौ जड़िमा जाड्यम् अस्फुटत्वमित्यर्थः तेन जाता या काकुः तया काक्वा ध्वनेर्विकारेण परिरम्भण-चुम्बनादि-स्मरण-जनितेन इति भावः व्याकुलं यथास्यात् तथा) व्याहरन्ती (ब्रुवती) सा मृगाक्षी (मृगनयना, मृगी इव सरलचित्ता इत्यभिप्रायः) अमन्द-कन्दर्प-चिन्तां (अमन्दा गाढ़ा या कन्दर्पचिन्ता कामचिन्ता तां) विधाय (परिकल्प्य) तव रस-जलधि-निमग्ना (रस-जलधौ शृङ्गार-रस-सागरे निमग्ना; एतेन आलम्बनं बिना कथं सा जीवतीति अर्थात् ज्ञेयम्; समुद्रमग्ना यथा काष्ठमवलम्बते तथा इयमपि उपायान्तराभावात् त्वयि एव) ध्यानलग्ना (ध्याने तव चिन्तने लग्ना च) [वर्त्तते इति शेषः]॥१॥

अनुवाद—हे शठ! अति रोमांचसे युक्त, अन्तर्जनित जड़ता एवं काकुध्वनि द्वारा स्पष्ट रूपसे सीत्कार करती हुई वह मृगाक्षी राधिका आपके अतिशय तीव्र मदन-विकारके आवेशमें आपके प्रेम-रस सागरमें निमज्जित हो किसी प्रकार प्राण धारण करती है।

पद्यानुवाद—

विपुल पुलक तन, अतुल ललक मन,
ध्यान सुरति सुख-लीना।
मिलन कल्पना रस-सागरमें
डूब रही मति दीना॥

बालबोधिनी—श्रीराधाके प्रेमोन्मादका—कन्दर्पोन्मादका चित्रण करती हुई सखी कहती है—हे शठ! हे धूर्त! हे कपटी! वह

मृगनयनी राधिका तुम्हारे संश्लेष-आश्लेषके रस-सिन्धुमें डूबती हुई ध्यान-परायण हो गयी है, तुम्हारे ध्यानमें मग्न हो गयी है। उनको प्रतीत होता है कि तुमने उसे आलिंगित कर रखा है। इसलिए उनके शरीरके रोम-रोममें आनन्द हो गया है। आनन्दातिशयताके कारण वह विपुल रोमाञ्चित हो गयी है और सिसकारती हुई अन्तर-जाड्यके कारण कुछ-कुछ अस्फुट बोलती है, अपने भीतर कामके तीव्र आवेशको समेटे वह आनन्द-जलधिमें डूब-उतर रही है।

प्रस्तुत श्लोकमें मालिनी छन्द तथा रसवदलंकार है।

अङ्गेष्वाभरणं करोति बहुशः पत्रेऽपि सञ्चारिणि
प्राप्तं त्वां परिशङ्कते वितनुते शय्यां चिरं ध्यायति।
इत्याकल्प-विकल्प-तल्प-रचना-सङ्कल्पलीला-शत-
व्यासक्तापि विना त्वया वरतनुर्नैषा निशां नेष्यति॥२॥

अन्वय—[पुनरतिशीघ्रगमनाय तस्या वासकसज्जा-चेष्टितमाह] —[श्रीकृष्णो मामेवं पश्यन् मन्दमना भविष्यतीति तव अनुरञ्जनाय] एषा वरतनुः (वराङ्गी) अङ्गेषु बहुशः आभरणं करोति (परिधत्ते); [अनागत इति त्यजति च पुनरपि करोति—अनेन भूषण-बाहुल्यमित्याकल्पः]; पत्रे सञ्चारिणि अपि (पक्ष्यादिना चलति सति) त्वां प्राप्तं (आगतं) परिशङ्कते (तर्कयति) [अनेन विकल्पः]; [आगता कृष्णः अत्र शयिष्यते इति] शय्यां वितनुते (पारिपाट्येन विचरयति) [अनेन तल्परचना]; चिरं ध्यायति (तव सङ्गमरसं चिन्तयतिच) [अनेन सङ्कल्प-लीलाशतम्]; इति (एवंरूपेण) आकल्प-विकल्प-तल्परचना-सङ्कल्प-लीलाशत-व्यासक्तापि (आकल्पस्य भूषणस्य, विकल्पस्य वितर्कस्य, तल्पस्य शय्यायाश्च रचनायां तथा सङ्कल्पलीलाशतेषु परिकल्पित-विलाससमूहेषु व्यासक्तापि विनिवेशितचित्तापि) त्वया बिना निशां न नेष्यति (न यापयिष्यति)। [विरहव्याकुलया स्तस्या रात्रियापनमधुना सुदुष्करमिति भावः]॥२॥

अनुवाद—वरतनु श्रीराधा कई बार अपने अंगोंमें अलङ्कार धारण करती हैं, पत्तोंके संचरित होनेपर 'आप आ गये हैं'—इस प्रकारकी परिशङ्का करती हैं, आपके लिए मृदु शय्याकी रचना करती हैं, आपके आनेमें विलम्ब होनेपर अधिक दुःखी होती हैं। इस प्रकार अलंकरण, विकल्प, तल्परचना, प्रेमालाप, संकल्प आदि अनेक प्रकारकी लीलाओंमें आसक्त रहकर भी आपके विरहमें वह रात्रि नहीं बिता पा रही हैं।

पद्यानुवाद—

पत्तोंकी आहटसे आनेकी जब शङ्का होती
सजा अंक मृदु शैया सत्वर उत्सुक है अति होती।
कल्प, तल्प, संकल्प भावमें यद्यपि उलझी रहती
तुम बिन नहीं काट पाती निशि, घड़ियाँ गिनती रहती॥

बालबोधिनी—वासकसज्जाकी मनःस्थितियोंका, आकुल क्रिया और चेष्टाओंका वर्णन करती हुई सखी श्रीकृष्णसे कहती है—श्रीराधा ध्यान आदिके द्वारा तुम्हारे साथ रमण करती हुई भी आपसे साक्षात् संयोग प्राप्त नहीं होनेके कारण अति विकल हैं। हे माधव! मेरी वरसुन्दरी सखी आपके आगमनकी प्रत्याशामें आपको आकर्षित करनेवाले आभूषणोंसे अपने श्रीअङ्गोंको विभूषित करती हैं। तरु-पल्लव जब समीरसे आन्दोलित होकर खड़खड़ाता है, तो उसे इस बातकी शङ्का होती है कि आप आ रहे हैं। पुनः आप अवश्य आयेंगे—ऐसा सोचकरके किसलयोंसे सेजकी रचना करती है। आपमें खोयी हुई आपकी ही बाट जोहती हुई आपका ही ध्यान करती हैं। आपको वहाँ प्रस्तुत न देखकर अत्यन्त दुःखित हो जाती हैं। इस प्रकार अलङ्कार-धारण, आपके आगमनकी शङ्का, आपके निश्चित आगमनके संकल्पसे शय्या-रचना आदि अनेक प्रकारकी क्रियाओंमें तल्लीन रहकर भी आपके बिना रात्रिका अतिवाहन करनेमें नितान्त असमर्थ हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द और समुच्चय अलङ्कार है।

किं विश्राम्यसि कृष्ण–भोगि–भवने भाण्डीर–भूमीरुहे।
भ्रातर्याहि न दृष्टि–गोचराभितः सानन्द–नन्दास्पदम् ॥
राधाया वचनं तदध्वग–मुखानन्दान्तिके गोपतो।
गोविन्दस्य जयति सायमतिथि–प्राशस्त्य–गर्भा गिरः ?

इति श्रीगीतगोविन्दे द्वादशः सन्दर्भः।

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये वासकसज्जावर्णने धृष्ट–वैकुण्ठो नाम षष्ठः सर्गः॥

अन्वय—[इदानीं कविः एतद्वर्णन–व्याकुलः तस्य अभिसारात् पूर्वचरितं कथयन् सर्गान्ते आशिषं प्रयुङ्क्ते]—हे भ्रातः (पथिक !) कृष्णभोगि भवने (कृष्णसर्पस्य आश्रयस्थाने; पक्षे सम्भोगविशिष्टस्य श्रीकृष्णस्य भवने विहरणस्थाने) भाण्डीर–भूमीरुहे (भाण्डीर–वृक्षे लक्षणया तदीयतले इत्यर्थः) किं (कथं) विश्राम्यसि (विश्रामं माकुरु इत्यर्थः) [तर्हि इदानीं क्व यामि इत्यत आह]—इतः (अस्मात् स्थानात्) दृष्टिगोचरं (इतो दृश्यते इति भावः) सानन्द–नन्दास्पदं (आनन्देन सह वर्त्तमानं नन्दस्य आस्पदं गृहं; पक्षे उत्सवपूर्णमानन्दनिकेतनं) किं (कथं) न यासि [येन तव शङ्का न भवेदिति भावः]। राधायाः तत् (एतत्) वचनम् (सङ्केतवाक्यम्) अध्वग–मुखात् (पथिकवदनात्, पथिक–वेशिन्या दूत्या मुखादिति भावः) नन्दान्तिके (नन्दसमीपे) गोपतः (गोपयतः) गोविन्दस्य सायं (सन्ध्यासमये) अतिथि–प्राशस्त्य–गर्भा (अतिथेस्तस्यैव प्राशस्त्यं प्रशंसादिरूपं तदेव गर्भोऽभिप्रायो यासां ताः) गिरः (वाचः) जयन्ति (श्रीराधाया मनोरथं पूरयन्ति) [अतएव धृष्टः प्रगल्भो वैकुण्ठो यत्र इत्यायं सर्गः षष्ठः] ॥३ ॥

अनुवाद—श्रीराधाने सखीका विलम्ब देखकर श्रीकृष्णके समीप बहाना बनाकर एक दूतीको भेजा। उस दूतीने

सायंकाल पथिक वेशमें श्रीकृष्णके समीप आकर श्रीराधाके द्वारा दिये हुए इन संकेत वाक्योंको कहा—"श्रीराधाके घरमें अतिथि बनने पर उन्होंने मुझसे कहा कि हे भ्रात! इस भाण्डीर वृक्षके तले विश्राम क्यों कर रहे हो? यहाँ तो श्रीकृष्ण (काल) सर्प रहता है। सामने ही दृष्टिगोचर होनेवाले आनन्दप्रद नन्दालयमें चले जाओ। तुम वहाँ क्यों नहीं जा रहे हो?" कहीं उनके पिता श्रीनन्द महाराज इन बातोंका भावार्थ समझ न लें, इसलिए श्रीकृष्ण उनसे गोपन करनेके लिए श्रीराधाजीके द्वारा प्रेरित दूतको जो धन्यवाद दिया है, वे वाणियाँ जययुक्त हों।

बालबोधिनी—महाकवि जयदेव इस श्लोकके द्वारा आशीर्वाद देते हुए इस सर्गका उपसंहार करते हैं। सायंकालके अतिथिकी प्रशंसासे युक्त श्रीगोविन्दकी वाणियोंकी जय हो। जय-जयकारसे श्रीकृष्णकी सर्वोत्कृष्टता सिद्ध होती है। जैसे श्रीकृष्णने पथिकके मुँहसे निःसृत श्रीराधा-विषयक बातको छिपानेके लिए पथिकसे कहा—हे भाई! यहाँ काले सर्पके घरमें वटवृक्षके नीचे क्यों विलाप कर रहे हो? यहाँसे सामने ही दृष्टिगोचर होनेवाले आनन्दप्रद नन्दके घरमें चले जाओ, जो थोड़ी ही दूरपर स्थित है।

जब सखीको लौटनेमें विलम्ब होता हुआ देखा तो श्रीराधाने एक दूतीको कोई बहाना बनाकर श्रीकृष्णके समीप भेजा। उस दूतीने सन्ध्याके समय पथिक वेशमें श्रीकृष्णके समीप जाकर श्रीराधाके द्वारा दिये हुए जो संकेत वाक्य कहे थे, उसको गोपन करनेके लिए श्रीकृष्णने जो प्रशंसायुक्त वाणी कही, उसकी जय हो।

इति श्रीगीतगोविन्दमें धृष्ट-वैकुण्ठनामक षष्ठसर्गकी
बालबोधिनी वृत्ति।

❁ ❁ ❁

सप्तमः सर्गः

नागर-नारायणः

अत्रान्तरे च कुलटा-कुल-वर्त्म-पात
सञ्जात-पातक इव स्फुट-लाञ्छन-श्रीः।
वृन्दावनान्तरमदीपयदंशु-जालै-
र्दिक्सुन्दरी-वदन-चन्दन-बिन्दुरिन्दुः ॥१॥

अन्वय—अत्रान्तरे (अस्मिन् अवसरे) दिक्सुन्दरी-वदन-चन्दन-विन्दुः (दिक् पूर्वा सैव सुन्दरी तस्याः वदने चन्दन विन्दुरिव इति लुप्तोपमा) कुलटा-कुल-वर्त्मपात-सञ्जात-पातकः इव (कुलटानां कुलवर्त्मनः कुलाचारात् यः पातः पातनः तस्मात् सञ्जातं पातकं तज्जात-रोगविशेषो यस्य तथा-भूत इव) स्फुटलाञ्छनश्रीः (स्फुटा) सुव्यक्ता लाञ्छनस्य कलङ्कस्य श्रीः शोभा यस्मिन् तादृशः; यः खलु पातकी भवति स रोगविशेषचिह्नितो भवतीति भावः; अनेन चन्द्रस्य पूर्णप्रायता उक्ता] इन्दुः (चन्द्रः) अंशुजालैः (किरण समूहैः) वृन्दावनान्तरम् अदीपयत्॥१॥

अनुवाद—श्रीकृष्ण श्रीराधाके समीप जानेके लिए सोच ही रहे थे कि इतनेमें पूर्व दिशारूपी सुन्दर वधूके वदन कमलमें चन्दन-बिन्दुके समान कुछ ही दूरी पर जैसे कुलटा स्त्री कुलधर्मका त्याग करने पर जिस विशेषरोगको (क्षयरोग) भोग करती है, उसके चिह्नकी भाँति अपने अङ्गमें कलंकको धारण करते हुए सुस्निग्ध किरणोंके द्वारा श्रीवृन्दावन धामको अतिशय सुशोभित कर दिया।

पद्यानुवाद—

इसी समय 'कुलटा कुल' का 'संकेत-गमन' अवरोधे।
प्रकटित कर लाञ्छन-श्री अपनी पातकको परिशोधे॥
वृन्दावनके कुंज मध्य अब इन्दु अंशसह हासे।
दिशा-सुन्दरीके मुख पर ज्यों चन्दन-बिन्दु विलासे॥

बालबोधिनी—मानिनियोंके मानका खण्डन करनेवाले पूर्ण चन्द्रोदय-मण्डलका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं—जिस समय श्रीराधा श्रीकृष्णके विरहमें सन्तप्त हो रही थीं, उसी समय पूर्ण चन्द्रमाने वृन्दावनको अपनी किरणोंसे प्रकाशित कर दिया। कुलटा-कामिनियोंके मार्गमें बाधा उत्पन्न करनेके कारण जिस चन्द्रमाको पाप लग गया है, वह पाप उसकी मृगलाञ्छनश्रीसे स्पष्ट प्रतीत हो रहा है। अथवा पूर्व दिशा रूपी सुन्दरीके मुखमण्डलको अलंकृत करनेवाले चन्दनबिन्दुकी भाँति अपने कलङ्कको धारणकर उस द्विजराजने समस्त दिशाओंको अपने प्रकाशसे अलंकृत कर दिया। अथवा जिस प्रकार चन्दनका बिन्दु सुन्दरीके ललाटको समलंकृत करता है, उसी प्रकार दिशारूपी सुन्दरीको चन्द्रमाने समलंकृत किया।

पातक इव—दूसरेके मार्गमें जो बाधा उत्पन्न करता है, उसे पापी माना जाता है। कुलटाएँ अपने प्रेमियोंसे मिलनेके लिए रातमें ही निकलती हैं। अतः चन्द्रमाके उदित होनेसे अन्धकार प्रकाशित होने लगता है, जिससे कामिनियोंके मार्गमें बाधा उत्पन्न होती है। इसीका पाप चन्द्रमामें मृगलाञ्छनके रूपमें प्रतीत हो रहा है।

चन्द्रमा एक ओर तो सकलङ्क है, दूसरी ओर उन्मुक्त दिशाओंका श्रृङ्गार।

प्रस्तुत श्लोकमें वसन्ततिलका छन्द है, रूपक तथा उत्प्रेक्षा अलङ्कार है।

प्रसरति शशधर-बिम्बे विहित-विलम्बे च माधवे विधुरा।
विरचित-विविध-विलापं सा परितापं चकारोच्चैः॥२॥

अन्वय—शशधर-विम्बे (चन्द्रमण्डले) प्रसरति (उद्गच्छति) माधवे (कृष्णे) कृतविलम्बे (आगमने विलम्बं कृतवतिच) [सति] विधुरा (विरहाकुला) राधा उच्चैः विरचित-विविध-विलापं

(विरचितः कृतः विविधः विलापः विविधशङ्कारूपः यस्मिन् तद् यथा तथा) परितापं चकार॥२॥

अनुवाद—शशधर मण्डल पूर्ण रूपसे उदित हो गया है, माधव आनेमें विलम्ब कर रहे हैं, इसीलिए श्रीराधा विरहमें सन्तप्त होकर विविध प्रकारका उच्च-स्वरसे विलाप करती हुई बहुत अधिक परितापित होने लगीं।

पद्यानुवाद—

चढ़ता चन्द्र गगनमें लखकर हरि आगममें बाधा।
बिलख बिलख परितापमयी अति रो उठती है राधा॥

बालबोधिनी—चन्द्रमाके उदित होते ही माधवके आनेकी आशा क्षीण होने लगी, अतएव श्रीराधा उनके विरहसे बड़ी सन्तप्त हो गयीं। उसी सन्तापका वर्णन करते हुई सखी कहती है—अतिशय विधुर भावसे श्रीराधा बड़ी सन्तप्त होकर उच्च-स्वरसे विलाप करने लगीं। चन्द्रमाका बिम्ब विस्तीर्ण हो रहा था और माधव श्रीराधासे मिलनेको आनेके लिए विलम्ब कर रहे थे, व्याकुल श्रीराधा फूट-फूटकर बिलखने लगीं।

प्रस्तुत श्लोकमें आर्या छन्द है।

त्रयोदशः सन्दर्भः

गीतम् ॥१३ ॥

मालवराग-यतितालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—यह तेरहवाँ प्रबन्ध मालव राग तथा यति तालमें गाया जाता है।

कथित-समयेऽपि हरिरहह न ययौ वनं।
मम विफलमिदममलमपि रूपयौवनं॥
यामि हे! कमिह शरणं सखीजन-वचन-वञ्चिता॥१॥ध्रुवम्!

अन्वय—अहह (खेदे) कथित-समये (निर्द्धारित-समये, चन्द्रानुदय-काले इत्यर्थः) हरिः (मन्मनोहरः) [मन्मनो हृत्वा

''विफल रूप यौवन नव मेरा जो न उन्हें यह भाये।''

इत्यर्थः] वनमपि न ययौ [कुतोऽत्रागमनमित्यर्थः] इदं मम रूपयौवनं विमलमपि (अनवद्यमपि) [तेन बिना] विफलम् (व्यर्थम्); [अतएव] हे [नाथ] सखीगण-वचन-वञ्चिता (कृष्ण इह अचिरेणैव स्वयमायास्यतीति सखीजनस्य आश्वासवचनेन वञ्चिता विप्रलब्धा) अहम् इह (अधुना) कं शरणं यामि॥१॥

अनुवाद—मेरा अमल रूप-यौवन व्यर्थ ही है, क्योंकि संकेत-कालमें हरि वनमें नहीं आये। सखियोंसे वञ्चित अब मैं किसकी शरणमें जाऊँ?

पद्यानुवाद—

बीत रहा संकेत-समय पर वे न कुंजमें आये
विफल रूप यौवन नव मेरा जो न उन्हें यह भाये।
मैं भोली ठग गयी सखीके आश्वासन वचनों में
अब किसकी शरणोंमें जाऊँ भूली-सी सपनों में॥

बालबोधिनी—विरह-वेदनाकी अतिशय तीव्रताका अनुभव करती हुई श्रीराधाको अत्यन्त सन्ताप हो रहा है—सखी! तुमने तो कहा था मैं उन्हें अभी लेकर आती हूँ, तुम यहीं रहो, पर तुमने भी मेरी प्रताड़ना कर दी। चन्द्रोदयसे पहले यहाँ संकेत कुंजमें आनेकी बात थी, अब तो चन्द्रमा गगनमें अधिकाधिक उठता जा रहा है, तुम्हारे झूठे आश्वासनोंने मुझे ठग लिया है। मेरा यह निर्मल-अनवेद्य रूप-यौवन व्यर्थ ही प्रतीत होता है। यदि ये सार्थक होते तो वे अवश्य यहाँ उपस्थित होते।

'अहह' पदसे श्रीराधाका गहन कष्ट सूचित होता है। हे शब्दका प्रयोग सम्बोधनपरक है।

यदनुगमनाय निशि गहनमपि शीलितं।
तेन मम हृदयमिदमसमशर-कीलितम्—
यामि हे! कमिह...॥२॥

अन्वय—यदनुगमनाय (यस्य कृष्णस्य अनुगमनाय निरन्तरं सङ्गमाय) निशि (रात्रौ) [गृहवासं विहाय] गहनमपि (निविड़मपि)

वनं शीलितं (सेवितम्), तेन (कृष्णेन हेतुना) इदं मम हृदयम् असमशर-कीलितं (असम-शरेण पञ्चबाणेन कामेन कीलितं नितरां विद्धमित्यर्थः) [हे नाथ सखीजन-वञ्चिता इह कं शरणं यामीति सर्वत्र योजनीयम्]॥२॥

अनुवाद—हाय! जिनका अनुसरण करनेके लिए मैं इतनी गहन निशामें इस बीहड़ वनमें भी आ गयी और वही मेरे हृदयको कामबाणोंसे बेध कर रहा है। हाय! मैं किसकी शरणमें जाऊँ?

पद्यानुवाद—

जिसकी मिलन-चाह ले इतनी गहन निशामें आयी।
वही हृदयको मदन-शरोंसे छेद रहा री मायी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा कहती हैं कि जिनके साथ मिलनके लिए मैं एकान्त निर्जन काननमें आयी, उसीने मेरे हृदयमें कामकी कील ठोक दी है या कामका कोई बीजमन्त्र ऐसा कीलित कर दिया है कि मैं कहींकी नहीं रही। 'अपि' से तात्पर्य है ऐसा मैंने पहले कभी नहीं किया था।

मम मरणमेव वरमिति-वितथ-केतना।
किमिति विषहामि विरहानलमचेतना—
यामि हे! कमिह... ॥३॥

अन्वय—अति-वितथ-केतना (अतिवितथं नितान्तव्यर्थं केतनं देहः यस्याः तादृशी) [कृष्णविरहेण] अचेतना च [अहम्] इह (अधुना) किं (कथं) विरहानलं विषहामि [अतः] मरणमेव वरं (श्रेष्ठम्)॥३॥

अनुवाद—यह शरीर धारण करना व्यर्थ है, मुझे मर जाना चाहिए। मैं अचेत हो रही हूँ, अब यह दुःसह विरहानल कैसे सहन करूँ?

पद्यानुवाद—

विरह-अनलमें जलूँ कहाँ तक? हुआ विधाता वाम।
मरना ही अच्छा है अब तो, व्यर्थ हुई बदनाम॥

बालबोधिनी—मैं भ्रष्ट हो रही हूँ, जिनके साथ संगमके लिए मैं घोर अन्धकारपूर्ण रात्रि-कालमें गम्भीर वनमें बैठी रही, विह्वल और अचेतन हो गयी, मैं उनके विरहसे कितनी अधीर हो रही हूँ, मैं कहाँ जाऊँ, मेरा तो मरना ही अच्छा है, कितना विरह ताप सहन करूँ मैं, आशाके सभी संकेत झूँठे हो गये हैं। मेरा यह शरीर व्यर्थ ही है, नहीं तो हरि ऐसी उपेक्षा नहीं करते, सखीकी बातोंमें आकर मैंने यहाँ आनेका साहस कर लिया, पर मेरे सारे प्रयास व्यर्थ हैं, जीना व्यर्थ है।

मामहह विधुरयति मधुर-मधु-यामिनी।
कापि हरिमनुभवति कृत-सुकृत-कामिनी—
यामि हे! कमिह...॥४॥

अन्वय—अहह (खेदे मधुर-मधुयामिनी) (मधुरा मनोहारिणी मधुयामिनी वासन्ती रात्रिः) मां विधुरयति (व्याकुली करोति; या वासन्ती निशा दूरस्थमपि प्रियं सङ्गमयति, सैव सुकृताभावात् मां विधुरयतीति भावः)। कापि कृतसृकृत-कामिनी (कृतं सुकृतं यया तादृशी कामिनी भाग्यवती रमणी) हरिम् अनुभवति (तेन सह रहःकेलिसुखमनुभवतीत्यर्थः)॥४॥

अनुवाद—ओह! यह कैसा दुर्भाग्य है मेरा। यह सुमधुर वसन्तकी रात्रि मुझको विरह-वेदनासे अधीर कर रही है और उधर ऐसे समयमें निश्चित ही कोई कामिनी अपने पुण्यके फलस्वरूप परम सुखसे श्रीकृष्णके साथ रतिसुखका अनुभव कर रही है।

पद्यानुवाद—

इधर मधुर यह रात मुझे अब रह रह रुला रही है।
उधर अन्य कृत सुकृत कामिनी हरिको भुला रही है॥

बालबोधिनी—अन्तर-हृदयकी विकट विरह-वेदनाको अभिव्यक्त करती हुई श्रीराधा कहती हैं—परमसुखस्वरूपा वसन्त ऋतुकी ये सरस रात्रियाँ मुझे अतिशय व्यथित कर

रही हैं, दूसरी ओर कोई सुकृतशालिनी किशोरी श्रीकृष्णके साथ रति-क्रीड़ाका रसास्वादन कर रही है। उस विलासिनीके प्रेमपाशमें बँधकर रमण करते हुए श्रीकृष्ण इस संकेत-भूमि पर नहीं आये। कितनी सुकृतिका अभाव है? मैं विरह-विधुरा होकर विलाप कर रही हूँ और दूसरी उनके साथ रति-सुखका अनुभव कर रही है।

विश्वकोषमें विधुरका तात्पर्य 'विकलता' से है।

अहह कलयामि वलयादि-मणि-भूषणम्।
हरि-विरह-दहन-वहनेन बहु-दूषणम्—
यामि हे! कमिह... ॥५॥

अन्वय—अहह, हरि-विरह-दहन-बहनेन (हरिविरह एव दहनो वह्निः तस्य वहनेन धारणेन) वलयादि-मणि-भूषणं (मत्परिहित-कङ्कणादि-रत्नालङ्कारः) बहुदूषणं (बहूनि दूषणानि यस्य तत् अत्यधिक-दोषावहं, विरहानलसन्धुक्षितत्वात् अतिक्लेशकरमित्यर्थः) कलयामि (मन्ये) [प्रियावलोकफलोहि स्त्रीणां वेश इत्युक्तेः] ॥५॥

अनुवाद—हाय! मणिजड़ित बलयादि आभूषण समुदाय मेरे विरहानलको उद्दीपित कराकर मुझे अशेष दुःख प्रदान कर रहा है। अतः यह तो दोषयुक्त ही प्रतीत हो रहा है।

पद्यानुवाद—

मणि-भूषण दूषण लगते हैं,
पिय बिन कुछ न सुहाता।

बालबोधिनी—आह! सखि! तुमने बड़ा छल किया। मैंने पुष्पों-पल्लवों, मणियोंसे सजे इतने आभूषणोंसे शरीरको सजाया, पर सभी हरिके विरहकी आगमें अनल सदृश ही प्रतीत हो रहे हैं। मदनकी वेदनासे शरीर विरहाग्निमें तप्त हो रहा है। अब ये आभूषण नहीं रहे, अभिशाप हो गये हैं, क्योंकि प्रियके अवलोकनका फल ही रमणियोंका सौन्दर्य

एवं परिधान है अथवा अलङ्कारका प्रियत्व तो तभी अनुभव होता है, जब कोई उनको प्रेमपूर्वक देखनेवाला हो। अतः इनसे प्रियत्वकी प्रतीति नहीं, दोषकी प्रतीति होती है।

कुसुम–सुकुमार–तनुमतनु–शर लीलया।
स्त्रगपि हृदि हन्ति मामतिविषम–शीलया—
यामि हे! कमिह... ॥६ ॥

अन्वय—[का कथान्यभूषणानाम्]—[तत्प्रीत्यै] हृदि (हृदये) [निहिता] स्त्रक् अपि (कुसुममाल्यमपि; अतिसुकोमल-सुखस्पर्शमपीति भावः) अतिविषमशीलया (अतिविषमम् अतिदारुणं शीलं स्वभावो यस्यास्तादृश्या; अन्यस्तु बाणः क्षतुमुत्पाद्य व्यथयति, कामबाणस्तु विध्यन् अन्तर्भिनत्तीति विषमशीलत्वमस्य) अतनु-शरलीलया (कामबाण-विलासेन) कुसुम-सुकुमार-तनुं (कुसुमतः अपि सुकुमारी तनुः यस्याः तादृशीं; तत्सहन-सामर्थ्यमपि नास्त्यस्या इत्यर्थः) मां हन्ति (निपीड़यति) ॥६ ॥

अनुवाद—(दूसरे आभूषणोंकी तो बात ही क्या) मेरे वक्षःस्थलपर स्थित यह वनमाला अतिशय कोमल कुसुमसे भी सुकुमार मेरे शरीरको भी काम-शरकी भाँति विषम रूपसे आघात प्रदान कर रही है।

पद्यानुवाद—

कुसुम देह पर कुसुम हार था,
वहन नहीं हो पाता।

बालबोधिनी—हे कान्त! दूसरे आभूषणोंकी बात क्या कहूँ, उनकी प्रसन्नताके लिए जो वनमाला हृदयपर धारण करती हूँ, वही कामदेवका अस्त्र बनकर मेरे प्राण ले लेती है, काम-बाणकी भाँति हृदयको बेधने लगती है तथा उसका प्रहार इतना विषमय और असह्य होता है कि कुसुमसे भी अतिशय सुकुमार देह उसकी विषमताको सहन नहीं कर पाती है। बाणोंसे शरीर क्षत-विक्षत होता है तो मानो

सामान्य-सी पीड़ा होती है, किन्तु इन कामबाणोंके द्वारा बिंधे हृदयकी व्यथा सह्य नहीं होती।

अहमिह निवासामि न गणित-वनवेतसा।
स्मरति मधुसूदनो यामपि न चेतसा—
यामि हे! कमिह... ॥७॥

अन्वय—मधुसूदनः चेतसा (मनसा) अपि मां न स्मरति [अहो अस्थिर-सौहृदं मधुसूदनस्य]। अहं [पुनः] [भीतिमगणय] न गणितवन-वेतसा (न गणितं वनवेतसम् अतीवक्लेशकरमिति भावः, यया तादृशी) इह (भयङ्करे वने) [तत्समागमाकाङ्क्षया] निवसामि [अहो मे मूढ़ता]॥७॥

अनुवाद—मैं यहाँ भयानक वेतस वनमें भी निर्भय होकर श्रीकृष्णके लिए बैठी हूँ, किन्तु कितने आश्चर्यकी बात है कि वे मधुसूदन मुझे एक बार भी स्मरण नहीं करते।

पद्यानुवाद—

जिनके लिए त्याग महलोंको बैठी वेतस वनमें।
क्या आ पायी सुधि भी मेरी क्षण भर उनके मनमें॥

बालबोधिनी—श्रीराधा दैन्य प्रकाश करती हुई कहती है कि श्रीमधुसूदनसे मिलनेके लिए सखीकी बात मानकर मैं इस भयङ्कर वनके भीतर निर्भय होकर बैठी हूँ, परन्तु मधुसूदनको मेरी कोई चिन्ता नहीं है, उनका सुहृदय बड़ा अस्थिर है, बड़े आश्चर्यकी बात है कि इस बीहड़ वनमें जिनके लिए मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ, वे मेरा एक बार भी स्मरण नहीं करते। हाय! हाय! यह मेरा ही दुर्भाग्य है।

हरि-चरण-शरण-जयदेव-कवि-भारती।
वसतु हृदि युवतिरिव कोमल-कलावती—
यामि हे! कमिह... ॥८॥

अन्वय—कोमल-कलावती (कोमला माधुर्यगुणसम्पन्ना कलावती कवित्व-कला-शालिनी च) हरि-चरण-शरण-जयदेव-कवि-भारती (हरिचरण-मेव शरणम् आश्रयो यस्याः तथाभूता जयदेवकवेः भारती वाणी) [यूनां हृदये कोमलकलावती कोमला मृद्वङ्गी कलावती रति-कलानिपुणा] युवतिरिव [रसज्ञानां भक्तानां] हृदि (हृदये) वसतु]॥८॥

अनुवाद—कोमल वपुवाली मनोहर लावण्यवती कला-समलंकृत युवती जैसे सुन्दर गुणोंवाले युवकोंके मनमें सदा विराजमान रहती है, वैसे ही श्रीकृष्णके चरणोंके शरणागत श्रीजयदेव कविद्वारा विरचित यह सुललित गीति भक्तजनोंके मनमें सदा विराजमान हो।

पद्यानुवाद—

मंजुल वंजुल लता-कुंजमें मुझे बुलाये एकाकी।
कहाँ विलसने लगे छली वे, झलकी किसकी झाँकी॥

बालबोधिनी—जयदेव कवि कहते हैं कि उनके रक्षक एकमात्र श्रीकृष्णके चरण ही हैं। उनसे अलग उनका और कोई रक्षक नहीं है। जयदेव रचित कविता कोमल वर्णमयी और काव्य-सौष्ठवकी कलाओंसे समलंकृत है—यह कविता भक्तोंके हृदयमें उसी प्रकार स्थान प्राप्त करे, जिस प्रकार कोमल वपुवाली तथा शृङ्गार आदि रसवर्द्धिनी छह कलाओंसे विशिष्ट कोई सुन्दरी अपने नायकके हृदयमें विराजती है। यथा लावण्य विभूषिता कोई नायिका अपने नायकके मनको अत्यधिक आनन्द प्रदान किया करती है, उसी प्रकार यह काव्य भक्तोंके हृदयको भी आनन्दित करे—यह कविकी कामना है।

तत्किं कामपि कामिनीमभिसृतः किं वा कलाकेलिभि-
र्बद्धो बन्धुभिरन्धकारिणि वनाभ्यर्णे किमुद्भ्राम्यति।
कान्त! क्लान्तमना मनागपि पथि प्रस्थातुमेवाक्षमः
संकेतीकृत-मञ्जु-वञ्जुल-लता-कुञ्जेऽपि यन्नागतः॥१॥

अन्वय—[कृष्णागमन-विलम्बे तर्कयति]—कान्तः (कृष्णः) सङ्केतीकृत-मञ्जु-वञ्जुल-लता-कुञ्जेऽपि (सङ्केतीकृतं मञ्जु मनोज्ञं यत् वञ्जुल-लतानां वेतसलतानां कुञ्जं तस्मिन्नपि) यत् (यस्मात्) न आगतः तत् (तस्मात्) किं कामपि (अभिनव-प्रेमवन्धुरां) कामिनीम् अभिसृतः (उपगतः)? [मय्येव दृढ़ानुरागोऽसौ कथमन्यामभिसारिष्यतीति वितर्कान्तरमाह]—किंवा वन्धुभिः (मित्रैः) कलाकेलिभिः (कलानां गीतादीनां केलिभिः क्रीड़ाकौशलैः) बद्धः (आसक्तीकृतः); [कृताभिसारसमये अस्मिंतदपि न सम्भवतीति विचिन्त्य वितर्कान्तरमाह]—[मामभिसरन् तरूणां नीरन्ध्रतया] अन्धकारिणि वनाभ्यर्णे (वनप्रदेशे) किम् उद्भ्राम्यति [पन्थानमविदित्वेति भावः]; [चतुरशिरोमणेः सहस्रशोऽनुभूतस्थले भ्रमः कथं स्यादिति विचिन्त्य निश्चिनोति]—क्लान्तमनाः (मद्विश्लेषदुःखेन चन्द्रोदयानन्तरं तस्याः का दशा भवेदिति चिन्तया च क्लान्तम् उपतप्तं मनो यस्य तादृशः) [सन्] पथि मनागपि (अल्पमपि) प्रस्थातुम् अक्षम एव॥१॥

अनुवाद—संकेत स्थल रूपमें निर्दिष्ट मनोहर लताकुञ्जमें मेरे प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण क्यों नहीं आये? इसका क्या रहस्य है? क्या वे किसी दूसरी कामिनीके साथ अभिसार करने चले गये? क्या अपने सखाओंके साथ क्रीड़ा-आमोदमें प्रमत्त हो निर्दिष्ट समयका उन्होंने अतिक्रमण कर दिया है? क्या सघन वृक्षोंकी छायामें घोर अन्धकारके कारण संकेत-स्थली न मिलने पर इधर-उधर भटक रहे हैं? क्या मेरे विरहमें अत्यन्त क्लान्त हो एक कदम भी चल पानेमें असमर्थ हो गये हैं?

पद्यानुवाद—

अथवा आये यहीं हाय पर, छाई अति अँधियारी,
यहाँ-वहाँ क्या मुझे खोजते, भटक रहे वनवारी?
श्रीहरि-चरण-शरण 'कवि जय'की प्रमदा सम मृदुवाणी
भक्तोंके भावुक हृदयोंमें गूँज उठे कल्याणी॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णके संकेत स्थल पर न आनेके कारण विरहिणी राधिका मन–ही–मन कितने प्रकारके सन्देह–संशय कर रही हैं—उनके न आनेका कारण क्या हो सकता है? मनः कल्पित सन्देहोंको प्रस्तुत करती हुई श्रीराधा कहती है, यह मनोहर वेतस–लतागृह हम दोनोंके मिलनका संकेत–स्थान था, फिर उन्हें क्या हो गया? वे क्यों नहीं आये? क्या वे दूसरी नायिकाके साथ अभिसार करने चले गये? पर मेरे प्रति उनका अनुराग कम कैसे हो सकता है? मुझे यहाँ ऐसे ही छोड़कर वे अन्यत्र विहार कैसे कर सकते हैं? क्या केलिपरायण और कलापरायण उनके बान्धवोंने उन्हें यहाँ आनेसे रोककर क्रीड़ावनिमें ही रख लिया? यह भी संभव नहीं है, क्योंकि वे अभिसारके समयको किस प्रकार भूल सकते हैं? ऐसा लगता है वे चतुर चूड़ामणि अन्धकारकी अधिकताके कारण मुझको प्राप्त न कर सकनेके कारण मुझे इधर–उधर ढूँढ़ रहे हों, पर वे तो इस वनमें अभिसारके लिए कितनी ही बार आये होंगे! वे परिचित पथ कैसे भूल सकते हैं? यह भी संभव नहीं है। तो क्या वे मुझसे विच्छिन्न होनेसे क्लान्त होकर चलनेमें ही असमर्थ हो गये हैं? अथवा चन्द्रोदयके पश्चात् श्रीराधाकी दशा कैसी होगी, यह सोचकर विच्छेद दुःखसे कातर होकर यहाँ नहीं आये?

प्रस्तुत पदमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द तथा संशय नामक अलङ्कार है।

अथागतां माधवमन्तरेण सखीमियं वीक्ष्य विषादमूकाम्।
विशङ्कमना रमितं कयापि जनार्दनं दृष्टवदेतदाह॥२॥

इति त्रयोदशः सन्दर्भः।

अन्वय—[चन्द्रोदयेन श्रीकृष्णागमनप्रतिवन्धे सति तं बिना सख्या आगमने तस्या विप्रलब्धावस्थां वर्णयितुमाह]—[विप्रलब्धालक्षणं यथा—"प्रियःकृत्वापि सङ्केतं यस्या नायाति

सन्निधिम्। प्रिलब्धेति सा ज्ञेया नितान्तमवमानिता।।" इति साहित्यदर्पणे।।] अथ (वितर्कानन्तरं) माधवम् अन्तरेण (हरिं बिना) आगतां [अतः] विषादमुकां (दुःखातिशयेन वक्तुमशक्ताम् अकृत-कार्यत्वादित्यर्थः) सखीं वीक्ष्य इयं (राधा) जनार्दनं कयापि रमितं दृष्टवत् (दृष्टमिव) विशङ्कमाना [सती] एतत् (वक्ष्यमाणं वचनम्) आह॥२॥

अनुवाद—माधवके बिना सखीको आया देख विषण्ण चित्तसे मौन धारणकर श्रीराधा आशंकित होकर सोचने लगीं—जनार्दन किसी और कामिनीके साथ रमण कर रहे हैं क्या?

बालबोधिनी—चन्द्रोदय हो जानेके कारण श्रीराधा, श्रीकृष्णके संकेत-स्थल पर न आनेके कितने ही कारणोंका अनुमान कर रही थीं और सखीको श्रीकृष्णके बिना लौटती देखकर वह विप्रलब्धा स्थितिकी पराकाष्ठाको प्राप्त हो गयीं। दारुण वेदनाके कारण कुछ भी बोलनेमें असमर्थ हो गयीं। सखी भी विषण्ण अवस्थाको प्राप्त कर अवाक् थी। सखीको मौन देखकर यह अनुमान लगा लिया कि ब्रजराजनन्दन किसी अन्य नायिकाके साथ रमण करते हुए देखनेके कारण ही यह उदास एवं मौन हैं, इसलिए कुछ बोल नहीं रही हैं। श्रीराधा विलाप कर उठीं—जनार्दन हैं न—लोगोंको पीड़ा देना ही तो उनका काम है—अतः मुझे भी पीड़ित कर रहे हैं।

विप्रलब्धा नायिका—निरन्तर अभिवर्द्धित अनुरागके कारण नायिका दूतीको भेजकर पहले किसी संकेत-स्थल पर पहुँच जाती है, परन्तु दैवयोगसे निर्दिष्ट समय बीत जानेपर भी नायक वहाँ उपस्थित न हो तो वह नायिका विप्रलब्धा कहलाती है।

प्रस्तुत श्लोकमें उपेन्द्रवज्रा छन्द है।

अथ चतुर्दशः सन्दर्भः।

गीतम् ॥१४॥

वसन्तरागयतितालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—यह चौदहवाँ प्रबन्ध वसन्त राग तथा यति तालके द्वारा गाया जाता है।

समर–समरोचित–विरचित–वेशा,
दलित–कुसुम–दर विलुलित केशा।
कापि मधुरिपुणा
विलसति युवतिरधिकगुणा ॥१॥ध्रुवम्

अन्वय—हे सखि स्मर–समरोचित–विरचित–वेशा (स्मरसमरस्य उचितो विरचितो वेशो यया सा) [ततश्च रणावेशेन] दलित–कुसुम–दर–विलुलित–केशा (दलितानि विमर्दितानि कुसुमानि येभ्यः तादृशाः दरविलुलिताः ईषद्विस्रस्ताः केशा यस्याः तादृशी) कापि अधिकगुणा (मत्तेऽपि अधिकगुणवती) युवतिः मधुरिपुणा सह विलसति ॥१॥

अनुवाद—सखि! मदन–समरके योग्य वेशभूषाका परिधान किये हुए और अनङ्ग–रसके आवेशमें कबरी–बन्धन आलुलायित होने (बिखर जाने) के कारण कुसुमसमूह विगलित होनेसे विमर्दित केशोंवाली मुझसे भी अधिक गुणशालिनी कोई युवती मधुरिपुके साथ सुखपूर्वक विलास कर रही है।

पद्यानुवाद—

स्मर–समरोचित–विरचित–वेशा।
गलित–कुसुम–वर–विलुलित–केशा॥
शोभित है युवती री कोई।
हरि से विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—आशंकिता श्रीराधा सखीसे कहती हैं—हे सखि! मुझसे भी अधिक कोई सुन्दर रमणी काम–संग्रामके अनुकूल वेश धारणकर मधुरिपुके साथ विलास कर रही है।

रतिक्रीड़ामें उसके केशपाश ढीले होकर इधर-उधर लहरा रहे हैं, उसमेंसे ग्रंथित पुष्प भी झर गये हैं।

मधुरिपु—श्रीकृष्ण माधुर्यके शत्रु हैं, उनको माधुर्यका भान ही नहीं है। इसलिए वे मेरी उपेक्षा करके किसी दूसरी युवतीके साथ रतिविलासमें लिप्त हैं।

युवतिरधिकगुणा—वह व्रजरमणी मुझसे भी अधिक गुणशालिनी है, पर यह तो संभव ही नहीं है। अधिक गुणोंका व्यंगार्थ है—कम गुणोंवाली युवती रमण कर रही है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। इससे विपरीत रति सूचित होती है। विपरीत रतिमें युवतीका ही रतिकर्तृत्व रहता है।

स्मरसमर—रतिकेलिको स्मर-समर कहा गया है। रतिक्रीड़ामें रति-विमर्दन आदि क्रिया होती है, जिससे नायिकाका कबरी बन्धन खुल जाता है, उसमें सन्निहित पुष्प झर जाते हैं, विश्रृंखलित हो जाते हैं।

हरि-परिरम्भण-वलित-विकारा।
कुच-कलशोपरि तरलित-हारा॥
कापि मधुरिपुणा... ॥२॥

अन्वय—[अतःपरं षड्भिः तामेव विशिनष्टि] हरि-परिरम्भण-वलितविकारा (हरेः परिरम्भणेन आलिङ्गनेन वलितः रचितः विकारः रोमाञ्चादि-कामज-विकृतिर्यस्याः तादृशी) [तथा] कुच-कलसोपरि (स्तनकुम्भयोरुपरि) तरलित-हारा (तरलितः आन्दोलितः हारो यस्यास्तादृशी) [कापि अधिकगुणा इत्यादि प्रत्येकेन योजनीयम्]॥२॥

अनुवाद—श्रीकृष्णका प्रगाढ़ रूपसे आलिङ्गन करनेपर मदन-विकारसे विमोहित उसमें रोमांच आदि विकार उत्पन्न हो गये होंगे और उसके कुचकलशों पर हार दोलायमान हो रहा होगा।

पद्यानुवाद—

हरि-परिरंभण-वलित-विकारा।
कुच-कलशोपरि-तरलित-धारा॥

शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—श्रीराधा आनुमानिक तौर पर उस रमणीकी चेष्टाओंको चित्रित करते हुए कहती हैं कि श्रीकृष्णके द्वारा आलिङ्गित होनेसे उस युवतीमें कामोचित रोमांचादि मदन–विकार उद्भूत हो गये होंगे। कलश सरीखे उन्नत स्तनोंपर हार दोलायमान हो रहा होगा। हारकी चञ्चलता रतिकालमें युवती द्वारा रतिकर्तृत्व अथवा विपरीत रतिमें ही संभव है।

विचलदल–कललितानन–चन्द्रा।
तदधर–पान रभस–कृत–तन्द्रा॥
कापि मधुरिपुणा... ॥३॥

अन्वय—विचलदलक–ललितानन–चन्द्रा (विचलद्भिः अलकैः चूर्णकुन्तलैः ललितः सुन्दरः आननमेव चन्द्रो यस्यास्तादृशी) [तथा] तदधर–पान–रभस–कृत–तन्द्रा (तस्य कृष्णस्य अधरपान–रसभेन अधरपानावेशेन कृता तन्द्रा आनन्द–निमीलनं यस्याः तादृशी) ॥३॥

अनुवाद—उसका मुखचन्द्र घुँघराली अलकावलियोंसे सुललित हो रहा होगा और श्रीकृष्णकी अधर–सुधाका पान करनेकी अतिशय लालसाके कारण नयनयुगल आनन्दपूर्वक निमीलित हो रहे होंगे।

पद्यानुवाद—

अलक–ललित मृदु आनन चन्द्रा।
अधर–पान–मुद अधिकृत तन्द्रा॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—उस रमणीका मुखचन्द्र चंचल अलकावलियोंके कारण और भी अधिक शोभाशाली दीखता होगा। रति कालमें श्रीकृष्णकी अधर–सुधाका पान कर रतिजन्य आनन्दमें

निमग्न आँखें बन्द करके वह कपट निद्राका मिथ्या अभिनय कर रही होगी।

चञ्चल–कुण्डल–ललित–कपोला।
मुखरित–रसन–जघन–गति–लोला॥
कापि मधुरिपुणा... ॥४॥

अन्वय—चञ्चल-कुण्डल-ललित-कपोला (चञ्चलाभ्यां तदधर-पानावेशादिति भावः कुण्डलाभ्यां ललितौ परममनोहरौ कपोलौ यस्याः सा) [तथा] मुखरित-रसन-जघन-गति-लोला (मुखरिता शब्दायमाना रसना काञ्ची यस्मिन् तादृशस्य जघनस्य गतिः तया लोला चपला)॥४॥

अनुवाद—कुण्डल-युगल चञ्चल होनेपर उसके कपोल-तलकी शोभा और भी बढ़ रही होगी, कटितट पर विराजमान मणिमय मेखलाकी क्षुद्र घण्टिकाएँ उसके जघन स्थल पर आन्दोलित होनेके कारण सुमधुररूपसे मुखरित हो रही होंगी।

पद्यानुवाद—

चंचल कुंडल ललित कपोला।
मुखरित रसन जघन गति लोला॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—रतिक्रीड़ामें संलग्न उसके कुण्डल-युगलोंका आन्दोलित होना स्वाभाविक ही है—इससे उसके कपोलोंकी मनोहरता और भी बढ़ गयी होगी, मेखलामें संलग्न घुँघरू बार-बार बजते होंगे, जाँघोंका सदा संचलन होनेके कारण वह अति चंचल प्रतीत होती होगी।

दयित–विलोकित–लज्जित–हसिता।
बहुविध–कूजित–रति–रस रसिता—
कापि मधुरिपुणा... ॥५॥

अन्वय—दयित-विलोकित-लज्जित-हसिता (दयितस्य प्रियस्य विलोकितेन वीक्षणेन-लज्जितं लज्जायुक्तं हसितं हास्यं यस्याः तथोक्ता) [तथा] बहुविध कूजित-रति-रस-रसिता (बहुविधं पारावतादिवत् कूजितं यस्यां तादृशी या रतिः तस्या रसेन आस्वादेन रसिता रसपूर्णा)॥५॥

अनुवाद—दयित श्रीकृष्णके द्वारा अवलोकित होने पर वह लज्जित होती होगी, हँसती होगी, रतिकालमें रतिरसरसिता होकर कोकिल कलहंसादिके समान मदनविकार सूचक 'सीत्कार' शब्द करती होगी।

पद्यानुवाद—

हरि-आलोकित-लज्जित-हँसिता।
बहु विधि कूजित रति-रस-रसिता॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—प्रियतम श्रीकृष्ण जब तृप्त होकर उसकी ओर देखते होंगे, तब वह लज्जित होकर गर्दन झुका लेती होगी, हँसती होगी, रतिरसातिरेकके कारण वह पक्षियों—कोकिल, कलहंसके समान विविध प्रकारकी मधुर सीत्कार ध्वनि करती होगी।

विपुल-पुलक-पृथु-वेपथु-भङ्गा।
श्वसित-निमीलित-विकसदनङ्गा—
कापि मधुरिपुणा... ॥६॥

अन्वय—विपुल-पुलक-पृथु-वेपथु-भङ्गा (विपुलाः पुलकाः पृथुः महान् वेपथुः कम्पश्च तेषां भङ्गाः तरङ्गाः यस्याः तादृशी) [तथा] श्वसित-निमीलित-विकसदनङ्गा (श्वसितेन निमीलितेन च विकसन् आविर्भवन् अनङ्गः मदनः यस्याः तादृशी)॥६॥

अनुवाद—अनंग-रससे पुलकित हो उसके रोमांच एवं

कम्प ही उसके तरंगके समान हैं। सघन निःश्वास एवं नेत्र-निमीलनके द्वारा वह मदन-आवेश प्रकाशित करती होगी।

पद्यानुवाद—

विपुल पुलक पृथु वेपथु भंगा।
श्वसित निमीलित उदित अनंगा॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—रतिकालमें पुलकावलियोंसे, कम्पनसे, स्वरभंग होनेसे वह लम्बी-लम्बी श्वासोच्छ्वास करती होगी, आनन्द प्राप्ति होने पर आँखें मूँद लेती होगी, जिससे उसका काम विकसित होता होगा।

वेपथुभङ्गा—प्रस्तुत श्लोकमें रोमाञ्च तथा कम्पको तरंग सदृश इसलिए बताया है कि जिस प्रकार जलाशयमें एकके बाद दूसरी तरंग उत्पन्न होती है, उसी प्रकार उसके शरीरमें भी रोमांच तथा कम्प उत्तरोत्तर उत्पन्न होते होंगे।

श्रमजल-कण-भर-सुभग-शरीरा।
परिपतितोरसि रति रण-धीरा॥
कापि मधुरिपुणा... ॥७॥

अन्वय—श्रम-जल-कण-भर-सुभग-शरीरा (श्रमजलकणभरेण सुरतश्रमजात-स्वेदवारिबिन्दुसमूहेन सुभगं सुन्दरं शरीरं यस्याः सा) [तथा] रतिरणधीरा (सुरतसंग्रामे धीरा पण्डिता) [निःसहता-विस्मृत-स्वाङ्गानुसन्धानतया] उरसि (कान्तस्य वक्षसि) परिपतिता ॥७॥

अनुवाद—रतिरसनिपुण वह कामिनी सुरत-क्रीड़ा जन्य पसीनेकी बूँदोंसे और भी सुन्दर लगती होगी, रतिक्रियामें धैर्य धारण करनेवाली वह रतिश्रमश्रान्ता श्रीकृष्णके वक्षःस्थल पर निपतिता होकर कितनी शोभा पा रही होगी।

पद्यानुवाद—

श्रमजल कण भर सुभग शरीरा।
हरि-उर पतित सुरति रणधीरा॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—अनंग आवेशमें वह पूर्ण रूपसे थक गयी होगी। सुरतायासजन्य श्रमबिन्दुओंसे उसका मुखारविन्द कैसा चमकता होगा? स्वयंको विस्मृत होकर सुरतक्रियारूपी रणमें दक्ष वह श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर गिर गयी होगी, उसकी शोभा कैसी अद्भुत हो रही होगी।

श्रीजयदेव-भणित-हरि-रमितम् ।
कलि-कलुष जनयतु परिशमितम्—
कापि मधुरिपुणा... ॥८॥

अन्वय—श्रीजयदेव-भणित-हरि-रमितं (श्रीजयदेवेन भणितं यत् हरिरमितं हरेः रमणं) [भक्तानां] कलिकलुषं (कामादिकं) परिशमितं जनयतु॥८॥

अनुवाद—कवि जयदेव द्वारा वर्णित यह हरि-रमण-विलास रूप रतिक्रीड़ा सबका कलि-कल्मष अर्थात् कामवासनाको शान्त करे।

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव कथित यह लीला।
कलि-मल सहज विनाशनशीला॥
शोभित है युवती री कोई।
हरिसे विलस रही जो खोई॥

बालबोधिनी—गीतगोविन्दके इस चौदहवें प्रबन्धका नाम हरिरमितचम्पकशेखर है। इस प्रबन्धमें विपरीत रतिका वर्णन है। रति-व्यापारका यह वर्णन अति पवित्र है। यह पाठकों तथा श्रोताओंके कलिदोषजन्य काम-विकारका प्रक्षालन करे।

विरह–पाण्डु–मुरारि–मुखाम्बुजद्युतिरयं तिरयन्नपि वेदनाम्।
विधुरतीव तनोति मनोभुवः सुहृदये हृदये मदनव्यथाम्॥

इति चतुर्दशः सन्दर्भः।

अन्वय—[अथ चन्द्रं पश्यन्ती तं श्रीकृष्णमुखत्वेन उद्भाव्य तत्र अन्यया सह वर्त्तमानस्यापि मद्विरहेण पाण्डुत्वस्फुर्त्या स्वस्मिन् तस्य अतिप्रणयितां स्मरन्ती चन्द्रमाक्षिपति]—अये (खेदे) मनोभुवः (कामस्य) सुहृत् (मित्रभूतः) विरहपाण्डु–मुरारि–मुखाम्बुजद्युतिः (विरहेण मम विच्छेदेन पाण्डु यत् मुरारेः कृष्णस्य मुखाम्बुजं तस्य द्युतिरिव द्युतिर्यस्य तथाभूतः) [अतएव] वेदनां (सन्तप्तानां मनोव्यथां) तिरयन्नपि (आच्छादयन् निराकुर्वन्नपीत्यर्थः; चन्द्रदर्शनेन श्रीकृष्णमुखदर्शनजनितानन्दलाभादिति भावः) अयं विधुः (चन्द्रः) हृदये अतीव मदनव्यथां (कृष्णस्य अदर्शन–जनितामिति भावः) तनोति (विस्तारयति) [मदन–सुहृत्त्वेन तन्मुखस्मारकतया चन्द्रो मां व्यथयतीत्यभिप्रायः]॥१॥

अनुवाद—प्रिय सखि! मेरे विरहमें पाण्डुवर्ण हुए श्रीमुरारीके मुखकमलकी कान्तिके समान धूसरित यह चन्द्रमा मेरी मनोव्यथाको तिरोहित कर कामदेवके सुहृदभूत मेरे हृदयमें मदन–सन्तापकी अभिवृद्धि कर रहा है।

बालबोधिनी—श्रीराधाने विलाप करते हुए सारी रात बितायी। जब चन्द्रमाको अस्ताचलकी ओर जाते देखा, तब अपने प्रति श्रीकृष्णके पूर्वरागका स्मरण कर अपनी प्रिय सखीसे कहने लगी—अरे सखि! कितने कष्टकी बात है। यह जो चन्द्रमा है, सन्तप्त व्यक्तियोंकी विरह–व्यथाको और भी बढ़ा रहा है। अब यह अस्तमित हो रहा है, जिससे मेरा मदनताप तिरोहित हो रहा है। इसके पाण्डुवर्णको देखकर मुझे श्रीहरिके मुखकमलका स्मरण हो रहा है—मेरे विरहमें वे कैसे निष्प्राण हो गये होंगे? अन्य प्रकारसे अनुमान करती हुई कहती हैं कि श्रीहरि मेरा परित्याग कर किसी दूसरी रमणीके साथ रमण कर रहे हैं, इसलिए उनकी ढलते चन्द्रमा जैसी कान्ति हो गयी है, यही कारण है कि हृदयमें सन्ताप और अधिक गहरा गया है।

पञ्चदशः सन्दर्भः।

गीतम् ॥१५॥

गुर्जरीरागैकतालीतालेन गीयते।

अनुवाद—गीत-गोविन्द काव्यका यह पन्द्रहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा एकताली तालसे गाया जाता है।

इस गीतिमें श्रीकृष्णके साथ विलास करनेवाली रमणीको स्वाधीन-भर्त्तृकाके रूपमें दिखाया गया है, जो यमुना-पुलिनमें श्रीकृष्णके साथ विलास-परायणा है।

समुदित-मदने रमणी-वदने चुम्बन-वलिताधरे।
मृगमदतिलकं लिखति सपुलकं मृगमिव रजनीकरे॥
रमते यमुना-पुलिन-वने विजयी मुरारिरधुना॥१॥ध्रुवम्

अन्वय—[पुनस्तस्या एव स्वाधीन-भर्त्तृकात्वं सूचयन् तल्लीलाविशेषमाह]—अधुना (इदानीं) विजयी (जयशीलः मण्डनादि-कौशलेन सर्वातिशायी) मुरारिः (श्रीहरिः) यमुनापुलिनवने (यमुनायाः पुलिनवर्त्तिनि कानने) [तया सह] रमते (क्रीड़ति); [तथाच] समुदितमदने (समुदितः सम्यक् वृद्धिंगतः मदनः यस्मात् तस्मिन् कामोद्दीपके इत्यर्थः; चन्द्रपक्षेऽपि स एवार्थः) चुम्बन-वलिताधरे (वदनपक्षे तिलकं लिखित्वा साध्विदं वदनमित्युक्त्वा चुम्बनाय वलिता विन्यस्तः अधरो यत्र, चन्द्रपक्षे चुम्बनेन वलितो युक्तोऽधरः यस्मात् इत्यर्थः) रमणी-वदने (तस्या एव कामिन्याः वदने) रजनीकरे (चन्द्रे) मृगमिव सपुलकं (सरोमाञ्चं स्पर्शेन जातरोमाञ्चं यथास्यात् तथा) मृगमदतिलकं (मृगमदस्य कस्तूरिकायाः तिलकं) लिखति (ददाति)॥१॥

अनुवाद—रतिरणमें विजयी मधुरिपु यमुना-पुलिनके वनमें प्रियाके साथ रमण कर रहे हैं, पुलकावलियोंसे पूर्ण कामकी उद्दीपन-स्वरूपा उस रमणीके वदनमें चन्द्रमण्डलके ऊपर मृगलाञ्छनकी भाँति कस्तूरी तिलककी रचना कर रहे हैं एवं रोमाञ्चित हो उसका चुम्बन कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी॥
रचते मृगमद तिलक पुलक कर मदन-मुदित मुख उसके।
चुम्बन वलित अधर लगते हैं, मधुर रसातुर जिसके॥

बालबोधिनी—श्रीराधा अपनी कल्पनाओंके वितानमें प्रलाप करती हुई कहती हैं—(विरहमें भाव-नेत्रों द्वारा अपनी पूर्व लीलाका स्मरण कर उसीका वर्णन करती हैं) इस कामसंग्राममें मधुरिपु मुझे पराभूतकर इस समय निकुंजमें विजय-उत्सव मना रहे हैं। श्रीराधा उस काल्पनिक रमणीका स्वरूप बताते हुए कहती हैं कि यमुनापुलिनके वनमें श्रीकृष्ण मण्डनादि कला-कौशलके द्वारा उस रमणीके साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। उस रमणीके मुख-कमल पर मृगमदसे तिलककी रचना कर रहे हैं, जिससे वह अति पुलकित हो रही है। चुम्बनकी अभिलाषासे श्रीकृष्णने उसका मुख अपने सम्मुख कर लिया है, उसमें काम पूर्ण रूपसे उदित हो गया है, श्रीकृष्ण भी अति रोमाञ्चित हो रहे हैं, वे अपनेको संभाल नहीं पा रहे हैं, बड़ी कठिनाईसे टेढ़ा-मेढ़ा तिलक रच रहे हैं। उसकी शोभा ऐसी हो रही है, मानो चन्द्रमण्डलके ऊपर मृगलाञ्छन हो। उसके अधर एवं मुखमण्डल पर चुम्बन करनेसे श्रीकृष्णके अधर-पुटोंमें उस तिलकका चिह्न अङ्कित हो गया है।

घनचय-रुचिरे रचयति चिकुरे तरलित-तरुणानने।
कुरुबक-कुसुमं चपला-सुषमं रतिपति-मृग-कानने—
रमते यमुना-पुलिन वने..... ॥२॥

अन्वय—[न केवलं तस्या वदने तिलकं लिखति अपितु]—घनचय-रुचिरे (मेघचयवत् रुचिरे शोभने) तरलित-तरुणानने (तरलितं, चञ्चलितं तद्गुणवर्णने मुखरीकृतमित्यर्थः

तरुणस्य श्रीहरेः आननं मुखं येन तत्र) [तथा] रतिपति-मृगकानने (रतिपतिः कामएव मृगः तेन सदाश्रितत्वात् तस्य कानने विचरणस्थाने, कामोद्दीपके इतिभावः) [तस्याः] चिकुरे (कुन्तले) चपला-सुषमं (चपलाया विद्युतइव सुषमा परमा शोभा यस्य तादृशं) कुरुबककुसुमं (रक्तझिण्टीपुष्पं) रचयति (तत्पुष्पैः तस्याः कवरीं ग्रथ्नातीत्यर्थः)॥२॥

अनुवाद—मदन-मृगके विहार-कानन-स्वरूप उस युवतिके मेघ-समूहके समान मनोहर कुन्तल (केशपाश) हैं, जिससे उसका तरुण करुण आनन सतत उल्लसित होता है, उनमें वे कुरुवक कुसुम सन्निवेशित कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

गोरे मुखपर श्याम तिलकने ऐसी ही छवि धारी।
मिरग साथ ज्यों खिल उठती है चन्दाकी उजियारी॥
चपलसे, कुरुबक कुसुमोंसे, सजल मेघसे काले—
केशोंको उसके सजते हैं, भीगेसे मतवाले॥
यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा अपनी सखीसे श्रीकृष्णकी शृङ्गार-क्रीड़ाका विवरण करती हुई कहती हैं—उन्होंने केवल उसके ललाट पर ही तिलक रचना की हो, केवल ऐसा ही नहीं है, अपितु कनेर पुष्पोंसे उसके केशोंकी भी सज्जा की है। उसके बाल इस प्रकार काले, स्निग्ध, घने एवं घुँघराले हैं, मानो कोई सजल मेघोंका समूह हो। वह केशपाश ऐसा लगता है, मानो कामदेवरूपी मृगके निर्भय घूमनेके लिए घना कानन हो। इस केशपाशके अवलोकन मात्रसे ही युवकोंका मन चञ्चल हो जाता है। श्रीहरिके द्वारा रमणीके केशपाशमें सुसज्जित कुरुवकके पुष्प विद्युतकी अतिशय छटाको धारण कर रहे हैं।

घटयति सुधने कुच-युग-गगने मृगमद-रुचिरुषिते।
मणिसरममलं तारक-पटलं नख-पद-शशि-भूषिते॥
रमते यमुना-पुलिन वने..... ॥३॥

अन्वय—सुघने (निविड़े; शोभनमेघयुक्ते च) नखपद-शशि-भूषिते (नखपदं नखक्षतं तदेव शशी तेन भूषिते) [तथा] मृगमद-रुचि-रूषिते (मृगमदस्य कस्तूरिकायाः या रुचिः कान्तिः तया रूषिते म्रक्षिते; गगनपक्षे कस्तूरीदीप्त्यैव म्रक्षिते) कुचयुग-गगने (कुचयुगमेव वृहत्त्वात् गगनं (तत्र) अमलं (निर्मलम् उज्ज्वलमिति यावत्) मणिसरं (मुक्ताहारं) [एव] तारक-पटलं (नक्षत्रराजिं) घटयति (योजयति)॥३॥

अनुवाद—उस सुकेशीके गाढ़ नीलवर्णा कस्तूरीकी धूलिसे रुषित (विलेपित) परस्पर नितान्त सन्निहित विशाल कुचयुग-मण्डलरूप गगन जो अर्द्धचन्द्राकार नखक्षतसे परिशोभित है, उस पर निर्मल तारक-दलके समान मनोहर मणिमय हारको अर्पित कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

मृगमद-रंजित कुच-युग-गगने, नखपद शशिसे विलसे।
चमक रहे मणि-हार अमल अति, चम-चम तारक-दलसे॥
यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें, रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर, जीती बाजी हारी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा कह रही हैं कि नखके अर्द्धचन्द्राकार चिह्नोंसे विभूषित उस रमणीके वक्षस्थलपर मणियोंकी मालारूप तारासमूह विन्यस्त कर रहे हैं। आकाश तथा स्तनद्वयमें एक विचित्र ही मनोरम अन्विति है।

कुचयुगगगने—दोनों स्तन उस प्रकार विस्तृत हैं, जैसे आकाश विस्तृत होता है। आकाशके बिम्बसे स्तनोंके पीनत्वकी प्रतीति करायी गयी है।

सुघने—परस्पर सन्निहित उस नायिकाके स्तन अति कठोर हैं, जैसे आकाश सघन सुन्दर बादलोंसे युक्त होता है।

मृगमदरुचिभूषिते—सुरतजन्य श्रमके कारण स्तनोंपर स्वेदविन्दु क्षरित होते हैं, तब उन्हें सुखानेके लिए कस्तूरीके चूर्णको मला जाता है, गगन भी तो कस्तूरीवत् नील कान्तियुक्त होता है।

तारकपटलं नखपद शशिभूषिते—उस सुकेशीके कुच युगल रूपी गगनमें तारोंके समुदाय सदृश मुक्ता सरोवर परिलक्षित हो रहा है। उसमें श्रीकृष्णके नखोंके अग्रभागके आघातसे विभूषित चिह्न अर्द्धचन्द्राकारकी शोभाको प्राप्त हो रहे हैं। उसके स्तनमण्डलको श्रीकृष्ण मोतियोंकी मालारूपी ताराओंसे सजा रहे हैं।

ये सम्पूर्ण उपमान एक सुन्दर बिम्ब–योजना है। तिलक मृग है, ललाट चन्द्रमा है और केशपाश अभयारण्य बन गया है। कुरुवकके फूल बिजलीकी चमक एवं वक्षस्थल आकाश हो गया है। नख–क्षत चन्द्रमा एवं छोटी–छोटी मणियाँ ताराओंके रूपमें सुशोभित हुई हैं।

जित–विस–शकले मृदु–भुज–युगले करतल–नलिनी–दले।
रकत–वलयं मधुकर–निचयं वितरति हिम–शीतले॥
रमते यमुना–पुलिन वने..... ॥४॥

अन्वय—जित–विस–शकले (जितानि विसशकलाणि मृणालखण्डानि येन तादृशे) करतल–नलिनीदले (करतलमेव नलिनीदलं पद्मपत्रं यत्र तस्मिन्) [तथा] [सम्भोगिन्याः कामतापराहित्यात्] हिमशीतले (हिमवत् शीतले) मृदुभुजयुगले (कोमलबाहुद्वये) मधुकर–निचयं (भ्रमरपङ्क्तिम्) [एव] मरकतवलयं (मरकतमयं वलयं) वितरति (परिधापयति)॥४॥

अनुवाद—सुकेशी, पीनस्तनी उस रमणीके मृणालदण्डसे भी सुशीतल भुजयुगल जिनमें उसके सुकुमार करतलरूपी नलिनी–दल सुशोभित हो रही हैं, उनमें वे भ्रमर–सदृश मरकतमय वलयरूपी कंगन धारण करा रहे हैं।

पद्यानुवाद—

तालखण्डसे युग भुज, करतल राजित नलिनी दलसे।
पहिनाते मरकत-कंकण जो लगते छाये अलिसे॥
यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा कह रही हैं—उस भाग्यशालिनीकी दोनों भुजाएँ कोमलतामें मृणालदण्डको भी मात कर देनेवाली हैं। सुकुमार गौर वर्ण, हिमके समान दोनों हाथोंकी सुशीतल हथेलियाँ कमलके समान लाल-लाल हैं। जिस प्रकार लाल कमल-दलोंके ऊपर नीले-नीले भौंरे अत्यन्त अभिराम प्रतीत होते हैं, उसी प्रकार उसके करतलोंमें श्रीकृष्ण नीलमणिजड़ित कंगनरूपी भौंरे धारण करा रहे हैं। कोमल बाहोंमें ये कंगन ऐसे सुशोभित होते हैं मानो उन हाथोंको घेरकर भौंरे एक कली-पंक्ति बना रहे हों।

हिमशीतले—सम्भोगकारिणी रमणीका भुजयुगल श्रीकृष्णके स्पर्शसे काम-ताप शून्य होकर हिमवत् शीतल हो गया है अथवा उस रमणीमें कामका अभाव है—यह भी सूचित होता है। उसके ठण्डे हाथोंमें यह कंगन एक नया ताप प्रदान करेगा।

रति-गृह-जघने विपुलापघने मनसिज-कनकासने।
मणिमय-रसनं तोरण-हसनं विकिरति कृत-वासने॥
रमते यमुना-पुलिन वने..... ॥५॥

अन्वय—विपुलापघने (विपुलम् अपघनम् अङ्गम् आयतन-मित्यर्थः यस्य तादृशे विशाले इत्यर्थः) मनसिज-कनकासने (मनसिजस्य कामस्य कनकासने स्वर्णपीठे) [तथा] कृतवासने (कृता वासना लीला-विशेषवासना येन तादृशे दृष्टिमात्रेणैव कामोद्दीपके इत्यर्थः) [तस्याः] रतिगृहजघने (रतेः शृङ्गारस्य गृहम् आश्रय एव जघनं कटि-पुरोभागः नितम्बो वा तस्मिन्)

तोरणहसनं (तोरणस्य बहिर्द्वारशोभार्थ माङ्गल्यस्रजः हसनम् उपहासः यस्मात् तत्; ततोऽप्यधिकमनोज्ञमित्यर्थः) मणिमयरसनं (मणिमयं रसनं काञ्चीं) विकिरति (निक्षिपति) [तत्स्पर्शजात-कम्पतया अयथातथं विन्यस्यतीत्यर्थः]॥५॥

अनुवाद—मांसल, सुगन्धित, विपुलतर कन्दर्पके सुवर्ण-पीठ-स्वरूपके समान रतिगृह तुल्य उस रमणीके जघन-स्थलमें मणिमय मेखलारूपी मंगल तोरण धारण करा रहे हैं।

पद्यानुवाद—

मनसिज कनकासन सम उसके मांसल रतिगृह-जघने।
सजा रहे तोरण सम कांची (स्मित अंकित वर वदने)॥
यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा कह रही हैं कि उस रमणीकी जाँघें रतिकेलिकी आश्रयस्वरूप हैं। विपुल, कमनीय एवं मांसलताको प्राप्त वह उरुस्थल कामदेवका सुवर्णरचित पीठस्वरूप है, जिसके अवलोकनसे ही श्रीकृष्णके मनमें मदन-लालसा जाग्रत हो जाती है।

कृतवासनं—नायिकाएँ अपने अंगोंको एक विशेष प्रकारकी सुगन्ध-सिद्ध धूपसे सुवासित करती हैं, जिससे नायक उसके वशमें हो जाते हैं। उस रमणीने अपनी जाँघोंको इसी प्रकारसे सुवासित करके श्रीकृष्णको अपने वशमें कर लिया है।

कनकासने—कामदेवका हेमपीठ। 'कनक' शब्दका अर्थ धतूरा भी होता है, जो शंकरजीको अति प्रिय है। श्रीशंकरने कामदेवको भस्मीभूत कर दिया था, अतः उनके प्रिय 'कनक' शब्दके प्रयोगके द्वारा कामकी उत्तेजनाको सूचित किया है।

मणिमयरसनं तोरणहसनं—जब कोई राजा सिंहासनारूढ़ होता है, तो द्वारपर मंगलमय वन्दनवार सजाया जाता है।

यहाँ कामरूप राजाके गौरवर्णीय उरुस्थल रूपी हेमसिंहासन पर आरूढ़ होनेके लिए उसे मणिमय मेखलारूपी वन्दनवारसे श्रीकृष्ण सजा रहे हैं।

विकिरति—उरु-स्थलके स्पर्शसे कन्दर्पजनित कम्पन भाव उदित होता है, अतः मणिमय मेखलाको ठीक-ठीक रूपसे धारण करानेमें समर्थ नहीं हुए। फिर भी पहनानेकी कोशिश की गयी है—एक लीलाविशेषकी भावना बन गयी है।

चरण-किसलये कमला-निलये नख-मणिगण-पूजिते।
बहिरपवरणं यावक-भरणं जनयति हृदि योजिते॥
रमते यमुना-पुलिन वने..... ॥६॥

अन्वय—हृदि (वक्षसि) योजिते (विनिहिते) कमला-निलये (कमलायाः सौन्दर्याधिदेवतायाः श्रियाः निलये आवासे) नखमणिगण-पूजिते (नखा एव मणिगणाः तैः पूजिते अर्चिते) चरणकिशलये (पादपल्लवे) यावक-भरणं (यावकं अलक्तकमेव भरणम् आभरणं) बहिरपवरणं (बहिरावरणं) जनयति (करोति) [श्रीनिवासस्य मणियुतस्य च बहिरावृतिर्युक्तैवेत्यर्थः] [यद्वा कमलानिलये हृदि इत्येवमन्वयः कार्यः]॥६॥

अनुवाद—उस नितम्बिनीके अरुण मनोहरश्रीसे सम्पन्न एवं नखरूपी मणियोंसे विभूषित पद-पल्लवोंको नखक्षत एवं मणियोंसे समलंकृत एवं लक्ष्मीके वासस्थल अपने हृदयपर स्थापित करते हुए बड़े यत्नसे आवरण-आच्छादन करते हुए जावक-रससे रञ्जित कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

कमलाके समान आवास-हृदय पर पग उसके हैं धरते।
और हाथसे 'जावक' रचना फिर मातल हो करते॥

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णकी नवीन रति-केलिका वर्णन करते हुए कहती हैं—उस बड़भागिनीके चरण-कमल लक्ष्मीके आश्रय-स्वरूप हैं, रक्तिम वर्णके नवीन कोमल

पल्लवोंके समान हैं। उसके पद–नख मणियोंकी कान्तिको धारण किये हुए हैं, उन चरण–युगलको वे अपने हृदयमें संश्लिष्ट करके बैठे हैं, उनके उस वक्षःस्थलमें लक्ष्मी सदा निवास करती है। उनका वह वक्षःस्थल उस रति–निष्णाता रमणी द्वारा अर्पित नखक्षतों एवं मणिसमूहोंसे समलंकृत है। उसके उन स्वाभाविक अरुण वर्ण पदोंमें श्रीकृष्ण अपने करकमलोंसे महावर (आलक्तक रस) लगाकर बाह्य–आच्छादन–अलंकरण प्रदानकर बड़े यत्नसे उन्हें संरक्षण प्रदान कर रहे हैं।

नखमणिपूजित विशेषण रमणी एवं श्रीकृष्ण दोनोंमें अन्वित होता है।

रमयति सुभृशं कामपि सुदृशं खलहलधरसोदरे।
किमफलमवसं चिरमिह विरसं वद सखि! विटपोदरे॥
रमते यमुना–पुलिन वने..... ॥७॥

अन्वय—सखि, खल–हलधर–सोदरे (खलः धूर्त्तः हलधरस्य बलदेवस्य सोदरः तस्मिन्; हलधरस्य इति सोल्लुण्ठनोक्तिः–लाङ्गलभृतः–सूतरामविदग्धस्य इत्यर्थः) कृष्णे कामपि सुदृशं (सुलोचनां कामिनीं) सुभृशं (प्रगाढ़ं) रमयति [सति] इह विटपोदरे (वनमध्ये) अफलं (विफलं) विरसं (रसहीनं यथा तथा) किं (कथं) [अहम्] अवसम् (अवस्थितास्मि) [इत्येतत्] वद (कथय) [मामभिसार्य अन्यया सह रमणात् हरेः खलत्वम्] ॥७॥

अनुवाद—हलधरके सहोदर, अविवेकी, गँवार, खल वे श्रीकृष्ण निश्चित रूपसे किसी सुनयनाका प्रगाढ़ आलिङ्गन कर उसके साथ रमण कर रहे हैं, तब सखि! तुम्हीं बताओ, मैं इस लतानिकुंजमें कब तक विरस भावसे बैठी–बैठी प्रतीक्षा करती रहूँ?

पद्यानुवाद—

'पापी' के पर-तिय-विलासको देखूँ आँखें मींचे।
कब तक विरस प्रतीक्षा सखि! मैं करूँ विटपके नीचे?
यमुन-पुलिनके सघन कुंजमें रमते आज मुरारी।
प्रियकी अमर सुहागिनि होकर जीती बाजी हारी॥

बालबोधिनी—श्रीराधा प्रतीक्षा करती-करती नैराश्यको प्राप्त होकर अपनी सखीसे कहती हैं—सखि! कुछ तो बोलो, मौनका त्याग करो, अब इस वनके लतानिकुंजमें व्यर्थ ही बहुत देर तक रुकनेसे क्या लाभ है? 'खल हलधरसहोदरे'—हलधर बलरामजीका नाम है, उनका छोटा भाई कृष्ण, जो अतिशय खल है। हलधरका अर्थ होता है, हलवाहा। श्रीकृष्ण हलवाहेके समान ही खल, गँवार और अविदग्ध हैं। मेरी उपेक्षा कर, मुझे ठग कर उस सुलोचनाके साथ रमण कर रहे हैं। अरे, वह सुलोचना कैसी? वे तो अपने जैसी किसी गँवार रमणीके साथ ही रमण कर रहे हैं, मेरा उनसे क्या लेना-देना? मैं उन पर विश्वास स्थापनकर इस बीहड़ वनमें सारी रात बैठी रही, मेरी कितनी उपेक्षा की है। मैं इस कुंजमें दहकती रहूँ, क्या मैं उन्हें ढूँढती ही रहूँ? मेरे पास चारा क्या है? पर सखि! कैसे सहन करूँ? उन्होंने यहाँ आनेकी बात कही थी, परन्तु वे तो अन्य प्रेयसीके साथ विलासपरायण हो रहे हैं।

इस पन्द्रहवें प्रबन्धकी नायिका स्वाधीनभर्तृका है, जिसके गुणोंसे आकृष्ट होकर श्रीकृष्ण उसके सान्निध्यका त्याग न कर श्रीराधाकी उपेक्षा कर रहे हैं।

इह रस-भणने कृत-हरि-गुणने मधुरिपु-पद-सेवके।
कलि-युग-रचितं न वसतु दुरितं कविनृप जयदेवके॥
रमते यमुना-पुलिन वने..... ॥८॥

अन्वय—रसभणने (रसस्य शृङ्गाररसस्य भणनं कथनं यत्र तस्मिन्) कृतहरिगुणने (कृतं हरेः गुणनं गुणकीर्त्तनं येन

तादृशे) मधु–रिपु–पद–सेवके (श्रीकृष्णपदसेवके) इह (अस्मिन्) कविनृप–जयदेवके (कविश्रेष्ठ–जयदेवे) कलियुग–चरितं (कलि–युगधर्म–वशादाचरितं) दुरितं (पापं) न वसतु॥८॥

अनुवाद—शृङ्गार–रससे परिपूर्ण श्रीकृष्णकी लीला–कथाओंका कीर्तन करनेवाले, मधुसूदनके सेवक मुझ कविराज जयदेवमें कलियुग आचरित दुरित दोष प्रविष्ट न हों।

बालबोधिनी—श्रीजयदेव इस अष्टपदीकी संरचनामें स्वयंको मधुरिपुके सेवकोंमें सर्वश्रेष्ठ मानकर यह प्रार्थना करते हैं कि इस गीतिको सुननेवालोंमें कलियुगके दूषणीय चरित्र प्रविष्ट न हों। 'रसभणने' से तात्पर्य है—रसपूर्ण शृङ्गारिक उक्तियाँ कहनेवाला। 'हरिगुणने' से तात्पर्य है—श्रीहरिकी कथाओंका अभ्यास करनेवाले कविराज जयदेव। इस प्रबन्धमें आयी कविकी सभी उक्तियाँ रसकी उद्दीपना करानेवाली हैं। इस रसकी अभिव्यक्तिसे कलियुगके प्रभावसे तामसी चित्तवृत्तियाँ हृदयमें प्रविष्ट नहीं हो पाती हैं।

इस प्रबन्धका नाम हरिरसमन्मथतिलक है, जिसे प्रबन्धराज कहा गया है। यह द्रुत ताल एवं द्रुत लयसे गाया जाता है। इसकी राग मल्हार है।

नायातः सखि! निर्दयो यदि शठस्त्वं दूति! किं दूयसे?
स्वच्छन्दं बहुवल्लभः स रमते, किं तत्र ते दूषणम्?
पश्याद्य प्रिय–सङ्गमाय दयितस्याकृष्यमाणं गुणै
रुत्कण्ठार्तिभरादिव स्फुटदिदं चेतः स्वयं यास्यति॥१॥

इति पञ्चदशः सन्दर्भः।

अन्वय—[इदानीं विषण्णवदनां सखीं सनिर्वेदमाह]—सखि, निर्दयः (दयाहीनः) शठः (धूर्त्तः अन्तरन्यत् बहिरन्यत्कारीत्यर्थः) यदि न आयातः हे दूति, त्वं किं (कथं) दूयसे (दुःखितासि)? बहुवल्लभः (बह्व्यः वल्लभ्यः प्रेयस्यः यस्य सः कृष्ण)

स्वच्छन्दं (निःशङ्कं) रमते; तत्र ते (तव) दूषणं किं (को दोषः); [इत्थं सखीमनूद्य निर्वेदभङ्ग्या आत्मनो दशमीदशामाह]— पश्य अद्य (इदानीं) दयितस्य (कृष्णस्य) गुणैः (सौन्दर्यादिभिः) [रज्जुभिश्चेति ध्वनिः; यथा कश्चित् रज्वाकृष्टः सन् याति तद्वत्] आकृष्यमाणम् इदं (तदप्राप्तितापोद्धनितधैर्यं) [मम] चेतः (चित्तम्) उत्कण्ठार्त्तिभरादिव (उत्कण्ठा औत्सुक्यम् आर्त्तिः पीड़ा च तयोः भरात् आधिक्यात् हेतोः) स्फुटत् इव (विदलदिव) स्वयं यास्यति॥१॥

अनुवाद—

सखी—हे सखि राधे! वे नहीं आये।

श्रीराधा—वे निर्दय, निष्ठुर, शठ यदि नहीं आये तो तुम दुःखी क्यों हो रही हो?

सखी—वे बहुवल्लभा हैं, स्वच्छन्दतापूर्वक रमण करते हैं।

श्रीराधा—इसमें तुम्हारा क्या दोष है? देखो, आज मेरा मन उस प्राणकान्त प्रियतम श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट होकर तथा उत्कण्ठाके भारसे विदीर्ण होकर उनसे मिलनेके लिए स्वयं ही जायेगा।

बालबोधिनी—श्रीकृष्णके न आने पर इस विषण्णवदना दूतीको ही हेतु मानकर अत्यन्त विरह-व्यथाके साथ अपनी उत्कण्ठा प्रकट करती हुई रहती है। सखीने श्रीराधासे कहा—हे सखि राधे! उन अनेक प्रेयसियोंवालेको मैंने बहुत बुलाया, पर वे निर्दय आये ही नहीं। श्रीराधाने प्रत्युत्तरमें कहा—हे दूति! यदि वे शठ और धूर्त आये ही नहीं, तो इसमें तुम्हारा क्या दोष है? तुम दुःखी क्यों हो रही हो? तुमने अपना दौत्य-कर्म बहुत अच्छी प्रकारसे कर दिया। दूतीने कहा—मैं इसलिए दुःखी हो रही हूँ कि मैं उन्हें ला नहीं सकी। वे बहुबल्लभा हैं, उनकी अनेक प्रेयसियाँ हैं, वे स्वच्छन्द हैं, जहाँ मन चाहे, वहीं रमण करते हैं। पुनः श्रीराधाने कहा—तब तुम्हारा क्या दोष है? अब तुम देखना,

मेरा चित्त उनके गुणोंसे आकर्षित होकर उनसे मिलनेके लिए असहनीय वेदनासे फट रहा है और इस पीड़ाका प्राण बनकर उन तक पहुँच जायेगा। कैसा चित्त है—स्वतः सिद्ध रूपसे श्रीकृष्णके गुणोंसे आकृष्ट।

'उत्कण्ठार्तिभराद्' से तात्पर्य है, प्रियमिलनकी इच्छा—पीड़ाके भारसे विदीर्ण चित्त। मेरे द्वारा रोके जाने पर भी रुकेगा नहीं। उनके पास पहुँचेगा ही।

अथवा देखो, सखि! इस समय दयितके साथ दूसरी रमणीके मिलन होनेसे उनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, फिर भी मेरी उत्कण्ठा प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है।

अथवा हरिके संगमसे पूर्वानुभूत स्मर–सुखको प्राप्त करनेवाला यह चित्त वहाँ जायेगा ही, इसमें न तुम्हारा दोष है और न मेरा। वह रमणी भी उपालम्भके योग्य नहीं है, विधाता ही विमुख हो गया है।

अथवा इस प्रकार यह चित्त वहाँ जायेगा ही और निवृत्तिको प्राप्तकर उपरमित हो जायेगा।

इस प्रकार श्रीराधा शान्त निर्वेदकी स्थितिमें श्रीकृष्णका गुणगान करती हुई दशमी दशाको प्राप्त हो गयीं।

अपने गुणोंके द्वारा श्रीकृष्ण जिस रमणीका सुख–विधान करते हैं, उसे किसी प्रकारका कष्ट नहीं होता, श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्राप्तिके अभावमें अति विपन्ना, विषण्णा अवस्थाको प्राप्त हो गयीं।

प्रस्तुत श्लोकके पूर्वार्द्धमें श्रीराधाका सखीके साथ वचन–प्रतिवचन है। श्रीराधाके मनमें भाव यह है कि स्वयं यह दूती ही श्रीकृष्णको बुलाने गयी और उनके साथ रमण कर लौट आयी है। अतः वह कृष्णको शठ, निर्दय इत्यादि कहती है। कैसे गँवार हैं वे, नायिका और दूतीमें भी अन्तर नहीं जानते।

प्रस्तुत श्लोकमें विक्रीड़ित छन्द है और काव्यलिङ्ग नामक अलङ्कार है।

अथ षोड़षः सन्दर्भः।

गीतम् ॥१६ ॥

देशवराडीरागेण रूपकतालेन गीयते।

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्यका यह सोलहवाँ प्रबन्ध देशवराड़ी राग तथा रूपक तालमें गाया जाता है।

अनिल–तरल–कुवलय–नयनेन ।
तपसि न सा किसलय–शयनेन॥
सखि! या रमिता वनमालिना॥ध्रुवपदम्॥१ ॥

अन्वय—[तद्गुणैरन्यस्याः सुखं वर्णयन्ती स्वस्यास्तदलाभात् निर्वेदेन श्लोकार्थमेव निश्चिनोति]—सखि, या, अतिल–तरल–कुवलय–नयनेन (अनिलेन वायुना तरले चञ्चले ये कुवलये नीलोत्पले तद्वत् नयने यस्य तेन) [उत्पलवत् शैत्यगुणेन तापोपशमनादिति भावः] वनमालिना रमिता (विविध–सम्भोग–केलिभिर्नन्दिता) सा किशलयशयनेन (पल्लवशयनेन) न तपति (सन्तापं न गच्छति सुखयत्येवेत्यर्थः)। [एवं सर्वत्र योजनीयम्] पक्षे या अरमिता सा किशलयशयने (पल्लवशय्यायां) न तपति इति न अपि तु तपत्येव [अतीवोद्दीपकत्वात् तस्य]॥१ ॥

अनुवाद—पवनके द्वारा सञ्चालित इन्दीवर (कमल) के समान चञ्चल नयनवाले श्रीकृष्णके द्वारा जो वरयुवती रमिता हुई है, उसे किसलय शय्या पर शयन करनेसे किसी तापका अनुभव नहीं हुआ होगा।

बालबोधिनी—इस अष्टपदीमें श्रीराधाकी ईर्षा और भी ज्वलित हो उठी है। वह सखीसे कहती है—हे सखि! श्रीकृष्णके नयनयुगल इन्दीवर (नीलकमल) के समान चंचल हैं, मानो दक्षिण पवनसे संचालित हो रहे हों। वे श्रीकृष्ण जिसे रमण–सुख दे रहे हैं और स्वयं रमित हो रहे हैं, वह

मेरी तरह किसलयके सेज पर भी क्यों झुलसेगी? कैसे हृदय टूट जाता है, तार-तार हो जाता है, यह तो मैं जानती हूँ। इस तरह प्रस्तुत श्लोकमें श्रीराधा श्रीकृष्णके सुरत-सौशील्यका वर्णन कर उनकी स्तुति करती है।

निन्दापरक अर्थ यह हो सकता है कि वन-लक्ष्मीकी शोभाका आनन्द लेनेमें लीन, संभोगपराङ्मुख वनमाली श्रीकृष्ण उस गोपीके साथ रमण नहीं कर सके। उनके नेत्र वायुके द्वारा नीलकमलके समान चञ्चल हो रहे थे। इन नेत्रोंके द्वारा उपभुक्त होनेसे वह गोपिका किसलय-रचित शय्या पर शयन करने मात्रसे ही सन्तप्त नहीं की गयी क्या? अवश्य ही की गयी। अथवा नील कमलके समान जिसके नेत्र हैं, ऐसी गोपी उन अन्यमनस्क, इधर-उधर दूसरी प्रियाको देखनेवाले श्रीकृष्णके द्वारा अवश्य ही सन्तप्ता हुई है।

विकसित-सरसिज-ललित-मुखेन ।
स्फुटति न सा मनसिज-विशिखेन—
सखि! या रमिता... ॥२॥

अन्वय—विकसित-सरसिज-ललित-मुखेन (विकसितं यत् सरसिजं पद्मं तद्वत् ललितं मनोहरं मुखं यस्य तादृशेन) वनमालिना या रमिता, सा मनसिज-विशिखेन (मन्मथशरेण) न स्फुटति (न विदीर्यते)। [पक्षान्तरे या अरमिता सा (सादृशी भाग्यहीना नारी) मनसिज-विशिखे न स्फुटति इति न, अपि तु स्फुटत्येव]॥२॥

अनुवाद—प्रफुल्लित कमलके समान सुललित मुखवाले वनमाली श्रीकृष्णके द्वारा जो सुन्दरी संभुक्ता हुई है, उसे कन्दर्पके विषम बाण कभी भेद नहीं सकते। अथवा विलासकला-पराङ्मुख केवल हास्य-परायण श्रीकृष्णके साथ रमण न कर सकनेवाली वह गोपीका कामके विषमबाणोंसे क्या बिद्ध नहीं होती? अपितु होती ही है।

पद्यानुवाद—

अनिल तरुण मृदु जलज नयनके,
विकसित सरसिज ललित वदनके,
अमिय मधुर अति मंजु वचनके,
थल जलरुहसे रुचिर चरणके।
मिले, जिसे हैं सरस भावसे, उसे, कभी वनमाली,
पल्लव 'स्मर शर' 'मलय' चन्द—सब जला न पाते आली।

बालबोधिनी—श्रीराधा सखीसे कहती है—प्रफुल्लित अरविन्दवत् विलसित मुखकमलवाले वनमाली श्रीकृष्ण जिस रमणीको आनन्द दे रहे हैं, वह क्यों जानेगी कि मदनके बाणोंकी व्यथा कैसी होती है? किस प्रकार मैं विरहसे पीड़ित हो रही हूँ, उस रमिताका कामके बाणोंसे सन्तप्त होनेका प्रश्न ही नहीं उठता। कैसा हृदय विदीर्ण कर दिया है मेरा—यह स्तुतिपरक व्याख्या है।

निन्दापरक अर्थमें वे श्रीकृष्ण तो विलासपराङ्मुख हैं, हास्यपरायण हैं, अपने मनोहर मुखसे बस हास-परिहास करते रहते हैं, उनके साथ रमण न कर पानेसे वह गोपिका क्या मदन-शरोंसे सन्तप्त नहीं होती क्या? अवश्य ही होती है।

अमृत-मधुर-मृदुतर-वचनेन ।
ज्वलति न सा मलयज-पवनेन॥
सखि! या रमिता.... ॥३॥

अन्वय—अमृत-मधुर-मृदुतर-वचनेन (अमृतादपि मधुरं मृदुतरं कोमलतरञ्च वचनं यस्य तेन) वनमालिना या रमिता सा मलयज-पवनेन (मलयानिलेन) न ज्वलति। [अमृतसिक्तया ज्वालातिशयानुपपत्तेः]। [पक्षान्तरे—या अरमिता सा मलयजपवने न ज्वलति इति न, अपि तु ज्वलत्येव]॥३॥

अनुवाद—अति सुमधुर तथा कोमलतर वचन बोलनेवाले श्रीकृष्णसे जो वनिता रमिता हुई है, उसे मलय-पवनके संपर्कसे कभी ज्वालाका अनुभव नहीं हो सकता है।

बालबोधिनी—सखि! वे अपनी अमृतमयी कोमल और मधुर वाणीसे उस रमणीयाको लुभा रहे हैं। वह कैसे जानेगी कि मलयाचलसे चलनेवाली दक्षिणी बयारसे कैसी ज्वालाएँ उद्भूत होती हैं? कैसी दाहक ज्वलनशील पीड़ा होती है? जो विरहिणियोंको सन्तप्त करती है।

अथवा निन्दापरक अर्थमें श्रीकृष्णने जिस गोपिकाके साथ रमण नहीं किया, अपितु अमृतमयी मृदु मधुर वाणीसे लुभाते रहे, वह रमणी क्या मलयानिलसे सन्तप्त नहीं हुई होगी? अवश्य ही हुई होगी।

स्थल-जलरुह-रुचि-कर-चरणेन।
लुठति न सा हिमकरकिरणेन॥
सखि! या रमिता.... ॥५॥

अन्वय—स्थल-जलरुह-रुचि-कर-चरणेन (स्थल जलरुहस्य स्थलपद्मस्य रुचिरिव रुचिः कान्तिः यस्य तादृशं कर-चरणं पाणिपादं यस्य तादृशेन) वनमालिना या रमिता सा हिमकरकिरणेन (चन्द्रकिरणेन) न लुठति (मूर्च्छिता भूतले न परिवर्त्तते) [इन्दुकिरणानाम् उज्ज्वलतया तापकत्वावगमेऽपि स्थलकमलवत् शीतल-करचरणस्पर्शसुखेनेति भावः]; पक्षान्तरे या अरमिता सा हिमकरकिरणे [किरणं विकिरति सति] न लुठति इति न, अपि तु लुठत्येव] [तादृश-करचरणस्पर्शाभावादिति भावः]॥४॥

अनुवाद—वनमाली श्रीकृष्णके कर एवं चरण स्थल-कमलके समान कान्तिमय एवं सुशीतल हैं, उनसे जो रमणी संभुक्ता हुई है, उसे चन्द्र-किरणोंसे सन्तापित होकर पृथ्वी पर लुण्ठन नहीं करना पड़ता।

बालबोधिनी—श्रीराधा सखिसे कहती है—हे सखि, श्रीकृष्णके कर-तल एवं पद-तल स्थलकमलके समान कान्तिमय एवं सुशीतल हैं। उनके साथ रमण करनेवाली रमणी कैसे जानेगी कि चन्द्रमाकी शीतल किरणें कैसे दहकती हैं, वह उस विधु-कौमुदीसे संतप्त होकर रातभर शय्या पर करवटें

क्यों बदलती होगी? निन्दापरकके अर्थमें, स्थल-कमलके समान अंगोंवाले श्रीकृष्णकी आलिङ्गन प्राप्तिके लिए वह रातभर करवटें बदलती रहती होगी।

सजल-जलद-समुदय-रुचिरेण।
दहति न सा हृदि विरह-दवेन॥
सखि! या रमिता.... ॥५॥

अन्वय—सजल-जलद-समुदय-रुचिरेण (सजल-जलदानां समुदयात् समूहादपि रुचिरेण सुन्दरेण) वनमालिना या रमिता सा विरह-दवेन हृदि न दहति (भस्मीभवति) [जलदवदार्द्रतया दाहासम्भवात्]; पक्षान्तरे—या अरमिता सा विरहदवे (विरहानले) [जलति सति] हृदि न दहति इति न; [अपि तु दहत्येव इत्यर्थः]। नवमेघस्य विरहोद्दीपकत्वात्]॥५॥

अनुवाद—वनमाली श्रीकृष्ण सजल-जलद-मण्डलसे भी मनोहर कान्तिमय एवं सुकुमार हैं। उन श्रीकृष्णके साथ जिस वराङ्गनाने रमण किया, उसे दीर्घकालिक विरहके विषभारसे कभी भी संदलित नहीं होना पड़ता।

बालबोधिनी—सखि, जिनका स्वरूप नवीन बादलके समान अतिशय मनोहर है, अति सुकुमार है, उनसे जो रमणी संभुक्ता हुई, उसे विरहरूपी विषसे कदापि भय नहीं रहता। वे तो जलवर्षी मेघके समान उस पर बरस रहे हैं, वह क्या जानेगी कि यह दीर्घकालिक विरह कितना विदलित करता है, कितना विदीर्ण करता है।

निन्दापरक अर्थमें—जो गोपी नवजलधर सदृश कान्तिवान श्रीकृष्णके साथ रमण नहीं कर सकी, वह इस दीर्घकालिक विरहके तीव्र-विषसे दुःखी नहीं होगी क्या? अवश्य ही दुःखी होगी।

कनक-निकष-रुचि-शुचि-वसनेन।
श्वसिति न सा परिजन-हसनेन॥
सखि! या रमिता.... ॥६॥

अन्वय—कनक-निकष-रुचि-शुचि-वसनेन (कनकस्य सुवर्णस्य निकषेषु निकष-पाषाणेषु या रुचिः तद्वत् शुचि उज्ज्वलं वसनं यस्य तेन) वनमालिना या रमिता सा परिजन-हसनेन (परिजनानामुपहासेन) न श्वसिति (दीर्घश्वासं न मूञ्चति) [सौभाग्यगर्वेण काश्चिदपि न गणयतीति भावः]; पक्षान्तरे या अरमिता सा परिजन-हसने [सति] न श्वसिति इति न, [अपि तु श्वसित्येव इत्यर्थः]॥६॥

अनुवाद—स्वर्ण-निकष (कसौटी) सदृश श्याम वर्णवाले, पवित्र पीतवस्त्र धारण करनेवाले श्रीकृष्णके द्वारा जो सौभाग्यवती रमणी संभुक्ता हुई है, उसे कभी भी परिजनों द्वारा उपहासका कारण बनकर दीर्घनिःश्वास नहीं लेने पड़ते।

बालबोधिनी—सखि! जिन श्रीकृष्णके वसन (वस्त्र) कसौटी पर घिसी हुई स्वर्ण रेखाओंके समान उज्ज्वल, पीत एवं निर्मल हैं (शरीर कसौटी है, वस्त्र सोना है), ऐसे श्रीकृष्ण द्वारा जो कुलबाला रमिता हुई है, वे पीताम्बरी जिस बड़भागिनीको बाहुपाशमें आबद्ध करते हों, तो वह क्या जानेगी कि जब अपने ही परिजन उपहास करते हैं, तब कैसा दुःख होता है? कैसे साँसें घुटती हैं? कैसी म्लानता होती है?

निन्दापरक अर्थमें सुवर्णकी कान्तिके समान श्याम कान्तिवाले तथा पीतवस्त्र धारण करनेवाले श्यामसुन्दरके साथ रमण-सुख प्राप्त करनेके लिए जो गोपी कषाय वस्त्र आदिको धारण करती है, उसे अपने परिजनोंके उपहासका पात्र बनकर दुःखी होना ही पड़ता है।

सकल-भुवन-जन-वर-तरुणेन।
वहति न सा रुजमति-करुणेन॥
सखि! या रमिता.... ॥७॥

अन्वय—सकल-भुवन-जन-वर-तरुणेन (सकलभुवनेषु ये जनाः युवानस्तेभ्यो वरः श्रेष्ठो यः तरुणः किशोरः तेन) वनमालिना या रमिता सा अतिकरुणेन (अतिशोकेन) रुजं (पीड़ां) न बहति (प्राप्नोति) [जगद्वल्लभतरुण-प्राप्त्या करुणानुपपत्तेः]; पक्षान्तरे या अरमिता, सा अतिकरुणे रुजं न बहति इति न; [अपितु बहत्येव इत्यर्थः]॥७॥

अनुवाद—अखिल जगतके तरुण-श्रेष्ठ, सुकुमार मनोहर रूप लावण्य-विशिष्ट श्रीकृष्णके साथ रमण करनेवाली नायिका अपने अन्तःकरणमें दारुण विरह-वेदनाका अनुभव नहीं करती है क्योंकि वे अति करुण हैं।

बालबोधिनी—समस्त लोकोंमें जितने भी तरुण युवा पुरुष हैं, उनमें श्रीकृष्ण सर्वातिशय युवतर हैं, सुन्दरतम हैं, वे नवकिशोर नटवर हैं। करुणावरुणालय वे जिस रमणीको भी रमायेंगे, वह अति करुण भावसे मेरी तरह निढाल नहीं पड़ेगी।

निन्दापरक अर्थमें जगतमें श्रेष्ठ तरुण पुरुषोंके साथ रमण करनेवाली रमणी, उनमेंसे किसी एकका भी विरह होने पर करुणातिशयताके कारण कष्टका अनुभव करेगी ही।

श्रीजयदेव-भणित-वचनेन।
प्रविशतु हरिरपि हृदयमनेन॥
सखि! या रमिता.... ॥८॥

अन्वय—अनेन श्रीजयदेव-भणित-वचनेन (श्रीजयदेवोक्त-श्रीराधायाः माधवमुद्दिश्य वचनेत्यर्थः) हरिरपि [तदेकचित्तानां भक्तानां] हृदयं (चित्तनिकेतनं) प्रविशतु [प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहमित्युक्तेः]॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेवकवि विरचित श्रीराधाके विलाप-वचनोंके साथ श्रीहरि भी भक्तोंके हृदयमें प्रवेश करें।

पद्यानुवाद—

सजल जलद सम फुल्ल वदनके।
कनक-निकष सम पीत वसनके॥
सकल युव जन श्रेष्ठ तरुणके।
प्रेरक कवि 'जय' काव्य करुणके॥
मिले, जिसे हैं सरस भावसे, उसे, कभी वनमाली।
विरह, स्वजन-स्वर-व्यङ्ग-दरद-सब जला न पाते आली॥

बालबोधिनी—जयदेव कविके द्वारा माधवके उद्देश्यसे गाये गये इस प्रबन्धसे प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण हृदयमें प्रवेश करें। किसके हृदयमें? श्रीराधाके हृदयमें। साथ ही कर्ण-रन्ध्र द्वारा मेरे—कवि जयदेवके, इस प्रबन्धके पाठकोंके तथा श्रोताओंके भावरूपी हृदय-कमलमें भी प्रवेश करें। नागर नारायण हरि हृदयमें अवस्थित हों।

इस प्रकार नारायणमदनायास नामका सोलहवाँ प्रबन्ध समाप्त हुआ।

मनोभवानन्दन चन्दनानिल!
प्रसीद रे दक्षिण! मुञ्च वामताम्।
क्षणं जगत्प्राण! विधाय माधवं।
पुरो मम प्राणहरो भविष्यसि॥१॥

अन्वय—[अत्यावेशेन मनोवाष्पमुद्गिरति दैन्येनाधुना मलयानिलं सविनयं प्रार्थयते]—हे मनोभवानन्दन (आनन्दयतीति आनन्दनः; मनोभवस्य आनन्दनः तत्सम्बुद्धौ हे मदनानन्दकर) हे चन्दनानिल (मलयवायो) प्रसीद (प्रसन्नो भव); [पुनरीर्योदयादाह]—रे दक्षिण (सरल-स्वभाव, सर्वानुकूल इति यावत्) वामतां (प्रतिकूलतां) मुञ्च (त्यज) [दक्षिणपथप्रवृत्तस्य वाम-पथ प्रवृत्तेरयुक्तत्वात् वामता त्याज्य इति भावः]; [तर्हि किं विधेयं तत्राह]—[जगद्धितोऽपि मनोभवानन्दनाय चन्दनतरु-सम्पर्कात् विषमश्चेत् मां मारयसि तर्हि] हे जगत्प्राण! क्षणं

मम पुरः (अग्रतः) माधवं विधाय (संस्थाप्य) [पश्चात्] मम प्राणहरो भविष्यसि॥१॥

अनुवाद—हे कन्दर्पको आनन्द देनेवाले मलयाचलके समीर! दक्षिण ही बने रहो! वामताका त्याग कर दो! हे जगतके प्राणस्वरूप! माधवको मेरे सामने कर तुम मेरे प्राण हर लेना।

बालबोधिनी—कामदेवके बाणोंके प्रहारको न सह सकनेके कारण श्रीराधा मलयानिलको सम्बोधित करती हुई कहती है—कामके बाणोंको उनके लक्ष्य तक पहुँचानेवाली मलयाचलकी वायु मेरे लिए प्रतिकूल बन गयी है, मुझे जलाकर अपने मित्र कामदेवको तो आह्लादित कर दिया और मुझे कामकी पीड़ासे इतना दग्ध कर दिया। दक्षिणानिल कहलाते हो, सम्पूर्ण जगतको आनन्द प्रदान करते हो, फिर मेरे लिए तुम्हारा आचरण प्रतिकूल क्यों है? क्यों वाम भाव धारण किया है? मैं जानती हूँ—तुम मदनके सहचर हो, मलयाचल पर्वत पर सर्पोंसे घिरे हुए चन्दन वृक्षोंके संसर्गसे तुम्हारा स्वभाव अवश्य ही दूषित हो गया है, कितना सन्तप्त कर रहे हो मुझे? हे जगत्प्राण! क्षणभरके लिए प्रसन्न हो जाओ, क्षमा करो मुझे। अपनी प्रतिकूलताका त्याग कर दो, मेरे प्राणोंको हर लेना, पर पहले एक क्षणके लिए प्राणनाथ माधवका दर्शन करा दो, फिर प्राणापहारक बन जाओ।

वंशस्थ छन्द है, अतिशयोक्ति अलंकार है।

रिपुरिव सखी—संवासोऽयं शिखीव हिमानिलो
विषमिव सुधारश्मिर्यस्मिन् दुनोति मनोगते।
हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्—
कुवलय—दृशां वामः कामो निकामनिरंकुशः॥२॥

अन्वय—[अथ अनुरागहीने दयिते सानुरागं चित्तं निन्दति]—तस्मिन् (श्रीहरौ) मनोगते (चित्तारूढ़े) [सति] अयं सखीसंवासः

(सखीभिः संवासः सहवासः) रिपुरिव (शत्रुरिव) [स्वच्छन्दगमन-प्रतिरोधकत्वात्] दुनोति (क्लिश्नाति); हिमानिलः (शीतलवायुः) [तापकत्वात्] शिखीव (अग्निरिव) [दुनोति]; सुधारश्मिः (चन्द्रः) [दाहकत्वात्] विषमिव [मम मनः] [दुनोति]; [यदि] अदये (दयाहीने) तस्मिन् [कान्ते] एवं पुनः [नानारूपेण कार्यमाणमपि] हृदयं वलात् वलते (संभक्तं स्यात्), [तर्हि] कुवलयदृशां (नीलोत्पलाक्षीणां कामिनीनां) कामः (अभिलाषः) निकाम-निरङ्कुशः (अत्यर्थमयन्त्रितः; हिताहितविचारापगमात् दुर्निवार इत्यर्थः) [अतएव] वामः (प्रतिकूलएव)॥२॥

अनुवाद—हे सखि! सखियोंका सुखमय साथ, शत्रुके समान मेरे मनको शत्रुकी भाँति अनुभूत हो रहा है, सुशीतल सुमन्द समीरण हुताशनके समान प्रतीत हो रहा है और सुधा-रश्मियाँ विषके समान मुझे कष्ट दे रही हैं, फिर भी मेरा हृदय बलात् उसीमें लगा हुआ है, सत्य है, कुवलय सदृश कामिनियोंके प्रति काम सर्वथा ही निरंकुश हुआ करता है।

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें श्रीराधा विरहके उन्मादमें अपने चित्रको ही उपालम्भ देती हुई अपनी सखीसे कहती है—हाय! मैं किसे दोष प्रदान करूँ? उस श्रीकृष्णके स्मरणसे जो मेरी प्रियसखियाँ मुझे श्रीकृष्णके समीप जानेसे मना किया करती थीं, आज उनका सुखमय संग भी मुझे वर्षोंकी शत्रुता जैसा प्रतीत होता है, शीत वायु मुझे ज्वालाके समान दग्ध करती है, चन्द्रमा हलाहल विष जैसा लगता है। फिर भी सखि! मेरा मन उस निर्दय निष्ठुर श्रीकृष्णके प्रति अबाध गतिसे दौड़ता हुआ चला जा रहा है, मेरा अविवेकी मन ही मेरे दुःखका कारण बन गया है। अहो! हिताहित विवेकरहिता कमलनयनाओंके लिए 'काम' ही नितान्त दुनिर्वार होकर उनके अशेष दुःखका कारण बन जाता है। यह कामदेव अति निरंकुश है, सुन्दरियोंके प्रति

तो अति ही कठोर है एवं प्रतिकूल है, विरहियोंके प्रति अति निरंकुश आचरण करता है।

इस श्लोकमें हरिणी-वृत तथा विरोधालङ्कार है।

बाधां विधेहि मलयानिल! पञ्चबाण!
प्राणान्गृहाण न गृहं पुनराश्रयिष्ये।
किं ते कृतान्तभगिनि! क्षमया तरङ्गे—
रङ्गानि सिञ्च मम शाम्यतु देहदाहः ॥३॥

अन्वय—[अधुना विरहोत्तप्तया प्राणोत्सर्गः कृत एवाह]—हे मलयानिल, त्वं वाधां (मनःपीड़ां) विधेहि (जनय) [वामत्वेन वाधाविधान-सामर्थ्यादित्यर्थः]; हे पञ्चबाण, (काम) प्राणान् गृहाण [पञ्चबाण-धारित्वे पञ्चबाणग्रहणयोग्यत्वादित्यर्थः]; हे कृतान्त-भगिनि (यम-सहोदरे यमुने) ते (तव) क्षमया किं? (क्षमां मा कुरु) [यमानुजायाः क्षमा न युक्ता]; [तर्हि किं कर्त्तव्यम्? तरङ्गैः मम अङ्गानि सिञ्च; देहदाहं (शरीरसन्तापः); शाम्यतु (चिरं निवृत्तो भवतु); [एतेन दशमीं दशां विधेहीति ध्वन्यते]; [अहं] पुनः गृहं न आश्रयिष्ये [तेन बिना गृहमपि सन्तापकमेव; ततो मरणमेव युक्तमित्यर्थः]॥३॥

अनुवाद—हे मलयानिल! तुम बाधाओंका विधान करो! हे पञ्चबाण! तुम मेरे प्राणोंका हरण करो! हे यमुने! तुम यमकी बहन हो, तुम क्यों मुझे क्षमा करोगी? तुम तरङ्गोंके द्वारा मुझे अभिषिक्त कर देना, जिससे मेरे देहका सन्ताप सदाके लिए शान्त हो जाय।

बालबोधिनी—संप्रति विरह-ताप-तापिता श्रीराधा अपने प्राणोंको त्यागनेका संकल्प लेकर कहती हैं—हे मलयपवन! हे शीत समीरण! क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो? मुझे खूब जमकर पीड़ा देना! हे पञ्चबाण! मेरे प्राणोंका हरण कर लेना, अपने पाँच बाणोंसे तुम मेरे पाँचों प्राणोंका अपहरण

कर लेना—इसीलिए तुम्हें पञ्चबाणोंसे उपहित किया जाता है। प्राणोंका हरण करना ही तुम्हारा प्रयोजन है। ठीक ही तो है—कामदेव सन्तप्त जनोंको उत्तप्त करके गृहकी ओर उन्मुख करा देता है। पर तुम मुझे कितना भी विवश कर लो, मेरे प्राण भले ही चले जायें, पर मैं घर कभी नहीं जाऊँगी, श्रीकृष्णके चरणोंका आश्रय लूँगी। दोनोंका उपालम्भ देकर कामसे विदीर्ण होकर यमुनासे कहती हैं—हे यमुने! तुम यमराजकी बहन हो! मलयानिल एवं पञ्चबाण मुझे पीड़ित कर ही रहे हैं, कामदेव सम्भोगकारक हैं, पर वह तो विपरीत आचरणमय हो गया है, मलयानिल सुखकारक होकर मुझे विकल बना रहा है, उन दोनोंके द्वारा प्राणोंके ग्रहण कर लिये जानेपर तुम भाई यमको क्या उत्तर दोगी? इसलिए तुम मुझे क्षमा मत करो, तुम अपनी तरङ्गोंसे मेरे अङ्गोंका सिंचन कर दो, मृत देहको अपने सलिलमें समा लो, जिससे गतप्राण मेरे देहका दाह शान्त हो जाय। इस प्रकार श्रीराधा श्रीकृष्ण विरहमें दसवीं दशाको प्राप्त होने लगीं।

प्रस्तुत श्लोकमें वसन्ततिलका छन्द तथा अप्रस्तुत प्रशंसा अलङ्कार है।

प्रातर्नील–निचोलमच्युतमुर संवीत पीतांशुकं
राधायाश्चकितं विलोक्य हसति स्वैरं सखीमण्डले।
ब्रीडाचञ्चलमञ्चलं नयनयोराधाय राधानने
स्मेरस्मेरमुखोऽयमस्तु जगदानन्दाय नन्दात्मजः ॥४॥

इति षोडश सन्दर्भः।

इति श्रीगीतगोविन्द महाकाव्ये विप्रलब्धा वर्णने
नागर–नारायणो नाम सप्तमः सर्गः।

अन्वय—[अथैतद्दुःखवर्णनमसहिष्णुः कविः सिंहावलोकन्यायेन साधारण–केलिरात्रैः प्रातश्चरितवर्णनेन श्रीराधायाः खण्डितावस्थां

वर्णयिष्यन् श्रीराधामाधवयोः प्राक्तन-केल्यनन्तरावस्थितिवर्णनेन मङ्गलमातनोति]—[कदाचित्] प्रातः (प्रभाते) नीलनीचोलं (नीलं निचोलं वस्त्रं यस्य तादृशं परिहित-राधावसनमित्यर्थः) अच्युतं (हरिं) [तथा] संवीतपीतांशुकं (संवीतम् उत्तरीकृतं श्रीकृष्णस्य पीतम् अंशुकं वस्त्रं यत्र तादृशं) राधाया उरः (वक्षःस्थलं) विलोक्य सखीमण्डले स्वैरं (स्वच्छन्दम् उच्चैरित्यर्थः) [तथा] चकितं (चमत्कृतं यथा तथा) हसति [सति] राधानने (श्रीराधावदने) ब्रीड़ाचञ्चलं (ब्रीड़या लज्जया चञ्चलं यथा तथा) नयनयोः अञ्चलं (नेत्रप्रान्तं कटाक्षमित्यर्थः) आधाय (विन्यस्य) स्मेर-स्मेर-मुखः (मृदुमन्दसहास्यवदनः) अयं नन्दात्मजः (नन्दनन्दनः) जगदानन्दाय अस्तु (जगतामानन्दं विदधातु) [अतः सर्गोऽयं नागरा एव नरा नरसमूहास्तेषामयनं मूलभूतः श्रीकृष्णो यत्र स इति सप्तमः सर्गः]॥४॥

अनुवाद—प्रातःकाल विभ्रमवश श्रीकृष्णने श्रीराधाजीका नील उत्तरीय वस्त्र (कञ्चुक) तथा श्रीराधाने अपने वक्षःस्थल पर श्रीकृष्णका पीत उत्तरीय वस्त्र धारण कर लिया, जिसे देख सखीमण्डल स्वच्छन्दतापूर्वक हँसने लगा। उन्हें हँसता हुआ देखकर श्रीकृष्णने मन्दमुस्कानके साथ सलज्ज होकर अपाङ्ग- भङ्गिमासे श्रीराधाके मुखारविन्दके प्रति कटाक्षपात किया। ऐसे नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जगतके लिए आनन्दका विधान करें।

बालबोधिनी—प्रस्तुत सर्गके अन्तिम श्लोकोंमें वैष्णवोंको कवि जयदेवके द्वारा आशीर्वाद दिया गया है—यह नन्दनन्दन श्रीकृष्ण जगतको आनन्ददायी हों। निकुञ्ज-वनके निकट जयदेवजीके द्वारा श्रीराधा-माधवकी पूर्व-केलिका स्मरण कर प्रातःकालकी स्थितिका निरूपण किया है। कवि जयदेव श्रीराधाका विरह वर्णन करनेमें असमर्थ हो गये, तब सिंहावलोकन न्यायसे रात्रिकालीन साधारण केलिका चित्राङ्कन कर प्रातःकालीन श्रीराधाकी खण्डितावस्थाका दिग्दर्शन कराया

है। श्रीश्रीराधा-माधव दोनोंने एक साथ रति-केलिके द्वारा पिछली रात बितायी है एवं विभ्रमसे एक-दूसरेके वस्त्र पहन लिये हैं। इस वैचित्र्य परिवर्त्तनसे सखियाँ हँस पड़ीं, उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। अच्युत श्रीकृष्णने अपने तनपर नील-वसन कञ्चुकको धारण किया है और श्रीराधाका उर पीताम्बरसे ढका हुआ है। यह वस्त्र-विनिमय ही सखियोंके स्वच्छन्द हास्यका कारण है। लज्जासे चञ्चल नेत्रोंको श्रीराधाके मुख पर रखते हुए कटाक्षपात कर श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्कराने लगे।

प्रस्तुत श्लोकमें कवि जयदेवकी लोकमङ्गलकी कामना प्रकट हुई है। हास्य रस, शार्दूल विक्रीड़ित छन्द, स्वभावोक्ति अलङ्कार, नायक शठ एवं नायिका अभिसारिका है।

श्रीगीतगोविन्दके सोलहवें सन्दर्भकी बालबोधिनी वृत्ति समाप्त।

इति सप्तमः सर्गः।

अष्टमः सर्गः

विलक्ष्यलक्ष्मीपतिः

अथ कथमपि यामिनीं विनीय स्मरशरजर्जरितापि सा प्रभाते।
अनुनयवचनं वदन्तमग्रे प्रणतमपि प्रियमाह साभ्यसूयम्॥१॥

अन्वय—[इदानीं श्रीराधायाः खण्डितावस्थां वर्णयति; यदुक्तं—साहित्यदर्पणे—पार्श्वमेति प्रियो यस्या अन्यसम्भोगचिह्नितः। सा खण्डितेति कथिता धीरैरीर्षाकषातिता इति]—अथ (बहुविध-प्रलापानन्तरं) सा स्मरशर-जर्ज्जरितापि (स्मरस्य कामस्य शरेण जर्ज्जरितापि; क्षणमात्रमतिबाहयितुमशक्तापीति भावः) कथमपि (अतिकृच्छ्रेण) यामिनीं विनीय (अतिबाह्य) प्रभाते (प्रातः) अग्रे (पुरतः) अनुनयवचनं (स्वापराधजनित-कोपोप-शमन-वाक्यं) वदन्तमपि, [ततोऽपि प्रसादमनालोक्य] प्रणतमपि [अनेन प्रेम्णः पराकाष्ठा दर्शिता] प्रियं (श्रीकृष्णं) साभ्यसूयं (कण्ठागतप्राणाया अपि प्रियदर्शनमात्रेण असूयोदयात् स यथातथा) आह॥१॥

अनुवाद—अतःपर श्रीराधाने जैसे-तैसे वह रात बिताई। प्रातःकाल होनेपर श्रीकृष्ण उनको प्रणिपातपूर्वक सानुनय वचनसे उनके रोषभरे मानको प्रशमित करनेका प्रयास करने लगे, परन्तु श्रीराधा मदनबाणोंसे जर्जरित होनेपर भी विरहवचनोंसे युक्त प्रियकान्त श्रीकृष्णको अपने निकट प्रणतभावसे समुपस्थित देखकर अतिशय असूया (ईर्ष्या) भावसे उनको इस प्रकार कहने लगीं।

पद्यानुवाद—

किसी तरह दुःख-रात बिताई, हो आया जब भोर।
चरणों पर झुकते, अधरों पर हँसते दीखा 'चोर'॥
किन्तु नहीं राधाका इससे नाचा रे मन मोर।
हुई क्षुब्ध, सागरमें जैसे लहरोंका हो रहा शोर॥

हे माधव! हे कमल-विलोचन! वनमाली! रसभीने!
अपनी व्यथा-हारिणीके ढिग जाओ हे परलीने!

बालबोधिनी—पिछली रात श्रीराधा सब कल्पनाजाल रचती रहीं, विरहमें श्रीकृष्णकी बाट जोहती रहीं, श्रीकृष्ण नहीं आये, श्रीराधा विरहसे जर्जरित हो गई, विदीर्ण हो गई, रात भर मदमाते वसन्तकी बयारकी व्यथाका सन्देश-प्रतिसन्देश पहुँचाती रहीं। उस वसन्ती रातमें दसों दिशाओंसे भाँति-भाँतिके फूलोंकी गन्ध और कामके शरोंसे आहत हो गयीं, संकेतस्थल पर विलाप करती रहीं, मिलनेके सपने देखती रहीं, मिलनकी स्मृतियोंमें खोयी रहीं। कैसा अजस्र विरह, इतनेमें ही प्रातःकाल हो गया। कैसी बिडम्बना है कि मानिनी नायिकाओंका मान अपने प्रियतमके समक्ष और भी अभिवर्द्धित हो जाता है। श्रीकृष्ण उनके सामने उपस्थित होकर प्रणाम करते हुए अत्यधिक अनुनय करनेवाले, प्रणतमान होकर सान्त्वना देने लगे, उनके कोपको दूर करनेका प्रयास करने लगे, परन्तु काम-पीड़ासे जर्जरिता श्रीकृष्णके शरीरमें सम्भोगका चिह्न देखकर वे और भी अधिक अधीर हो गयीं। श्रीराधाके चरणोंमें श्रीकृष्णका झुकना प्रेमकी पराकाष्ठा है, श्रीराधाके प्राण कण्ठगत हैं, प्रियके दर्शनसे ही श्रीराधामें असूया भाव प्रवाहित होने लगा और वे कहने लगीं—

सप्तदशः सन्दर्भः

गीतम् ॥१७॥

भैरवीरागयतितालाभ्यां गीयते।

गीतगोविन्द काव्यका यह सत्रहवाँ प्रबन्ध भैरव-राग तथा यति-तालसे गाया जाता है।

रजनि-जनित-गुरु-जागर-राग-कषायितमलस-निमेषम्।
वहति नयनमनुरागमिव स्फुटमुदित-रसाभिनिवेशम्॥

हरि हरि याहि माधव याहि केशव मा वद कैतववादं
तामनुसर सरसीरुहलोचन या तव हरति विषादम् ॥ध्रुवम् ॥१ ॥

अन्वय—रजनि-जनित-गुरु-जागर-राग-कषायितम् (रजन्यां जनितेन गुरुणा दीर्घेण जागरेण जागरणेन यो रागस्तेन, तस्यामनुरागेण च कषायितं लोहितीकृतं) [तथा] अलसनिमेषं (अलसेन निमेषः निमीलनं यत्र तं) [तथाच] उदितरसाभिनिवेशं (उदितः प्रकटितः रसाभिनिवेशः तस्याः सुरते अभिनिवेशः येन तथाभूतं) तव नयनं स्फुटम् (अभिव्यक्तम्) अनुरागं बहतीव (धारयतीव); [तां प्रति तव हृदि स्थितोऽनुरागः प्राचूर्यात् अरविन्दचक्षुषा निर्गत इव प्रतीयते इति भावः]; हे माधव [त्वं] याहि, हे केशव [त्वं] याहि [द्विरुक्त्या कोपाधिक्यं सूचितम्]; कैतववादं (त्वदेकपरायणोऽहमिति कपटवचनं) मा वद; हे सरसीरुहलोचन (कमललोचन; दृष्टिपातमात्रेणैव मुग्धस्त्रीजनवञ्चनपरायण इत्यभिप्रेत्यर्थः) हरि हरि (खेदे) [त्वत्तोऽपि वञ्चनचतुरा] या [सहजप्रेमानभिज्ञस्य] तव विषादं (कापट्यापादितवैमनस्यं) हरति, ताम् (तव चित्तानुरूपचतुरव्यापारां कान्ताम्) अनुसर (अनुगच्छ) ॥१ ॥

अनुवाद—हे हरि! (अपनी सुललित नयन-भङ्गिमासे अवलाओंके मनको हरण करनेवाले) मुझे खेद है। हे माधव! जाओ! हे केशव! चले जाओ! तुम झूठ मत बोलो! जो तुम्हारे दुःखका हरण कर सकती है, तुम उसीके पास चले जाओ! रात्रिमें बहुत अधिक जागरणके कारण अलसतामय मन्द-मन्द निमीलित, रति रसावेश संयुक्त आरक्त नयन उस व्रजसुन्दरीके प्रति प्रबलानुरागको अभी भी प्रकाशित कर रहे हैं।

पद्यानुवाद—

नैश जागरणसे रतनारी बनी सखे! हैं आँखें।
रह-रहकर झप-झप उठती है मृदु पलकोंकी पाँखें॥

छलक रही अनुराग माधुरी अलसाई 'कोरों' से।
वह कौन बँधी सी झलक रही है रेशमके डोरोंसे॥
हे माधव! हे कमल विलोचन! वनमाली! रसभीने!।
अपनी व्यथाहारिणीके ढिंग, जाओ हे परलीने!॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णकी आँखें रातभर जागनेके कारण और विरहानुभूतिसे लाल हो गयी हैं और अलसता हेतु बार-बार मुँदी जा रही हैं, ऐसी अनुरञ्जित आँखोंको देखकर श्रीराधा श्रीकृष्णको भावोंकी सार्थकता हेतु कई नामोंसे सम्बोधित करती हैं—सपत्नी विषयक ईर्ष्या प्रकट करती हैं। हरि! हरि!—ये दोनों अव्यय पद 'खेद' प्रकट करनेके लिए प्रयुक्त हुए हैं। गान छन्दको पूर्ण करनेके लिए भी स्तोभ रूपमें इनका प्रयोग हो सकता है। खण्डिता श्रीराधा अपने सम्मुख प्रणतवान अपने प्रियसे कहती हैं—हे माधव! हे लक्ष्मीपति! जाओ! चले जाओ! आप अन्यासक्त हैं, किस प्रकार दूसरोंकी प्रताड़ना करोगे—यह 'मा' शब्दसे द्योतित होता है। अथवा मा अर्थात् लक्ष्मी स्वभावसे चञ्चला हैं, उनके पतिका भी चञ्चल होना युक्तिसंगत ही है। मैं एक पतिपरायणा हूँ, आप मुझसे किस प्रकार स्नेह कर सकते हैं? अतः चले जाओ। इस प्रकार दोषारोप और तिरस्कार कर पुनः असन्तुष्ट होकर कहने लगीं—हे केशव! चले जाओ! प्रशस्त हैं केश जिसके, उसमें अनुरक्त रहने वाले—यह 'केशव' शब्दकी व्युत्पत्ति होती है। आप किसी केशसंस्कारवती स्वैरिणीमें रत रहें—यहाँ 'केशव' शब्दमें व्यङ्ग है। अतः हे केशव अर्थात् हे बहुबल्लभ! मुझ एक-परायणासे इस कैतववादसे क्या प्रयोजन—छल-वाक्य मत बोलो। मुझ दुःखीमें रोष क्यों है, यदि यह आशङ्का करते हो, तो सुनो—ऐसा नहीं है। हे सरसीसहलोचन! अर्थात् कुमुदलोचन जो तुम्हारा विषाद हर लेती है, उसी (प्रिया, बहुबल्लभ) का अनुसरण करो। अनुरूपका अनुरूपामें ही

अनुरूप प्रेम होता है। श्लोकमें 'सरसीरुहलोचन' शब्द कहा गया है। सरसीरुह शब्द 'कमल' एवं 'कुमुद' दोनोंका समान रूपसे वाचक है। श्रीकृष्णका कमललोचनत्व प्रख्यात है, किन्तु श्रीराधाको तो यहाँ सरसीरुह शब्दसे कुमुद रूपी अर्थ ही अभिप्रेत है। कुमुद रात्रिभर विकसित रहता है और दिवसको देखकर मुकुलित हो जाता है। श्रीकृष्ण भी चन्द्रवंशी हैं, अतः रात किसी नायिकाके साथ चन्द्रमाके समान ही जागकर बितायी है। पुनः श्रीराधा श्रीकृष्णसे कहती हैं—तुम्हारी आँखोंमें अनुराग अभी भी दिखायी दे रहा है, रागकी लालिमारूपी दोष अभी भी विद्यमान है, तत्कालीन उदित शृङ्गार रसका अनुरागमय अभिनिवेश अभी भी आँखोंमें लक्षित हो रहा है। जैसा चित्त वैसी चतुराई।

उन तीन सम्बोधनोंकी व्याख्या इस प्रकार भी होती है—

माधव—आप हमारे 'धव' अर्थात् पति नहीं हैं, पति होते तो क्या वञ्चना करते। यथार्थमें 'मा' अर्थात् श्रीराधा और 'धव' उनके प्राणप्रियतम हैं।

केशव—जो प्रकृष्ट वेश-भूषाको धारण करते हैं, सदा ही जिनके केश मुक्त हैं।

सरसीरुहलोचन—सदा आनन्दमें डूबे हुए होनेके कारण अर्द्धनिमीलित नेत्रवाले हैं।

हाय! रातभर जिसने करुणा बरसाई है, उसीके पास जाओ।

यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—मैं तुमसे एक प्राण और एक शरीर हूँ। राधे! मैं सच कहता हूँ कि मैंने किसी दूसरी स्त्रीका सङ्ग नहीं किया, मेरी आँखें हैं ही लाल रङ्गकी, किसी अङ्गनाके साथ जागरणके कारण नहीं, अलसतासे आँखें मुँद रही हैं॥१॥

कज्जल–मलिन–विलोचन–चुम्बन–विरचित–नीलिम–रूपम्।
दशन–वसनमरुणं तव कृष्ण! तनोति तनोरनुरूपम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥२॥

अन्वय—[त्वच्चिन्तयैव जागरान्नेत्रे मे रागः, नतू अन्यस्या रतिरागादितिचेत् तत्राह]—हे कृष्ण, कज्जल–मलिन–विलोचन–चुम्बन–विरचित–नीलिमरूपम् (कज्जलेन मलिनयोः विलोचनयोः नेत्रयोः तस्या इति शेषः, चुम्बनेन विरचितं नीलिमरूपं यत्र तादृशं) तव अरुणं (सहजलोहितं) दशनवसनं (अधरः) [अधुना] तनोः (तव शरीरस्य) अनुरूपं (सदृशरूपं श्यामतामित्यर्थः) तनोति (व्यनक्ति) [हरि हरि याहि माधव याहीत्यादि सर्वत्र योजनीयम्]॥२॥

अनुवाद—आपकी दशन–पंक्तिके–वसन स्वरूप अरुण वर्णके सुन्दर अधर ब्रजयुवतियोंके काजलसे अञ्जित नयनोंके चुम्बन करनेसे कृष्णवर्ण होकर आपके शरीरके अनुरूप ही कृष्णताको प्राप्त हो रहे हैं।

पद्यानुवाद—

उसकी कजरारी आँखोंके चुम्बनसे हैं काले।
अरुण अधर ये छली! तुम्हारे, दीख रहे मतवाले॥

बालबोधिनी—श्रीराधा अपने अन्तरमें खण्डिताका आरोप करके बड़े मर्मभेदी व्यङ्ग्वाणोंसे माधवको भेदने लगती हैं—कृष्ण! कपटताकी आवश्यकता नहीं है। यदि तुम यह कहते हो कि दूसरी किसी भी रमणीके साथ मैंने रात नहीं बितायी है तो ये आँखें इतनी लाल–लाल क्यों हो रही हैं? उसी अनुरागिणीके प्रति अभी भी तुम्हारा प्रेम तुम्हारी आँखोंमें झलक रहा है। श्रीकृष्ण कहने लगे—प्रिये! मैं सच कहता हूँ कि मैंने किसी भी रमणीके साथ रात्रि जागरण नहीं किया, अलसताके कारण मेरी आँखें बन्द हो रही हैं। श्रीराधा कहने लगीं—पुनः यह तुम्हारे लाल अधर काले क्यों हो रहे हैं? तुम्हारे शरीरके अनुरूप रातभर उसकी काजल–अँजी

आँखोंका तुमने चुम्बन किया है। जाओ, उसीके पास जाओ, जिसने तुम्हारी आँखोंको रङ्गा है, इन होठोंको रंगा है, रातभर अपनी करुणा बरसायी है, मुझसे झूठी बातें मत करो, जाओ! रति रसावेशमें संयुक्त हुए आपके आरक्त नयन उस व्रजसुन्दरीके प्रति प्रबल अनुराग रूप रंगसे रंजित होकर प्रकाशित हो रहे हैं।

वपुरनुहरति तव स्मर–सङ्गर–खरनखरक्षत–रेखम्।
रकत–शकल–कलित–कलधौत–लिपेरिव रति–जयलेखम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥३॥

अन्वय—[त्वच्चिन्ताशोकेन मलिनोऽयमधरो नतु अन्यनारीनेत्र–चुम्बनादित्याह]—स्मर–सङ्गर–खर–नखर–क्षतरेखं (स्मरसङ्गरे मन्मथयुद्धे खरैः तीक्ष्णैः बाणैरिव नखरैः क्षतान्येव रेखाः यस्मिन् तत्) तव वपुः (शरीरं) मरकत–शकल–कलित–कलधौत–लिपेरिव (मरकतशकले नीलमणिखण्डे कलिता अर्पिता या कलधौतस्य सुवर्णस्य लिपिः अक्षरविन्यासः तस्या इव) रतिजयलेखं (रतेः जयलेखम् विजयपत्रम्) अनुहरति (सदृशीकरोति) [वपुषः कृष्णत्वात् नखक्षतस्य रक्तत्वाच्च मरकतार्पितलिपेः साम्यम्]॥३॥

अनुवाद—आपका यह श्यामल शरीर कामकेलिके समय रतिरणनिपुणा कामिनीके प्रखर नखोंसे रेखाङ्कित हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है, मानो मरकतमणिरूपी दीवार पर स्वर्णलिपिसे रति–जय–लेख अंकित कर दिया हो।

पद्यानुवाद—

स्मर–संगर–खर नख–क्षत–रेखा अंकित वपु पर ऐसे।
नील पटल पर रति–जय लेखा, स्वर्ण–लिखित हो जैसे॥
हे माधव! हे कमल–विलोचन! वनमाली! रसभीने!
अपनी व्यथा–हारिणीके ढिग जाओ हे परलीने!

बालबोधिनी—श्रीराधा कहती हैं—हे कृष्ण! तुम्हारा अंग–अंग तुम्हारी काम–केलिकी कहानी कह रहा है। उस रमणीने

आपके वक्षःस्थल पर तीक्ष्ण नखक्षत किया है—ऐसा लग रहा है कि तुम्हारा हृदय रणभूमि है, यहाँ विकट युद्ध हुआ है। नीलवर्ण आपके वपुपर उस रमणीके द्वारा किये गये नख-क्षतोंकी लालिमामयी तीक्ष्ण रेखाएँ ऐसी प्रतीत हो रही हैं, मानो मरकतमणिकी नीली शिलापर स्वर्ण-मसिसे लिखी हुई लिपि हो, रतिजयपत्री हो। यह जय-लेख अपना विजय-सन्देश कह रहा है। कामीके प्रति कामिनीका भेजा गया यह केलिलेख—'मैंने रतिक्रीड़ामें इसे सम्पूर्णरूपेण जीत लिया है। कामिनीके द्वारा दूतरूपमें भेजे जानेके कारण 'अधमत्व' ही व्यंग्यार्थसे सूचित हो रहा है। 'खर' शब्दसे श्रीराधाका विशेष अभिप्राय है—एक तो इससे विलासभङ्गता सूचित होती है, दूसरे नख-आघात-क्षत ऐसे होने चाहिए, जिसमें तीक्ष्णता न हो, अपितु मृदुता हो। तीक्ष्णता तो कष्टदायिनी होती है। लगता है उस रमणीको रतिविलासका ज्ञान है ही नहीं। तुम जाओ! श्रीकृष्णने उत्तर दिया—राधे! मैं तुम्हें कंटकाकीर्ण वनोंमें खोज रहा था, वहीं काँटोंसे मेरा शरीर क्षतविक्षत हो गया है, ये किसी रमणीके नख-क्षत नहीं हैं।

चरणकमल-गलदलक्तक-सिक्तमिदं तव हृदयमुदारम्।
दर्शयतीव बहिर्मदन-द्रुम-नव-किसलय-परिवारम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥४॥

अन्वय—[तवान्वेषणे भ्रमणात् वने ममेदं वपुः कण्टकैः क्षतं नतु नखक्षतानीमानीति चेत् तन्न]—इदं तव उदारं (मनोहरं) हृदयं [तस्याः] [प्रेमोल्लासतः] चरण-कमल-गलदलक्तक -सिक्तं (चरण-कमलाभ्यां गलता स्रवता अलक्तकेन सिक्तम्); [अतएव] मदनद्रुम-नव-किशलय-परिवारं (मदनद्रुमस्य हृदयस्थस्य कामवृक्षस्य नवकिशलय-परिवारं बालपल्लवसमूहं) [हृदयात्] बहिः दर्शयतीव (प्रकटयतीव)॥४॥

अनुवाद—आपके प्रशस्त हृदयपर वराङ्गनाके चरण-कमलोंके

अलक्तक रससे रञ्जित लोहित वर्ण चिह्न ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानो आपके अन्तःकरणमें अवस्थित बद्धमूल मदन-वृक्षके अरुण-वर्ण नूतन पल्लव बाहर अभिव्यक्त हो रहे हैं।

पद्यानुवाद—

कमल चरणके स्रवित अलकासे उर भीगा (क्या सीखे)?
अन्तरका स्मर-तरु-किसलय सा छाया बाहर दीखे॥

बालबोधिनी—श्रीराधा व्यंग्यपूर्वक श्रीकृष्णसे कहती हैं—अहो, आपका हृदय अति उदार है—कैसा मनोहर स्वरूप धारण किया है! आपने तो अति प्रेमोल्लाससे औदार्यको अभिव्यक्त करते हुए उस कामिनीके चरणकमलोंको ही हृदयमें धारण कर लिया है। उसके चरणोंसे स्रवित आलता-रसका लाल रंग आपके वक्षःस्थलको रञ्जित कर रहा है। श्याम-वर्ण पर जावक-रसका लाल-वर्ण तुम्हारी शोभाको और भी अभिवृद्धि कर रहा है। ऐसा लगता है, तुम्हारा हृदयस्थित अनुराग ही कामतरुके नव-नव किसलयोंकी भाँति लाल वर्णके रूपमें बाहर प्रकाशित हो रहा है। तुम्हारे हृदयमें विद्यमान कामवृक्षके नवीन पल्लव बाहर निकल रहे हैं। यह तुम्हारे अन्तःकरणका निषिद्ध प्रेमव्यापार मदन-वृक्षके रूपमें तुम्हारी हृदयस्थली पर उग आया है। इन चरण-चिह्नोंके रूपमें इस वृक्षके नये-नये लाल-लाल पल्लव दिखायी दे रहे हैं। तुम उस अनुरागको छिपा नहीं पा रहे हो। तुम्हारे लिए यहाँ कुछ नहीं है, जाओ!

कुछ टीकाकारोंके मतानुसार इस कथनके द्वारा श्रीराधाका अभिप्राय यह है कि श्रीकृष्ण द्वारा उस नायिकाके साथ क्रोध नामक बन्धविशेषसे रमण किया गया है।

श्रीकृष्णने अपनी निर्मलता प्रस्तुत करते हुए कहा—यह तो गैरिकादि धातुओंका चित्रचिह्न है, मैंने किसी भी अङ्गनाके चरणकमलोंको धारण नहीं किया, न ही किसीके महावरको हृदयमें लगाया है।

दशन–पदं भवदधर–गतं मम जनयति चेतसि खेदम्।
कथयति कथमधुनापि मया सह तव वपुरेतदभेदम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥५॥

अन्वय—[गैरिकचित्रितमेतत् नान्याङ्गना–चरणालक्तक–सिक्तमितिचेत् तत्राह]—एतत् (प्रत्यक्षदृष्टं) तव वपुः (शरीरं) अधुनापि (एवं भावान्तरमापतितेऽपि) मया सह अभेदं (ऐक्यं; नावयोर्भेद इति) कथं कथयति (सूचयति); (तस्याः तत्कथनप्रकारमाह; यतः] भवदधरगतं दशनपदं (दन्तक्षतं) मम चेतसि खेदं जनयति [व्यङ्गोक्तिरियम्; त्वदधरस्थितस्य मच्चित्तव्यथाजनकत्वात् अभेदो ज्ञायते; नयनरागादिकं छद्मना आच्छादितम् इदन्तु उदितचन्द्र कलावत् प्रकाशमानमिति भावः]॥५॥

अनुवाद—उस विलासिनीके दन्त आघातसे आपके अधर क्षत–विक्षत हो रहे हैं, जिन्हें देख मेरे अन्तःकरणमें खेद उत्पन्न होता है और अब भी, आप कहते हैं कि तुम्हारा शरीर मुझसे पृथक् नहीं है, अभिन्न है।

पद्यानुवाद—

लख अधरों पर दन्तक्षतोंको छिद जाता जी मेरा।
फिर भी क्यों कोई कहता है, 'राधे! है हरि तेरा॥'
हे माधव! हे कमल–विलोचन! वनमाली! रसभीने!
अपनी व्यथाहारिणीके ठिग जाओ हे परलीने!!

बालबोधिनी—हे कृष्ण! नयन राग इत्यादिको तुम छल–छद्म वाक्योंसे आच्छादित कर सकते हो, परन्तु उस विलासिनीके दाँतोंसे क्षत–विक्षत अधर–पल्लवको कैसे छुपा पाओगे जो चन्द्रकलाकी भाँति प्रकाशित हो रहा है? तुम्हारी यह निर्लज्ज हँसी मेरे चित्तमें दाह पैदा करती है, सुरतकालमें तुम्हारे होठों पर उस रमणीके 'दशन' की छाप मुझमें खेद उत्पन्न कर रही है, विरहके कारण मेरी दशा दशमी स्थिति तक पहुँच गयी है। बार–बार यही कहते हो—हम–तुम एक

हैं—पर इस स्थितिमें तुम अभेद कैसे अभिव्यक्त कर सकते हो—तुम चले जाओ।

श्रीकृष्णने सफाई दी—प्रिये! यह तो सौरभलुब्ध भ्रमरोंके द्वारा दंशन कर लिये जानेसे ही मेरे अधर क्षत हो रहे हैं, इन अधरों पर किसी रमणीका दंशन नहीं है।

बहिरिव मलिनतरं तव कृष्ण मनोऽपि भविष्यति नूनम्।
कथमथ वञ्चयसे जनमनुगतमसमशरज्वरदूनम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥६॥

अन्वय—[सौरभलुब्धभ्रमरेण दृष्टोऽयमधरो नतु अन्यनायिका-चुम्बनादितिचेत्, तदपि न]—हे कृष्ण तव [मलिनात्मकं] मनः अपि बहिरिव बाह्यं शरीरमिव) नूनं (निश्चितं) मलिनतरं (कृष्णं) भविष्यति। अथ (अन्यथा) अनुगतं (त्वदेकायत्तं) असम-शर-ज्वरदूनं (असमशरस्य कामस्य ज्वरेण दूनं सन्तप्तं) [मां] कथं वञ्चयसे (प्रतारयसि) (शुद्धान्तःकरणस्य नेयं रीतिरित्यर्थः] ॥६॥

अनुवाद—हे कृष्ण! जैसे तुम्हारा शरीर मलिन है, वैसे ही तुम्हारा मन भी अवश्य ही मलिन हो गया होगा। यदि ऐसा न होता तो मदन-शरसे जर्जरित अपने अनुगत (आश्रित) जनकी इस प्रकार वञ्चना न करते।

पद्यानुवाद—

मन भी तन सा कृष्ण! तुम्हारा बना हुआ है काला।
अपनी जान जलाते रहते (पड़ा निठुरसे पाला)॥

बालबोधिनी—श्रीराधा खेदको प्राप्त होकर श्रीकृष्णसे कहती हैं—हे कृष्ण! बाहरसे तुम जितने काले हो, अन्दरसे तुम उससे भी अधिक काले हो। स्वभावतः उदार एवं उज्ज्वल मन मेरे प्रति इतनी उदासीनता कैसे बरत सकता है? अपने ही अनुकूल, अपने ही आश्रितजनके साथ इतना छल, मेरी उपेक्षा कर परायी रमणीके साथ विलास, जो

मलिन-मन होता है, वही अपने आश्रित व्यक्तिके साथ छल कर सकता है। मैं तो पहलेसे ही काम-शरोंसे पीड़िता हूँ, कमसे कम इस स्थितिमें तो धोखा नहीं देना चाहिए। जाओ छलिया! तुम यहाँसे चले जाओ। कोई शुद्ध अन्तःकरण वाला व्यक्ति ऐसा कभी नहीं कर सकता।

श्रीकृष्णने कहा—राधे! मुझपर व्यर्थ ही शंका मत करो, मैं कभी भी तुम्हारी वञ्चना नहीं कर सकता हूँ।

भ्रमति भवानवला-कवलाय वनेषु किमत्र विचित्रम्।
प्रथयति पूतनिकैव वधू-वध-निर्दय-बाल-चरित्रम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥७॥

अन्वय—[न वञ्चयाम्यहं त्वमेव मुधा शङ्कसे इत्यत आह]—भवान् अवला-कवलाय (अवलानां कवलाय ग्रासाय कान्तावाधायेति यावत्) वनेषु भ्रमति अत्र [विषये] किं विचित्रं [न किमपीत्यर्थः]; [अत्र उदाहरणमाह]—पूतनिका (पूतना) एव वधु-वध-निर्दय-बालचरित्रं (वधुवधे नारीहत्यायां निर्दयं बालचरित्रं) [कियत्] प्रथयति (विस्तारयति) [नतु सर्वमित्यर्थः]; [बाल्ये चेदेवं कैशोरे किमत्र विचित्रमिति भावः]॥७॥

अनुवाद—आप अबलाओंका बध करनेके लिए ही वन-वनमें भ्रमण कर रहे हो, इसमें आश्चर्य ही क्या है! बाल्य-चरित्रमें ही आपने पूतनाका वध करके अपने निर्दय निष्ठुर स्वभावका परिचय दिया है, नारीबधपरायणता तो आपके चरित्रमें है ही।

पद्यानुवाद—

अबला-वधकी साध लिये, तुम वन वन डोल रहे हो।
बालचरितका प्रथम पृष्ठ क्या फिरसे खोल रहे हो?॥
हे माधव! हे कमल-विलोचन! वनमाली! रसभीने!
अपनी व्यथाहारिणीके ढिग जाओ हे परलीने!॥

बालबोधिनी—पुनः श्रीराधाने कहा—यह तो आपकी स्वभावसिद्धता ही है कि वनोंमें आप अबलाओंको 'ग्रसने'

के लिए, उनका बध करनके लिए ही घूमते हैं, मेरा भी बध कर रहे हो तो इसमें वैचित्र्य ही क्या है? आपने तो अपने बाल्यकालमें ही कंस-भगिनी, युद्धप्रिया पूतनाका बधकर ख्याति पायी है, तो मेरी जैसी अबलाका बध करना तो कितना आसान है। जब ऐसी प्रबला आपके द्वारा कालकवलित हो गयी, तो मेरी जैसी अबलाका बध करनेमें आश्चर्य ही क्या है? शास्त्रोंमें स्त्री-बध निषिद्ध कहा गया है, निन्दनीय माना गया है, पर आपकी यह नृशंसता तो जन्मसिद्ध ही है। कृपाकर चले जाओ। अब तो आप युवक हैं, ऐसी स्थितिमें मुझ जैसी स्त्रीका बध करनेमें आपको कोई प्रयास भी नहीं करना पड़ेगा। हे निष्ठुर! अब रहने भी दो।

श्रीजयदेव-भणित-रति-वञ्चित-खण्डित-युवति-विलापम्।
शृणुत सुधा-मधुरं विबुधा! विबुधा लयतोऽपि दुरापम्॥
हरि हरि याहि माधव..... ॥८॥

अन्वय—हे विवुधाः (श्रीकृष्णमधुरलीलास्वादचतुराः; देवा वा) सुधामधुरं (सुधायाः अपि मधुरं) [अतएव] विवुधालयतोऽपि (स्वर्गादपि; अत्र सप्तम्यास्तसिः) दुरापं (दुर्लभं) [श्रीराधाकृष्णो-पासनालभ्यत्वात्; तत्रेदं नास्तीति भावः] श्रीजयदेव-भणित-रतिवञ्चितखण्डित-युवति-विलापं (श्रीजयदेवेन भणितम् उक्तं रतिवञ्चितायाः खण्डितायाः युवत्याः श्रीराधायाः विलापं) शृणुत। (आकर्णयत) ॥८॥

अनुवाद—हे विद्वानों! श्रीजयदेव कवि द्वारा विरचित खण्डिता, रतिवञ्चिता युवती श्रीराधाका अमृतसे भी अधिक सुमधुर एवं सुरलोकमें भी सुदुर्लभ विलापका श्रवण करें।

पद्यानुवाद—

जयदेव कथित रति-वंचित खंडित युवती जनका—
विलाप है, छू लेता जो अन्तर भावुक मनका॥

बालबोधिनी—यहाँ कवि श्रीजयदेवने विद्वानों अथवा देवताओंको सम्बोधित करते हुए कहा है—हे विद्वानों! अभिलषणीय रतिसे वञ्चित खण्डिता युवतीके विलापको सुनो, यह विलाप अमृतसे भी अधिक मधुर है। श्रीकृष्णके द्वारा उपेक्षिता श्रीराधा रति-क्रीड़ासे वञ्चित हुई हैं, अतः अपने प्रियतमकी विरह-वेदनामें जो वह विलाप कर रही हैं, उस सुधाका रसास्वादन देवलोकमें कदापि संभव नहीं है। देवलोकमें सर्वाधिक सुमधुर वस्तु अमृत है, पर श्रीराधाके विलापकी तुलनामें वह अमृत नगण्य है, इसे तो मनुष्य-तनसे इस भौम जगतमें ही प्राप्त किया जा सकता है। अतः जो विद्वान अमृत-प्राप्तिके लिए, सुरतकी उपलब्धिके लिए लालायित रहते हैं, उन्हें इस अतुलनीय भौम-सुधाका पान अवश्य ही करना चाहिए।

प्रस्तुत प्रबन्धकी नायिका श्रीराधा खण्डिता है, जिसका लक्षण है—

निद्रा-कषाय-मुकुलीकृत-ताम्रनेत्रो
नारी-नखव्रणविशेष-विचित्रताङ्गः ।
यस्याः कुतोऽपि पतिरेति गृहं प्रभाते
सा खण्डेति कथिताकविभिः पुराणैः ॥

अर्थात् निशा जागरणके कारण रातमें जिसकी निद्रा पूरी न हो सकी, वह लाल नेत्रोंवाला, अन्य रमणीके नख-क्षतोंके चिह्नोंसे विशेष विचित्र अङ्गोंवाला, किसी नायिकाका पति (प्रियतम) कहींसे प्रातःकाल जब गृहमें प्रवेश करता है, उस नायिकाको कवियोंने खण्डिता कहा है।

इस गीतगोविन्द काव्यके सत्रहवें प्रबन्धका नाम 'लक्ष्मीपति-रत्नावली' है। इसमें मेघराग है, विप्रलम्भ नामका शृङ्गार और करुण रस है।

तवेदं पश्यन्त्याः प्रसरदनुरागं बहिरिव।
प्रिया-पाद-लक्त-च्छुरितमरुणद्योति-हृदयम् ॥

ममाद्य प्रख्यातप्रणयभरभङ्गेन कितव।
त्वदालोकः शोकादपि किमपि लज्जां जनयति॥१॥

अन्वय—हे कितव (धूर्त्त) प्रियापादालक्तच्छुरितं (प्रियायाः तस्याः नायिकायाः पादालक्तेन चरणालक्तक-रसेन च्छुरितं व्याप्तं) [सुतरां] अरुणद्योति (अरुणं द्योतयतीति अरुणकान्ति) (अतएव) बहिः प्रसरदनुरागमिव (प्रसरन् प्रवृद्धिं गच्छन् अनुरागः यस्मात् तथाभूतमिव) [तव अनुरागो हृदयं भित्त्वा बहिर्विनिर्गत इव इति भावार्थः] तव हृदयं पश्यन्त्याः [तवागमन प्रतीक्षमाणायाः] मम अद्य त्वदालोकः (तव दर्शनं) प्रख्यात-प्रणयभरभङ्गेन (प्रख्यातस्य प्रसिद्धस्य प्रणयस्य यः भरः आतिशय्यं तस्य भङ्गस्तेन हेतुना) शोकादपि (त्वद्वियोगदुःखादपि) किमपि (अनिर्वचनीयां जीवन-मरणयोः सन्देहापादिकां) लज्जां जनयति॥१॥

अनुवाद—हे शठ! आज प्रिय व्रजाङ्गनाके चरणोंके अलक्तक रसमें रञ्जित आपका अरुण द्युतिसे युक्त हृदय आपके हृदयस्थित प्रबल अनुरागको बाहर प्रकट कर रहा है, जिसे देखकर आपका मेरा चिर-प्रसिद्ध प्रणय विच्छेदित हो रहा है। इससे मेरे चित्तमें शोककी अपेक्षा लज्जा ही अधिक उद्भूत हो रही है।

पद्यानुवाद—

देख तुम्हारे उर पर 'उसके' चरण-कमलकी छाया।
भीतरका ही प्रेम-भाव ज्यों बाहर होकर आया।
हुआ न मुझको शोक, हुई मैं लज्जासे अति नीचे
मेरे रहते कौन सुहागिनि मेरे पियको खींचे॥

बालबोधिनी—अब खण्डिता होने पर भी राधिका प्रौढ़त्वका आलम्बन करके श्रीकृष्णपर आक्षेप करती हुई कहती है—हे कितव! हे कपटी! तुम्हारा अवलोकन न करने पर तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा करते-करते मेरे सुविख्यात प्रणयका अब विच्छेद होने जा रहा है। तुम्हारा विच्छेदजनित दुःख भी मुझे अनिर्वचनीय जैसा ही हो रहा है, कैसे कहूँ, जीवन-मरणका

प्रश्न-सा लग गया है, कैसा संकट उपस्थित हुआ है, न जी पा रही हूँ, न मर पा रही हूँ। हे धूर्त! तुम्हें इस दशामें देखकर मुझे शोक भी उतना नहीं होता, जितनी कि लज्जा अनुभूत होती है। आपने जिस कामिनीके साथ रमण किया, उसके चरणोंको अपने वक्षःस्थल पर धारण किया, उसके पैरोंकी महावरसे आपका वक्षःस्थल राग-रञ्जित हो गया है। इस अरुणोदय कालमें सन्ध्याकालीन अरुण-द्युतिको देखकर ऐसा लग रहा है कि जो अनुराग आपने अपने हृदयमें वहन किया था, वह आज बाहर प्रकट हो गया है। जहाँ आप कौस्तुभमणि धारण किया करते थे, वहाँ उस प्रेयसी उपभोग चिह्नोंको देखकर मैं लज्जासे गढ़ी जा रही हूँ। जिस अनन्य प्रणयके अपार गर्वसे मैं अमर्यादित रूपसे आह्लादित हुआ करती थी, आपने अपने इस गर्हित आचरणसे उस प्रेमका सूत्र ही तोड़ दिया, उसका उपभोग करके आपको लज्जा भी नहीं आती। धन्य हो कृष्ण! चले जाओ! हे छलिया! मैंने तुमसे ही क्यों प्रीति की?

प्रस्तुत श्लोकमें शिखरिणी छन्द है।

अग्रिम श्लोकमें श्रीकृष्णने विचार किया—इतना प्रयत्न करके भी श्रीराधाके अत्यन्त प्रगाढ़ मानका निर्बन्ध दूर नहीं हो रहा है। अतः अब बंशी दूतीकी सहायता लेनी पड़ेगी। दूसरा कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, बंशी-ध्वनिसे राधिकाका मान अवश्य ही दूर होगा—ऐसा विचारकर कवि जयदेव बंशीध्वनिके द्वारा आशीर्वादका विस्तार कर रहे हैं।

अन्तर्मोहन-मौलि-घूर्णन-चलन्मन्दार-विस्रंशन
स्तब्धाकर्षण-दृष्टिहर्षण-महामन्त्रः कुरङ्गीदृशाम्।
दृप्यद्दानव-दूयमान-दिविषद्-दुर्वार-दुःखापदां
भ्रंशः कंसरिपोहव्यापोयतु वः श्रेयांसि वंशीरवः॥२॥

इति सप्तदश सन्दर्भः।

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये खण्डितावर्णने विलक्ष-लक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः।

अन्वय—[अथ वंशीरवश्रवणेन श्रीराधिकायाः अतिगाढ़ोऽपि मानः अपयास्यतीति कविः वंशीध्वनिं वर्णयन् आशिषमातनोति]—कुरङ्गी-दृशाम् (मृगलोचनानाम्) अन्तर्मोहन-मौलि-घूर्णन-चलन्मन्दार-विस्रंसन-स्तब्धाकर्षण-दृष्टि-हर्षण-महामन्त्रः (अन्तर्मोहने मनोमोहने मौलि-घूर्णने साधु साधु इति शिरःकम्पने चलतां मन्दाराणां देवतरु-कुसुमानां विस्रंसने तथा स्तब्धे स्तम्भे, आकर्षणे, तथा दृष्टिहर्षणे वशीकरणे महामन्त्रः) [तथा] दृप्यद्दानवदूयमान-दिविषद्-दुर्वार-दुःखापदां (दृप्यद्भिः दर्पपूर्णैः दानवैः दूयमानानां पीड्यमानानां दिविषदां देवानां दुर्वाराणां दुःखापदाम् अनिवार्यदुःखपङ्क्तिनां) भ्रंशः (ध्वंसः नाशक इत्यर्थः) [वंशीरव-श्रवणमात्रेणैव देवाः दैत्यभयात् मुच्यन्ते इति भावः] कंसरिपोः (श्रीकृष्णस्य) वंशीरवः वः (युष्माकं) श्रेयांसि (शुभानि) व्यपोहयतु (विगतविघ्नानि करोतु) [अतएव विलक्षो गाढ़मानविलोकाद् विस्मयान्वितो लक्ष्मीपतिः श्रीराधापतिर्यत्र सः इति अष्टमः सर्गः]॥२॥

अनुवाद—गोपियोंके अन्तःकरणको मोहनेवाली, मौलिस्थित मणिमय किरीटोंको घूर्णित करनेवाली, चञ्चल मनोहर पुष्पोंको विभ्रंशित करनेवाली, दृप्त दानवोंके द्वारा विदलित देवताओंके दुर्निवार दुःखको दूर करनेवाली, कुरङ्गीनयनाओंके लिए स्तम्भन, आकर्षण एवं नेत्रोंके हर्षकी अभिवृद्धि करनेवाली वंशीध्वनि आप सबके मङ्गलमय मार्गके विघ्नोंका नाश करे।

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोक द्वारा इस सर्गके अन्तमें श्रीजयदेव कवि अपने पाठकों एवं श्रोताओंके लिए मङ्गलाचरणरूप आशीर्वाद प्रदान करते हुए कहते हैं—कंसारि श्रीकृष्णका वंशीरव कल्याणका विस्तार करे। वह वंशीध्वनि दर्पीले दानवोंके कारण देवताओंको होनेवाले असह्य कष्टको दूर करनेवाली है, कुरङ्गीनयनाओंके अन्तःकरणको इस प्रकार मोहित करती है कि वे आनन्दमें निमग्न हो शिरश्चालन करने लगती हैं और घूर्णित-मौलि (मस्तक) हो

जाती हैं, वे मुग्ध होकर अवलोकन किया करती हैं, स्वर्गलोककी अप्सराओंकी मन्दार पुष्पकी माला इस वंशीध्वनिसे भ्रंशित होने लगती है, टूटने लगती है—इस प्रकार श्रीकृष्णकी वंशीध्वनिका 'वशीकारत्व' बताया है। वशीकृत देवता साधु-साधु कहकर शिरोधूननके द्वारा प्रशंसा करते हैं। शिरोधूनन एवं मन्दारके विभ्रंशनसे वंशीका 'मारण' अभिलक्षित है। स्तम्भत्व एवं आकर्षणत्व तो सिद्ध ही है। वंशीध्वनिको सुनकर व्रज-कुरङ्गनाएँ हिरणियाँ आकर्षित हो स्तम्भित रह जाती हैं। उच्चाटन तो वंशीरवमें प्रमाणित ही है। अन्तःकरणोंका मोहित हो जाना मोहनत्व है। इस प्रकार मोहनत्व, वशीकरणत्व, स्तम्भत्व, आकर्षणत्व, उच्चाटनत्व एवं मारणत्वके गुणोंसे युक्त होनेके कारण वंशीध्वनि महामंत्र स्वरूप है। इस महामन्त्रत्वका जादू गोपियोंसे विशेष रूपसे सम्बन्धित है।

श्रीकृष्ण श्रीराधाके प्रगाढ़ मानको दूर करनेके लिए षट्साधन सम्पन्न महामन्त्रस्वरूप वंशीध्वनि करने लगे।

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे खण्डितावर्णने
विलक्ष्यलक्ष्मीपतिर्नामाष्टमः सर्गः।

इस प्रकार श्रीजयदेव कवि प्रणीत गीतगोविन्द काव्यके खण्डिता नायिका वर्णन प्रसङ्गमें विलक्ष्यलक्ष्मीपति नामक आठवें सर्गकी बालबोधिनी व्याख्या समाप्त।

❂ ❂ ❂

नवमः सर्गः

(मुग्ध–मुकुन्दः)

तामथ मन्मथ–खिन्नां रति–रस–भिन्नां विषाद–सम्पन्नाम्।
अनुचिन्तित–हरि–चरितां कलहान्तरितामुवाच रहसि सखी॥१॥

अन्वय—अथ अनन्तरम्; (प्रणत्यापि मानानपगमात् श्रीकृष्णे अन्तर्हिते सति) सखी रहः (एकान्ते) कलहान्तरितां (कलहान्तरितावस्थां प्राप्तां) [अतएव] मन्मथखिन्नां (मन्मथेन मदनेन खिन्ना सन्तप्ता तां) रतिरसभिन्नां (रतिरसेन सुरतानन्देन भिन्ना खण्डिता ताम्) विषादसम्पन्नां (विषादेन चित्तक्लेशेन सम्पन्ना युक्ता ताम्) अनुचिन्तित–हरि–चरिताम् (अनुचिन्तितं पुनःपुनश्चिन्तितं हरेः चरितं चाटूक्ति–पाद–पतनादि यया तादृशीं) [अन्तरुत्सुकामपि बहिर्मानावगुण्ठितां] तां [श्रीराधाम्] उवाच॥ [कलहान्तरितालक्षणम्—चाटुकारमपि प्राणनाथं रोषादपास्य या। पश्चात्तापमवाप्नोति कलहान्तरिता तु सा॥ इति साहित्यदर्पणे॥१॥

अनुवाद—मदनबाणसे प्रपीड़िता, रतिवञ्चिता, विषादयुक्ता, कलहान्तरिता, शृङ्गार रससे युक्त श्रीहरिके चरित्रके विषयमें सतत चिन्तन करने वाली श्रीराधासे सखीने एकान्तमें कहा—

पद्यानुवाद—

मन्मथखिन्ने! रतिरसभिन्ने! शोक–विपन्ने राधे!।
हरि चिन्तन रत! सलिल नयनगत! बैठी हो चुप साधे॥
मानिनि! मत अब मान करो।

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णोक्त सभी वाक्योंका तिरस्कार करती हैं, उनके युक्तियुक्त वचनों एवं प्रणत–भाव–समुदायको छल चातुरी समझकर मन–ही–मन उनके व्यवहारकी समालोचना करती हैं। प्रणयकोपसे अनेक प्रकारके आक्षेप लगाती हैं। वे जितना भी प्रणत होते जाते हैं, उनका मान उतना ही बढ़ता जाता है, पुनः स्वकृत कलहको सोच–सोच कर

सन्तप्त होती हैं, उद्विग्न होती हैं, केवल हरिकी ही चिन्ता करती हैं—इस प्रकार श्रीराधाकी कलहान्तरितावस्थाकी पाँच विशेषताओंका वर्णन किया गया है—

मन्मथखिन्ना—कामकी उद्विग्नतासे श्रीराधाको अत्यधिक कष्टकी अनुभूति हो रही है।

रतिरसभिन्ना—काम-केलि रससे वञ्चित होनेके कारण विषादशालिनी हो रही हैं।

विषादसम्पन्नाम्—सम्भोगके प्रति अनुरक्ति होनेके कारण वे भावशबलताकी स्थिति तक पहुँच चुकी हैं।

अनुचिन्तितहरिचरितां—वे बार-बार श्रीकृष्णके चरित्रका ही चिन्तन कर रही थीं।

कलहान्तरिता—सखियोंके सामने अपने पैरों पर पड़ते हुए प्राणबल्लभको देखकर भी जो नायिका उन्हें बुरा-भला कहती है तथा निषेध करती है, उसे कलहान्तरिता नायिका कहते हैं। उसमें प्रलाप, सन्ताप, ग्लानि, दीर्घनिःश्वास आदि चेष्टाएँ लक्षित होनेके कारण उसे कलहान्तरिता कहा जाता है। कलहान्तरिता नायिकाका लक्षण यह है—

प्राणेश्वरं प्रणयकोपविशेष-भीतं या
चाटुकारमवधीर्य विशेषवाग्मिः।
सन्तप्यते मदनवह्निशिखासमूहैर्वाष्पकुलेह
कलहान्तरिता हिसा स्यात्॥

अथ अष्टादशः सन्दर्भः।

गीतम् ॥१८॥

गुर्जरीराग-यतितालाभ्यां गीयते।

गीतगोविन्द काव्यका प्रस्तुत अठारहवाँ प्रबन्ध गुर्जरी राग तथा यति तालके द्वारा गाया जाता है।

''मानिनि! मत अब मान करो।''

हरिरभिसरति वहति मधुपवने
किमपरमधिकसुखं सखि! भवने॥१॥
माधवे मा कुरु मानिनि। मानमये॥ध्रुवपदम्॥

अन्वय—अये मानिनी (मानवति राधे) मृदुपवने (मलयमारुते) बहति [सति] हरिः (कृष्णः) अभिसरति (सङ्केतस्थानमायाति); [तस्मात्] माधवे मानं मा कुरु (मधुवंशोद्भवे श्रिया महासम्पत्तेः पत्यौ चेति मानानर्हत्वादिति भावः) [कथं वञ्चकेऽस्मिन् मानो न विधेय इत्याह]—सखि भवने (कृष्णविहीने गृहे) अपरम् (अन्यत्) अधिकसुखं किम् [अस्ति] [माधवाभि-सरणादन्यत् सुखं नास्त्येवेति भावः]॥१॥

अनुवाद—हे मानिनि! देखो, इस समय मन्द-मन्द वासन्ती समीर प्रवाहित हो रहा है, श्रीकृष्ण अभिसारके लिए तुम्हारे सङ्केत भवनमें आ रहे हैं। हे सखि! इससे अधिक बढ़कर और सुख क्या हो सकता है?

पद्यानुवाद—

मन्द-मन्द मधु वायु विहरती,
लायी उसको यहाँ, सिहरती,
बैठी जिसका ध्यान धरो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—हे सखी! अब तुम्हें लक्ष्मीपति माधवसे मान नहीं करना चाहिए, वे मधुवंशमें उत्पन्न हुए हैं, महासम्पत्तिके अधिकारी हैं, फिर भी तुम्हें मना रहे हैं, मनाते चले जा रहे हैं—तुम मान करना छोड़ दो। वासन्ती बयार प्रवाहित हो रही है, हरि स्वयं तुम्हारे अभिसारके लिए आ रहे हैं—तुम्हारे ही भवनमें अर्थात् घरमें। इससे बढ़कर सुख और क्या हो सकता है? उनका आगमन सुखकी परावधि है—राधे! तुम उनका सम्मान करो।

ताल–फलादपि गुरुमतिसरसम्
किं विफली कुरुषे कुच–कलशम्?
माधवे..... ॥२॥

अन्वय—[सुखमस्तु तेन मम किम्? इति चेत् स्तनाभ्यां किमपराद्धमिति सोत्प्रासमाह]—तालफलात् अपि गुरुं (स्थौल्येन काठिन्येन वर्त्तुलत्वेन च तालफलादपि श्रेष्ठं) अतिसरसं (रसभरपूर्णं) कुचकलसं (स्तनकुम्भं) किमु (किमर्थं) विफलीकुरुषे (व्यर्थयसि) [तदनुभवं बिना अस्य विफलीकरणं न युक्तमित्यर्थः]॥२॥

अनुवाद—सुपक्व ताल–फलसे भी गुरुतर (भारी) एवं अति रसपूर्ण इन कुच–कलशोंको विफल क्यों कर रही हो?

पद्यानुवाद—

लज्जित ताल–फलोंकी गुरुता,
कुच–कलशोंकी अनुपम रसता,
रसमयि! रसका दान करो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—सखी कहती हैं कि हे राधे! तुम्हारे कुच–कलश ताल फलसे भी श्रेष्ठ हैं। रस–शास्त्रोंमें ताल–फलको अति गुरु एवं रसमय फल बताया गया है। अतः जिन कुच–कलशोंकी रसता एवं गुरुताके सम्मुख ताल फलका गुरुत्व एवं रसत्व भी निकृष्ट हो जाता है, उनकी सार्थकता तो हरिमें है, हरिके स्पर्शमें है, इन कलशोंका गुरुत्व उन्हींके लिए है और तुम उनका उद्देश्य ही नष्ट कर रही हो। स्तनोंकी विस्तृति अभिव्यक्त करनेके लिए ही उनकी तुलना कलशोंसे की गयी है। मान छोड़ दो एवं श्रीहरिको इस रस–विलासका अनुभव करने दो।

कति न कथितमिदमनुपदमचिरम्।
मा परिहर हरिमतिशय–रुचिरम्॥
माधवे... ॥३॥

अन्वय—[तदुपदेशं बिना इत्थं क्रियते इत्याह]—इदम् अनुपदम् (पदे पदे) अचिरम् (अधुनैव) कति (कतवारं) [मया] न कथितम्; [यत्] अतिशय-रुचिरं (अतिसुन्दरं) हरिं (मनोहरणशीलं) मा परिहर (मा त्याक्षीः)॥३॥

अनुवाद—मैं तुम्हें कितनी बार कह रही हूँ कि तुम निरतिशय सुन्दर मनोहर श्रीहरिका परित्याग मत करो।

पद्यानुवाद—

हरि-तन कलित ललित हियहारी,
भूलो मान, बनो बलिहारी,
विनती इतनी कान धरो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे राधे! मैं तुम्हें पुनः पुनः समझा रही हूँ कि तुम मान मत करो। श्रीहरि रूप-लावण्यमें सबसे सुन्दर हैं—तुम अपना मान छोड़कर उनका अभिसरण करो, अपना मनोभाव बदलो, श्रीहरि अतिशय रुचिर हैं, सबके मनको हर लेनेवाले हैं, उनका त्याग कभी भी उचित नहीं है।

किमिति विषीदसि रोदिषि विकला?
विहसति युवतिसभा तव सकला॥
माधवे... ॥४॥

अन्वय—[एतदाकर्ण्य साश्रुनेत्रां प्रत्याह]—विकला (व्याकुला) [सती] किमिति (किमर्थं) विषीदसि (विषण्णा भवसि) रोदिषि च [माविषीद मारोद इत्यर्थः]; [तव एवं व्याकुलतामवलोक्य] सकला (समग्रा) युवति सभा (प्रतिपक्ष-युवति-समूहः) विहसति (विशेषेण हसति)॥४॥

अनुवाद—तुम इतनी शोकविह्वल होकर क्यों रो रही हो? तुम्हारे विकलता-प्रदर्शक इन हाव भावोंको देखकर तुम्हारी प्रतिपक्षी युवतियाँ प्रमुदित हो रही हैं।

पद्यानुवाद—

सिसक सिसक रोती हो विकले,
तरुण सखी हँसती है, तरले।
क्यों झूठा अभिमान करो?
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—सखीकी बातोंको सुनकर श्रीराधा सिसक-सिसक कर रोती हैं, बिलखती हैं। तब सखी कहती है—हे राधे! इस समय तुम विषाद क्यों कर रही हो, क्यों बिलख रही हो? तुम्हारी प्रतिपक्षी युवतियाँ तुम्हारे इन हाव-भावोंको देखकर तुम्हारा उपहास कर रही हैं। कितनी नादान हो तुम, साक्षात् श्रीहरि तुम्हारे चरणोंमें लुण्ठन कर रहे हैं और तुम रोती ही जा रही हो।

सजल-नलिनीर्दल-शीलितशयने।
हरिमवलोकय सफलय नयने॥
माधवे... ॥५॥

अन्वय—[यथेयं युवतिसभा न विहसति तथोपदिश इत्याह]—सजल-नलिनी-दल-शीलित-शयने (सजलैः नलिनीदलैः शीलिते रचिते शयने शय्यायां) हरिम् अवलोकय; नयने (नेत्रे) सफलय (सफलीकुरु); [त्रिभुवननयनमहोत्सवावलोकनात् अन्यत् फलं नास्तीति भावः]॥५॥

अनुवाद—तुम सजल कमलके दलसे रचित शीतल शय्या पर श्रीकृष्णको प्रेमभरी दृष्टिसे अवलोकन कर नयन-युगलको सफल बनाओ।

पद्यानुवाद—

सजल कमल जल शीतल शयने—
प्रिय राजित हैं, कल चलनयने!
पूरे सब अरमान करो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कह रही है—हे राधे! देखो, इस अभिसरण-स्थल पर हीरक-हारोंसे युक्त शीतल कमल-पल्लवोंसे रची सेज पर श्रीहरि लेट गये हैं, तुम उनका अवलोकन करो जिनके लिए तरस रही हो, उनके साथ कैसा कलह? वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं, तुम मान ही नहीं छोड़ रही हो।

जनयसि मनसि किमिति गुरुखेदम्?
शृणु मम वचनमनीहित भेदम्॥
माधवे... ॥६॥

अन्वय—[एतदाकर्ण्य खिद्यन्तीं प्राह]—किमिति (कथं) मनसि (चित्ते) गुरुखेदं (महत् कष्टं) जनयसि (सहसे इत्यर्थः) [नैव विधेयम्]; अनीहितभेदं (अनीहितम् अचेष्टित-मनभिलषितमिति यावत् विरहदुःखं तस्य भेदो यस्मात् तादृशं; यथा युवयोः पुनरपि विरहो न भवेदेवम्भूवमित्यर्थः) मम वचनं शृणु [तथा सति पुनस्ते विरहदुःखं मा भवितेत्यर्थः]॥६॥

अनुवाद—तुम मन-ही-मन इतनी क्षुब्ध क्यों हो रही हो? मेरी बात सुनो, मैं बिना किसी भेदके तुमसे हितकी बात कहती हूँ।

पद्यानुवाद—

खेद-भारसे बोझिल मन क्यों?
काँप रहा है मृदु तन क्यों यों?

बालबोधिनी—सखीकी ये सब बात सुनकर भी श्रीराधा दुःखी हो रही थीं, तब सखीने पुनः कहा—हे प्रिय सखि! मनमें इतना द्वेष क्यों भरा हुआ है, क्यों व्यर्थकी आशंकाएँ तुम्हारे मनमें उठ रही हैं? इतना भारी दुःख क्यों कर रही हो—इस विदारक विरहसे तुम इच्छारहित चेष्टारहित अभिलाषारहित हो गई हो। देखो, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हारा अहित नहीं चाहती हूँ—यह समझ लो। तुममें और श्रीकृष्णमें किसी भी प्रकारका भेद नहीं है।

हरिरुपयातु वदतु बहु–मधुरम्।
किमिति करोषि हृदयमतिविधुरम्॥
माधवे... ॥७॥

अन्वय—[श्रोतव्यमेवाह]—हरिः उपयातु (समीपमागच्छतु) बहु मधुरं (चाटु) वदतु। किमिति (कथं) हृदयम् अतिविधुरं (व्याकुलं) करोषि? [श्रीहरेर्मधुरवचनेन मोदस्व चित्तं मा खेदय इत्यर्थः]॥७॥

अनुवाद—श्रीहरिको अपने निकट आने दो, सुमधुर बातें करने दो, क्यों हृदयको इतना अधिक दुःखी कर रही हो?

पद्यानुवाद—

जा बोलोंसे गान झरो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे प्रिय राधे, हरिको अपने समीप आने दो, उन्हें मधुर बातें कहने दो। उनसे तुम्हारा पृथक् रहना ठीक नहीं है। उनके चाटु वाक्योंसे स्वयंको आनन्दित कर, उन्हें भी आनन्द प्रदान करो। तुम्हारा हृदय उन्हींके लिए व्याकुल है, तुम अपने हृदयके विरुद्ध ऐसा क्यों करती हो? व्यर्थमें ही हृदयको अतिशय वञ्चित कर रही हो, इसी तरह मान करके अपने चित्तको सन्तप्त करना ठीक नहीं है, मान छोड़ दो।

श्रीजयदेव–भणितमति–ललितम् ।
सुखयतु रसिकजनं हरि–चरितम्॥
माधवे... ॥८॥

अन्वय—हरि चरितं (हरेः चरितं यत्र तत्) [अतः] अतिललितं (अतिमनोहरं) श्रीजयदेव–भणितं (श्रीजयदेवोक्तिः) रसिकजनं (श्रीकृष्णलीलारहस्यरसज्ञं भक्तजनं) सुखयतु (सुखी–करोतु)॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा विरचित अति सुललित श्रीकृष्ण–चरित–कथा रसिकजनोंका सुख–वर्द्धन करे।

पद्यानुवाद—

कवि जयदेव कथित यह वाणी।
रसिकजनोंको हो सुखदानी॥
रस परिपूरित प्राण करो।
मानिनि! मत अब मान करो॥

बालबोधिनी—गीतगोविन्द काव्यके इस अठारहवें प्रबन्धका नाम अमन्दमुकुन्द है। श्रीहरिकी प्रसन्नता एवं रसिक भगवद्भक्तोंकी प्रसन्नता ही इस गानका एकमात्र उद्देश्य और फल है। कवि जयदेव कह रहे हैं मैंने जो यह श्रीकृष्णका चरित वर्णन किया है, वह अति ललित है, यह रसिकोंके हृदयमें आनन्दका विधान करे।

स्निग्धे यत्परुषासि यत्प्रणमति–स्तब्धासि यद्रागिणि
द्वेषस्थासि यदुन्मुखे विमुखतां यातासि तस्मिन्–प्रिये।
तद्युक्तं विपरीतकारिणि तव श्रीखण्डचर्चा विषं
शीतांशुस्तपनो हिमं हुतवहः क्रीडामुदो यातनाः॥

अन्वय—[अथ तस्यां निरुत्तरायां राधायां सखी सेर्यमेवाह]— [राधे] तस्मिन् प्रिये (कृष्णे) स्निग्धे (स्नेहार्द्रे) [अपि] यत् परुषा (निष्ठुरा कटुभाषिणीत्यर्थः) [असि], प्रणमति (प्रणते) [अपि] यत् स्तब्धा (दण्डवत्स्थिता) असि, रागिणि (अनुरागवति) [अपि] यत् द्वेषस्था (विरक्ता) असि, उन्मुखे (त्वन्मुखाव-लोकनोत्सुके) अपि विमुखतां (प्रतिकूलतां) याता (प्राप्ता) असि, अयि विपरीतकारिणि (प्रतिकूलवर्त्तिनि) [तदेतत् ते यद्विपरीतं यातं] तद्युक्तम् (अनुरूपम्); [ततः किम् इत्यते आह]—तव श्रीखण्डचर्च्चा (चन्दन–विलेपनं) विषम् [विषमिव उद्वेजिका], शीतांशुः चन्द्रः तपनः (सूर्यवत् सन्तापकः), हिमं हुतबहः (अग्निः) [अग्निरिव दाहकं], तथा क्रीड़ामुदः (क्रीड़या मुदः आमोदाः रतिजनित–हर्षा इति यावत्) यातनाः [सम्पद्यन्ते] [विपरीतबुद्धेः सर्वमेव विपरीतं भवतीति भावः]॥१॥

अनुवाद—राधे! श्रीकृष्णने विविध विनय वचनोंसे अनुरोध किया और तुम अत्यन्त कठोर बन गयीं। वे तुम्हारे निकट प्रणत हुए और तुमने उनकी ओरसे मुख फेर कर उनकी उपेक्षा की, उन्होंने कितना प्रबल अनुराग दिखाया, तुम द्वेष कर रही हो। वे तुम्हारे प्रति उन्मुख हुए और तुम उनसे विमुख बनी रहीं। हे विपरीत-आचरण-कारिणी! इस आचरण-वैपरीत्यके कारण ही तुम्हें चन्दन विलेपन विषकी भाँति, स्निग्ध सुशीतल चन्द्र प्रखर दिनकरसम, सुशीतल हिमकर हुताशनवत् और रतिजनित हर्ष विषम यातना सदृश अनुभूत हो रहा है।

बालबोधिनी—श्रीराधाके द्वारा जब कोई उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं दिया गया, तब सखी उसे सम्बोधित करती हुई बोली—राधे! इस समय तुम्हें क्या हो गया है? विपरीत आचरण कर रही हो। कैसा उल्टा-पुल्टा व्यवहार कर रही हो, जिस प्रेमके लिए इतनी विकल विदग्ध हो रही थीं, जब वे मिलन हेतु आये तो विचित्र हो गयी हो, इस सुखद अवसरको अपने हाथोंसे खो रही हो, श्रीकृष्ण तुमसे कितना कोमल स्नेह कर रहे हैं, पर तुमने इतना मान कर लिया है कि उनके प्रति इतनी निठुर, रुक्ष, कठोर होकर उनसे पौरुष वाक्य कह रही हो। वे तुम्हारे पैरोंमें विनत हो रहे हैं और तुम स्तब्ध खड़ी हो। वे सर्वगुणसम्पन्न होकर भी तुम्हारे प्रति कितना अनुराग प्रकाश कर रहे हैं और तुम उनसे द्वेष कर रही हो। तुम्हारे श्रीमुखका दर्शन कर कितने उन्मुख-अभिमुख उल्लसित-उत्सुक हो रहे हैं, और तुम उदासीन होकर विमुखता प्रदर्शित कर रही हो। शायद तुम्हारी मति पलट गयी है, विपरीत आचरण करनेवाली तुम्हारे लिए यह समुचित है कि ऐसे सुखदायी अवसर पर चन्दनका लेपन तुम्हें गरल सरिस सन्तप्त कर रहा है, चन्द्रमाकी शीतल किरणें सन्तप्तकारी सूर्यकी दाहक लपटें

प्रतीत हो रही हैं, हिम कृशानु सरीखा दग्ध कर रहा है, रतिजनित आनन्द तुम्हारे लिए कष्टप्रद अनुभूत हो रही है, यह कैसी प्रतिकूलता तुम्हारे अन्तर्मनमें समा गयी है—इस विपरीत व्यवहारका शीघ्र परित्याग करो।

सान्द्रानन्द–पुरन्दरादि– दिविषद्वृन्दैरमन्दादरा–
दानम्र मुकुटेन्द्र नीलमणिभिः सन्दर्शितेन्दिन्दिरम्।
स्वच्छन्दं मकरन्द–सुन्दर–गलन्मन्दाकिनी–मेदुरं
श्रीगोविन्दपदारविन्दमशुभस्कन्दाय वन्दामहे॥२॥

इति अष्टादश सन्दर्भः।

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये कलहान्तरिता वर्णने मुग्ध–मुकुन्दो नाम नवमः सर्गः।

अन्वय—[सम्प्रति श्रीकृष्णस्य ऐश्वर्यं वर्णायन्नाशिषा सर्गं समापयति]—सान्द्रानन्द–पुरन्दरादि–दिविषद्वृन्दैः (वलेर्नियमानात् सान्द्रः निविड़ः आनन्दो येषां तेषां पुरन्दरादीनां दिविषदां देवानां वृन्दैः) अमन्दादरात् (अधिकादरात्) आनम्रैः (सम्यक् प्रणतैः) [सद्भिः] मुकुटैन्द्रनीलमणिभिः (मुकुटस्थैः इन्द्रनीलमणिभिः) सन्दर्शितेन्दिन्दिरं (सन्दर्शितः इन्दिन्दिरः भ्रमरो यत्र तादृशं) [तथा] स्वच्छन्दं [यथा तथा] मकरन्द–सुन्दर–गलन्मन्दाकिनीमेदुरं (मकरन्दवत् सुन्दरं यथा तथा गलन्त्या क्षरन्त्या मन्दाकिन्या आकाशगङ्गया मेदुरं स्निग्धं) श्रीगोविन्दपदारविन्दम् अशुभस्कन्दाय (अशुभानां भक्तिप्रतिबन्धकानां विनाशाय) वन्दामहे (प्रणमामः) [अतएव श्रीराधिकामानोपशमनचिन्तया मुग्धो मुकुन्दो यत्र सोऽयं सर्गो नवमः]॥२॥

अनुवाद—बलिराजाका गर्व खर्व होनेसे महान आनन्दमें निमग्न देवतागण बड़े आदरके साथ जिन चरणोंमें प्रणत हुए, इन्द्रनीलमणिमय मुकुटकी शोभा निज चरणोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे जो चरण नीलकुवलय सदृश प्रतीत हुए, मकरन्दके समान मनोहारिणी मन्दाकिनी जिन चरणोंसे अनायास ही

स्वच्छन्दतापूर्वक निःसृत हुई है, समस्त अशुभोंका निराकरण करनेवाले श्रीकृष्णके उन श्रीचरणकमलोंकी हम वन्दना करते हैं।

बालबोधिनी—अब कवि जयदेव श्रीकृष्ण द्वारा श्रीराधाके प्रति कहे गये चाटु-वाक्योंका स्मरण कर श्रीराधाकी महिमा स्फूर्त्त होनेसे उनका सौभाग्य प्रतिपादित करनेके लिए श्रीकृष्णके ऐश्वर्यका वर्णन करने लगे हैं। उनका कहना है कि मैं अपने शिष्यों एवं प्रशिष्योंके साथ प्रेमाभक्तिके प्रतिबन्धक अशुभ समुदायकी शान्ति हेतु श्रीगोविन्दके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ। श्रीगोविन्दके चरणकमलोंका माहात्म्य बताते हुए कवि कहते हैं—

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंकी उपमा कमलसे दी गयी है—उनके श्रीचरण, कमलके समान अति मनोहर हैं। जिस प्रकार कमलमें पराग समाहित होता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके चरणोंमें समाहिता आकाशगङ्गा स्वच्छन्द रूपसे निःसृत हो परागवत् मनोहारिणी प्रतीत होती है। परागसे सराबोर कमल पर जैसे भ्रमर सुशोभित होते हैं, उसी प्रकार अतिशय आनन्दसे ओतप्रोत हो अमन्द-आनन्दसन्दोहसे परिपूर्ण होकर इन्द्रादि देवसमूह श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं। उस समय प्रणाम करते हुए देवताओंके मस्तकपर स्थित किरीटोंकी इन्द्रनीलादि मणियोंकी कान्ति श्रीकृष्णके चरणोंमें पतित होनेसे श्रीकृष्णके चरणकमल कुवलय (नीलकमल) सदृश प्रतीत होते हैं। नीलकमलोंमें जैसे भ्रमर-समुदाय सदा मंडराता रहता है, उसी प्रकार भक्तजनोंका चित्त श्रीकृष्णके चरणोंमें सदैव मंडराता रहता है, नित्य-निरन्तर उन श्रीचरणोंकी महिमाका गान करता रहता है, योगीगण अपनी बाधाओंके निवारणके लिए उनके श्रीचरणकमलमें सदैव ध्यान लगाये रहते हैं—उन श्रीमुकुन्दके श्रीचरणकमलोंकी महिमाका वर्णन करनेकी सामर्थ्य किसमें है? कितने कौतूहलका विषय है

कि वे ही मुकुन्द श्रीराधाजीका मान उपशमित करनेकी चिन्तामें स्वयं मुग्ध हो रहे हैं, उन श्रीराधाजीकी महिमाका क्या वर्णन किया जाय कि उनके श्रीचरणकमलको मस्तक पर धारण करनेकी प्रार्थना स्वयं मुकुन्द श्रीकृष्ण कर रहे हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है एवं रूपक अलङ्कारका प्रयोग है। चरणोंमें कमलका, गङ्गाजीमें परागका, मुकुटमें जड़ित इन्द्रनीलादि मणियोंमें भ्रमरका आरोप किया गया है।

इस प्रकार श्रीगीतगोविन्द महाकाव्यमें मुग्ध–मुकुन्द नामक नवम सर्गकी बालबोधिनी वृत्ति समाप्त।

दशमः सर्गः

चतुरचतुर्भुजः

अत्रान्तरे मसृण–रोष–वशामसीम–
निःश्वासनिःसहमुखीं सुमुखीमुपेत्य।
सव्रीडमीक्षितसखीवदनां प्रदोषे
सानन्दगद्गदपदं हरिरित्युवाच॥१॥

अन्वय—अत्रान्तरे (अस्मिन्नवसरे) प्रदोषे (रजनीमुखे) हरिः (श्रीकृष्णः) असीम–निःश्वास–निःसहमुखीं (असीमनिःश्वासेन पुनः पुनः निःश्वासेन निःसहं कान्तवचनादिरहितं मुखं यस्याः तां) [तथा] मसृणरोषवशाम् (मसृणस्य अनुताप–शिथिलस्य रोषस्य वशाम् अधीनाम्; शिथिलमानेन सख्यायत्तामित्यर्थः) [अतएव] सब्रीड़ं (किमधुना विधेयमिति सलज्जं यथास्यात् तथा) ईक्षितसखीवदनां (ईक्षितं दृष्टं सख्याः वदनं यया तादृशीं) सुमुखीं (किञ्चित्–कोपोशमेन प्रसन्नवदनां) राधाम् उपेत्य (प्राप्य) सानन्दगदगदपदं (सानन्दानि गदगदानी गलदक्षराणि पदानि यत्र तद् यथा स्यात् तथा) इति (वक्ष्यमाणं वचनम्) उवाच॥१॥

पद्यानुवाद—

लजती लखती सखी ओर औ लेतीं श्वासें रीते।
रोषमयी राधासे बोले प्रमुदित हरि दिन बीते॥

अनुवाद—इसी समय दिवसका अवसान होने पर मसृण रोषमयी दीर्घ निःश्वासोंको सहन करनेमें असमर्थ मलिन मुखवाली, लज्जापूर्वक सखीके मुखको देखनेवाली सुवदना श्रीराधाके समीप आकर आनन्दसे उत्फुल्लित हुए श्रीहरि श्रीराधासे गद्गद स्वरमें कहने लगे।

बालबोधिनी—प्रियसखीने कोप दूर करनेके लिए श्रीराधाको विविध प्रकारसे समझाया। पर किशोरीजीका क्रोधावेश क्षीण

नहीं हुआ, इतनेमें दिन भी ढलने लगा, विरह-तापसे दीर्घश्वास चल रहे हैं, मुख-कमल अतिशय मलिन हो रहा है, सखी उसके मान प्रशमन करनेके सारे उपाय कर शान्त हो चुकी है, स्वयंने भी अभी-अभी श्रीकृष्णकी उपेक्षा की है, फिर उनको पानेकी अभिलाषा कैसे करे। अतः बार-बार अत्यन्त लज्जाके साथ सखीकी ओर देख रही है। प्रेमकी उद्विग्नता है, उदासी छाई है। इसी प्रदोषकालमें श्रीकृष्णने विचार किया कि श्रीराधा हृदयमें पछता रही होंगी। चलो, उसने जो आरोप लगाया है, उसे स्वीकार कर उसीकी बात रखकर क्षमा याचना कर लूँ। अतः वे सुवन्दना श्रीराधाके समीप आकर आनन्दसे प्रफुल्लित होकर प्रणयसे गद्‌गद स्वरमें निवेदन करने लगे।

ऊनविंश सन्दर्भः

गीतम् ॥१९॥

देशवराडीरागाष्टतालीतालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—गीतगोविन्द काव्यका यह उन्नीसवाँ प्रबन्ध देशवराडी राग तथा अष्टताली तालमें गाया जाता है।

वदसि यदि किञ्चिदपि दन्त-रुचि-कौमुदी
हरति दर-तिमिरमति धोरम्।
स्फुरदधर-शीधवे तव वदन-चन्द्रमा
रचयतु लोचन चकोरम्॥१॥
प्रिये! चारुशीले!
मुञ्च मयि मानमनिदानम्।
सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
देहि मुखकमल-मधुपानम्॥ध्रुवपदम्॥

अन्वय—अयि चारुशीले (मनोज्ञस्वभावे) प्रिये (प्रेयसि) मयि अनिदानं (अकारणं) मानं (कोपं) मुञ्च (चारुशीलायास्ते

''प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा।''

अकारणमानोऽयुक्त इति भावः)। मदनानलः (कामाग्निः) सपदि (झटिति; तव मान-समकालमेव इत्यर्थः), मम मानसं दहति; [तस्मात्] मुखकमल-मधुपानं (मुखमेव कमलं पद्मं तस्य मधु तस्य पानं) देहि (अन्तर्दाहस्य पानेनैव शान्तिः, अतो मां मुखपद्ममधु पायय इत्यर्थः) (ध्रु)॥

[दुरापमिदं दूरेऽस्तु]—यदि किञ्चिदपि वदसि तदा [तव] दन्तरुचिकौमुदी (दन्तानां रुचिः दीप्तिरेव कौमुदी ज्योत्स्ना) [मम] अतिघोरं (भयजनकं) दरतिमिरं (प्रगाढ़ं हृदय-निहितं तिमिरम् अन्धकारं) हरति। [किञ्च] तव वदनचन्द्रमाः (मुखचन्द्रः) स्फुरदधर-सीधवे (स्फुरतः उच्छलितस्य अधरस्य सीधवे अमृताय अमृतपानार्थमित्यर्थः) [मम] लोचनचकोरं (लोचनं नेत्रमेव चकोरस्तं) रोचयति (साभिलाषं करोति) [नयनस्य चकोरत्वेन त्वदेकजीवनत्वमुक्तम्]॥१॥

पद्यानुवाद—

प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा,
अधर-पद्म-रस दे हरो ताप सारा।
तनिक बोल बोलो, खिले दन्त ज्योत्स्ना,
हरो घोर तम-मय, भरो प्राण-कोना,
सुधा सम अधर मधु, वदन चन्द्रमा से—
लगे लोल लोचन, चकोरक बने से
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा,
अधर पद्म-रस दे हरो ताप सारा।।

अनुवाद—हे प्रिये! हे सुन्दर स्वभावमयी राधे! मेरे प्रति इस प्रकार अकारण मानका परिहार करो, मदनानल मेरे हृदयको दग्ध कर रहा है, मुझे अपने मुखकमलका मधुपान करने दो, यदि तुम मुझसे कुछ भी बात करोगी तो तुम्हारी दशन पंक्तिकी किरणोंकी ज्योतिसे मेरा भय रूपी घोर अंधकार दूर हो जायेगा, तुम्हारा मुखचन्द्र मेरे नयन-चकोरको तुम्हारी अधर-सुधाका पान करनेके लिए अभिलाषी बना दे।

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण श्रीराधाजीसे कहते हैं—हे प्रिये! तुम्हारा स्वभाव तो अति शोभन है। तुमने मेरे विषयमें जो अकारण मान ठान लिया है, वह तो उचित नहीं है। जबसे तुमने मान किया है, तबसे कामदाह मुझे जलाये जा रहा है, मानका कोई कारण भी तो नहीं है, व्यर्थ ही परस्त्री-रमणकी शंका कर रही हो—तुम्हारे ही आश्रयसे काम मुझे व्यथित कर रहा है। अपने मुखकमलका मुझे मधुपान कराओ, जिससे मेरा अन्तर्दाह प्रशमित हो जायेगा—यह अति दुर्लभ है। इसे जाने दो, पर कुछ बोलो तो सही, अनुकूल अथवा प्रतिकूल, पर कुछ तो कहो—जब तुम कुछ कहोगी तो तुम्हारा मुखकमल विलसित—विकसित होगा। इससे तुम्हारे दन्तकी कान्ति-कौमुदी प्रकाशित होगी और इससे मेरे अन्तःकरणमें निहित भय-तिमिर विनष्ट हो जायेगा। राधे, तुम्हारे चन्द्रवदनसे ऐसी अधर सुधा छलक रही है कि मेरे नयन चकोर तो इस आसवका पान करना चाहते हैं। प्रिये, चारुचरित्रे! तुम ही तो मेरे नयन-चकोरकी जीवन-स्वरूपा हो।

सत्यमेवासि यदि सुदति मयि कोपिनी देहि खरनयनशरघातम्।
घटय भुजबन्धनं जनय रदखण्डनं येन वा भवति सुखजातम्॥
प्रिये.... ॥२॥

अन्वय—अयि सुदति (प्रसन्नवदने) यदि [त्वदेकजीवने] मयि सत्यमेव कोपिनी (क्रुद्धा) असि, [तदा] खरनयन-शरघातं (खरैः तीक्ष्णैः नयन-शरैः घातं प्रहारं) देहि (कुरु इत्यर्थः), [एतेनापि यदि न तुष्यसि] भुजबन्धनं (भुजाभ्यां बन्धनं) घटय (विधेहि); [तेनापि असन्तोषश्चेत्] रदखण्डनं (रदैः दन्तैः खण्डनं दंशनं) जनय (कुरु); [किं बहुना] येन वा (अन्येन) [तव] सुखजातं (सुखसमूहः) भवति [तत्कुरु इति शेषः] [अत्र गूढोऽभिप्रायः स्वीयेऽपराधिनि दण्डएवोचितो नोपेक्षा कर्त्तव्या इति]॥२॥

पद्यानुवाद—

अगर रोष है, खर–नखर वाण छेदो
भुजपाश बाँधो, अधर दन्त भेदो।

अनुवाद—हे शोभन–दन्ते! यदि तुम यथार्थमें ही मुझपर कुपित हो रही हो तो मुझपर तीक्ष्ण नख–वाणोंका आघात करो, अपने भुजबन्धनमें मुझे बाँध लो, दाँतोंके आघातसे मेरे होठोंको काटो, जिससे तुम्हें सुख मिले—तुम वही करो।

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण श्रीराधाको मनाते हुए कह रहे हैं—हे शोभनदन्ते! सुन्दर दन्तराजिसे विलसित प्रियतमे राधे! तुम मेरे प्रति रोष मत करो। यदि वस्तुतः मुझपर क्रोध प्रकाशित ही करना चाहती हो, तो मुझपर अपने तीक्ष्ण नेत्र–वाणोंका प्रहार करो, फिर भी तुम्हारे क्रोधकी शान्ति नहीं होती है, तो मुझे और भी दण्ड दो। अपनी भुजाओंके बन्धनमें मुझे बाँध लो, कैद कर लो, फिर भी सन्तुष्टि नहीं होती है तो अपने दन्त आघातसे मुझे खण्डित कर दो, मेरे शरीरको काट डालो, इससे भी तुम्हें सन्तोष नहीं होता हो तो तुम्हें जो उपाय उचित लगे, वही करो। मैं अपराध योग्य हूँ, दण्डनीय हूँ। अपने सुखके लिए मुझपर किसी भी दण्डका विधान करो। यहाँ ताड़न–बन्धन, खंडन आदिके व्याजसे नखक्षत, आलिङ्गन एवं चुम्बन आदिकी प्रार्थना की जा रही है।

त्वमसि मम भूषणं त्वमसि मम जीवनं,
त्वमसि मम भव–जलधि–रत्नम्।
भवतु भवतीह मयि सततमनुरोधिनी,
तत्र मम हृदयमतियत्नम्॥
प्रिये.... ॥३॥

अन्वय—[ननु या तव प्रियतमा सैव दण्डं विदधातु इति चेत् तत्राह]—अयि प्रियतमे त्वं भूषणम् (अलङ्कारः) असि;

त्वं मम जीवनं (प्राणभूता) असि [त्वद्व्यतिरेकेण अन्यज्जीवनादिकमपि मे नास्ति तर्हि अन्याङ्गनानां का वार्त्ता इति भावः]; [किञ्च] त्वं मम भवजलधिरत्नं (भवः संसारः स एव जलधिः तत्र त्वमेव रत्नरूपा सर्वप्रेयसीश्रेष्ठा इत्यर्थः) असि; [यथा कश्चित् रत्नाकरात् विचित्ररत्नं लब्ध्वा आत्मानं पूर्णमनोरथं मनुते तथा स्त्रीरत्नभूतां त्वां प्राप्य कृतार्थोऽस्मीति भावः]; [अतएव] भवती इह (अस्मिन् त्वन्मात्रशरणे) मयि सततम् (सदा) अनुरोधिनी (अनुकूला) भवतु। तत्र (तव आनुकूल्ये) मम हृदयम् (चित्तम्) अतियत्नं (अतिशयेन यत्नो यस्य तत् अतीव यत्नवदित्यर्थः) [तवानुकूल्यलाभार्थमेव हृदयं मे सततं यतते इति भावः]॥३॥

पद्यानुवाद—

सखी, प्राण, भूषण तुम्हीं रत्न भव की।
द्रवो आज रानी! हरो आग हिय की॥
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा।
अधर पद्म-रस दे हरो ताप सारा॥

अनुवाद—तुम ही मेरी भूषण स्वरूप हो, तुम ही मेरा जीवन हो, तुम ही मेरे संसार-समुद्रके रत्नस्वरूप हो, अब तुम ही सतत मेरे प्रति अनुरोधिनी बनी रहो—यही मेरा एकान्तिक प्रयास है।

बालबोधिनी—यदि श्रीराधा कहे कि हे श्रीकृष्ण! मैं तो तुम्हें दण्ड भी नहीं दे पाती, तुम्हारी और भी प्रियाएँ हैं, उन्हींसे जाकर निवेदन करो। तो इस आशंका पर श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! तुम ही मेरा सम्पूर्ण शृंगार हो, तुमसे ही अलंकृत होकर तो मैं सर्वत्र सौभाग्यवान हूँ, बाह्य आभूषणकी बात तो दूर रहे तुम ही मेरे जीवनका आधार हो, मेरी प्राण! तुम्हारे बिना तो मैं जी भी नहीं सकता। दूसरी रमणियोंकी तब बात ही कहाँ? तुम ही मुझे इस भवसागरमें मिली अनुपम रत्नराशि हो। जैसे कोई रत्नाकरसे विचित्र

रत्न प्राप्तकर अपनेको कृतार्थ मानता है वैसे ही मैं तुम जैसी रमणी-रत्नको प्राप्तकर कृत्कृत्य हो रहा हूँ। अतः मेरे ऊपर सदैव अनुकूल बनी रहो—यही मेरा हृदय निरन्तर यत्न कर रहा है। मेरा सम्पूर्ण प्रयास तुम्हारी कृपा प्राप्तिके लिए ही है।

नीलनलिनाभमपि तन्वि तव लोचनं धारयति कोकनद-रूपम्।
कुसुमशरबाणभावेन यदि रञ्जयसि कृष्णमिदमेतदनुरूपम्॥
प्रिये.... ॥४॥

अन्वय—[स्वगुण-परीक्षणोपकरणत्वेन चेन्मामङ्गीकरोषि तथापि चरितार्थः स्याम् इत्यत आह]—अयि तन्वि (कृशाङ्गि) नील-नलिनाभमपि (नीलात्पलतुल्यमपि) तव लोचनं [सम्प्रति अभिमानज-रोषात्] कोकनदरूपं (रक्तोत्पलरूपं) धारयति [एतेन त्वयि अनुरञ्जिनी विद्यास्ति इत्यवधारितम्; एषा विद्या मयि परीक्ष्यताम्]; [परीक्षाप्रकारमाह]—यदि [त्वं] कृष्णं (कृष्णरूपं मां) [तेन लोचनेन] कुसुमशरबाणभावेन (कुसुमशरस्य मदनस्य यः सम्मोहनाख्यः बाणः तस्य भावः उत्पत्तिः यस्मात् तथाभूतेन सानुरागकटाक्षावलोकनेन इत्यर्थः) रञ्जयसि, [तर्हि] इदं (कार्यमेव) एतदनुरूपं (एतस्य लोचनस्य योग्यं) [स्यात्]; शिक्षिता विद्या प्रयोगेणैव साफल्यं व्रजतीति भावः]॥४॥

पद्यानुवाद—

नलिन नेत्र नीले, बने कोकनद से।
हुआ कृष्ण रञ्जित, अगर बाण-स्मर से॥
तभी सिद्ध होगा नयन-रूप सुन्दर।
तभी सिद्ध होगा, वदन-रूप सुन्दर॥
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा।
अधर पद्म-रस दे हरो ताप सारा॥

अनुवाद—हे कृशाङ्गि! तुम्हारे इन्दीवरके समान नेत्रोंने इस समय रक्तोपलका रूप धारण किया है। मदन-भावसे

परिपूर्ण कटाक्ष बाणसे कृष्णवर्ण इस शरीरको यदि रञ्जित कर दोगी—तो अनुरूप होगा।

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण कह रहे हैं—राधे! तुम्हारी आँखें तो स्वाभाविक ही नीलकमलके समान हैं, तुम अपने नेत्रोंको नये-नये अनुराग-रंगमें रञ्जित करनेमें सुनिपुण हो। अपने इन गुणोंको उपकरण रूपमें बनाकर यदि मुझे अङ्गीकार करती हो तो मेरा जीवन चरितार्थ हो जायेगा, पर अधुना तुम्हारे नेत्रोंने सहजताका परित्याग कर रक्तकमलकी आरक्तता धारण कर ली है। यह तो तुम्हारी कोई अनुरञ्जिनी विद्या है। ऐसा स्पष्ट हो रहा है कि कृष्णवर्णकी वस्तुओंको रक्त वर्णकी बना देनेकी तुममें सामर्थ्य है, अतएव तुम यदि इन कटाक्षरूपी मदन-शरोंसे मुझे बेध दो, तब तो मैं समझूँगा कि तुमने विद्याका समुचित प्रयोग किया है। राधे, क्रोध न कर मुझसे प्रेम करो एवं काम-क्रीड़ाव्यातृप्त हो जाओ। यही तुम्हारी स्वाभाविकता है।

स्फुरतु कुचकुम्भयोरुपरि मणिमञ्जरी रञ्जयतु तव-हृदयदेशम्।
रसतु रसनापि तव घन-जघनमण्डले घोषयतु-मन्मथनिदेशम्॥
प्रिये.... ॥५॥

अन्वय—[एतच्छ्रवणेन किञ्चित् प्रसन्नामवलोक्य आह]—प्रिये, तव कुचकुम्भयोः (स्तनकलसयोः) उपरि मणिमञ्जरी (मणिमाला) स्फुरतु (दोदुल्यमाना भवतु); तव हृदयदेशं रञ्जयतु (शोभयतु) च, [किञ्च] तव घनजघनमण्डले (घने निविड़े जघनमण्डले) रसनापि (काञ्ची अपि) रसतु (शब्दायताम्); मन्मथनिदेशं (मन्मथस्य कामस्य निदेशम् आज्ञां) घोषयतु च (प्रचारयतु) च [वचनभङ्ग्या प्रार्थनाविशेषोऽयम्]॥५॥

पद्यानुवाद—

कनक-कुम्भ पर हार, धारो न अपना,
लसे आज जिससे, हृदय-देश दुगुना,

सघन री जघन पर रशन मंजु डोले,
करें घोष किण-किण, मदन-बोल बोले।
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा,
अधर पद्म-रस दे हरो ताप सारा।

अनुवाद—तुम्हारे कुच-कुम्भके ऊपर मणिमय मञ्जरी देदीप्यमान होकर तुम्हारे हृदय देशको सुशोभित करें, तुम्हारे परस्पर अविरल जघन युगलके ऊपर विराजमान काञ्चि कन्दर्पके आदेशका उद्घोष करे।

बालबोधिनी—वचन-भङ्गीके द्वारा श्रीकृष्ण श्रीराधासे रति-केलिकी प्रार्थना कर रहे हैं। मेरे साथ काम-केलि रूप शुभ कार्यका शुभारम्भ किया जाय, लाज छोड़, तुम रति-क्रीड़ाके लिए कटिबद्ध हो गयी हो। सुरतारम्भसे पूर्व पूर्ण-कलशोंकी प्रतिष्ठा आवश्यक है। कलशवत् विपुलाकार स्तन-कलशों पर मणि-मञ्जरी प्रकाशित हो, अर्थात् यह मणिमय हार दोलायमान होकर तुम्हारे वक्षस्थलको सुशोभित करे, विशाल मध्य भाग मांसल जांघोंको घेरे हुए तुम्हारी करधनी, केलि-क्रीड़ा करते हुए किण-किण मधुर ध्वनि निनादित करती हुई कामदेवकी उमड़ती हुई आकांक्षाओंके आदेशोंकी उद्घोषणा करे। आदेश यह है कि इस वसन्त ऋतुकी मादक बेलामें सभी विलास-प्रवण नर-नारी विलास क्रियामें व्याप्त हो जायें, मानिनी-जन मानका त्याग करके रति-क्रीड़ामें प्रवृत्त हो जायें।

स्थल-कमलगञ्जनं मम हृदय-रञ्जनं जनित-रति-रङ्गपर भागम्।
भ्रण मसृण वाणि करवाणि चरणद्वयं सरस-लसदलक्तकरागम्॥
प्रिये.... ॥६॥

अन्वय—हे मसृणवाणि (स्निग्धभाषिणि) भण (कथय, आज्ञापय इत्यर्थः); स्थल-कमल-गञ्जनं (स्थलकमलानां स्थलपद्मानां गञ्जनं तिरस्कारकम्; आरक्तत्वात् कोमलत्वाच्च) मम हृदयरञ्जनं (हृदयरञ्जनं) (हृदयपरितोषकरं) जनित-रति-रङ्ग-

परभागं (जनितः कृतः रतिरङ्गे सुरतोत्सवे परभागः परमशोभा येन तादृशं) तव चरणद्वयं (पादयुगलं) सरस-लसदलक्तक-रागं (सरसेन आर्द्रेण लसता दीप्तिमता उज्ज्वलेन इत्यर्थः अलक्तकेन रागं लौहित्यं यत्र तादृशं सुरञ्जितमित्यर्थः) करवाणि (विदधामि) ॥६ ॥

पद्यानुवाद—

चरण युग तुम्हारे, कमलमान गंजन।
रमण-राग कारी हृदय-भाग-रंजन॥
लगा दूँ उन्हीं में, इन्हीं हाथसे सब।
सजीला रसीला महावर सजनि! अब॥
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा।
अधर पद्म-रस दे तरो ताप सारा॥

अनुवाद—हे सुमधुरवचने! स्थल-कमलको पराजित करनेवाले, मेरे हृदयकी शोभा बढ़ानेवाले तुम्हारे ये चरण-युगल रतिकालमें कामोद्रेकको अभिवर्द्धित करनेवाले हैं। तुम आदेश करो, ऐसे चरणोंको मैं अलक्तक-रस (महावर) से रञ्जित कर दूँ।

बालबोधिनी—श्रीराधा अभी भी कोई उत्तर नहीं दे रही हैं। तब श्रीकृष्ण कहते हैं—हे स्निग्धवचने, अतिशय मधुर वाणी बोलने वाली! कोमल वचनोंसे ही बाण चला लेती हो, तुम अपनी कोमल काकलीसे आज्ञा करो। स्थल-कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले, मेरे हृदयको अनुरञ्जित करनेवाले इन चरण द्वयको अलता (महावर) रंगसे और रञ्जित कर दूँ, जिससे सुरतक्रीड़ाकी बेलामें ये चरण-युगल और शोभा धारण कर कामोद्रेक कर सकें। ये रंगमय होकर मेरे हृदयका राग बन जाएँ। हे प्रियभाषिणी! ये अनुरञ्जित चरण-युगल राति-केलिरसमें एक अनिर्वचनीय सुषमाको धारण करेंगे। ये चरण श्रृंगार रसके सरस आधार हैं, श्रृंगार उत्पत्तिके द्वार हैं, स्पृहाकी उत्पत्ति करानेवाले हैं। चारुचरित्रे! प्रसन्न हो, मान

त्याग करो। रमणीके अलक्तक रसरञ्जित मनोहर चरणयुगलको देखकर युवाओंके मनमें काम-भावनाका उद्रेक होता ही है।

स्मर-गरल-खण्डनं मम शिरसि मण्डनं देहि पद-पल्लवमुदारम्।
ज्वलति मयि दारुणो मदन-कदनानलो[१] हरतु तदुपाहितविकारम्॥
प्रिये चारुशीले.... ॥७॥

अन्वय—[अतस्तदङ्गीकारेणैव मे तापोपशमनमिति तद्गुण-स्फुर्त्तिपरवशः सन् प्रार्थयते]—[अयि प्राणेश्वरि] मम शिरसि (मदीयमस्तके) स्मरगरलखण्डनं (काम-कालकूट-दमनं) उदारं (वाञ्छितप्रदत्वात् महत्) मण्डनं (भूषणरूपं) पदपल्लवं देहि (अर्पय); दारुणः (भीषणः) मदनकदनानलः (कामसन्तापाग्निः) मयि ज्वलति; तदुपाहित-विकारं (तेन मदनतापानलेन उपाहितः उत्पादितः विकारः तम्) [ममेति शेषः] हरतु (शमयतु) [पदपल्लवधारण-मात्रेणैव तापोऽपयास्यतीति भावः]॥७॥

पद्यानुवाद—

धरो पाद-पल्लव, मदन-ताप हर्ता।
इसी तप्त शिर पर हृदय शान्ति कर्ता॥
चटुल चाटु पटु हरि, भुला राधिका को।
सुलावे हृदय पर, झुला साधिका को॥
प्रिये! चारुशीले! तजो मान प्यारा।
अधर पद्म-रस दे हरो ताप सारा॥

अनुवाद—हे प्रिये! अपने मनोहर चरण किसलयको मेरे मस्तकपर आभूषण-स्वरूप अर्पण कराओ। जिससे मुझे जर्जरित करनेवाला यह अनङ्गरूप गरल प्रशमित हो जाय, मदन यातना रूप निदारुण जो **अनल** मुझे संतप्त कर रहा है, उससे वह दाहजन्य उत्पन्न विकार भी शान्त हो जाय।

---

(१) मदनकदनारूनः हति क्वचित; कामक्लेश एव दारुणोऽरुणः सूर्यः मयि ज्वलतिव्यर्थः।

बालबोधिनी—हे राधे! मुझे अङ्गीकार करोगी, तभी मेरा ताप दूर होगा। सर्वविजयी तुम्हारे गुणोंकी स्फूर्ति होनेसे मैं विवश होकर तुमसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि अपने पद-पल्लवको मेरे मस्तक पर अर्पित करो। ये पद-पल्लव अति उदार हैं, ये प्रार्थीजनोंके मनोभीष्टको पूर्ण करनेवाले हैं। नव-पल्लवके समान लालिमा, कोमलता और शैत्य आदि गुणोंसे विभूषित होनेके कारण अलङ्कार-स्वरूप हैं। इन चरणोंको मेरे मस्तक पर अर्पण करनेसे कामजन्य गरलका खण्डन तो होगा ही मेरा मस्तक भी समलंकृत हो जायेगा। यहाँ काममें सर्पविषकी उत्प्रेक्षाकी गयी है। तुम्हारे पैरोंका संस्पर्श पाकर कामगरल उसी प्रकार समाप्त हो जायेगा जिस प्रकार गरुड़का चरण-स्पर्श प्राप्तकर सर्पविष समाप्त हो जाता है। कामजन्य संताप सम्बन्धसे अन्तर्मनमें उदित मनोविकार आदि दोष भी तुम्हारे चरणोंके अर्पण करनेसे समाप्त हो जायेंगे। यह कामक्लेश अति निदारुण है, अनलके समान मेरे हृदयको जला रहा है। एक-एक मर्म अंगार बन रहा है। भीतर-बाहर ज्वलनशील यह काम-ज्वर तुम्हारे पद-पल्लवके सिर पर रखनेसे ही दूर होगा।

इस सम्पूर्ण प्रबन्धकी नायिका श्रीराधा प्रौढ़ा तथा मानवती है और नायक श्रीकृष्ण अनुकूल हैं।

इति चटुल-चाटु-पटु-चारु मुरवैरिणो राधिकामधि वचन-जातम्।
जयति पद्मावती रमण जयदेवकवि भारती भणितमतिशातम्॥
प्रिये चरुशीले.... ॥८॥

अन्वय—इति (उक्तप्रकारं) पद्मावतीरमण-जयदेव-कवि-भारती-भणितं (पद्मावती श्रीराधा-परतया तथानाम्नी श्रीजयदेवपत्नी; तद्गुण-वर्णनादिना तस्याः रमणः स चासौ जयदेवकविश्चेति; तस्य भारत्या वाण्या भणितं वर्णितं) राधिकाम् अधि (राधिकां लक्ष्यीकृत्य इत्यर्थः) चटुल-चाटु-पटु-चारु (चटुलं

चातुर्ययुक्तं चाटु प्रीतिकरं पटु कौशलपूर्णं चारु मनोहरं; यद्वा चटुलं चञ्चलं नानाविधमितियावत्, चटुल-चाटुना पटु मानापनयनसमर्थं चारु शोभनं) अतिशातं (परमसुखप्रदमित्यर्थः) सुरवैरिणः (मुरारेः) वचनजातं (वाक्यसमूहः) जयति (सर्वोत्कर्षेण वर्त्तताम्) ॥८॥

अनुवाद—पद्मावतीके प्रिय श्रीजयदेव कवि द्वारा विरचित राधिकाको सम्बोधित करके श्रीकृष्ण द्वारा उक्त चाटुयुक्त सुकुमार, मान हरणमें कुशल, मोहन माधुरीपूर्ण वचन समुदायकी जय हो।

बालबोधिनी—इस प्रकार मुरवैरी श्रीकृष्णकी यह वचनावली जो श्रीराधाको अभिलषित करके सर्वोत्कृष्ट रूपसे प्रकाशित हुई है, वे सब प्रकारसे जययुक्त हों। अपनी परम प्रेयसी श्रीराधाके मान-अपमान हेतु ये वाक्य समूह अति समर्थ एवं परम सुखप्रद हैं। इस मनोहर अष्टपटीमें चतुर एवं प्रिय मीठी बातोंका ही संकलन है, पद्मावती अर्थात् श्रीराधा-श्रीकृष्णके ऊपर विजयिनी हों और विजयी हों। भारतीसे भूषित, पद्मावती-पति जयदेव, इसी अष्टपदीमें कवि जयदेवकी स्फूर्तिको श्रीकृष्णने जयदेवके वेशमें स्वयं लिपिबद्ध किया है—देहि पदपल्लवं मे उदारम्....।

यह गीत गीतगोविन्दका उन्नीसवाँ प्रबन्ध है। इस प्रबन्धका नाम चतुर्भुजरागराजिचन्द्रोद्योत है।

परिहर कृतातङ्के! शङ्कां त्वया सततं घन
स्तनजघनया क्रान्ते स्वान्ते परानवकाशिनि।
विशति वितनोरन्यो धन्यो न कोऽपि ममान्तरं
प्रणयिनि! परीरम्भारम्भे विधेहि विधेयताम्॥१॥

अन्वय—[अपरमपि कृत्यं विज्ञापयितुमाह]—अयि कृतातङ्के (कृतः आतङ्कः सन्देहः अन्यस्त्रीसम्भोगवितर्क इत्यर्थः यया तत्सम्बुद्धौ) शङ्कां परिहर (त्यज); सततं (निरन्तरं; नतु

क्षणमिति भावः) घनस्तनजघनया (घनं निविड़ं स्तनजघनं यस्याः तादृश्या) [त्वया] क्रान्ते (निरन्तरं व्याप्ते) [अतः] परानवकाशिनि (अन्यावकाश-शून्ये) स्वान्ते (मदीये मनसि) वितनोः (तनुशून्यात् कामात्) अन्यः कोऽपि धन्यः (तादृक् सौभाग्यवान्) अन्तरं (अभ्यन्तरं) न विशति [मनोद्वारेणैव एतदभ्यन्तरं प्रविश्यते; मनस्तु मे त्वया परिव्याप्तं तर्हि केन पथा प्रवेष्टव्यमन्येन शरीरिणा जनेन, कामस्तु मनोभवः अतस्तत्र तस्यैव प्रवेशेऽधिकारोऽस्तीत्यर्थः]; [शङ्कां त्यक्त्वा यत् कर्त्तव्यं तदाह]—हे प्रणयिनि परीरम्भारम्भे (परीरम्भस्य आश्लेषस्य आरम्भे उपक्रमे) विधेयतां (इतिकर्त्तव्यतां) विधेहि (व्यवस्थापय)॥१॥

पद्यानुवाद—

घन उर जघन सतत आक्रांते! स्वान्ते। मम मन सूना।
तज शंका भुजमें भर जाओ, जो हुलास हिय दूना॥

अनुवाद—दूसरी नायिकाके प्रति मुझे आसक्त समझकर व्यर्थकी शंकाओंका परित्याग कर दो। परस्पर अविरल स्तन एवं जघन युगल शालिनी हे प्रणयिनी राधे! मेरे मनमें किसी दूसरी नायिकाके लिए अवकाश ही नहीं है। मदनके अतिरिक्त दूसरे किसीके प्रवेश करनेका सौभाग्य नहीं है। परिरम्भणके लिए अब मुझे आदेश दो।

बालबोधिनी—अब श्रीकृष्ण श्रीराधासे कह रहे हैं—क्यों यह शंका अपने मनमें व्यर्थ ही पैदा कर ली है। अन्य वनिता-सङ्गका आरोप मुझपर मत लगाओ। मेरा तो अन्तःस्थल और हृदय तुम्हारे कुच-कलशों एवं जघनोंके भारसे इस तरह आक्रान्त है कि कहीं दूसरोंकी स्मृतिका अवकाश ही नहीं है। मेरे हृदयमें तुम्हारे प्यारने सम्पूर्ण रूपसे व्याप्त होकर आक्रमण कर लिया है, वहाँ दूसरेके लिए किञ्चित्मात्र भी स्थान नहीं है। वहाँ कोई कैसे प्रवेश कर सकता है। तुम्हारे रहनेसे मेरे हृदयमें मदनके अतिरिक्त

अन्य किसीको प्रवेश करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं है। हे प्रणयिनि राधे! अब मानका परित्याग भी करो। अब तुम ऐसा करो कि मैं तुम्हारे स्तनमण्डलका आलिङ्गन कर सकूँ। अपना किंकर बनाकर मुझे तदर्थ अनुमति दो।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी नामक वृत्त तथा काव्यलिंग नामक अलंकार है। श्रीराधा प्रौढ़ नायिका हैं और श्रीकृष्ण प्रगल्भ नायक हैं।

मुग्धे विधेहि मयि निर्दय–दन्तदंश
दोर्वल्लि–बन्ध–निबिडस्तन–पीडनानि ।
चण्डि! त्वमेव मुदमुञ्च न पञ्चबाण–
चाण्डाल–काण्ड–दलनादसवः प्रयान्तु ॥२॥

अन्वय—[यदि मद्वचनात् न प्रत्येषि तर्हि स्वयमेव दण्डमाचरेत्याह]—अयि मुग्धे, मयि निर्दय–दन्तदंशः–दोर्वल्लि–बन्ध–निविड़–स्तनपीड़नानि (निर्दयं, निष्ठुरं यथा तथा दन्तदंशः दशनाघातः तथा दोर्वल्लिबन्धः भुजलताबन्धनं तथा निविड़ाभ्यां स्तनाभ्यां पीड़नञ्च तानि) विधेहि (घटय)। अयि चण्डि (कोपने) त्वमेव मूदम् (सुखं) अञ्च (प्राप्नुहि) [तव सुखोत्पादनाय ईदृग्विधेन दण्डेन यदि मे प्राणा यान्ति, यान्तु, परं] पञ्चबाण–चाण्डाल–काण्ड–दलनात् (पञ्चबाण एव चाण्डालः दुष्टचेष्टत्वादिति भावः तस्य काण्डदलनात् बाणप्रहारात्) मम असवः (प्राणाः) न प्रयान्तु (गच्छन्तु)॥२॥

पद्यानुवाद—

पञ्चबाण–चाण्डाल बाणसे, प्राण न जायें मेरे।
निज अपराधीको रदसे, अब छेदो तुम्हीं सबेरे॥
और बाँध लो बाहुलताके, बन्धनमें अति मुझको।
दृढ़ कुच–पीड़ा दे हँस बोलो, बन्दी मुक्ति न तुझको॥

अनुवाद—हे विमुग्धे! यदि मैं अपराधी हूँ तो मुझे दण्ड देने में विलम्ब क्यों कर रही हो? दण्ड दो—अपने दाँतोके

दंशनसे निर्दय होकर आघात करो, भुज-लता द्वारा प्रगाढ़ रूपसे मुझे बाँध लो। कठिन स्तनोंसे प्रबल निपीड़न करो। हे कोपमयि! मुझको इस प्रकार कठोर दण्ड देकर तुम्हीं सुखी होओ। ऐसे कठोर दण्डसे यदि मेरे प्राण निकल जायँ तो भले निकल जायँ, परन्तु मदनरूप चाण्डालके बाण प्रहारसे मेरे प्राण न जायँ॥२॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण श्रीराधासे कहते हैं—हे मुग्धे! यदि तुम्हें मेरे वचनोंपर विश्वास नहीं है, तो मुझे दण्ड दे सकती हो। क्रोधके आवेशमें तुम मुझे समझनेका प्रयास ही नहीं कर रही हो। अतः तुम यथेच्छ रूपसे मुझपर शासन करो। कन्दर्प-चाण्डाल अपने पञ्चबाणोंसे मुझे मारनेकी चेष्टा कर रहा है, पर इतनी कृपा करना कि मेरे प्राण न चले जायें। हे आत्माहितानभिज्ञे! चण्डित्वका परित्याग करो। तुम्हारे ही सम्बन्धसे इस चाण्डाल कामदेवके बाणोंसे विदीर्ण हो मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। इससे मेरी रक्षा करो। मुझे दण्ड देकर तुम सुखी हो जाओ, निर्दयतासे दांतों द्वारा काट डालो, निविड़ स्तनोंसे मुझे पीस डालो, भुजलताओंसे कसकर बाँध लो। मुझसे हँसकर कह दो—अब तुम मेरे बन्दी हो, मेरे बन्धनसे अब कभी भी तुम मुक्त न हो सकोगे।

शशिमुखि! तव भाति भङ्गुर भ्रू,
र्युवजनमोह-कराल कालसर्पी।
तदुदित-भय-भञ्जनाय यूनां
त्वदधर-सीधु-सुधैव सिद्धमंत्रः॥३॥

अन्वय—[मम कोपो नास्त्येव चेत् तत्राह]—अयि शशिमुखि (चन्द्रानने), तव भङ्गुरभ्रूः (भङ्गुरा कुटिला भ्रूः) [यदि कोपिना नासि तत् कुतस्ते भ्रुवोर्भङ्गुरत्वम्?], युवजन-मोह-कराल-कालसर्पी (युवजनानां तरुणानाम् अस्माकं मोहाय मूर्च्छाविधानाय

कराला भीषणा कालसर्पा भाति विराजते), तदुदित-भय-भञ्जनाय तस्याः भ्रुवः उदितस्य भयस्य भञ्जनाय नाशाय) यूनां [अस्माकं] त्वदधर-सीधु-सुधैव (तव अधर-मधुरूपा सुधा एव; मादकत्वात् सीधु इति मधुरत्वाच्च सुधेत्युक्तम्) सिद्धमन्त्रः [नान्यत् किञ्चिदित्यर्थः] [अमृतपानेनैव विषभयं निवर्त्तते इति भावः]॥३॥

पद्यानुवाद—

बंकिम भौंहें नागिनि तेरी डस लेती जब जन को।
अधर सुधा ही विष हरता है, विरुज बनाता तन को॥

अनुवाद—हे शशिमुखि! तुम्हारी कुटिल भ्रूलता युवजन विह्वलकारी कराल कालजयी सर्पिणीके समान है। इससे उत्पन्न भयको भञ्जन हेतु तुम्हारे अधरसे विगलित मदिरा सुधा ही एकमात्र सिद्धमन्त्र स्वरूप है।

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण वात्स्यायन-न्यायका आश्रय लेकर कहते हैं—हे चन्द्रमुखि! तुम्हारा मुखमण्डल तो चन्द्रमा सरीखा है, परन्तु तुम्हारे मुखपर विद्यमान भौंहें अति कुटिल हैं, जो मेरे जैसे युवजनोंके लिए महाभयंकर काल सर्पिणीके समान मोहित करनेवाली, अत्यन्त भयका उत्पादन कर रही हैं, अरे जो हिंस्रमुखी होती हैं, परन्तु तुम तो चन्द्रमुखी हो। तरुणोंके प्रति कोप प्रकाशित मत करो। इस काल नागिनीके काटनेपर कोई युवक बच नहीं सकता, न ही कोई ऐसी औषध है, जिससे गरलकी ज्वाला शान्त हो जाय। हाँ, तुम्हारी अधर-सुधा ही तुम्हारी भ्रू-रूपिणी सर्पिणीके डँसनेसे उत्पन्न विषको शान्त करनेके लिए सिद्धमन्त्र स्वरूप है।

प्रस्तुत श्लोकमें पुष्पिताग्रा छंद है। कल्पितोपमा एवं रूपक अलंकार है।

व्यथयति वृथा मौनं तन्वि! प्रपञ्चय पञ्चमं,
तरुणि मधुरालापैस्तापं विनोदय दृष्टिभिः।
सुमुखि! विमुखी भावं तावद्विमुञ्च न मुञ्च
मां स्वयमतिशयस्निग्धो मुग्धे। प्रियोऽयमुपस्थितः॥४॥

अन्वय—[एवमुक्तेऽपि अनुत्तरामाह]—अयि तन्वि (कृशाङ्गि! मामप्राप्य त्वमपि कृशासीति भावः), [यस्मात् तव] वृथा (अकारणं) मौनं (तुष्णीम्भावः) मां व्यथयति (सन्तापयति) [तस्मात्] पञ्चमं (स्वरं) प्रपञ्चय (विस्तारय); [मधुरमालप इति भावः]। हे तरुणि (किशोरि) मधुरालापैः (मधुरैः आलापैः भाषितैः) तापं (मन्मथसन्तापं) विनोदय (प्रशमय)। हे सुमुखि (सुवदने), दृष्टिभिः (कृपास्निग्धावलोकनैः) विमुखीभावं (वैमुख्यां प्रत्याख्यानकार्कश्यमिति यावत्) विमुञ्च (त्यज) मां न मुञ्च (मा त्याक्षीः) [सुमुख्यास्ते विमुखीभावो न युक्त इत्यर्थः]। [कथमेवं करोमीत्याह]—हे मुग्धे (विचारमूढ़े) प्रियः अयम् अतिशयस्निग्धः (अतिप्रेमवान्), [कथं स्निग्धज्ञानम् अत आह]—स्वयम् [अनाहूत एव] उपस्थितः (आगतः), [अतस्त्यागे मूढ़ता एवेत्यर्थः]॥४॥

पद्यानुवाद—

तन्वि! मौन हो मार रही क्यों? पंचम स्वरमें बोलो।
तरल दीठसे देख हृदयके, सारे बन्धन खोलो॥
विमुख भाव यह सुमुखि! तुम्हारा अनुचित आज बड़ा है।
स्वयं स्निग्ध अतिशय तव प्रिय, यह मुग्धे! सजल खड़ा है॥

अनुवाद—हे कृशाङ्गि! तुम्हारा यह व्यर्थ मौन-अवलम्बन मुझे व्यथित कर रहा है। हे तरुणि! पञ्चम स्वरका विस्तार करो। मधुर आलापों तथा कृपा अवलोकनके द्वारा मेरे संतापका विमोचन करो। हे सुमुखि! अपनी विमुखताके भावका परित्याग करो, मेरा त्याग नहीं। हे अविचारकारिणि! तुमसे अतिशय स्नेह करनेवाला तुम्हारा प्रिय यहाँ उपस्थित है।

बालबोधिनी—श्रीराधाने अब भी कोई उत्तर न दिया, तब श्रीकृष्ण अत्यन्त अनुनय भरे वचनोंसे उनसे कहने लगे—हे तन्वि! कितनी कृशताको प्राप्त हो गयी हो? तुम्हारी चुप्पी तुम्हें व्यर्थ ही अन्दर ही अन्दर कुतर रही है, मुझे इतना कष्ट दे रही है, पञ्चम राग छेड़ो, कोमलता धारण करो। इस वसन्त ऋतुमें तो कामिनियाँ अपने प्रियतमोंका अनुकरण किया करती हैं, तुम तो कोयलसे भी अधिक मधुर संलापिनी हो, मधुर आलाप करो, अपनी दृष्टिसे रस-वृष्टि करो। हे तरुणि! कृपा-अवलोकन द्वारा मेरा संताप दूर करो। हे सुमुखि! तुम्हारे लिए मेरे प्रति वैमुख्य उचित नहीं है। उदासीनताका अपरिग्रह करो, दम्भ छोड़ दो, मेरा परित्याग मत करो। हे मुग्धे! हे विचाररहिते! मैं तुम्हारा प्रिय हूँ। अतिशय स्निग्ध स्नेहपरायण हूँ। अनाहूत ही यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। यह देखो साश्रु होकर खड़ा हूँ। अपनी स्नेह दृष्टिसे मुझे बाँध लो।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी वृत्त, यथासंरत्न अलङ्कार, अनुकूल नायक, प्रसाद गुण, कैशिकी वृत्ति, वैदर्भी रीति तथा मागधी गीति है।

बन्धूकद्युति-बान्धवोऽयमधरः स्निग्धो मधूकच्छवि -
चकास्ति नील-नलिन श्रीमोचने लोचनम्।
गण्डश्चण्डि! नासाभ्येति तिल-प्रसून-पदवीं कुन्दाभदन्ति! प्रिये!
प्रायस्त्वन्मुख-सेवया विजयते विश्वं स पुष्पायुधः॥५॥

अन्वय—[अतः पञ्चपुष्पाञ्चितमास्यं ते पुष्पायुधविलासेन मां दुनोतीति भङ्ग्यास्तदङ्गानि स्तौति]—अयि चण्डि (कोपने) अयि प्रिये, अयं स्निग्धः (लावण्यमयः) तव अधरः बन्धुकद्युतिवान्धवः (बन्धुकस्य पुष्पविशेषस्य बाँधुलि फुल इति भाषा या द्युतिः कान्तिः तस्या वान्धवः बन्धुककुसुम

सदृश इत्यर्थः, लोहितत्वात् साम्यम्) गण्डे (कपोले) मधुच्छविः (मधुकपुष्पस्य महुयाफुल इति भाषा छविर्दीप्तिः) चकास्ति [पाण्डुत्वात् अत्रापि साम्यम्] [तथा] नील-नलिन-श्रीमोचने (नीलनलिनयोः नीलोत्पलयोः श्रीमोचने शोभा-तिरस्कारके) लोचने [चकास्तः] [कार्ष्ण्यादत्र साम्यम्] अयि कुन्दाभ-दन्ति (कुन्दकुसुमदशने)। अत्रापि शौक्लात् साम्यम्] [तव] नासा (नासिका) तिलप्रसूनपदवीं (तिलप्रसूनस्य तिलपुष्पस्य पदवीं) अभ्येति (तिल-कुसुम-सदृशी भातीत्यर्थः) [अत्र आकृत्या साम्यम्]; [अतएव] सः (प्रसिद्धः) पुष्पायुध (कामः) प्रायः (बाहुल्येन) त्वन्मुखसेवया (तव मुखाराधनेन) [त्वन्मुखस्थितानि एतानि कुसुमानि लब्ध्वा तैरेवायुधैः] विश्वं विजयते (अभिभवति) ॥५॥

पद्यानुवाद—

अधर सुमन बन्धूक सरस सम, कल कपोल रस भीने।
फूल मधूक बन्धुसे दशित, नेत्र नलिन-छवि लीने॥
तिल-प्रसून-पदवी सी नासा दन्त कुन्द सम भासे।
मुख आश्रित पुष्पायुध तेरे, जग विजयी हो हासे॥

अनुवाद—हे प्रिये! चण्डि! तुम्हारा अधर बन्धूक-पुष्पकी भाँति मनोहर अरुण वर्णके हैं, तुम्हारे सुशीतल कपोल मधूक पुष्पकी छविको धारण किये हुए हैं, तुम्हारे लोचन इन्दीवरकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे हैं, तुम्हारी नासिका तिलके फूलके समान है, तुम्हारे दशन कुन्द पुष्पकी भाँति शुभ्रवर्णीय हैं। हे प्रिये! पुष्पायुधने अपने पाँच पुष्प रूपी बाणोंके द्वारा तुम्हारे मुखकी सेवा करके सारे संसारको जीत लिया है।

बालबोधिनी—हे प्रिये! तुम्हारे मुखकमल पर पुष्पधन्वा कामदेवके समान पञ्च आयुध विलसित हो रहे हैं—हे चण्डि! यह सुविख्यात विश्व विजेता कामदेव तुम्हारे इन पुष्प आयुधोंको लेकर ही समस्त विश्वको विजय कर रहा

है। विश्व-विजय करनेके बाद ये आयुध तुम्हारे मुखमण्डल पर शोभा प्राप्त कर रहे हैं। 'चण्डि'—इस संबुद्धि पदसे तात्पर्य है कि अब तक क्रोधका परित्याग नहीं किया है। चण्डि अर्थात् कोपने! पञ्चबाणोंका सवैशिष्ट्य वर्णन इस प्रकार है—

(१) तुम्हारे अधर बन्धूक अर्थात् दुपहरियाके फूलके समान लाल वर्णके हैं। ये कामदेवके रक्तवर्णके **आकर्षण** बाण हैं।

(२) तुम्हारे सुशीतल कपोल मधूक अर्थात् महुयेके समान सरस सुनहली पाण्डूवर्ण कान्तिमय हैं। मानो अभी-अभी उसमेंसे रस चू पड़ेगा। ये कामदेवके पीतवर्णके **वशीकरण** बाण हैं।

(३) तुम्हारी नीली आँखें समस्त सौन्दर्यका सार अपने साथ ही सन्निहित किये हुए हैं। इन्होंने नील कमलोंकी सुन्दरताका तिरस्कार कर दिया है। ये कामदेव के कृष्ण-वर्णीय **उन्मादन** बाण हैं।

(४) तुम्हारी नासिका तिलके फूलके सदृश है। ये कामदेवके पीतवर्णीय **द्रावण** बाण हैं।

(५) तुम्हारे दाँत कुन्द पुष्पके समान हैं। ये कामदेवके श्वेतवर्णीय **शोषण** बाण हैं।

इस प्रकार अपने सम्पूर्ण पञ्च आयुधोंद्वारा कामदेव तुम्हारे मुखकी सेवाके प्रसादसे विश्व विजय कर रहा है। प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है।

दृशौ तव मदालसे वदनमिन्दु-सन्दीपनं
गतिर्जन-मनोरमा विजितरम्भमूरुद्वयम्।
रतिस्तव कलावती रुचिरचित्रलेखे भ्रुवा-
वहो विबुध-यौवतं वहसि तन्वि! पृथ्वीगता॥६॥

अन्वय—अयि तन्वि (कृशाङ्गि), तव दृशौ (नयने) मदालसे (मदजन्यहर्षेण अलसे मन्थरे) [स्वर्गे तु एकैव मदालसानाम्नी अङ्गना; ममाङ्गना त्वं तु दृग्रूपे द्वे मदालसे धारयसि]; वदनम् इन्दुसन्दीपनं (इन्दुः चन्द्रः तस्य सन्दीपनं शोभावृद्धिकरं चन्द्रादपि समधिक-शोभासम्पन्नमित्यर्थः) [स्वर्गेऽपि इन्दुसन्दीपनी-नाम्नी काचिदस्ति]; (तव) गतिः (गमनं) जनमनोरमा (जनस्य मम मनोहारिणी) [स्वर्गेऽपि जनमनोरमा इति काचित्] ऊरुद्वयं (जघन-युगलं) विजितरम्भम् (विजिता तिरस्कृता रम्भा कदली येन तत् कदल्या अपि समधिकशोभामयम्) [स्वर्गेऽपि रम्भानाम्नी काचित्]; तव रतिः (सुरतविहारः) कलावती (सुकौशलवती) [स्वर्गेऽपि कलावतीनाम्नी काचित् विद्यते]; भ्रुवौ च रुचिरचित्रलेखे (रुचिरा मनोज्ञा चित्रा चमत्कारिणी लेखा ययोस्तादृशौ) [स्वर्गेतु एका एव चित्र-लेखा]; अहो त्वं [क्षीणापि] पृथ्वीगता (भूतलस्था) [अपि] विवुध-यौवतं (देवयुवतीसमूहम्) बहसि (धारयसि)॥६॥

पद्यानुवाद—

अवनी-अप्सरी! अलस नेत्रमयि! वदन इन्दु तव शोभे।
गति मनहर, रति पटु, रम्भा-उरु, चित्रलिखित भौं लोभे॥

अनुवाद—हे तन्वि! आश्चर्य है, धरणि तलमें अवस्थिता होकर भी तुम स्वर्गस्था विद्याधरियोंके समान प्रतीत हो रही हो, तुम्हारे नयन सिन्धु मदालसाके मदसे अलस हो रहे हैं। तुम्हारा वदन विवुध-रमणी इन्दु सन्दीपनीके समान है। तुम्हारा गमन देववनिता मनोरमाके समान मनोहर है, तुम्हारे उरुद्वयने सुरयोषिता रम्भाको भी पराजित कर दिया है। तुम्हारा रति-कौशल स्वर्गस्था कलावतीके समान विविध कौशलयुक्ता है और तुम्हारे भ्रूयुगल चित्रलेखाके समान मनोहारी एवं विचित्र हैं।

बालबोधिनी—हे तन्वि राधिके! यद्यपि तुम इस पृथ्वी पर अवस्थित हो, फिर भी ऐसा लगता है जैसा समस्त

देवस्त्रियोंका समूह तुम्हारे भीतर निवास कर रहा है। तुम्हारी आँखें सौभाग्यमदसे अलसायी हुई हैं कि अब तो प्रिय तुम्हारे चरणोंमें हैं। इस प्रकार मदजनित हर्षके कारण मेरी अङ्गना होकर भी तुमने स्वर्गकी अप्सरा मदालसाको अपने नेत्रोंमें धारण किया है। तुम्हारा मुखमण्डल विबुधरमणी इन्दुमतीका आवास है, जहाँ चन्द्रमासे भी अधिक आवश्यकता है। तुम्हें देखकर चन्द्रमाके मनमें ईर्ष्या उत्पन्न होती है, क्योंकि उसमें इतनी शक्ति कहाँ है? तुम्हारी गति जन-जनके मनको आह्लादित करनेवाली है। अतएव तुममें मनोरमा नामक अप्सराका निवास है। तुम्हारी जाँघ कदली वृक्षको भी अनादृत कर रही है, जहाँ मानों रम्भाका निवास है। तुम्हारी गति हाव, भाव, विलास किलकिञ्चित् आदि कलाओंसे युक्त है। अतएव तुममें कलावती नामक अप्सराका निवास है। तुम्हारे भ्रूयुगल मनोहर चित्ररचनाके समान हैं। वहाँ लगता है कि तुम पृथ्वी पर रहती हुई भी इस पृथ्वी छन्दमें उतरकर देवताओंके यौवनका वितान बनी हुई हो, तुम्हारा यौवन दिव्य हो।

प्रस्तुत श्लोकमें पृथ्वी छन्द तथा कल्पितोपमालंकार है।

प्रीतिं वस्तनुतां हरिः कुवलयापीडेन सार्धं रणे
राधा-पीन-पयोधर-स्मरण कृत्कुम्भेन सम्भेदवान्।
यत्र स्विद्यति मीलति क्षण क्षिप्ते द्विपे तत्क्षणात्
कंसस्यालमभूत् जितं जितमिति व्यामोह-कोलाहलः ॥७॥

इति एकोनविंशः सन्दर्भः।

इति श्रीगीतगोविन्दे महाकाव्ये मानिनी वर्णने मुग्ध माधवो नाम दशमः सर्गः।

अन्वय—[एवं स्वप्रिया-गुण कीर्त्तनावेशान्महासङ्कट-स्थानानुभूत-तत्स्पर्श-सुख-स्मरण-परवशं श्रीकृष्णं वर्णयन् भक्तानाशास्ते]—[यः

हरिः] राधा-पीन-पयोधर-स्मरणकृत्-कुम्भेन (राधायाः पीनयोः पयोधरयोः स्मरणकृते) सादृश्येन संस्कारोद्-बोधकतया स्मारकौ कुम्भौ यस्य तादृशेन) कुवलयापीड़ेन (तदाख्येन कंसहस्तिना) सार्द्धं (सह) रणे (युद्धे) सम्भेदवान् (आसङ्गवान्) [कुवलयापीड़स्य कुम्भस्पर्शेन राधास्तनस्पर्श-स्मृतिवशात् सात्त्विक-भाववान् सन् इति भावः] [तथा च] यत्र (सम्भेदे) [तत्स्पर्शसुखेन सात्त्विकोदयात्] क्षणं (क्षणं व्याप्य) [कृष्णे] स्विद्यति (कान्ताकुचयुगस्मरणात् सात्त्विकभावोदयेन स्वेदं मुञ्चति सति) [तथा] मीलति (आवेशभरात् नेत्रे संकोचयति सति) [कंसस्य कंसपक्षीय-जनसमूहस्य अस्माभिः जितं जितमिति व्यामोह-कोलाहलः अलमभूत्] अथ [तेन श्रीकृष्णेन] तत्क्षणात् द्विपे (हस्तिनि कुवलयापीड़े) क्षिप्ते (हत्वा दूरं प्रक्षिप्ते सति) कंसस्य (कंसपक्षीयस्य जनसमूहस्य) [अनेन] जितं जितमिति व्यामोह-कोलाहलः (व्यामोहेन शोकज-पीड़या यः कोलाहलः कलरवः) अलमभूत् (प्रादुरासीत्) सः (तद्विधः) हरिः वः (युष्माकं) प्रीतिं (आनन्दं) अनुताम् (विस्तारयतु); [पूर्वत्र व्यामोहः आनन्देन, उत्तरत्र तु शोकेनेति ज्ञेयम्]। [अतएव सर्गोऽयं श्रीराधास्मरण-विकार-वर्णने मुग्धो मनोहरो माधवो यत्र स इति दशमः]॥७॥

अनुवाद—वे भगवान् श्रीहरि सम्पूर्ण जगतका आनन्द वर्द्धन करें; जिन्हें कुवलयापीड़ हाथीके उत्तुंग कुम्भको देखकर श्रीराधाके पीन पयोधरोंका स्मरण हो आया, जो युद्धकालमें उसके स्पर्श मात्रसे अनङ्ग रसावेशके कारण स्वेदपूर्ण हो पड़ा, पुनः जिनके नयन युगल निमीलित हो गये, जिसे कंसपक्षीय जीत गये, जीत गये (हम जीत गये) और अन्ततः उसको मार देनेपर कृष्णपक्ष जीत गये, जीत गये इस प्रकारका व्यामोहयुक्त आनन्दसूचक महाकोलाहल हुआ था।

बालबोधिनी—इस प्रकार अपनी प्रियाके गुण-कीर्तनके आवेशमें अत्यन्त संकटपूर्ण स्थितिमें श्रीराधाजीके स्पर्श-सुखानुभूतिका स्मरण श्रीकृष्णके द्वारा होने पर कवि जयदेव सभीको आशीर्वाद प्रदान कर रहे हैं कि श्रीहरि आपलोगोंका प्रीति-वर्द्धन करें। जब भगवान् श्रीकृष्णका कंसके हाथी कुवलयापीड़के साथ युद्ध हुआ, तब उस युद्ध-स्थलमें उस हाथीके कुम्भस्थलको देखकर उन्हें श्रीराधाजीके पीन पयोधरोंका स्मरण हो आया। उस हाथीके स्पर्शसे उन्हें श्रीराधाजीके स्पर्शानुभूति जन्य सात्त्विक भावका उदय हुआ। उस शृङ्गारिक आनन्दमें विह्वल हो जानेसे अर्थात् श्रीराधाजीके मिलन-जन्य आनन्दके स्मरणसे उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये। तब कंसके सभासदोंको यह समझकर आनन्द हुआ कि हमारी जीत हो गयी है, श्रीकृष्णने भयभीत होकर अपनी आँखें बन्द कर ली हैं। पर जैसे ही श्रीकृष्णने व्यामोह वाक्योंकी उच्च ध्वनिका श्रवण किया, तब अतिशीघ्र स्वयंको संभाल लिया और क्षणभरमें ही उस हाथीको पछाड़कर मार गिराया। तब उसी शत्रु पक्षमें उन्हीं सभासदोंके मुखसे अचानक यह ध्वनि निकल पड़ी—श्रीकृष्ण जीत गये, जीत गये। यह ध्वनि आनन्ददायक कोलाहल बन गई।

इस प्रकार यह सर्ग श्रीराधाके स्मरण-जनित विकारके वर्णनसे युक्त है। इस विकार भाव द्वारा माधव अत्यन्त मनोहर वेश धारण किये हुए हैं।

इति दशम सर्ग।

❁ ❁ ❁

एकादशः सर्गः

सामोद–दामोदरः

सुचिर मनुनयेन प्रीणयित्वा मृगाक्षीं
गतवति कृतवेशे केशवे कुञ्जशय्याम्।
रचित–रुचिर–भूषां दृष्टि मोषे प्रदोषे
स्फुरति निरवसादां कापि राधां जगाद॥१॥

अन्वय—[एवं प्रियां प्रसाद्य कुञ्जशय्यां गतवति श्रीकृष्णे]—कापि (सखी) दृष्टिमोषे (दृष्टिं मुञ्चाति तमसावृणोति तथोक्ते दर्शनचौरे इत्यर्थः) प्रदोषे (सन्ध्यायां) स्फुरति (प्रकाशमाने सति) सुचिरं (दीर्घकालं व्याप्य) अनुनयेन मृगाक्षीं (श्रीराधां) प्रीणयित्वा (सन्तोष्य) कृतवेशे (परिहित–शृङ्गारोचित–वेशे) केशवे (कृष्णे) कुञ्जशय्यां गतवति [सति] निरवसादां (अनुनयादिना अवसादरहितां स्फुर्त्तिमतीमित्यर्थः) [अतएव] रचित–रुचिर–भूषां (रचिता रुचिरा प्रियमनोहारिणी भूषा यया तां) राधां जगाद (वभाषे)॥१॥

अनुवाद—मृगनयना श्रीराधाको चिरकाल तक अनुनय-विनयसे प्रसन्न करके श्रीकृष्ण चले आये और मोहनवेश धारणकर निकुञ्ज–मन्दिर स्थित शय्या पर अवस्थित हो उनकी प्रतीक्षा करने लगे, इधर दृष्टि–आच्छादनकारिणी सन्ध्या उपस्थित हुई तब विविध मनोहर अलङ्कार विभूषिता श्रीराधासे कोई सखी इस प्रकार कहने लगी—

पद्यानुवाद—

चिर अनुनयसे हो अनुकूल धरकर सुन्दर वेश,
जानेको उद्यत है जो अब कुंज शयन हरि देश।
खेदरहित आतुर राधासे दृगहर संध्या काले
सखी एक हँस बोल उठी—हे मृगनयनी! ब्रजवाले॥

बालबोधिनी—इस प्रकार श्रीकृष्ण श्रीराधाका बहुत देर तक मनुहार करते रहे, अन्ततः श्रीराधा प्रसन्न हो गयीं और श्रीकृष्ण समाश्वस्त होकर निकुञ्ज गृहमें केलि-शय्याकी रचना करने चले गये। मृगनयनी श्रीराधा उल्लसित हो गयीं। सारा खेद विषाद अपगत हो गया, हिरणी जैसी आँखोंमें भावोंका उद्वेलन होने लगा। उनमें हर्ष समा गया। भीतर ही भीतर उमगने लगीं। अभिसरणके योग्य वेशभूषा नील निचोल (नीले वसन) को पहनने लगीं, जिसे कोई और न देख सके, उनसे मिलन योग्य मनोहर आभूषणोंको स्वयं ही पहनने लगीं। इस आभरणोंको भी कोई देख न सकेगा। तभी कोई सखी श्रीराधासे अनुरोधपूर्वक श्रीकृष्णसे मिलनके लिए प्रोत्साहित करते हुए कहने लगी—राधे, अब तो तुम्हें विश्वास हो गया न, मधुसूदन तुम्हारे अनुगत हैं। प्रदोषका अर्थ है—रात्रिकाल स्फुरित हो रहा है, इस समय दृष्टिमें कुछ स्पष्ट नहीं होता।

प्रस्तुत श्लोकमें मालिनी छन्द है।

अथ विंश सन्दर्भः

गीतम् ॥२०॥

वसन्तरागयतितालाभ्यां गीयते।

अनुवाद—श्रीगीतगोविन्द काव्यका यह बीसवाँ प्रबन्ध वसन्त राग तथा यति तालमें गाया जाता है।

विरचित-चाटु-वचन-रचनं चरणे रचित-प्रणिपातम्।
सम्प्रति मञ्जुल-वञ्जुल-सीमनि केलि-शयनमनुयातम्॥
मुग्धे! मधु-मथनमनुगतमनुसर राधिके!॥१॥ ध्रुवम्

अन्वय—अयि मुग्धे (विचारमूढ़े) राधिके सम्प्रति (अधुना) विरचित-चाटु-वचन-रचनं (विरचिता भङ्ग्या प्रतिपादिता चाटुवचनानां रचना येन तं) [चाटुवचनमात्रेण कथं ज्ञेयानुगतिः?

''चल सखि! चल घनश्याम सदनमें।''

तत्राह] चरण-रचित-प्रणिपातं (चरणे रचितः कृतः प्रणिपातः प्रणतिः येन तं पादानतमित्यर्थः) [त्वत्समीपे किमिति मया प्रार्थ्यते? तत्राह] सम्प्रति (तव प्रसादमालक्ष्य) मञ्जुलवञ्जुलसीमनि (मञ्जुलानां मनोज्ञानां वञ्जुलानां वेतसानां सीमनि मध्यप्रदेशे) केलिशयनं (विहारशय्याम्) अनुघातम् (प्रस्थितम्) अनुगतं (शरणागतं) मधुमथनं (कृष्णं) अनुसर (अभिगच्छ) [अनुगतानु-गमनशैथिल्यात् मुग्धे इति सम्बोधनम्]॥१॥

अनुवाद—हे मुग्धे राधिके! विविध प्रकारके चाटुवाक्योंके अनुनय विनय द्वारा तुम्हारे चरणोंमें विनत होनेवाले श्रीकृष्ण इस समय मनोहर वेतस वनके लता-कुञ्जमें केलि शय्या पर शयन कर रहे हैं, तुम उनके अनुगत होकर उनका अभिसरण करो।

पद्यानुवाद—

चल सखि, चल घनश्याम सदन में मंजुल वंजुल
कुंज केलि थल देख थके हरि तुझको पल-पल।
की मनुहारे गिरे चरण तल भर लाये री नीर नयन में
चल सखि! चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—सखी कहने लगी—हे राधिके! वे मधुरिपु श्रीकृष्ण तुम्हारे सम्पूर्ण रूपसे अनुगत हो गये हैं। तुम उनके पास चलो एवं शीघ्र ही अभिसरण करो। देर मत करो। अपने मधुर-मधुर वचनोंसे उन्होंने तुमसे अनुनय विनय किया है। तुम्हारे चरणोंमें सर्वात्मभावसे प्रणिपात किया है। तुम्हारे स्वागतकी तैयारीमें संलग्न होकर इस समय वेतसी कुंजके अन्तर्गत केलि-शय्या पर आसीन हो रहे हैं, तुम उनका अनुसरण करो। हे मुग्धे! तुम कितनी भोली हो, प्रियके अभिसरण कालको भी नहीं जानती हो। चलो उनका अनुसरण करते हुए सर्वात्मभावको प्राप्त हो जाओ।

प्रस्तुत श्लोकमें 'राधिके' में 'क' प्रत्यय उसके मुग्धत्वको द्योतित करता है। मधुसूदनका अनुसरण करो। विलम्ब मत

करो, यह ध्रुव पद है। तञ्जुल आदि विभावसे निकुंज उपादान इत्यादि प्रकट हो रहा है।

घन-जघन-स्तन-भार भरे! दरमन्थरचरणविहारम्।
मुखरित-मणिमञ्जीरमुपैहि विधेहि मरालनिकारम्॥
मुग्धे.... ॥२॥

अन्वय—[एतन्निशम्य मौनेन सम्मतिमूहमाना शीघ्रं गमनप्रकारमाह]—अयि घन-जघन-स्तन-भारभरे (जघनेच स्तनौच जघनस्तनं घनं संहतं यत् जघनस्तनं तस्य भारस्य भरः अतिशयो यस्याः तत्सम्बुद्धौ) [अतएव] दर-मन्थर-चरण-विहारं (दरमन्थरः ईषन्मन्दः चरणविहारः पादविक्षेपः यथा स्यात् तथा) मुखरितमणिमञ्जीरं (मुखरितौ शब्दितौ मणिमञ्जीरौ रत्ननूपुरौ यत्र तत् यथा तथा) उपेहि (कृष्णमुपगच्छ) [तेन] मरालनिकारं (मरालानां राजहंसानां निकारं परिभवं) विधेहि (गमनेन मरालं पराजयस्वेत्यर्थः); [नूपुर-ध्वनेर्हंसपरिभावित्वादिति भावः]॥२॥

अनुवाद—हे परस्पर गुरु-भारयुक्त स्तन और जघन युगल शालिनि राधे! तुम ईषत् मन्द-मन्थर गतिसे चरणोंको विन्यस्त करते हुए मणिरचित नूपुरोंसे मनोहर शब्द करते हुए मराल-गमनकी शोभाको भी पराजित करते हुए श्रीकृष्णके समीप चलो।

पद्यानुवाद—

जीन पयो धन सघन नव, मणि नूपुरका
झन-झन-झन-खा ले मन्थर गति अति सखि।
अभिनव हर हंसोंकी चाल चरणमें
चल सखि! चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—स्थूल उरुद्वय एवं पीन पयोधरोंसे विभूषित श्रीराधा! तुम स्तन-भार एवं श्रोणी-भारसे झुकी जा रही हो। तुम धीरे-धीरे चलो, तुम्हारी विलम्बित लयमयी चाल हंसोंको भी लज्जित करनेवाली है। तुम धीरे-धीरे मन्थर

गतिसे उस मंजुल केलि-कुञ्जमें पधारो। अपने मणिमय नूपुरोंसे सुसज्जित कदमोंको ऐसे विन्यस्त करो कि उनका मधुर रस-वर्द्धक नाद होता रहे। हे मुग्धे! अब इन शिथिल पादारविन्दोंको पृथ्वी पर रखते हुए हंसकी चालको पराजित करते हुए मधुसूदनके समीप चलो। देर मत करो। इन मणिनूपुरोंको मुखरित होने दो।

श्रृणुरमणीयतरं तरुणीजनमोहन-मधु-रिपु-वरावम्।
कुसुम-शरासन शासन-वन्दिनि पिकनिकरे भज भावम्॥
मुग्धे.... ॥३ ॥

अन्वय—[तत्र च गत्वा]—रमणीयतरं (अतिमनोहरं) [अतएव] तरुणी-जन-मोहन-मधुरिपु-रावम् (तरुणीजनानां युवतीनां मोहनं मोहजनकं मधुरिपोः कृष्णस्य रावं वचनं) श्रृणु; [तथा] कुसुम-शरासन-शासन-वन्दिनि (कुसुम-शरासनस्य पुष्पधन्वनः कामस्य शासनम् आदेशः "हे युवत्यः कान्तसन्नाहमन्तरेण मद्बाणात् अन्यो रक्षिता नास्ति, अतो मानं त्यजत" इति कामाज्ञा तस्य वन्दिनि स्तावके) पिक-निकरे (कोकिलसमूहे) भावं (अनुरागं) भज। [इदानीं कोकिल-समूहे कृतं विद्वेषं त्यक्त्वा तेषामालापं सुखेन श्रृणु इत्यर्थः]॥३॥

अनुवाद—तुम तरुणियोंके मन-मोहक भ्रमरों (श्रीकृष्ण) के रमणीयतर सुमधुर वचनोंका श्रवण करो। कन्दर्पके सुमधुर आदेशका प्रचार करनेवाले कोकिल समूहके गानमें निज भावोंको प्राप्त करो।

पद्यानुवाद—

मधुवाणी मोहनकी सुन ले,
मोहित युवजन जिस पर गुन ले।
कुसुम शरासन शासन धुन ले॥
कूक उठी कोकिल मधुवन में।
चल सखि। चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—सखि! चल भी पड़ो। सुनो न, तुम्हारे अभिसार हेतु कितने ही मंगल संकेत हो रहे हैं। यह वसन्त-ऋतु है। चहुँ दिशाओंसे भ्रमरोंका गुंजन निनादित हो रहा है। ये तुम्हारी नूपुर ध्वनिसे ताल मेल बिठानेके लिए विकल हो रहे हैं। रमणीय तरुणीजनोंके चित्तको मोहित करनेवाली इन भ्रमरोंकी ध्वनि सुनो, सखि! जैसा यह मधुप श्यामवर्णका है वैसे ही श्रीकृष्ण श्यामवर्णके हैं। उनके अभिसरण हेतु संकेत नाद तरुणियोंके चित्तको मंगल कर देते हैं। भला उनकी सानुनयपूर्ण चाटुकारोक्तियाँ किसके मनको आन्दोलित नहीं करतीं। देखो, सुनो इस मधुमासमें कामदेवकी आज्ञाकारिणी कोकिलाएँ भी कूक उठी हैं। इनका पंचम स्वर मानो कामदेवकी आज्ञाका उद्‌घोष कर रहा है। कामदेवकी वन्दिनी होकर भी ये कूज रही हैं, तुम भी इन कोकिलाओंमें अपने भावोंको समाहित कर दो। कामदेवके आदेशको प्रसारित-प्रचारित होने दो। कामदेवके कुसुमसायक मनोजकी आज्ञाका डिम-डिम नाद (उद्‌घोष) करो। कामदेवका आदेश है—सभी विलासी तरुण-तरुणियाँ वसन्त ऋतुमें उन्मुक्त विहार करें।

प्रस्तुत श्लोकमें 'मधुप' शब्दसे श्रीकृष्ण उपलक्षित हो रहे हैं।

'कुसुमशरासन शासन वन्दिनि' पदसे कोकिलाओंके विभावत्वको प्रकट किया गया है।

अनिल-तरल-किसलय-निकरेण करेण लतानिकुरम्बम्।
प्रेरणमिव करभोरु! करोति गतिं प्रति मुञ्च विलम्बम्॥
मुग्धे.... ॥४॥

अन्वय—[मद्वचनमनुमोदमाना लतासन्ततिरपि त्वां प्रेरयतीत्याह] —अयि करभोरु ("मणिबन्धादाकनिष्ठं करस्य करभो बहिः" इति अमर-शासनात् करभः कनिष्ठाङ्गुलितो मणिबन्धपर्यन्तः करस्य बहिर्भागः तद्वत्, यद्वा करिशावक-शुण्डवत् ऊरु

यस्याः तत्सम्बुद्धौ) लतानिकुरम्बं (लतासमूहः) [अपि] अनिलतरल-किशलयनिकरेण (अनिलेन वायुना तरलः चञ्चलः यः किशलयनिकरः तद्रूपेण) करेण प्रेरणमिव करोति; [तस्मात्] गतिं (गमनं) प्रति विलम्बं मुञ्च [अचेतनानुकूल्येनापि त्वच्चेतो न द्रवतीत्यभिप्रायः। वस्तुतस्तु उद्दीपनमेवैतत् सर्वम्]॥४॥

अनुवाद—हे करिशुण्ड सम रमणीय उरु युगल शालिनि! पवन वेगसे चञ्चल लता-समुदाय नये-नये पल्लवों द्वारा मानो तुम्हें संकेत करते हुए प्रेरित कर रहा है। अतः हे करभोरु! अब जानेमें विलम्ब मत करो।

पद्यानुवाद—

लतापुंजके पल्लव हिलकर,
बुला रहे ज्यों उठा सहज कर,
हे करभोरु। गमन कर सत्वर।
मद छाया है मलय पवनमें,
चल सखि! चल घनश्याम सदनमें॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे करभोरु! अर्थात् हाथीकी सूँड़के समान जंघाओं वाली! वायुसे चञ्चल पल्लवरूपी हाथोंसे लताओंके समूह तुम्हें श्रीहरिके पास जानेकी प्रेरणा दे रहे हैं, चलो, सारी प्रकृति तुम्हें आगे ले जानेके लिए विकल है, अब विलम्ब मत करो। यह मन्द-मन्द बयार चल रही है। किसलयके आन्दोलन-संकेत तुम्हें प्रोत्साहित कर रहे हैं। अचेतन चेतनके समान तुम्हें प्रतिबोधित कर रहे हैं। अतः तुम्हारी इष्ट-सिद्धि अवश्यम्भावी है। त्वरित गतिसे चलो, जल्दी करो। तुममें अनुरक्त प्रियतम श्रीकृष्ण वञ्जुल लतागृहमें विलास शय्या पर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। चलते समय तुम्हारे पैरोंका ऊपरी हिस्सा हथेली या हथेलीकी ढलान जैसा लगता है।

स्फुरित-मनङ्ग-तरङ्ग-वशादिव सुचित हरि-परिरम्भम्।
पृच्छ मनोहर-हार-विमल-जलधारममुं कुचकुम्भम्॥
मुग्धे.... ॥५॥

अन्वय—[एवं भावमुद्दीप्य विकारान् दर्शयति]—यदि मद्वचन-मनात्मीयमिति मन्यसे तर्हि]—अनङ्गतरङ्गवशात् (कामावेशहेतोः) स्फुरितमिव (कम्पितमिव) [अतएव] सूचित-हरि-परिरम्भं (सूचितः प्रकटितः हरेः कृष्णस्य परिरम्भः आलिङ्गनं येन तथोक्तं) [वामस्तन-कम्पनं हि प्रियसङ्गमं सूचयतीति प्रसिद्धिः]; [तथा] मनोहर-हार-विमल-जलधारम् [मनोहरः हार एव विमला स्वच्छा जलधारा यत्र तादृशं; [कुचोऽयं कलसत्वेन निरूपितः कम्पितश्चानङ्ग-तरङ्गवशात् तस्मात् हारोऽपि जलधारात्वेन निरूपितः] अमुं कुचकुम्भं पृच्छ (प्रियतम-समीपे गमनमधुन। युक्तं नवेति जिज्ञासस्व)॥५॥

अनुवाद—मनोहर हाररूपी विमल जलधाराओंसे परिशोभित अनङ्ग-तरङ्गके वशीभूत श्रीहरिके परिरम्भणके सूचक अपने इन प्रस्फुरित कुच-कुम्भोंसे ही पूछ कर देखो।

पद्यानुवाद—

प्रिय आलिंगनके आये क्षण,
मदन तरंगित कंपित मृदुतन।
पूछ कुचोंसे हार धार जल ढरते॥
जो वन कुम्भ शकुन में।
चल सखि! चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे राधे! क्या सोच रही हो? अब तुम्हें और किस प्रमाणकी आवश्यकता है। यदि तुम्हें मेरा विश्वास नहीं है तो मनोहर हाररूपी जलधारा वाले कुम्भके समान अपने कुचोंसे पूछ लो। भला इनके प्रस्फुरणका कारण क्या है? ये कामदेवकी तरंगसे वशीभूत होकर तरंगायित हो रहे हैं और प्रिय आलिंगनकी सूचना दे रहे हैं, इनकी रसधारामें ही श्रीहरि प्रेम-सागरमें निमग्न हो जायेंगे। इन्हें श्रीहरिके कर-कमल स्पर्शकी लालसा हो रही है। इन स्तनरूपी शकुन-कलशों पर विद्यमान विमल मनोहर हार पावन एवं निर्मल जलकी धाराके समान है। यही

जलकी धारा तरङ्गायमान होकर प्रिय प्राप्तिका संदेशा दे रही है। कामके आवेशसे स्फुरित तुम्हारे स्तन ही तो फड़क कर शुभ शकुन बन रहे हैं। इसे अभिशाप समझकर अब तुम विलम्ब मत करो, शीघ्र चलो।

अधिगतमखिल-सखीभिरिदं तव वपुरपि रति-रण-सज्जम्।
चण्डि! रणित-रसना-रव-डिण्डिममभिसर सरसमलज्जम्॥
मुग्धे.... ॥६॥

अन्वय—[सम्प्रति माधवानुसरणे काञ्च्यादि-भूषणमेव त्वां वाद्यं व्यनक्तीत्याह]—अयि चण्डि (रतिरणप्रवीणे) [न केवलं तव मन एव, परन्तु] तव वपुः (शरीरम्) अपि रतिरणसज्जं (रतिरणे) सुरतसंग्रामे सज्जं (सज्जितं) [इति] अखिलसखीभिः (सहचरीवर्गैः) अधिगतं (परिज्ञातम्) [अन्यथा कथं काञ्च्यादि ग्रहणमति भावः]; [अतः] रणितरसनारवडिण्डिमं (रणिता शब्दिता या रसना काञ्ची तस्याः रवः ध्वनिरेव डिण्डिमः रणवाद्यभेदः यत्र तादृशं यथा तथा) सरसम् (सोत्साहम्) [अतएव] अलज्जं (लज्जाशून्यं यथा तथा) अभिसर (प्रियाभिमुखमनङ्गरङ्गभूमिं याहि) [रणसज्जितस्य विलम्बो भीतिमेव आसञ्जयति इत्यर्थः]॥६॥

अनुवाद—हे रतिरणनिपुणे! हे चण्डि! तुम्हारा यह शरीर रति-रण हेतु सुसज्जित हो रहा है। यह विलक्षणता तुम्हारी सखियोंने जान ली है। अतः लज्जाका परित्याग कर मणिमय मेखलाके मनोहर सिञ्जनसे डिण्डिम ध्वनि करती हुई परमोत्साहके साथ अभिसरण हेतु गमन करो।

पद्यानुवाद—

ज्ञात सखीसे लज्जित कैसे,
रति-रण-हित सज्जित है जिससे,
किंकिणी मिस बजती है जैसे।
मेरे स्मरकी सकल भुवनमें,
चल सखि! चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे कहती है कि अब क्यों ठसक रही हो, तुम्हारी अभिलाषा तो हदके पार चली गयी है। फिर ठहराव क्यों? श्रीकृष्णके साथ अभिसार करनेमें कैसी लज्जा, तुम्हारी सखियाँ ही हैं, बस यहाँ और कोई नहीं है। व्यर्थ ही क्यों कोप कर रही हो। तुम्हारी सभी सखियोंको यह बात अच्छी तरह मालूम हो गई है कि तुम्हारा शरीर रतिरूप संग्रामके लिए तत्पर है। यह शरीर अलंकारोंसे मण्डित हो रहा है। अर्थात् रति-क्रीड़ा उपयोगी सम्पूर्ण उपादानोंसे विभूषित हो रहा है। युद्धकी वरांगना बनकर तुम प्रस्तुत हो रही हो। ठीक ही तो है जिस तरह युद्धके लिए प्रयाणके समय विविध वाद्य बजाये जाते हैं। उसी तरह जब रति-रणके लिए तुम प्रस्थान करोगी तो उस समय करधनीमें संलग्न घुँघरू बजने लगेंगे। उसी डिण्डिम घोषको करती हुई तुम लाज छोड़कर रसके प्रवाहमें प्रवाहित होकर श्रीहरिके सन्निकट अनुरागके साथ अभिसरण करो। चलो, हे चण्डि! संकेत स्थलकी ओर उन्मुख हो।

रणके लिए उद्यत श्रीराधाके लिए चण्डी विशेषण उचित ही है।

स्मर-शर-सुभग-नखेन सखीमवलम्ब्य करेण सलीलम्।
चल वलय-क्वणितैरवबोधय हरिमपि निजगतिशीलम्॥
मुग्धे.... ॥७॥

अन्वय—स्मर-शर-सुभग-नखेन (स्मरस्य कामस्य शराइव सुभगाः शोभना नखा यस्य तादृशेन, तव पञ्च नखा एव सम्मोहनादीनि कामास्त्राणि इतिभावः) करेण (हस्तेन) सलीलं (सविलासं यथा तथा) सखीम् अवलम्ब्य चल (गच्छ) [गत्वाच] वलयक्वणितैः (कङ्कणसिञ्जनैः) निजगतिशीलं (निजगतौ त्वत्प्राप्तौ शीलं समाधिः चित्तैकाग्रतेति यावत् यस्य तादृशं हरिमपि (हरिञ्च) अवबोधय (ज्ञापय, रणाय सावधानं कुरु इति भावः) [समीचीनो योद्धाहि प्रतिभटमवहितं कृत्वैव युध्यते इत्यर्थः]॥७॥

अनुवाद—तुम्हारे करकमलके रमणीय पञ्चनख रति-रणोपयोगी मदनके पंचबाण स्वरूप हैं। इनसे अपनी सखीका आश्रय करके तुम लीलापूर्वक चलो। प्रख्यात शीलमय श्रीहरिको भी अपने वलयकी क्वणित ध्वनि से अवबोध करा दो।

पद्यानुवाद—

स्मर–शर–सम नख, कर निज सुन्दर,
दे हाथोंमें सखिके सत्वर,
खन–खन वलय बजा शैया पर।
चल हारे हरि शील दयनमें,
चल सखि! चल घनश्याम सदन में॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधाजीसे कहती है—हे सुभगे! तुम्हारे इन कोमल मनोहर हाथोंके नाखून कामदेवके पंच–बाणरूपी पुष्प हैं। इन सुन्दर नखवाले हाथोंसे बड़े हाव–भावपूर्वक सखीका हाथ पकड़कर लीलापूर्वक चलो। ये नख कामके बाणके समान ही बेधक हैं। इस रतिरणमें ये मनोहर नख ही तुम्हारे शस्त्रास्त्र हैं। जिस प्रकार कोई योद्धा अपने प्रतिद्वन्द्वी को सूचित करके ही युद्धमें प्रवृत्त होता है। उसी प्रकार तुम भी अपने हाथोंके कंकणकी ध्वनिसे, अपनी चूड़ियोंकी झंकारसे कामदेवके वशीभूत प्रतीक्षारत श्रीकृष्णको अपने आगमनको जता दो। वे अपनी तैयारीमें लगे हैं, अपने मनकी अभिलाषापूर्ण करना चाहते हैं। उन्हें सूचित करके ही तुम रतिरणमें प्रवृत्त होओ।

श्रीजयदेव–भणितमधरीकृत–हारमुदासितरामम्।
हरि–विनिहित–मनसामधितिष्ठतु कण्ठतटीमविरामम्॥
मुग्धे.... ॥८॥

अन्वय—अधरीकृतहारं (अधरीकृतः तिरस्कृतः हारः येन तत्; इदमेवगीतं परमं कण्ठभूषणमित्यर्थः) उदासितरामं (उदासिता तिरस्कृता रामा उत्तमा रमणी येन तथाविधं; सुन्दर्या रमण्या

अपि सुन्दरतरमित्यर्थः) श्रीजयदेवभणितं (श्रीजयदेवभाषितं) हरि-विनिहित-मनसां (हरौ कृष्णे विनिहितम् अर्पितं मनो येषां तादृशानां कृष्णभक्तानामित्यर्थः कण्ठतटीं (कण्ठदेशं) अविरामम् (निरन्तरम्) अधितिष्ठतु (कृष्णार्पितचित्ताः सततं जयदेवगीतं कीर्त्तयन्तु इति भावः)॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कथित यह गीत भूषण-स्वरूप मनोहर हार तथा मनमोहिनी वराङ्गनाको तिरस्कृत करनेवाला है, जिनका मन श्रीकृष्णके प्रति समर्पित हो गया है, ऐसे भक्तोंके कण्ठमें यह गीत अविरल रूपसे विराजित हो।

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेव कथित यह कविता कण्ठहार हो जिनकी।
रहे न इच्छा हार ग्रहण की वामा यौवन धनकी॥

बालबोधिनी—श्रीजयदेव कवि द्वारा कहा गया यह गीत रत्नोंके हारको तिरस्कृत करनेवाला, युवतियोंको उदासीन बनानेवाले भगवद्भक्तोंके कण्ठमें सदा निवास करे। यह हार अधरीकृत है। जो मुक्तादिसे ग्रथित हारको अवदोलित करनेवाला है। जिन पराशर आदि वैष्णवोंका चित्त भगवानमें लगा हुआ है, वे लोग रत्नोंके हारको नहीं, जयदेव कथित इस हारको धारण करेंगे। वे ही वैष्णव इस गीतको अपने कण्ठसे आलिङ्गित करेंगे—किसी रमणीको नहीं। यह हार इन्हीं वैष्णवोंके गलेमें विराजेगा। हार और रमणी तो सांसारिक रागियोंके गलेको अलंकृत करते हैं, और वे भी सभी अवस्थाओंमें नहीं बल्कि तारुण्यावस्थामें ही। जयदेव कवि कृत यह गीत श्रीहरि विषयक होनेसे भगवद्भक्तोंके कण्ठको सभी अवस्थाओंमें समलंकृत करे।

प्रस्तुत अष्टपदीमें शृङ्गार विप्रलम्भ नामक रस है। उत्तम नायक है। श्रीहरितालराजिजलधरविलसित नामका यह बीसवाँ प्रबन्ध सम्पूर्ण हुआ।

सा मां द्रक्ष्यति वक्ष्यति स्मरकथां प्रत्यङ्गमालिङ्गनैः।
प्रीतिं यास्यति रंस्यते सखि समागत्येति संचिन्तयन्॥
स त्वां पश्यति वेपते पुलकयत्यानन्दति स्विद्यति।
प्रत्युद्गच्छति मूर्च्छति स्थिर तमःपुञ्जे निकुञ्जेप्रियः॥१॥

अन्वय—[अथ सखी श्रीराधां त्वरयितुं श्रीकृष्णस्य अत्युत्कण्ठामाह]—सा (प्रिया मे) समागता मां द्रक्ष्यति; [दृष्ट्वा च] स्मरकथां (प्रेमालापं) वक्ष्यति; [ततश्च] प्रत्यङ्गं (अङ्गे अङ्गे) आलिङ्गनैः प्रीतिं यास्यति (प्राप्स्यति); [प्रीतियुक्ता सती] [मया सह] रंस्यते (विहरिष्यति)—इति चिन्ताकुलः [सन्] अयि सखि, स्थिरतमःपुञ्जे (स्थिरं गाढ़ं तमःपुञ्जं यस्मिन् तादृशे तमाल-वनान्धकार-निविड़े) निकुञ्जे सः [तव] प्रियः (श्रीकृष्णः) त्वां पश्यति (स्वहृदये त्वामेव निरीक्षते) [दृष्ट्वाच] वेपते (स्मरावेशेन कम्पते) पुलकयति (तत्तत्स्मरणात् सञ्जातरोमाञ्चो भवति) [तव सुरतप्राप्त्याशया] आनन्दति; स्विद्यति (त्वच्चिन्तया घर्माक्तो भवति) [सैषा प्रिया मे आगतेति सम्भाव्य] प्रत्युद्गच्छति [ततश्च] मूर्च्छति॥१॥

अनुवाद—हे सखि! तुम्हारे प्रियतम श्रीकृष्ण निकुञ्जमें निविड़ अंधकारसे आवृत्त हो चिन्तातुर हो रहे हैं कि श्रीराधा कब आकर मुझे प्रीतिपूर्ण नेत्रोंसे देखेगी। मदन-अभिलाषा सूचक रसपूर्ण बातें कहेगी। अङ्ग-प्रत्यङ्गका आलिङ्गन कर प्रसन्न होगी, रमण करेगी। इस प्रकार आपको प्रत्यक्षकी भाँति देख रहे हैं, आवेशमें कम्पित हो रहे हैं, विपुल पुलक और असीम आनन्दसे उत्फुल्ल हो रहे हैं। पसीनेसे परिप्लुत हो रहे हैं, तुम्हें आया जान उठकर खड़े हो रहे हैं और प्रबल आनन्दावेशसे मूर्च्छित हो रहे हैं।

पद्यानुवाद—

स्थिरतम पुंजे वेतस कुंजे चिन्तातुर हरि राधे।
"वह देखेगी मुझे कहेगी स्मरवणी भुज बाँधे॥

चाहेगी क्रीडारत होगी'' कह यों भ्रममें भूले।
तुझे देखते कँपते-हँसते रोते गिर हिय हूले॥

बालबोधिनी—सखी कह रही है—राधे! श्रीहरि सघन अंधकारमें बैठे हुए हैं। उस निकुंजमें अति विचित्र राग-अनुरागमय क्रिया-कलाप कर रहे हैं। उमड़-उमड़ कर शृङ्गारिक चेष्टाएँ कर रहे हैं। उस लताकुंजमें अति चिन्ताकुल होकर सोच रहे हैं। सोच-सोचकर विलस रहे हैं—राधा मुझे देखेगी। मेरे साथ मधुर-मदिर उन्मादमयी रसीली बातें करेगी। मेरे अंग-अंगका आलिंगन कर प्रसन्न हो जायेगी। तदनन्तर मेरे साथ रतिक्रीड़ा हेतु उद्यत होगी। इस प्रकार अनेकों मनोरथोंसे उल्लसित होकर हुलस रहे हैं। श्रीकृष्ण आपको ध्यानमें देखते हैं। आपका अवलोकन कर सिहर उठते हैं, पुलकायमान हो जाते हैं। स्वप्निल समागम रस मुखकी अनुभूति करने लगते हैं। रतिकेलि क्रम विकासमें उमगते हुए स्वेदपूर्ण हो जाते हैं। भाव-स्वप्नमें तुमको देखकर उठ खड़े होते हैं और यथार्थमें तुम्हें न देखकर मूर्च्छित हो जाते हैं।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल विक्रीड़ित छन्द, दीपक अलंकार एवं अष्ट सात्त्विक विभाग हैं—

(१) **स्तम्भ तथा वैवर्ण्य—**निविड़ अन्धकारमें शृङ्गारिक चेष्टाएँ तथा चिन्ताकुल होकर श्रीराधाको दूर-दूर तक देखना।

(२) **वेपथु तथा रोमाञ्च—**सुप्तभावमें श्रीराधाका कामकेलि वर्द्धक वार्तालापका चिन्तन कर काँपना एवं पुलकित होना।

(३) **अश्रु तथा स्वेद—**कल्पनामें श्रीराधा द्वारा प्रत्येक अंग-आलिङ्गनके आनन्दकी अनुभूति करना और रतिक्रम विकासमें पसीनेसे तर होना।

(४) **स्वरभङ्ग तथा प्रलय—**रमण हेतु श्रीराधाको बुलानेमें असमर्थ होना और श्रीराधाके न मिलने पर मूर्च्छित हो जाना।

अक्ष्णोर्निक्षिपदञ्जनं श्रवणयोस्तापिच्छ गुच्छावलीं।
मूर्द्धिन् श्यामसरोजदामकुचयोः कस्तूरिका-पत्रकम्॥
धूर्त्तानामभिसार-सत्वर-हृदां विष्वङ्निकुञ्जे सखि।
ध्वान्तं नील-निचोल-चारु सुदृशां प्रत्यङ्गमालिङ्गति॥२॥

अन्वय—[अथान्धकारे अभिसारोचितवेशोपकरणमपि एतदेवेत्याह]—अयि सखि निकुञ्जे विष्वक् (सर्वतोव्यापि) नीलनिचोलचारु (नीलनीचोलादपि चारु मनोज्ञं; सर्वाङ्गावरकत्वेन आलिङ्गनमुत्प्रेक्षितम्) ध्वान्तं (तमः) धूर्त्तानाम् (परवञ्चकानाम्) अभिसार-सत्वर-हृदां (अभिसारे सत्वरं त्वरान्वितं हृत् हृदयं यासां तथाभूतानां); [परवञ्चकतया कदाचित् सत्वरम् अभिसरेत् इत्यतो विलम्बो न कार्य इति भावः] सुदृशां (सुलोचनानां रमणीनां) अक्ष्णोः (नेत्रयोः) अञ्जनं (कज्जलं) श्रवणयोः (कर्णयोः) तापितच्छ-गुच्छावलीं (तापिच्छानां तमालानां गुच्छावलीं कुसुमस्तवकश्रेणीं कर्णभूषण भूतामित्यर्थः) मूर्द्धनि (शिरसि) श्याम-सरोज-दाम (नीलोत्पलरचितां मालां) [तथा] कुचयोः (स्तनयोः) कस्तूरिकापत्रकं (मृगनाभि रचित पत्र-भङ्ग-लेखां) निक्षिपत् (दूरं प्रेरयत्; स्वयं तत्तद्रूपेण परिणमदिति भावः) प्रत्यङ्गं (अङ्गे अङ्गे) आलिङ्गति (प्रियाभिसारानुकूल्येन सुखं ददातीत्यर्थः)॥२॥

अनुवाद—हे सखि! देखो, निकुंजमें चारों ओर घिरा हुआ अंधकार अभिसारमें चंचलमना सुनयना कामिनियोंका अञ्जन है, कानोंमें तमालकी गुच्छावली है, मस्तक पर विराजित श्याम-कमलकी माला है, कुच-कुम्भमें विरचित कस्तूरिका चित्र बना है। रमणीयतर रूपसे आवृत यह अंधकार नीले वसनसे भी मनोहरतर आवरण रूपमें धूर्तोंके साथ अभिसारके उत्साहसे युक्त रमणियोंके प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्गको कैसे आलिङ्गित कर रहा है॥२॥

बालबोधिनी—सखी कह रही है—राधे! श्याम सघन केलि-कुंजमें बैठे हैं, जहाँ सारे संसारका अंधकार मानो वहीं

सिमट गया हो। कितनी उत्कण्ठा है उन्हें, कितनी आकुलता है और कितनी बेवसी, अब विलम्ब मत करो। रात्रिकालमें अभिसारिकाओंके लिए अंधकार उत्तम नीले वस्त्रोंके प्रिय मिलन हेतु हलन-चलन-गमनको कोई भी तो नहीं जान पाता। नील वर्णवत् यह अंधकार भी नील वर्ण होनेके कारण अभिसारिकाओंको अति प्रिय होता है। यह अंधकार ही धूर्त नायकोंके साथ अभिसारकी तथा रमणकी इच्छा रखनेवाली नायिकाओंका चारों ओरसे आलिङ्गन करता है, निकुंजोंमें धूर्तोंके साथ रमणकी महा उत्कण्ठा उद्‌भूत कर देता है। यही अंधकार उन अभिसारिकाओंका अञ्जन है। कानोंमें कृष्णवर्णका मयूर-पिच्छ-पुच्छ कर्णाभिराम है और तमालपत्रका काम भी यही करता है। उन नायिकाओंके हृदयोंमें नील कमलोंका हार है और कुचोंपर कस्तूरीके रसकी चित्र-रचना है। इस प्रकार यह नील वर्णका अंधकार आपके प्रत्येक अंगका आलिङ्गन करते हुए आपको अलंकरण प्रदान कर अलंकृत कर रहा है। अतः संकेत स्थलके उपयुक्त आभूषणोंको धारण कर गाढ़ अंधकारमें ही आप चलें, विलम्ब न करें। हर एक मुरमुटमें अत्यन्त चतुर रसिकोंके अभिसारके लिए पूरा वातावरण अनुकूल है। यह रात ही नील वसन है अपने निस्सीम विस्तारमें अंग-अंगको लपेटी सी है। चलो-**शीघ्र** चलो। कहीं विपक्ष आदिकी अन्य अभिसारका वहाँ अभिसार न करले उससे पूर्व ही तुम्हें वहाँ उपस्थित हो जाना चाहिए। इस समय नेत्रोंमें काजल; कानोंमें कर्णभूषण, गलेमें हार, कुचोंपर कस्तूरीपत्र-भङ्ग रचना आदिकी आवश्यकता नहीं। शीघ्र चलो॥२॥

काश्मीर-गौर-वपुषामभिसारिकाणा-
माबद्ध-रेखमभितो रुचिमञ्जरीभिः।
एतत्तमालदल-नील-तमं तमिस्रं
तत्प्रेम-हेम-निकषोपलतां तनोति॥३॥

अन्वय—[किञ्च प्रेमपरीक्षण-कारणमप्येतदेवेत्याह]—एतत् तमाल-दल-नीलतमं (तमालदलवत् नीलतमम् अतिनीलम्; एतेन अन्धकारस्य निविड़ता प्रतिपादिता तमालवन-विहारश्च) तमिस्रं (तिमिरं) काश्मीर-गौर-वपुषाम् (काश्मीरं कुङ्कुमं; काश्मीरगौरवत् गौरं वपुः शरीरं यासां तासाम्) अभिसारिकाणां (कान्तसङ्केतं गच्छन्तीनां नारीणां) रुचिमञ्जरीभिः (लावण्यकिरणैः) अभितः (सर्वतः) आवद्धरेखं (संलग्नरेखं सत्) तत्प्रेम-हेम-निकषोपलतां (तासां प्रेम एव हेम काञ्चनं तस्य निकषोपलतां परीक्षापाषाणतां कष्टि पाथर इति भाषा) तनोति (विस्तारयति; तद्वत् शोभते) [यथा निकष-पाषाणे सुवर्णशुद्धि-जिज्ञासा, तथा तासां घनान्धकारे निःसाध्वसतया गमनेऽपि जिज्ञासा इति भावः] ॥३॥

अनुवाद—निकुञ्जमें सर्वत्र प्रसरित तमाल वृक्षके पत्र सदृश नीलतम, यह निविड़ अन्धकार कुङ्कुमकी भाँति सुवर्ण-वर्णा गौर देहमयी अभिसारिका नायिकाओंके रमणीय आलोकरूपी मञ्जरीके रूपमें इस प्रकार प्रतीयमान हो रहा है, मानो श्रीकृष्णके प्रेम रूप स्वर्णकी निकष (पाषाण) हो।

बालबोधिनी—सखी कह रही हैं—हे प्रिये! केसरकी कांतिके समान शरीरवाली अभिसारिकाओंके लिए मणिमञ्जरियोंसे चारों ओर रेखांकित हो तमालपत्रोंके समान अत्यन्त नीला यह अन्धकार प्रेमरूपी स्वर्णकी कसौटी है। यह अन्धकार कसौटीका प्रस्तर बन स्वयंको प्रस्तुत कर रहा है। इसी अन्धकार निकषपर सुन्दरियोंका इन केसरदल सरीखी रमणी-बालाओंके प्रेमका सोना परखा जायेगा। सोनेका रंग ही कसौटी पर परखा जाता है। कसौटीका रंग सोनेपर नहीं चढ़ता। श्रीराधा तुम और यह अन्धकार मानो सुवर्णपट्टिकाके ऊपर नीली-नीली कसौटी है न कि प्रेम स्वर्णके ऊपर कसौटी—अब शीघ्र अति शीघ्र अभिसरण स्थलपर चलो।

प्रस्तुत पदमें उपमा अलंकार तथा वसन्ततिलका छंद है।

हारावली–तरल–काञ्चन–काञ्चि–दाम
मञ्जीर–कङ्कण–मणि–द्युति–दीपितस्य।
द्वारे निकुञ्ज–निलयस्य हरिं विलोक्य
व्रीडावतीमथ सखीमियमित्युवाच॥४॥

अन्वय—अथ इयं (सखी) हारावली–तरल–काञ्चन–काञ्चिदाम–मञ्जीर–कङ्कण–मणिद्युति–दीपितस्य (हारावल्याः तरलानां मध्यगानां मणीनां) (धुक्धुकी इति भाषा) तथा काञ्चन–काञ्चिदाम्नोः मञ्जीरयोः कञ्चणयोश्च मणीनां राधा–परिहितानामिति शेषः द्युतिभिः किरणैः दीपितस्य (प्रोज्ज्वलीकृतस्य) निकुञ्ज–निलयस्य (लतागृहस्य) द्वारे [अत्युत्सुकं] हरिं विलोक्य ब्रीड़ावतीं (रन्तु मुद्यतामपि लज्जया तत्पार्श्वमभजमानां) सखीम् (राधाम्) इति (वक्ष्यमाणं वचनं) निजगाद॥४॥

अनुवाद—हारोंके मध्यमें विराजित धुकधुकि (मणि) से सुवर्णमयी काञ्ची (करधनी) से कुण्डलों तथा कंकणोंमें संलग्ना मणियोंकी कान्तिसे निकुञ्जवन समुद्भासित हो गया, वहाँ केलिगृह द्वार पर विद्यमान श्रीहरिको देखकर श्रीराधा लज्जावती हो गईं, तभी सखी श्रीराधासे कहने लगी—

बालबोधिनी—लजायी–सी श्रीराधा सखीके प्रोत्साहित करने पर जब निकुंज गृहमें पहुँचती है तो श्रीहरिको वहाँ विद्यमान देखकर और भी लज्जित हो जाती है। निकुञ्ज द्वार उनके आभूषणकी कान्तिसे उनके मुक्ताहारकी उज्ज्वलतासे, उनकी सोनेकी करधनीकी दीप्तिसे, उनके पुखराज और कानकी मणियोंकी द्युतिसे दीपित हो उठता है। उसी आलोकमें उसे प्रतीक्षारत श्रीकृष्ण दीख जाते हैं—देखते ही लाजसे भर जाती है। उचित ही तो है कामवती युवतियोंके प्रथम सङ्गममें लज्जा किसी कामातिशयताका ही विधान करती है। अब सखि उन्हें आगे पैर रखनेके लिए अनुरोध करती है। प्रस्तुत पदमें वसन्ततिलका छंद है।

गीतम् ॥२१॥

वराडीरागरूपकतालाभ्यां गीयते।

मञ्जुतर-कुञ्जतल-केलिसदने।
विलस रतिरभसहसितवदने! ॥१॥
प्रविश राधे! माधवसमीपमिह।ध्रुवपदम्।

अन्वय—रति-रभस-हसित-वदने (रतिरभसेन सुरतोत्साहेन हसितं सहास्यं वदनं यस्याः, अयि तादृशि; तव उच्छलितं मनः अत्युत्सुकतया हास्यमिषेण प्रियमिलनाय बहिर्निर्गतमितिभावः) अयि राधे, इह मञ्जुतर-कुञ्जतल-केलिसदने (मञ्जुतरम् अतिमनोहरं कुञ्जतलं कुञ्जाभ्यन्तरमेव केलिसदनं तत्र) माधव-समीपं प्रविश [ततः] विलस (विहर) ॥१॥

अनुवाद—हे राधे! तुम्हारा वदन रतिजन्य उत्साहसे अतिशय रसके साथ उत्फुल्लित हो रहा है, तुम इस मनोहर निकुञ्जके केलिगृहमें प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

चल राधा! प्रिय ढिग उपवनमें—
मंजु कुंजतल अति मनभावन।
विहँस विलस रति केलि-सदनमें
चल राधा! पिय-ढिग उपवनमें॥

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कहती है—रतिक्रीड़ाके उत्साहसे प्रसन्नमुखवाली हे राधिके! अब तो प्रेमके आवेगमें तुम मुस्कराकर हर्षित हो रही हो, इस मनोहर झुरमुटके बीचमें ही केलिगृह बना हुआ है, उसी क्रीड़ागृहमें जाइए और माधवके समीप जाकर उनके साथ रमण कीजिए।

नव-भवदशोक-दल-शयन-सारे
विलस कुचकलशतरल हारे!
प्रविश.... ॥२॥

अन्वय—[नहि मे मनः उच्छलितम् अस्य तव नागरस्य वैकल्यमाकलष्य मद्ववदनं हसतीति चेत् तत्राह]—कुच-कलस-तरल-हारे (कुचकलसयोः स्तनकुम्भयोः तरलः कम्पवशात् चञ्चलः हारः यस्याः, अयि तादृशि) [राधे] [कुचकलसकम्पेन अन्तर्वृत्तिर्व्यक्ता अतो वाम्यं न युक्तमितिभावः] नव-भवदशोक-दल-शयनसारे [नवभवद्भिः तरुणैः अशोकदलै रचितं शयनसारं शयनश्रेष्ठं यत्र तादृशे) इह [केलिसदने] माधव-समीपं प्रविश [ततश्च] विलस (विहर)॥२॥

पद्यानुवाद—

नवल अशोक-दलोंकी मृदुतर,
शैया झलक रही है मनहर।

अनुवाद—प्रिय समागम सूचक कम्पनमय कुचकलशोंमें विराजित चञ्चल हारवाली राधे! नूतनोद्भव अशोक-पत्रोंमें विरचित शय्यापर तुम प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

बालबोधिनी—सखी कहती है—कलश सरीखे स्तनोंपर चञ्चल मुक्ताहार धारण करनेवाली राधे! तुम्हारा यह चञ्चल हार संकेत कर रहा है कि तुम भी रतिचपल हो। तुम्हारे लिए यह किसलय शय्या नवीन अशोक पत्तोंसे रचाई गई है। जाओ, इस सुसज्जित शय्या पर विलसो।

कुसुमचय-रचित-शुचि-वासगेहे।
विलस　　कुसुम-सुकुमार-देहे॥
प्रविश.... ॥३॥

अन्वय—अयि कुसुम-सुकुमार-देहे (कुसुमेभ्योऽपि सुकुमारः कोमलः देहः यस्याः तादृशि) राधे कुसुमचय-रचित-शुचिवास-गेहे (कुसुमचयेन पुष्पसमूहेन रचितं शुचेः शृङ्गारस्य वासगेहं यत्र तस्मिन्; निकुञ्जस्याभ्यन्तरे पुष्पगृहरचनाविशेष इति न पौनरुक्त्यम्) इह (केलिसदने) माधवसमीपं प्रविश [ततश्च] विलस (विहर)। [निकुञ्जगृहद्वारगतः प्रियस्त्वां प्रतीक्षते; अतो वाम्यं न युक्तमितिभावः]॥३॥

अनुवाद—कुसुमसे भी मनोहर सुकुमार देह श्रीराधे! कुसुम-समूहसे सुसज्जित पवित्र केलि-वास-भवनमें तुम प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

तरल हार धर विलस उरज पर—
विविध सुमनसे सजे भवनमें
चल राधा! पिय-ढिग उपवनमें।

बालबोधिनी—सखी कहती है—तुम्हारा शरीर फूलोंसे भी अति सुकुमार है और यह पूराका पूरा केलिमण्डप चयन किये गये फूलोंसे रचा गया है और उन फूलोंकी चमकसे उद्दीप्त हो रहा है, अतएव इस पवित्र शयनगृहमें जाओ और श्रीकृष्णके साथ आमोद करो। चलो, निर्भय प्रवेश करो, यह तुम्हारा ही घर है।

मृदुचल-मलय-पवन-सुरभि-शीते।
विलस मदन-शर-निकर-भीते॥
प्रविश.... ॥४॥

विलस रसलविलसितगीते—यह पाठ भी मिलता है।

अन्वय—[अथ उद्दीपनाय अतिशयेन केलिसदनमेव वर्णयति]—रति-वलित-ललित-गीते (रतौ वलितं रतियोग्यं ललितं मनोहरं गीतं यस्याम् अयि तादृशि) राधे चल-मलयवन-पवन-सुरभि-शीते (चलेन मलयवन-पवनेन सुरभि च तत् शीतं शीतलञ्च यत् तस्मिन्) इह (केलिसदने) माधवसमीपं प्रविश [ततश्च] विलस (विहर)॥४॥

अनुवाद—मदनके बाण-समूहसे भयभीत राधे! तुम रतिरस सम्बन्धीय सुललित गीत गा रही हो, तुम कोमल तथा चञ्चल मलय-पवनसे प्रवाहित सुरभित तथा सुशीतल लता-केलि-गृहमें प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

मलय वायु यह 'मह मह' बहती,
हुलस मदन–शर भीते! कहती,

बालबोधिनी—सखी कहती है—राधे! तुम मदनके बाणसमूहसे भयभीत हो गई हो। अतः तुम इस श्रृङ्गारगृहमें प्रवेश करो। इसमें मलय पर्वतकी दखिनइया बयार झिर–झिर बह रही है। पुष्पोंके मध्यभागसे आनेके कारण मृदुल स्पर्शवाली यह वायु लताकुञ्जको और भी सुरभित एवं शीतल बना रही है। जाओ इस प्रेम मन्दिरमें जाकर श्रीकृष्णके साथ विहार करो, यह तो तुम्हारे भीतरके रसको प्राणोंके द्वारा गीतोंमें मुखरित करनेका क्षण आया है, गाओ, प्रेमके उन्मादित गीत गाओ।

वितत–बहु–वल्लि–नव–पल्लव–घने
विलस चिरमलस–पीनजघने!
प्रविश.... ॥५॥

अन्वय—अयि अलस–पीन–जघने (अलसञ्च पीनञ्च जघनं यस्याः तादृशि) राधे वितत–बहु–वल्लि–नव–पल्लव–घने (विततानां विस्तृतानां बहुवल्लीनां नवैः पल्लवैः घने निविड़े) इह (केलिसदने) माधवसमीपं प्रविश [ततश्च] चिरं विलस [ईदृग्जघनं सफलं कुरु इत्यर्थः]॥५॥

अनुवाद—पीन जघन गुरु भारसे सुमन्द अलस गतिका सम्पादन करनेवाली श्रीराधे! सुविस्तृत लताओंके नवीन पल्लवोंके द्वारा निविड़तर रूपसे आच्छादित इस लता–केलि निभृत निकुंजमें प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

बहुवल्ली पल्लव नव छादित,
विलस अरी चिर कुंज रमणमें।
चल राधा! पिय–ढिग उपवनमें॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—राधे! तुम्हारी जाँघें आलस्ययुक्त एवं स्थूल हैं और यह निकुंज भी अति विस्तृत विविध लताओंसे एवं पल्लवोंसे रचित है, इन लताओंसे और भी नये-नये पल्लव प्रस्फुटित हुए हैं जिनसे यह लतानिकुञ्ज और भी अधिक घना हो गया है। अतः इस कोमल-पत्र-कुंजमें अपने प्रियतम श्रीकृष्णके साथ चिरकाल पर्यन्त विलास करती रहो।

मधु-मुदित-मधुपकुल-कलित-रावे।
विलस मदन-रस-सरस-भावे॥
प्रविश.... ॥६॥

अन्वय—अयि मदन-रस-सरस-भावे (मदनरसेन शृङ्गाररसेन सरसभावः सारस्यं यस्याः अयि तादृशि) [ईदृगविधायास्ते तन्निकटप्रवेश एव योग्यः] राधे मधुमुदित-मधुप-कुल-कलित-रावे (मधुना मकरन्देन मुदितं मत्तं मधुपकुलं भ्रमरवृन्दं तेन कलितः विहितः रावः गुञ्जनं यत्र तस्मिन्) इह (केलिसदने) माधवसमीपं प्रविश [ततश्च] विलस॥६॥

अनुवाद—मदन-रससे सरस अनुरागमयी राधे! मधुपानमें प्रमत्त भ्रमरोंके कलनादसे निनादित निकुञ्ज-गृहमें प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

गीत भ्रमर मद-माते गाते,
'सरस भाव' जन-हृदय जगाते—

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे राधे! कामदेवके उद्वेगसे उत्पन्न शृङ्गार-रसमें तुम भावमयी हो गयी हो। वसन्तमें परम आनन्द पानेवाले, पुष्परसके आस्वादनसे आनन्दपूर्वक गुंजार करनेवाले मधुमत्त भौंरोके झुण्डवाले लताभवनमें प्रवेश कर प्रेमरसका आस्वादन करो। यह एक बहुत बड़े आनन्दकी भूमिका है, प्रणय-मिलनका मंगल मुखरण है—चलो, इसमें प्रवेश करो।

मधुरतर–पिक–निकर–निनद–मुखरे ।
विलस दशन–रुचि–रुचिर–शिखरे॥
प्रविश.... ॥७ ॥

अन्वय—अयि दशन–रुचि रुचिर–शिखरे (दशना दन्ता एव रुच्या कान्त्या रुचिराणि मनोज्ञानि शिखराणि माणिक्यविशेषाः यस्याः अयि तादृशि; पक्वदाड़िमवीजाभं माणिक्यं शिखरं विदुः इति हारावली; ईदृग्दशनायास्तत्क्रियाविशेषकृत्यमेव योग्यमिति भावः) राधे मधुरतर–पिक–निकर–निनद–मुखरे (मधुरतरैः निरतिशय–श्रुति–सुखकरैः पिकनिकराणां कोकिलवृन्दानां निनदैः कूजनैः मुखरे शब्दिते) इह (केलिसदने) माधवसमीपं प्रविश [ततश्च] विलस (विहर)॥७॥

अनुवाद—सुपक्व दाड़िम (अनार) के बीज एवं शिखर नामक मुक्ताओंके समान दशन पंक्तिमयी राधे! कोकिलनिकरके मधुरतर कूजन–कलापसे मुखरित लता–वास–गृहमें तुम प्रवेश करो और माधवके समीप जाकर उनके साथ विलास करो।

पद्यानुवाद—

'विलसो' भर आनन्द स्वरोंमें—
कूक रही कोकिल मधुवनमें।
चल राधा! पिय ढिग उपवनमें॥

बालबोधिनी—सखी कहती है—हे दशनकी दीप्तिसे शोभायमान शिखर–मणिमयी राधे! कोकिलाओंकी अत्यन्त मधुर काकलीसे गुञ्जायमान इस लता–निकुंजमें प्रवेशकर श्रीकृष्णके साथ विहार करो। लताओंसे सघन इस केलिगृहमें श्रीहरिके साथ मनभर विलसो, देर–देर तक विलसो।

विहित–पद्मावती–सुख–समाजे।
कुरु मुरारे! मङ्गलशतानि।
भणति जयदेव–कविराज–राजे॥
प्रविश.... ॥८ ॥

अन्वय—हे मुरारे विहित-पद्मावती-सुख-समाजे (त्वल्लीला-वर्णनेन विहितः कृतः पद्मावत्या श्रीराधायाः स्वपत्न्या वा सुखसमाजः सुखसन्ततिः येन तस्मिन् पद्मावती-सुखसम्पादके इत्यर्थः) भणति (तद्रसं कीर्त्तयति) जयदेव-कविराजराजे (निजेष्टदेवोपासनाया नित्यत्व-सर्वोत्तमत्वनिश्चयावेशेन आत्मानं बहुमन्यमानस्य कविराज-राज इति प्रौढ़ोक्तिरियं) मङ्गलशतानि (प्रभूतानि मङ्गलानि) कुरु (विधेहि)॥८॥

अनुवाद—कविकुलाधिराज कवि जयदेवके द्वारा श्रीराधाके विविध आनन्द-प्रसादनके लिए इस स्तुतिपरक गीतिकी रचना की गयी है। हे कृष्ण! आप इसका श्रवण कर प्रसन्न होवें और इस जगतका अनन्तान्त मङ्गल-विधान करें।

बालबोधिनी—कवि जयदेव इस अष्टपदीको श्रीहरि चरणोंमें समर्पित करते हुए कहते हैं—हे मुरारे! जयदेव कविराजके इस गीतको श्रवणकर आप सबका हजारों प्रकारसे मङ्गल विधान करें।

लक्ष्मीजीका एक नाम पद्मावती है, जयदेवकी पत्नीका नाम भी पद्मावती है। पद्मावतीके आराधक हैं जयदेव जो कविराजोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। अतः कविराजवर श्रीहरिसे प्रार्थना करते हैं—हे मुरारे! मैंने प्रासादके अन्तरमें पद्मावतीकी प्रतिष्ठा की है, आपकी प्रसन्नताके लिए यह कविता की है, आप प्रसन्न होवें और हमारा शतशः मङ्गल करें।

अथवा श्रीजयदेव स्वयं श्रीराधासे अनुरोध कर रहे हैं—जो लक्ष्मीकी सारी सम्पदा, सारा सुख लेकर आज उपस्थित हैं, आप उन मुरारिके लिए सौ-सौ प्रकारके मङ्गल विधान करें। उनका मङ्गल तुम्हारे साथ रमण ही है।

त्वां चित्तेन चिरं वहन्नयमतिश्रान्तो भृशं तापितः
कन्दर्पेण च पातुमिच्छति सुधा-सम्बाध-विम्बाधरम्।
अस्याङ्कं तदलङ्कुरु क्षणमिह भ्रूक्षेप-लक्ष्मीलव-
क्रीते दास इवोपसेवित-पदाम्भोजे कुतः सम्भ्रमः॥१॥

अन्वय—[अथ सखी तस्याः प्रसादमालक्ष्य कौतुकेन सनर्म्माह]—[सखि] चित्तेन (मनसा) त्वां चिरं बहन् (धारयन्) [तव पीनस्तन-श्रोणी-गुरुभारेण] अतिश्रान्तः, कन्दर्पेण भृशं (अत्यर्थं) तापितश्च; [अतएव श्रमेण तापने च पिपासितः] अयं (श्रीकृष्णः) [तव] सुधासम्वाधम् (सुधया अमृतेन सम्वाधं सङ्कटं व्याप्तमिति यावत्) विम्बाधरं पातुम् इच्छति; तत् (तस्मात्) अस्य अङ्कं (क्रोड़) क्षणम् अलङ्कुरु (शोभय) अन्तस्थितायाः बहिःस्थितस्य पानानुपपत्तेरिति भावः]। [ननु अविदित चित्तस्य अङ्कप्रवेशे मन्मनः सङ्कुचित इतिचेत् तत्राह]— भ्रूक्षेप-लक्ष्मी-लव-क्रीते (भ्रुवोः क्षेपः चालनं स एव लक्ष्मीः ऋद्धिः तस्या लवेन लेशेन क्रीते) [अतएव] उपसेवित-पदाम्भोजे (उपसेवितं पदाम्भोजं पादपद्मं येन तादृशे) दासे इव [अस्मिन् श्रीकृष्णे] सम्भ्रमः (सङ्कोचः) कुतः [अल्पमूल्यक्रीते दासे इव क्रयक्रीते शङ्का न युक्ता, क्रीतस्यैव सेवोपयोगादितिभावः]॥१॥

अनुवाद—हे सुन्दरि! तुम्हारे सामने अवस्थित अनङ्गतापसे सन्तप्त श्रीकृष्ण दीर्घकालसे तुमको मन-ही-मन धारण किये हुए अतिशय क्लान्त हो गये हैं, वे तुम्हारे बिम्बसम अधरकी मधुर सुधाका पान करनेके लिए लोलुप हो रहे हैं, तुम अभिलाषी प्रियके अङ्कको अलंकृत करो। वे तुम्हारे कटाक्षरूप विपुल वैभवके कणमात्रके क्षण-भर पान करनेके लिए चिरकृतज्ञ हो रहे हैं, उस कटाक्ष-विक्षेपरूपी मूल्यके द्वारा क्रीतदासकी भाँति तुम्हारे पदारविन्दके सेवक हो गये हैं, फिर सम्भ्रम क्यों? कैसी घबराहट?

बालबोधिनी—सखी श्रीराधासे कहती है—हे राधे! आपको चिरकाल तक हृदयमें धारण करनेके कारण श्रीहरि श्रान्त-क्लान्त हो गये हैं, अन्दर-ही-अन्दर अभितप्त हो गये हैं, कामदेवने इन्हें अत्यन्त सन्तप्त कर दिया है, आपके सुधारससे परिपूर्ण कुन्दरु फलके सदृश अरुण अधरोंकी मधुराईका पान करना चाहते हैं। इसलिए हे प्रिये! अपने इन अभिलाषी प्रियके

अंगोंकी शोभा बनिये! एक क्षणके लिए ही कटाक्ष विक्षेप कर तुमने इन्हें अपना क्रीतदास बना लिया है। तुम्हारे चरणोंकी सेवा करनेवाले श्रीकृष्णके अंकको समलंकृत करो, बिना संकोचके उनके वक्षःस्थलको अलंकृत करो। इसमें कैसी लज्जा, कैसा भाव और कैसी हिचक?

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीडित छन्द तथा रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार है।

सा ससाध्वस-सानन्दं गोविन्दे लोललोचना।
सिञ्जान-मञ्जु-मञ्जीरं प्रतिवेश निवेशनम्॥२॥

इति एकविंशः सन्दर्भः।

अन्वय—गोविन्दे (श्रीहरौ) लोल-लोचना (लोले सतृष्णे लोचने यस्याः सा) सा (राधा) शिञ्जानमञ्जुमञ्जीरं (शिञ्जानः शब्दायमानः मञ्जुमञ्जीरः मनोज्ञनूपुरः यत्र तद्यथा तथा) ससाध्वस-सानन्दं (ससाध्वसं ससम्भ्रमं सानन्दञ्च यथा तथा; प्रथम-समागमवत् ससाध्वसं विनत्यनन्तर-प्राप्त्या सानन्दमिति ज्ञेयम्) निवेशनं (कुञ्जगृहं) प्रविवेश॥२॥

अनुवाद—श्रीराधा स्पृहायुक्त हृदयसे अपने चञ्चल नेत्रोंसे श्रीगोविन्दका अवलोकन करती हुई लज्जा और हर्षसे मणिमय नूपुरोंसे मनोहर शब्द करती हुई निकुंज गृहमें प्रवेश करने लगीं।

पद्यानुवाद—

हुलस उठी राधा मधुवनमें
अपना ही प्रतिबिम्ब देखकर अपने जीवन-धनमें।
चिर अभिलाष विलास भरे हरि, डूबे हर्ष मदनमें,
सिहर उठी राधा अति मनमें,
हुलस उठी राधा मधुवनमें।

बालबोधिनी—सखीके द्वारा समझा-बुझाने पर श्रीराधाने रतिक्रीड़ाके लिए उपयोगी लता-निकुंजमें भीतर-भीतर कुछ

काँपती हुई, कुछ उमगती हुई, इधर-उधर देखकर साभिलाष श्रीगोविन्दको निहारती हुई, चरण-नूपुरोंको झंकारती हुई प्रवेश किया। प्रविष्ट होते हुए जब उन्होंने श्रीकृष्णको देखा तो उन्हें ऐसा लगा कि वे मानो अंग-अंगमें श्रीराधाको ही धारण कर रहे हैं।

गीतम् ॥२२॥

वराड़ीरागयतितालाभ्यां गीयते।

बालबोधिनी—एक सुकेशी हाथोंमें कंकण धारण कर, कानोंमें ढेरसे पुष्प धारणकर लजाई हुई-सी हाथमें चामर लेकर वीजन करती हुई जब दयितके साथ विनोदन करती है, ऐसे समयमें उस वराङ्गनाके गीतको वराड़ी राग कहा गया है।

राधा-वदन-विलोकन-विकसित-विविध-विकार-विभङ्गम्।
जलनिधिमिव विधु-मण्डल-दर्शन-तरलित-तुङ्ग-तरङ्गम्॥१॥
हरिमेकरसं चिरमभिलषित-विलासम्।
सा ददर्श गुरुहर्ष-वशंवद वदनमनङ्ग-निवासम्॥ध्रुवपदम्॥

अन्वय—[एवं कुञ्ज प्रवेशमुक्त्वा श्रीकृष्णस्य तद्दर्शनानन्द-विकारान् वर्णयन् तस्या स्तद्दर्शनमाह]—सा (श्रीराधा) एकरसं (एकस्मिन्नेव आलम्बने श्रीराधारूपे रसो यस्य तं; तस्याः सर्वोत्तमत्व-निश्चयेन तदेकपरमित्यर्थः) [ननु अन्याङ्गनाभिः रममाणस्य कुतस्तत्परत्वमित्यत आह]—चिरं (बहुकालं) अभिलषित-विलासं (पूर्वोक्तरूपेण अभिलषितः आकाङ्क्षितः तया सह विलासो येन तम्) [अतस्तत्प्रसादावलोकनात्] गुरुहर्षवशंवद-वदनं (गुरुहर्षस्य वशंवदम् आयत्तं वदनं मुखं यत्र तादृशं हर्षेण स्मेराननमित्यर्थः) [अतएव] अनङ्गविकाशं (अनङ्गस्य कामस्य विकाशः यत्र तादृशं) [तदेकनिष्ठत्वं

दृष्टास्तेन स्पष्टयति]—राधावदनविलोकन–विकसित–विविध–विकार–विभङ्गं (राधावदनविलोकनेनैव विकसिताः प्रकटिताः विविधविकाराः कामजाः हर्षस्तम्भादयः ते एव विभङ्गाः ऊर्म्मयः यत्र तादृशं) विधुमण्डलस्य चन्द्रमण्डलस्य दर्शनेन तरलिताः चञ्चलीकृताः तुङ्गाः महान्तः तरङ्गाः यत्र तादृशं) जलनिधिं (समुद्रम्) इव हरिं ददर्श; [अत्र श्रीकृष्णसमुद्रयोः विकारोर्म्म्योश्च साम्यम्]॥१॥

अनुवाद—एकरस अर्थात् राधाविषयक अनुरागसे युक्त तथा चिरकालसे श्रीराधाके साथ विलासकी अभिलाषा रखने वाले श्रीराधा–वदन अवलोकन जन्य हर्षसे प्रफुल्लित, श्रीकृष्ण रोमाञ्च आदि विविध सात्त्विक मदन–विकाररूप भावोंसे युक्त हो रहे हैं। जिस प्रकार शशधर–मण्डलके दर्शनसे समुद्रमें उत्ताल–तरङ्ग समुदाय तरंगायित हो उठता है, उसी प्रकार काम–रसके समुद्र–स्वरूप, भावभङ्गिमा द्वारा मदन–आसक्ति प्रकाशित करनेवाले श्रीकृष्णको श्रीराधाने निकुञ्ज गृहमें देखा।

पद्यानुवाद—

राधा–वदन विलोकनसे हैं विकसित विविध विकार
जैसे विधुको जोह जलधि लहरों भर लाता ज्वार।

बालबोधिनी—निकुञ्ज गृहमें श्रीराधाने श्रीकृष्णको अत्यधिक स्नेहके साथ देखा, देखा श्रीकृष्णकी अनेक विशेषताओंको, सारी विशेषताएँ श्रीराधासे ही सम्बन्धित। श्रीहरि समभावपूर्ण हैं, एकरस हैं, एक ही शृङ्गार रस अपनी प्रधानता बनाये हुए है, वे अनेक प्रकारके शृङ्गार रसके भावोंसे परिपूर्ण हैं। राधाविषयक अनुराग ही उनमें उछल रहा है, चिरकालसे श्रीराधाके साथ विलास करनेकी इच्छा संजोये हुए हैं, केलिकुंजमें श्रीराधाका आना ही उनके जीवनका सर्वस्व है, उनके दर्शनसे उनमें आनन्दका उद्रेक हो गया, अनेक प्रकारके कम्प–पुलकादि सात्त्विक विकार उदित हो उठे।

ऐसा लग रहा था जैसे श्रीराधाका मुखमण्डल कामदेवका निवास स्थान है, जिसे देखकर श्रीकृष्णका मुखमण्डल हर्षसे दीप्त हो उठा है और अपनी मिलन-इच्छाको पूर्ण करना चाहता है, मानो श्रीराधाका मुख चन्द्रमण्डल हो, जिसे देखकर कृष्णरूपी समुद्र चञ्चल हो उठा हो और उसमें ऊँची-ऊँची तरंगें उच्छलित हो रही हों। श्रीराधाने देखा श्रीकृष्ण उन्हें देखते ही विविध काम-भावनाएँ प्रकाशित करने लगे हैं॥१॥

हारममलतर-तारमुरसि दधतं परिलम्ब्य विदूरम्।
स्फुटतर फेन-कदम्ब-करम्बितमिव यमुनाजल-पूरम्॥
हरि....॥२॥

अन्वय—[अतःपरं सप्तमं यावत् श्रीहरिमेव विशिनष्टि]— उरसि (वक्षसि) विदूरं परिलम्ब्य (सुदीर्घमित्यर्थः) अमलतरतारं (अमलतरः अत्युज्ज्वलः) तारः मुक्ताफलं यस्य तादृशम्; मुक्ताशुद्धौच तारः स्यात् इति विश्वः) हारं दधतं (धारयन्तं) [अतएव] स्फुटतरफेन-कदम्ब-करम्बित-यमुना-जलपूरम् (स्फुटतरेण फेन-कदम्बेन-फेन-चयेन करम्बितं खचितं यमुना-जलस्य पूरं प्रवाहमिव स्थितं) [हरिं सा ददर्श इति शेषः]। [अत्र यमुना-जल-पूरेण श्रीहरेः फेनसमूहेन च हारस्य साम्यम्]॥२॥

अनुवाद—श्रीहरिने निज विमल उर-स्थल पर निर्मल मुक्ताओंसे रचित मनोहर हारका परिधान कर रखा है, जो उनके हृदयका बार-बार आलिङ्गन कर रहा है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो यमुना नदीका जल स्फुट रूपमें विराजमान फेन-समूहको धारण कर रहा है।

पद्यानुवाद—

उर पर लहराता है हरिके अमल तारका हार,
मानो फेन-कदम्ब-करम्बित जमुना-जलकी धार।
हुलस उठी राधा मधुवनमें।
विलस उठी राधा अति मनमें॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत पदमें श्रीकृष्णकी उपमा यमुनाके आपूरित जल प्रवाहसे की गयी है, उनके नीलवर्ण वक्षस्थलको बार-बार आलिङ्गन करनेवाला शुभ्र जानुपर्यन्त लटकता हुआ शुभ मुक्ताहार ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो यमुनाका नीला जल सफेद फेनसे मिश्रित होकर प्रकाशित हो रहा हो अथवा यमुनाके जलमें फेन मिल गया हो।

प्रस्तुत पद श्रीराधा-दर्शनसे श्रीकृष्णमें उद्भूत स्वेद नामक सात्त्विक भावके प्रकाशनको भी सूचित कर रहा है।

श्यामल-मृदुल-कलेवर-मण्डलमधिगत-गौरदुकूलम् ।
नील-नलिनमिव पीत-पराग-पटल-भर-वलयित-मूलम् ॥
हरि.... ॥३ ॥

अन्वय—अधिगत-गौरदुकूलं (अधिगतं प्राप्तं परिहितमिति यावत् गौरं पीतं दुकूलं पट्टाम्बरं येन तं) [तथा] श्यामल मृदुल-कलेवर-मण्डलं (श्यामलं मृदुलञ्च कोमलञ्च कलेवर-मण्डलं यस्य तं; यथोचितावयव-सन्निवेश-प्रतिपादनार्थं मण्डलत्वेनोक्तिः) [अतः] पीतपरागपटलभरवलयितमूलं (पीतेन परागाणां मध्यस्थरजसां पटल-भरेण समूहातिशयेन वलयितं वेष्टितं मूलं यस्य तं) नीलनलिनम् (नीलोत्पलम्) इव [हरिं ददर्श]। [नीलकमलेन श्रीहरेः परागेण च पीतवसनस्य साम्यम्] ॥३ ॥

अनुवाद—श्रीहरिने अपने श्यामल मृदुल कलेवर पर पीत वसन धारण किया है, ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो नीलपद्म सुवर्ण-पर्णके पराग-निलयसे साङ्गोपाङ्ग सराबोर हो गया हो।

पद्यानुवाद—

श्यामल कोमल वपु पर सज्जित सुन्दर गौर दुकूल,
पीत पराग पटल है राजित ज्यों नलिनीके फूल।

बालबोधिनी—श्रीहरिका श्रीविग्रह श्यामवर्ण है, जिस पर उन्होंने पीत वर्णका पीताम्बर धारण कर रखा है, वह इस

प्रकार सुशोभित हो रहा है, जैसे नीलकमल अपने पीले परागसे परिपूर्ण रूपसे परिवेष्टित—मंडित हो रहा हो। इस बातकी भी सूचना दी जा रही है कि श्याम-वर्णके वक्षःस्थल पर तुम गौराङ्गीकी शोभा भी अत्यधिक होगी। इस प्रकार विपरीत-रति भी प्रदर्शित हुई है।

तरल—दृगञ्चल—चलन—मनोहर—वदन—जनित—रतिरागम् ।
स्फुट—कमलोदर—खेलित—खञ्जन—युगमिव शरदि तडागम्॥
हरि.... ॥४॥

अन्वय—तरल-दृगञ्चल-चलन-मनोहर-वदन-जनित-रतिरागम् (तरलस्य चञ्चलस्य दृगञ्चलस्य चलनेन कटाक्षक्षेपेण मनोहरं यत् वदनं तेन जनितः उत्पादितः रतिरागः सुरतौत्सुक्यं येन तं) [अतएव] शरदि (शरत्काले) स्फुटकमलोदर-खेलित-खञ्जनयुगम् (स्फुटं विकसितं यत् कमलं पद्मं तस्य उदरे अभ्यन्तरे खेलितं क्रीड़ापरं खञ्जनयुगं यत्र तादृशं) तड़ागम् इव [हरिं सा ददर्श इति शेषः]। [अत्र श्रीहरेः तड़ागेन वदनस्य कमलेन, नयनयोश्च खञ्जनयुगलेन साम्यम्]॥४॥

अनुवाद—जिन श्रीकृष्णका मनोहर वदन शरद् कालके निर्मल सरोवरमें विकसित नील-कमलकी शोभाके समान है, उस मुख पर चंचल नयनोंकी अपाङ्ग-भङ्गिमा श्रीराधाके प्रति इस प्रकार मदन-अनुराग उद्दीप्त करा रही है, मानो कमल पर खञ्जन पक्षी क्रीड़ापरायण हो रहे हों।

पद्यानुवाद—

तरल दृगंचल चलन मनोहर वदन उदित रति-राग,
खेल रहे खंजन कंजोदर मानो शरद तड़ाग।
हुलस उठी राधा मधुवनमें।
विलस उठी राधा अति मनमें॥

बालबोधिनी—जब श्रीराधाने निकुंज-सदनमें प्रवेश किया, तब श्रीकृष्णके नेत्र अति चंचल हो उठे, उनके मन्द-मन्द

मुस्कानसे युक्त अति मनोहर मुखड़ेको देखकर श्रीराधाके मनमें रतिविलास करनेकी इच्छा उत्पन्न हो उठी। श्रीकृष्णका सस्मित मुख उस शरद्कालीन प्रफुल्लित कमलके समान लग रहा था, जिस पर दो खञ्जन पक्षी क्रीड़ा कर रहे हों। वस्तुतः उनके नेत्रोंकी चंचलता क्रीड़ापरायण खंजरीट खगोंके (खञ्जन पक्षीके) समान लग रही थी। श्रीराधाको देखकर श्रीकृष्ण अविकारी ही रहे। अतएव यहाँ उनकी उपमा शरदकालीन तड़ागसे दी गयी है।

प्रस्तुत श्लोकमें नेत्रोंकी चंचलता रतिरागको व्यक्त कर रही है, उनके भ्रू-क्षेप (कटाक्ष) श्रीराधाके मन्मथको अभिवृद्धित करनेवाले हैं। शरद्कालमें खंजन खगका वर्णन उचित ही है। 'कमलोदर' पदसे 'पद्मासन' नामक रतिविशेष भी सूचित हुआ है। उनका मनोहर मुख युवतियोंमें रतिकी अभिलाषा उत्पन्न करनेवाला है।

वदन-कमल-परिशीलन-मिलित-मिहिर-सम-कुण्डल-शोभम्।
स्मित-रुचि-कुसुम-समुल्लसिताधर-पल्लव-कृत-रति-लोभम्॥
हरि.... ॥५॥

अन्वय—वदन-कमल-परिशीलन-मिलित-मिहिर-सम-कुण्डल-शोभम् (वदनमेव कमलं तस्य परिशीलनाय विकाशाय मिलिताभ्यां समागताभ्यां मिहिरसमाभ्यां सूर्यसदृशाभ्यां कुण्डलाभ्यां शोभा यत्र तादृशं; सूर्यमण्डलद्वयमिव कुण्डलयुगलं धारयन्त-मित्यर्थः) [तथाच] स्मित-रुचि-कुसुम-समुल्लसिताधर-पल्लव-कृत-रति-लोभम् (स्मितरुचिः मृदुहास्यप्रभा स एव कुसुमं तेन समुल्लसितः यः अधर-पल्लवः तेन कृतः उत्पादितः [तस्याः] रतिलोभो येन तादृशम्) [हरिं सा ददर्श]॥५॥

अनुवाद—श्रीकृष्णके वदन-कमलकी शोभाका परिशीलन करनेके लिए अरुण वर्णके सदृश लोहित वर्णीय मणिमय कुण्डलद्वय अति सुन्दर रूपसे शोभा पा रहे हैं एवं रुचिर

मन्द-मन्द हास्यप्रभाकी कान्तिसे युक्त होकर उल्लसित, स्फूर्त्तियुक्त अधर-पल्लव श्रीराधाकी रति-लालसाको समुद्भूत करा रहे हैं।

पद्यानुवाद—

वदन कमल पर रविसे राजित युग कुण्डल अति सुन्दर।
हिल पल्लवसे होंठ जताते चुम्बन हित ज्यों आतुर॥

बालबोधिनी—उस समय निकुंजमें श्रीकृष्णके कानोंमें विभूषित दोनों कुण्डल ऐसे लग रहे थे मानो दो सूर्य उनके प्रफुल्लित मुखकमलका स्पर्श प्राप्त करनेके लिए कपोलों पर मिलित हो रहे हों। इस प्रसंगसे अर्थात् मिहिर-प्रकाशसे रतिकालका अन्त भी सूचित हो रहा है। उस पर भी श्रीकृष्ण मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। स्मित कान्तिसे उनका वदनकमल और भी रुचिर एवं समुज्ज्वलित लग रहा है। उनके अधरपल्लव रति-लोभकी तृष्णा अभिव्यक्त कर रहे हैं और श्रीराधाके अधर पानके लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं। श्रीकृष्णके ऐसे मुखकमलको देखकर श्रीराधाके मनमें भी रति-इच्छा समद्भूत हो गयी। श्रीराधा ऐसे सौन्दर्य-सार भूषण श्रीकृष्णको देखती रहीं।

शशि-किरण-च्छुरितोदर-जलधर-सुन्दर-सकुसुम-केशम्।
तिमिरोदित-विधुमण्डल-निर्मलमलयज-तिलकनिवेशम् ॥
हरि.... ॥६॥

अन्वय—शशि-किरण-च्छुरितोदर-जलधरसुन्दर-सकुसुमकेशं (शशिनः चन्द्रस्य किरणैः छुरितं व्याप्तम् उदरं यस्य तादृशः यः जलधरः तद्वत्-सुन्दराः सकुसुमाः कुसुमखचिताः केशाः यस्य तम्) [अत्र केशानां जलधरेण पुष्पाणाञ्च इन्दूकिरणेन साम्यम्] [तथा च] तिमिरोदित-विधुमण्डल-निर्म्मल-मलयज-तिलकनिवेशं (तिमिरे अन्धकारे उदितं विधुमण्डलमिव निर्म्मलः मलयजतिलक-निवेशः चन्दन-तिलक-विन्यासः यस्य तम्)

[हरिं सा ददर्श] [अत्र ललाटस्य तिमिरेण, तिलकस्य च इन्दुमण्डलेन साम्यम्]॥६॥

अनुवाद—कुसुमोंसे अलंकृत श्रीकृष्णका केश-पाश चन्द्रकिरणोंसे अनुरञ्जित होकर नवजलधर मालाके समान प्रतीत हो रहा है, ललाट पर धारण किया चन्दनतिलक इस प्रकार शोभा प्राप्त कर रहा है, मानो निर्मल आकाशमें अन्धकारके मध्य पूर्ण विधुमण्डल उदित हुआ हो।

पद्यानुवाद—

घनमें इंदु किरण सम सज्जित सुन्दर कुसुमित केश,
तिमिरोदित विधु मण्डल मानो मलयज-तिलक-निवेश।
हुलस उठी राधा मधुवनमें।
विलस उठी राधा अति मनमें॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्णकी सुन्दर अलकावली पुष्पोंसे समलंकृत हो रही थी। उन प्रफुल्लित समुज्ज्वलित पुष्पोंकी शोभा ऐसी लग रही थी मानो काली-काली घटाओंके मध्यमें चन्द्रमा छिप रहा हो। अथवा उन काले केशोंके मध्यमें चन्द्रकिरण व्याप्त हो रही है अथवा बादलोंके बीचमेंसे चन्द्रमा उदित हो रहा हो। छोटे-छोटे बादलोंके बीचमें जहाँ चाँदनी आलोकित होती है वहाँ फूलोंके गुम्फन स्पष्ट दिखायी देते हैं। जहाँ नहीं होती, वे कजरारे बने रहते हैं। श्रीकृष्णके श्यामवर्णके मस्तक पर मलयगिरिका चन्दनका तिलक ऐसी शोभा दे रहा था मानो अंधकारके बीच पूर्ण चन्द्रमण्डल उदित हुआ हो। श्रीराधा मिलनसे श्रीकृष्णका परिधान एवं शृङ्गार गौरवर्ण हो गया है, श्रीराधामय हो गया है। ऐसे गौरमय श्रीश्यामसुन्दरको श्रीराधा देखती रहीं।

विपुल-पुलक-भर-दन्तुरितं रति-केलि-कलाभिरधीरम्।
मणिगण-किरण-समूह-समुज्ज्वल-भूषण-सुभग-शरीरम्॥
हरि.... ॥७॥

अन्वय—विपुल-पुलक-भर-दन्तुरितं (विपुलो महान् यः पुलकभरः रोमाञ्चातिशयः तेन दन्तुरितं विषमीकृतं क्वचिदुन्नतं क्वचिच्चानतमिति यावत्) [अतएव तद्दर्शनात् हृदि उद्गतैः] रतिकेलिकलाभिः (सुरतक्रीड़ाविलासैः) अधीरं (व्याकुलं) [तथाच] मणिगण-किरण-समूह-समुज्ज्वल-भूषण-सुभग-शरीरम् (मणिगणानां रत्नसमूहानां परिहितानामित्यर्थः किरणसमूहैः समुज्ज्वलानि भूषणानि अलङ्काराः तैः सुभगं सुन्दरं शरीरं यस्य तादृशं) [हरिं सा ददर्श इति शेषः]॥७॥

अनुवाद—श्रीराधा-अवलोकनसे श्रीकृष्णका शरीर विपुल पुलकोंसे रोमाञ्चित हो रहा है, रति-केलि-विषयक विविध कथा मनमें समुदित होनेसे वे अति अधीर हो रहे हैं, श्रीविग्रह मणियोंकी किरणोंसे समुज्ज्वलित होकर अतीव मनोहर द्युतिको धारण कर रहा है।

पद्यानुवाद—

विपुल पलक भर ललक केलि रति दिखते अधिक अधीर।
मणि गण किरण समूह समुज्ज्वल भूषण सुभग शरीर॥

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णको देख रही हैं कि उनका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो रहा है, अद्भुत रोमांचसे युक्त हो रहा है, रति-क्रीड़ाके लिए वे एक विचित्र आकुल प्रत्याशासे अधीर तो हो ही रहे थे, श्रीराधा-मिलनसे तो रति-केलि-कलामें उपयोगी चुम्बनादि क्रियाओंमें व्यस्त होनेके कारण और भी चंचल हो उठे। मणिमय भूषणोंकी कान्तिसे देदीप्यमान होनेके कारण उनका श्रीविग्रह अत्यधिक सुशोभित हो रहा था, जिन आभूषणोंको उन्होंने धारण कर रखा था, उन आभूषणोंमें लगी हुई मणियोंके किरणसमूहसे सभी आभूषण चमचमा रहे थे—ऐसे मणिमय अलंकारोंसे सुन्दर वपुवाले श्रीकृष्णको श्रीराधाने देखा।

श्रीजयदेवकवि-भणित-विभव-द्विगुणीकृत-भूषणभारम्।
प्रणमत हृदि विनिधाय हरिं सुचिरं सुकृतोदय-सारम्॥
हरि.... ॥८॥

अन्वय—[भोः साधवः] श्रीजयदेव-भणित-विभव-द्विगुणीकृत-भूषण-भारं श्रीजयदेवस्य भणितमेव विभवः समृद्धिः तेन द्विगुणीकृतः नितरां परिवर्द्धित इत्यर्थः भूषणस्य अलङ्कारस्य भारः गौरवं यत्र तादृशं) [यैः स्वयमलंकृतं ते अलङ्काराः जयदेवस्य उपमादि-वाग्विलासैः द्विगुणीकृता इत्यर्थः] [तथा] सुकृतोदयसारम् (सुकृतस्य पुण्यविशेषस्य य उदय आविर्भावः फलमितियावत् तस्य सारभूतं) हरिं सुचिरं [यथा तथा] हृदि (चित्तमध्ये) विनिधाय (भक्तिभरेण स्थापयित्वा) प्रणमत॥८॥

अनुवाद—श्रीजयदेव कवि द्वारा विरचित विविध अलंकृत वाक्यरूप अलंकारसे जिनके परिहित भूषण-राशिकी शोभा द्विगुणित हो गयी है, हे रसिक भक्तों! कृत-पुण्योंके फलस्वरूप उन श्रीकृष्णको हृदयमें यत्नके साथ धारण कर आप उन्हें प्रणाम करें।

पद्यानुवाद—

श्रीजयदेवकथित हरि-वर्णन द्विगुणित भूषण भार,
हो हियमें अंकित जब जनके उदित पुण्यका सार।
हुलस उठी राधा मधुवनमें।
विलस रही राधा उपवनमें॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत प्रबन्धके इस आठवें पद्यके द्वारा कवि जयदेव कहते हैं कि हे भक्तजनों! कवि-शिरोमणि जयदेवकी कविताके कारण श्रीकृष्णके आभूषणोंकी शोभा द्विगुणित हो गयी है अथवा जयदेव कवि द्वारा कथित श्रीकृष्णका वैभव द्विगुणित अलंकारोंसे युक्त है। चिरकालसे सञ्चित पुण्योदयके तत्त्वरूप श्रीकृष्णको चित्तमें धारण कर उन्हें प्रणाम कीजिए। बड़े पुण्योंसे ऐसे श्रीकृष्ण मनमें उदित होते हैं, वे श्रीराधाके संगसे जुड़कर द्विगुणित भूषणके भारसे

श्रीराधासे जुड़कर द्विगुणित हो जाते हैं। ऐसे श्रीकृष्ण जिन्हें श्रीराधा निरन्तर देख रही हैं, नित्यकालके लिए हृदयमें विराजमान हो जायें।

श्रीगीतगोविन्द काव्यके इस बाईसवें प्रबन्धका नाम 'सानन्द गोविन्दराग श्रेणिकुसुमाभरण' है।

अतिक्रम्यापाङ्गं श्रवणपथपर्यन्तगमन–
प्रयासेनेवाक्ष्णोस्तरलतरतारं पतितयोः।
तदानीं राधायाः प्रियतम–समालोकसमये
पपात स्वेदाम्बुप्रकर इव हर्षाश्रुनिकरः ॥१॥

अन्वय—[अथ श्रीकृष्णस्य श्रीराधिकादर्शनानन्द–विकारमुक्त्वा इदानीं श्रीराधायास्तद्दर्शनानन्दविकारमाह]—तदानीं प्रियतम–समालोक समये (प्रियतमस्य श्रीकृष्णस्य दर्शनकाले) अपाङ्गम् (नेत्रप्रान्तं) अतिक्रम्य श्रवण–पथपर्यन्त गमनप्रयासेनैव (कर्णान्तपर्यन्तं बहुदूरमित्यर्थः गमनप्रयासेनैव) तरलतर–तारं (तरलतरा अतिचञ्चला तारा नेत्रकनीनिका यत्र तद्यथा तथा) पतितयोः राधायाः अक्ष्णोः (नेत्रयोः अतृप्तयोरिति शेषः) स्वेदाम्भः–प्रकरः (श्रमजातघर्मजलप्रवाहः) इव हर्षाश्रुनिकरः (आनन्दाश्रुचयः) पपात। [अत्रायं भावः—यः अत्यन्तं गच्छति गतिवेगवशात् स घर्माक्तः भूमौ पतति; पतित्वाच झटिति उत्थाय किमहं केनापि दृष्ट इति सलज्जः तरलतरतारः दिशः अवालोकयति; द्रुततरगमनायासात् तस्य तनोः घर्मवारि प्रसरति च; तद्वत् श्रीकृष्णावलोकनसमये श्रीराधायाः नेत्रयुग्मम् अपाङ्गमतिक्रम्य कर्णयुगलं यावत् गतं, तेन च सुदूरगमनश्रमादिव आनन्दाश्रु–व्याजेन घर्मवारि निःससार]॥१॥

अनुवाद—प्राणेश्वरके मिलन–क्षणोंमें श्रीराधाके अतृप्त नयन–युगलने अपाङ्गको अतिक्रमण कर श्रवण–पथ पहुँचनेका प्रयास किया। इस प्रयासमें चंचल बने नेत्रोंसे पसीनेके प्रसारके रूपमें हर्ष ही अश्रु–धारा बनकर प्रवाहित होने लगा।

बालबोधिनी—चिरकालके विरहके पश्चात् जब श्रीराधाका श्रीकृष्णके साथ मिलन हुआ तो श्रीराधाके नेत्र अपाङ्गों (कटाक्षपातों) का अतिक्रमण करके कानों तक पहुँच गये। इसी श्रमसे मानो उनके नेत्रोंमें पसीना आनन्दाश्रुके रूपमें जलधाराके समान बहने लगा। इतने समय बाद प्रियतमको देखा तो हर्ष स्थिर न रह सका, आँखोंसे छलछलाने लगा। रतिक्रीड़ाके आस्वादनसे आँखें पसीना-पसीना हो गयीं। बड़ी-बड़ी आँखें कानों तक पहुँचना चाहती थीं और इसी प्रयासमें उनमें शैथिल्य आ गया। शिथिलताके कारण वे नमित हो गयीं, झुक गयीं, जलमय हो गयीं। नेत्र-प्रान्तका अतिक्रमण करके श्रवण पथ तक जानेके प्रयासमें स्वेद-अम्बु छलछलाया। नेत्रोंमें प्रिय-दर्शनकी आकांक्षासे अति चंचलत्व तो हो रहा था।

श्रीराधाका सात्विक भाव प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत श्लोकमें उपमा अलंकार है और शिखरिणी छंद है।

भजन्त्यास्तल्पान्तं कृत-कपट-कण्डूति-पिहित-
स्मितं याते गेहाद् बहिरबहिताली-परिजने।
प्रियास्यं पश्यन्त्याः स्मरशर-समाहूत-सुभगं
सलज्जा लज्जापि व्यगमदिव दूरं मृगदृशः॥२॥

अन्वय—[ततः शय्यान्तिकं गतायास्तस्याः प्रियदर्शनावेशेन लज्जा विगलिता इत्याह]—कृत-कपट-कण्डूति-पिहित-स्मितं (कृता या कपटकण्डूतिः छलकण्डुयनं तया पिहितम् आच्छादितं स्मितम् ईषद्धास्यं यथा तथा) अवहिताली-परिजने (तत्सुखानुकूल्ये अवहितः सावधानः यः आलीपरिजनः सखीजनः तस्मिन्) गेहात् (निकुञ्जभवनात्) बहिः याते (प्रस्थिते) [सति] तल्पान्तं (शय्यान्तिकं) भजन्त्याः (गच्छन्त्याः) स्मरशरसमाहूतसुभगं (स्मरशरेण समाहूतं यत् हास्यकटाक्षादिकं तेन सुभगं

सुन्दरं–यथास्यात् तथा; यद्वा स्मरशरसमाहूतसुभगमिति प्रियास्य–मित्यस्य विशेषणम्) प्रियास्यं (श्रीकृष्णवदनं) पश्यन्त्याः मृगदृशः (मृगाक्ष्याः श्रीराधायाः) लज्जापि सलज्जा [सती] दूरं व्यगमदिव (विशेषेण अगमदिव) [सखीसमक्षं श्रीराधा सलज्जा आसीत् अधुना तासां कुञ्जभवनात् बहिर्गमनेन सा लज्जां विहाय यथाभिलषितं विजहार इत्यर्थः]॥२॥

अनुवाद—श्रीराधाकी सुखाभिलाषिणी सहचरियाँ कुरङ्गनयना राधिकाको केशवकी शय्या पर उपवेशन करते देख सावधानीसे कपट–कण्डूयनका बहाना करती हुई हास्य संवरण पूर्वक निकुंजगृहसे बाहर चली गयीं, तब स्मरपरवशा श्रीराधा अपने प्रियतम श्रीकृष्णके मुखमण्डलका मनोहर कटाक्ष निक्षेपके द्वारा अवलोकन करने लगीं और उनकी लज्जा भी सलज्जभावसे वहाँसे दूर चली गयी।

बालबोधिनी—ज्यों ही श्रीराधाने लता–निकुंजमें प्रवेश किया, सेज पर आसीन हुई तभी सावधान सखियाँ समझ गईं कि अब उनके यहाँ रुकनेका कोई औचित्य ही नहीं है, उनकी उपस्थिति श्रीराधामाधवके मधुर मिलनमें बाधक बन सकती है। वे चतुर सखियाँ बहाना बनाने लगीं, कान आदि खुजलाने लगीं और मुस्कराते हुए लता–निकुंजसे बाहर चली गयीं। फूलोंकी शैया पर विराजमान श्रीराधा कामदेवके बाणोंसे वशीभूत हो श्रीकृष्णको ऐसे देखने लगीं मानो उन्हें पुनः स्मरके शरोंसे बींध रही हों। श्रीराधाकी ऐसी प्रगल्भता देखकर लता भी लज्जित हो गयीं और उस मृगनयनी श्रीराधाको छोड़कर सखियोंके समान स्वयं भी दूर चली गयीं। अब इस रति–व्यापारमें लाज भी कहाँ रहेगी, देखते–देखते श्रीराधाने श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया।

प्रस्तुत श्लोकमें रसवद् अलंकार एवं शिखरिणी छन्द है।

सानन्दं नन्दसूनुर्दिशतु मितपरं सम्मदं मन्दमन्दं
राधामाधाय बाह्वोर्विवरमनु दृढं पीडयन्प्रीतियोगात्।
तुङ्गौ तस्या उरोजावतनु वरतनोर्निगतौ मा स्म भूतां
पृष्ठं निर्भिद्य तस्माद्बहिरिति वलितग्रीवमालोक्यन्वः ॥३॥

अनुवाद—नन्दपुत्र श्रीकृष्णने श्रीराधाको मन्द-मन्द अपनी बाहोंके अन्तरालमें रखा, प्रीतिपूर्वक उनका गाढ़ आलिङ्गन किया। पुनः ग्रीवाको घुमाकर ऐसे देखने लगे मानो श्रीराधाके उन्नत उरोज उनकी पीठको भेदकर बाहर न निकल जायें—ऐसे श्रीकृष्ण सभीका आनन्द विधान करें।

बालबोधिनी—नन्दपुत्र श्रीगोपाल एवं श्रीराधाका मिलन हुआ। इस मिलनसे श्रीकृष्ण अतिशय आनन्दसे परिपूर्ण हो गये और धीरे-धीरे श्रीराधाको अपनी बाहोंके विवरमें भर लिया। श्रीराधा शिरीष कुसुमोंसे भी बहुत अधिक सुकोमल हैं, इसलिए उन्हें बहुत कोमलताके साथ गले लगाया। पुनः अत्यन्त प्रीतिपूर्वक श्रीराधाका गाढ़ आलिङ्गन किया। यहाँ 'दृढं पीडयन्' इस पदसे श्रीकृष्णका अतिशय अनुराग प्रकट हो रहा है। पुनः अपनी ग्रीवाको वलायित करके उन्हें देखने लगे कि कहीं श्रीराधाके तुङ्ग उरोज उनकी पीठको भेदकर बाहर न निकल जायें। इस प्रसंगमें श्रीराधाके उरोज पृष्ठका काठिन्य एवं तीक्ष्णत्व अभिव्यक्त हो रहा है। यहाँ श्रीराधाकी प्राकृतिक रूपसे अति रमणीयता एवं सौकुमार्यता निदर्शित हुई है—वे फूलोंसे भी अधिक कोमल है।

प्रस्तुत श्लोकमें श्रृङ्गार रस, वैदर्भी रीति एवं प्रसाद गुण है।

जयश्री–विन्यस्तैर्महित इव मन्दार कुसुमैः
स्वयं सिन्दुरेण द्विप–रण–मुदा मुद्रित इव।
भुजापीड़–क्रीड़ाहत–कुवलयापीड–करिणः
प्रकीर्णासृग्बिन्दुर्जयति भुजदण्डो मुरजितः ॥४॥

अन्वय—[तत्र तया अभिलाष-विशेषेण आलोच्यमानं श्रीकृष्णस्य भुजदण्डं स्मरन् तत्सौन्दर्यं वर्णयति कविः]—भूजापीड़-क्रीड़ाहत-कुवलयापीड़करिणः (भूजापीड़ेन बाहुभ्यां सम्यक् पीड़नेन क्रीड़या अवलीलया हतस्य कुवलयापीड़ाख्यस्य कंसकरिणः) प्रकीर्णासृग्विन्दुः (प्रकीर्णाः विक्षिप्ता लग्ना इति यावत् असृग्विन्दवः शोणितविन्दवः यत्र तादृशः) जयश्रीविन्यस्तैः (जयश्रिया विजयलक्ष्म्या विन्यस्तैः अर्पितैः) मन्दा-कुसुमैः (देवतरुपुष्पैः) महितः (अर्चितः) इव; [जयश्रीपूजितत्वेन हेतुना उत्पेक्षान्तरमाह]—द्विप-रण-मुदा (द्विपेण करिणा सह यः रणः संग्रामः तेन मुदा हर्षेण) स्वयं सिन्दूरेण मुद्रितः (राजितः) इव [एतादृशः] मुरजितः (मुरारेः श्रीहरेः) भुजदण्डः जयति [अतएव विप्रलम्भानन्तरप्राप्यानन्देन सहितो गोविन्दो यत्र सोऽयम् एकादशः सर्गः) ॥४॥

अनुवाद—बाहु-युद्धमें कुवलयापीड़ नामक हस्तीको मार देनेसे रुधिर (रक्त) बिन्दुओंसे सुशोभित, हाथीके साथ युद्धके उल्लासमें सिन्दूरसे चिह्नित, विजय-श्री द्वारा मन्दार पुष्पोंसे विभूषित मुरजितकृष्णका विशाल भुजदण्ड जयजयकारको प्राप्त हो।

बालबोधिनी—कवि जयदेव कहते हैं कि श्रीकृष्णका मंगलकारी भुजदण्ड आपका कल्याण करे, उनकी भुजाएँ सर्वोत्कृष्ट हैं, जगत-वन्दनीय हैं। वे मुरजित हैं। उन्होंने अपनी दण्डाकार भुजाओंसे मुर नामक दैत्यको परास्त कर दिया था। अपने इसी प्रचण्ड भुजदण्डकी क्रीड़ासे उन्होंने कंसके कुवलयापीड़ नामक हाथीको मार डाला था। उसको मारनेसे जो रक्तकी बूंदें उनकी भुजाओंपर पड़ गई थीं, उन्हें देखकर ऐसा लगता था मानो विजयलक्ष्मीने स्वयं ही पारिजातके फूलोंसे उनकी पूजा की हो। वे स्वयं भी उस हाथीको मारकर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। उनकी इसी प्रसन्नताने ही सिन्दूरका रूप धारण कर लिया था। ऐसा

कहा जाता है कि उन्हें हाथीके उन्नत कुंभको देखकर श्रीराधाका स्मरण हो आया था। रक्त बिन्दुओंसे सुशोभित उनकी भुजाएँ आनन्दरूपी सिन्दूरसे अलंकृत हो रही थीं अथवा विजयश्री द्वारा अर्पित किये गये मन्दार पुष्पोंसे समलंकृत हो रही थीं—ऐसा प्रचण्ड भुजदण्ड आप सबका मंगल-विधान करे। हे श्रीकृष्णके भुजदण्ड! आपकी जय हो, जय हो।

प्रस्तुत श्लोकमें शिखरिणी छन्द है। अनुप्रास और उत्प्रेक्षा अलंकारकी संसृष्टि है। पाञ्चाली रीति, आरभटीवृत्ति तथा वीर रस है।

सौन्दर्यैकनिधेरनङ्ग-ललना-लावण्य-लीलाजुषो
राधाया हृदि पल्वले मनसिज क्रीड़ैकरङ्गस्थले
रम्योरोजसरोजखेलनरसित्वादात्मनः ख्यापय-
न्ध्यातुर्मानसराजहंसनिभतां देयान्मुकुन्दो मुदम्॥५॥

इति श्रीजयदेवकृतौ श्रीगीतगोविन्दे राधिकामिलने सानन्द-दामोदरो-नामैकादशः सर्गः।

अनुवाद—सौन्दर्यकी निधि, अनङ्गललना रतिके सदृश लावण्यमयी श्रीराधाके हृदय-सरोवरके मनोहर रङ्ग-स्थल स्तन-कमल पर क्रीड़ापरायण हुए एकाग्रचित्त, अपना ध्यान करने वालोंके मानस राजहंसत्वको ख्यापित करनेवाले श्रीमुकुन्द आपको आनन्द प्रदान करें।

बालबोधिनी—श्रीमुकुन्द जो सभी मनुष्योंको क्लेशोंसे मुक्त कर उन्हें आनन्द प्रदान करते हैं। प्रस्तुत श्लोकमें पाठक तथा श्रोताओंको आशीर्वाद देते हुए कवि शिरोमणि जयदेवका कथन है कि श्रीराधा ही समग्र सौन्दर्यकी एकमात्र निधि हैं, उनका वक्षःस्थल श्रीकृष्णकी क्रीड़ाभूमि है। कविने श्रीराधाके वक्षःस्थलकी उपमा सरोवरसे की है। जिस तरह

सरोवरमें कमल विकसित होते हैं, उसी प्रकार श्रीराधाके वक्षःस्थल-तड़ागमें दोनों स्तन ही मनोहर कमल हैं, जहाँ श्रीकृष्ण क्रीड़ा करनेवाले राजहंस हैं। ऐसे राजहंस श्रीकृष्णका जो लोग ध्यान करते हैं, उन ध्यान करनेवाले ध्याताओंके हृदय-स्थलमें विहार करनेवाले मानसरोवरके राजहंसके समान श्रीकृष्ण अपने सभी भक्तोंका मंगल विधान करें।

प्रस्तुत श्लोकमें रूपक एवं आशीः अलंकार है और शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है। इस प्रकार सामोददामोदर नामक ग्यारहवें सर्गकी समाप्ति हुई।

द्वादशः सर्गः

(सुप्रीत–पीताम्बरः)

गतवति सखीवृन्देऽमन्दत्रपाभर–निर्भर–
स्मरशरशाकूतस्फीतस्मितस्नपिताधराम् ।
सरसमनसं दृष्ट्वा राधा मुहुर्नवपल्लव–
प्रसवशयने निक्षिप्ताक्षीमुवाच हरिः प्रियाम् ॥१॥

अन्वय—सखीवृन्दे (सहचरीसमूहे) गतवति [सति] हरिः मन्दत्रपाभर–निर्भर–स्मर–शर–वशाकूत–स्फीत–स्मितस्नपिताधरां (मन्दः शिथिलः यः त्रपाभरः लज्जातिशयः तेन निर्भरः अतिप्रवृद्धः स्मरशरः तद्वशो यः आकूतः अभिप्रायः तेन स्फीतं प्रवृद्धं यत् स्मितं मृदुमधुर–हसितं तेन स्नपितः अभिषिक्तः अधरः यस्याः तादृशीं) सरस–मनसं (अनुरागेण आर्द्रचित्तां) [तथा] मुहुः (पुनः पुनः) नवपल्लव–प्रसर–शयने (नव–पल्लवानां प्रसरः समूह एव शयनं तस्मिन्) निक्षिप्ताक्षीं (निक्षिप्ते अक्षिनी यस्याः तां) प्रियां (राधां) दृष्ट्वा उवाच॥१॥

अनुवाद—सखीवृन्दके लता–कुञ्जसे बाहर चले जाने पर अत्यधिक लज्जासे परिपूर्ण श्रीराधा कामदेवके वशीभूत हो गयीं, उनके अधरोष्ठ स्मितसे सुशोभित हो गये, रतिक्रीड़ाके लिए अनुरागवती हो नव–पल्लवों एवं कुसुमोंसे रचित शय्याको पुनः–पुनः अवलोकन करने लगीं। अपनी प्रियाको ऐसा करते देखकर श्रीकृष्णने कहा—

पद्यानुवाद—

स्मर पूरित मन, लगी थिरकने दीठ 'शयन' की ओर
तरल स्मित भी लगी भिगाने मधुर अधरकी कोर,
लज्जासे हो उठे लाल जब गोरे मृदुल कपोल
सखी गमन पर हरि राधासे बोल उठे दो बोल—

बालबोधिनी—जब श्रीराधा निकुंज-लता-गृहमें केलि-विलास शय्याके समीप पहुँचीं तो सखियाँ स्वयंको बाधक मानकर विविध प्रकारके बहाने बनाकर चली गयीं। श्रीकृष्णने श्रीराधाको मनमें अत्यधिक लज्जित होते हुए देखा। कामकी परवशताके वशीभूत हो मन्द-मन्द मुस्कराहट श्रीराधाके होठों पर खेल रही थी, उत्सुकतासे पूर्ण पल्लवोंकी सेजकी ओर देखे जा रही थीं, कुछ बोल नहीं पा रही थीं, मन अनुरागसे भरा हुआ था, नवीन पल्लवों द्वारा रचित शय्या ही उनका अभिप्राय-सर्वस्व हो रहा था। श्रीराधाकी ऐसी मानसिक स्थितिको देखकर श्रीकृष्णने सानुराग उनसे कहा।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छन्द है। इस सर्गमें स्वाधीनभर्तृका नायिका वर्णित हुई है। शय्याका पुन-पुनरावलोकन श्रीराधाकी संभोगेच्छाका निदर्शन करता है।

त्रयोविंश सन्दर्भ

गीतम् ॥२३ ॥

विभासरागैकतालीतालाभ्यां गीयते ॥प्रबन्धः ॥२३ ॥

गीतगोविन्द काव्यके इस २३वें प्रबन्धको विलास राग तथा एकताली तालसे गाया जाता है।

किसलय-शयन-तले कुरु कामिनि! चरण-नलिन-विनिवेशम्।
तव पद-पल्लव-वैरि पराभवमिदमनुभवतु सुवेशम् ॥१ ॥
क्षणमधुना नारायणमनुगतमनुसर राधिके! ध्रुवपदम्

अन्वय—अयि कामिनि [मत्पूजा त्वय्यस्तीति कामिनीशब्दः प्रयुक्तः] किशलय-शयन-तले (नवपल्लवशय्यायां) चरण-नलिन-विनिवेशं (चरण-कमलयोर्विन्यासं) कुरु [पूजायां प्रथमाङ्गमासनम् अङ्गीकुरु] इदं (तरुण-पल्लवशयनं) सुवेशं (तत्तद्गुणैः शोभमानमपि) तव पद-पल्लव-वैरि (पदपल्लवस्य शत्रुभूतम्

अरुणतादिभिः गुणैः साम्यकाङ्क्षया वैरित्वं ज्ञेयं) [अतः अस्य शिरसि तव पदपल्लवस्य अवस्थापनात्] पराभवम् अनुभवतु, अयि राधिके अधुना नारायणं (नारीणां समूहो नारं; नाराणाम् अयनम् स्त्रीसमूहानाम् आश्रयं) अनुगतं (त्वदेकपरं) [बहुवल्लभमपि त्वदेकनिष्ठमिति भावः]; [माम्] क्षणम् अनुभज (सेवस्व)॥१॥

अनुवाद—हे कामिनि! किसलयोंसे बनी शय्या पर अपने चरण-नलिनको न्यस्त करो। तुम्हारे पद-पल्लवोंकी वैरिणी यह शय्या अब पराभवका अनुभव करे। हे राधिके! मुहूर्त्त-मात्रके लिए आप मुझ नारायणका अनुसरण करें।

पद्यानुवाद—

मानिनि! अपना मान बिसारो।
नव किसलय-शैया पर सुन्दरि! पद-पद्मोंको धारो।
और अरुणिमासे पल्लवके अहंभावको मारो॥

बालबोधिनी—श्रीहरि श्रीराधासे कहने लगे—हे कामिनि! अपने चरण-कमल इस पल्लवकी सेज पर स्थापित करो। ये पल्लव तुम्हारे पद-पल्लवोंसे वैर रखते हैं। अपने पैरोंसे इन्हें प्रताड़ित करो, जिससे ये अपनी हारको अनुभूत कर लें। शत्रु अपने शत्रुको पराजित कर उसे अपने पैरोंसे रोंद ही तो डालता है। हे प्रिये! अब तुम मेरा अनुसरण करो, तुम्हारे दर्शनोत्सवसे मैं अत्यधिक आनन्दित हो रहा हूँ। अब क्षण भर तुम्हारे साथ सम्भोगोत्सवसे मुझे आनन्दित होने दो। अब ऐसा पल आ गया है कि तुम अपने अनुगत नारायणके साथ विलसो। रस-सृष्टिकी भूमिका बनाते हुए श्रीकृष्ण कहने लगे—मैं नारायण हूँ। इस प्रसंगमें नारायणका अभिप्राय यह है कि जो नार अर्थात् जलमें निवास करता है, जो जनोंके आश्रय-स्वरूप हैं। जिस प्रकार कोई सन्तप्त व्यक्ति जलाशयमें जल-क्रीड़ा कर आनन्दकी अनुभूति करता है, उसी प्रकार तुम भी कामसंतप्ता हो, मेरे प्रेम-सागरमें

मानिनि! अपना मान बिसारो।

जलक्रीड़ाके समान रतिकेलिका अनुभवकर आनन्द प्राप्त करो और मेरी भी शीतलताका विधान करो।

प्रस्तुत श्लोकमें तल्प पर 'पदपल्लवन्यास' पदसे करणविशेष सूचित हुआ है।

कर-कमलेन करोमि चरण-महमागमितासि विदूरम्।
क्षणमुपकुरु शयनोपरि मामिव नूपुरमनुगतिशूरम्॥
क्षणमधुना.... ॥२॥

अन्वय—[तदारोहणेन कथं त्वदनुभजनं स्यादित्यत आह]— [अयि प्रिये] [अहम् आत्मनः] करकमलेन [तव] चरणमहं (चरणयोः महं पूजां) करोमि (संवाहयामीत्यर्थः) [यतः] [त्वं] विदूरम् (अतिदूरम्) आगमितासि (आनीतासि) [मयेति शेषः]; [दूरागतस्य पादसंवाहनमुचितमितिभावः]; [तदर्थं] क्षणं शयनोपरि (शय्यायां) अनुगतिशूरं (अनुगतौ अनुगमने सेवायां शूरं निपुणं) नूपुरमिव माम् उपकुरु (अङ्गीकुरु) [अनुगतस्य पाद-लग्नस्य उपकाराचरणं युक्तमेवेत्यर्थः]॥२॥

अनुवाद—हे प्रिये! आप बहुत दूरसे चलकर आयी हैं। मैं अपने कर-कमलोंसे आपके चरणारविन्दोंका संवाहन करता हूँ। अपने नूपुरका अनुसरण करनेवाले मुझ शूर पर भी तुम इस शय्याके ऊपर क्षणभर उपकार करो।

पद्यानुवाद—

दूर देशसे थक आई हो, कर कमलोंसे अपने
पद सहलाकर श्रम हर लूँगा (क्यों विहँसी चल नयने?)
दूँ उतार पायल, क्षण भर तो शैया पर ढिग मेरे।
बैठो प्रिय! बतरससे हिय हो शीतल आज सबेरे॥

बालबोधिनी—श्रीकृष्ण कहते हैं—राधे! तुम बड़ी दूरसे चलकर आई हो, आओ, मैं अपने हाथोंसे तुम्हारे चरण-कमलोंको दबा दूँ, मैं इन चरणोंकी पूजा करता हूँ। इन नूपुरों पर उपकार कर जैसे तुम इनको धारण करती हो, उसी प्रकार

मुझ पर भी उपकार करो—इस शय्या पर। जिस प्रकार ये नूपुर सदा-सर्वदा तुम्हारा अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार मैं भी नित्य-निरन्तर तुम्हारा अनुसरण करता हूँ। अतः तुम्हारे द्वारा उपकृत किये जानेकी योग्यता मुझमें है। मैं भी तुम्हारे अनुग्रहका पात्र हूँ।

वदन-सुधानिधि-गलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम्।
विरहमिवापनयामि पयोधर-रोधकमुरसि दुकूलम्॥
क्षणमधुना.... ॥३॥

अन्वय—[अनुज्ञां बिना पूजा न शुभावहा इति अनुज्ञां प्रार्थयते]—अयि प्रेयसि] वदन-सुधानिधि-गलितम् (वदनमेव सुधानिधिः चन्द्रः तस्मात् गलितम् निःसृतम्) अमृतम् इव अनुकूलं (अनुरागात्मकं) [अनुकूलमेव वचनम् अमृतवद्द्रवतीति भावः] वचनं रचय (वद); [ननु किमेतावता तवेप्सितं सेत्स्यतीत्याह] [अहं च] पयोधर-रोधकं (स्तनावरकं, स्तनाश्लेष-वाधकमित्यर्थः) दुकूलम् (वसनम्) उरसि (वक्षसि; अत्र पञ्चम्यर्थे सप्तमी) विरहमिव अपनयामि (अपसारयामि) [यथा विरहेण पयोधरदर्शनं विच्छिद्यते दुकूलेन; अतस्तत् दूरीकृत्य विरहव्यथामपि निवारयामि]॥३॥

अनुवाद—हे राधे! अपने मुखसुधानिधिसे अमृततुल्य अनुकूल वचन कहिये। मिलनमें बाधक स्वरूप विरहके समान तुम्हारे पयोधर-स्थल पर स्थित वस्त्रको मैं हटाना चाहता हूँ।

पद्यानुवाद—

उर-दुकूल कर दूर कुचोंकी आलिंगन-आतुरता।
अन्त करो भुज-पाश समाकर देवि! अखिल व्याकुलता॥
विरह-अनलसे दग्ध देह यह नष्ट हुए सब सपने।
अधर-सुधा-रससे जीवन दो इस अनुचरको अपने॥

बालबोधिनी—हे राधे! अपने मुखसे रति उत्पन्न करनेवाले मनोहारी अनुकूल वचन कहिए। तुम्हारा मुख चन्द्रमाके समान है। जिस प्रकार चन्द्रमासे अमृत निःसृत होता है, उसी प्रकार तुम भी अपने मुखेन्दुसे सुधा-धारा वर्षण करो। सुरत-क्रीड़ा अनुकूल मीठी-मीठी बातें बोलो। मैं तुम्हारे विरहसे तापित हूँ, परस्पर उपमान-उपमेय भावसे कहते हैं कि दुकूलके समान विरहको हटाता हूँ, विरहके समान दुकूलको हटाता हूँ। जैसे विरह हम दोनोंके मिलनमें बाधक बनता है, उसी प्रकारसे यह तुम्हारे वक्षःस्थल पर विद्यमान दुकूल भी हम दोनोंके मिलनमें बाधक है। अतः इस बाधक या अवरोधकको हटानेकी मुझे अनुमति दो। यह दुकूल पयोधरोंका रोधक है। विरहमें कामिनियोंके पयोधरोंकी वृद्धि नहीं होती, उसी प्रकार वस्त्रसे आवृत पयोधरोंकी भी वृद्धि नहीं होती। अतः तुम्हारे स्तनोंके विकासको रोकनेवाले विरह रूप आवरणको मैं हटा देता हूँ।

प्रिय-परिरम्भण-रभस-वलितमिव पुलकितमति दुरवापम्।
मदुरसि कुचकलशं विनिवेशय शोषय मनसिज-तापम्॥
क्षणमधुना.... ॥४ ॥

अन्वय—[ततो वक्त्रमवलोकयन्तीं प्रति व्याकुल सन्नाह]—[अयि प्रियतमे] मदुरसि (मम उरसि वक्षोदेशे) प्रिय-परिरम्भण-रभस-वलितमिव (प्रियस्य कान्तस्य मम परिरम्भणाय आलिङ्गनाय यो रभसः औत्सुक्यं तेन आलिङ्गनावेशेन इत्यर्थः वलितम् उच्छलितमिव) पुलकितं (रोमाञ्चितं) [कस्यचित् वृथात्त्यावलोकात् करुणः तदार्त्तिशमनाय पुलकितो भवति तद्वदयमपीत्यर्थः] अतिदुरवापं (अतिदुर्लभं) कुचकलसं (स्तनकुम्भं) विनिवेशय (स्थापय) [दुरापस्य हृद्येव धारण-योग्यत्वादिति भावः]; [तेनच मम] मनसिज-तापं (मदनसन्तापं) शेषय (खण्डय, निवारय इत्यर्थः) [रसायनार्पणात् तापोपशान्तिर्भवत्येवेत्यर्थः]॥४॥

अनुवाद—हे प्रिये! प्रियतमके परिरम्भणके लिए सन्नद्ध तथा हर्ष-रोमांचसे पुलकित, दुष्प्राप्य इन कुच-कलशोंको मेरे वक्षःस्थल पर रखकर मेरे मनसिज तापको दूर कीजिए।

बालबोधिनी—हे राधे! मेरे हृदय पर अपने कुच-कलशोंको धारण करा दो, जैसे मानो मंगलवेदी पर कुच-कलश रख रही हो। इस तरह मेरे मनसिज तापको शोषित कर डालो। कलश सन्निहित करने पर ताप तो चला ही जाता है। तुम्हारे कुचकलश पुलकित और रोमांचित हो रहे हैं। तुम्हारे अनुग्रहके बिना इनको प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। प्रियतमके आलिंगनके लिए ये अति सन्नद्ध एवं तत्पर हो रहे हैं। अतः इन्हें मेरे हृदय पर रखकर मेरे काम-सन्तापको दूर कर दीजिए।

अधर-सुधारसमुपनय भामिनि! जीवय मृतमिव दासम्।
त्वयि विनिहित-मनसं विरहानलदग्धवपुषमविलासम्॥
क्षणमधुना.... ॥५॥

अन्वय—[अन्यथा मे दशमी दशा स्यादित्यत आह]—अयि भामिनि (अभिमानवति) [वक्रदृष्ट्या अवलोकनात् भामिनीत्युक्तम्] अधर-सुधा-रसम् (अधरामृतम्) उपनय (देहि); त्वयि विनिहितमनसं (समर्पितचित्तम्; अनन्यगतिकमित्यर्थः) विरहानल-दग्धवपुषम् [अतएव] अविलासं (विलासरहितं निरानन्दमिति यावत्) मृतमिव (मृतप्रायं) दासं (किङ्करं) जीवय (गतजीवितमिव माम् अमृतं दत्त्वा सजीवं कुरु इति भावः)॥५॥

अनुवाद—हे भामिनि! तुममें ही निविष्ट मनवाले, विरहानलसे दग्ध, विलासरहित, मृतवत् मुझ दासको अपनी अधर-सुधा-रसका पान कराकर जीवित करो।

बालबोधिनी—हे भामिनि! तुम्हारे चरणोंकी ही परिचर्या करनेवाले इस दास पर तुम कृपा कर दो। अपने मानको त्याग दो, कोपको छोड़ दो। तुम्हारा चिन्तन करते-करते मैं

विरहकी अग्निमें संतप्त हो रहा हूँ। तुम्हारा यह सेवक प्रायः मृतवत् हो गया है। अतः अपनी अधरसुधासे मुझ दासमें नये प्राणोंका संचार करो, मुझ निश्चेष्टको पुनः सक्रिय करो, सप्राण करो। मृत व्यक्ति अमृतका पान करके जीवित हो उठता है, मेरा मन तो तुममें ही लगा हुआ है, तुममें ही आसक्त है, विलास रहित विरहरूप अग्निसे दग्ध मुझे अधरामृतसे सिंचित करो।

शशिमुखि! मुखरय मणिरशनागुणमनुगुणकण्ठनिनादम्।
श्रुति–युगले पिकरुतविकले पुर शमय चिरादवसादम्॥
क्षणमधुना.... ॥६ ॥

अन्वय—[मौनेन तत्सम्मतिमालक्ष्य लोभादन्यदपि प्रार्थयते]—अयि शशिमुखि (चन्द्रानने) अनुगुणकण्ठनिनादम् (अनुगुणः सदृशः कण्ठस्य निनादः ध्वनि यस्य तादृशं, तव कण्ठस्वरतुल्यं) मणिरसनागुणं (रत्नमय काञ्चीदामं) मुखरय (मुखरीकुरु; प्रार्थना–विशेषोऽयं) पिकरुत–विकले (पिकानां कोकिलानां रुतेन रवेण विकले व्याकुले; विरहस्योद्दीपकत्वादिति भावः) श्रुति–पुटयुगले (कर्णद्वये); चिरात् (चिरकालीनमित्यर्थः) अवसादं (अवसन्नतां) शमय (नाशय)॥६ ॥

अनुवाद—हे विधुमुखी! अपनी करधनीकी मणियोंको मुखरित करो, उसीके समान अपना कण्ठ निनाद करो। इस प्रकारकी कोकिल–ध्वनिसे चिरकालसे अवसादित मेरे श्रुतियुगलको शमित करो।

पद्यानुवाद—

मधु किंकिणि–ध्वनिसे पूरित हों युगल कान ये मेरे।
पिक–रवसे पीड़ित थे जो अति विरह–समयमें तेरे॥

बालबोधिनी—हे चन्द्रानने! तुम तो अमृत निस्पन्दन चन्द्रमा ही तो हो। अपनी मणिकी करधनीको अपने कण्ठ–स्वरके साथ इस प्रकार मुखरित करो कि विपरीत

रति-कालमें वे तुम्हारे कण्ठ-स्वरके साथ ताल देने लगें। मेरे श्रोत्र-युगल जो कोयलकी कूक सुन-सुनकर खिन्न हो रहे थे, उस उद्दीपनसे अतृप्त हो रहे थे, उनमें संगीत समा जाने दो और चिरकालसे सञ्चित इस विरहके अवसादको शमित कर दो। पिक-रव विरहियोंके लिए दुःश्रव होता ही है।

मामतिविफलरुषा विकलीकृतमवलोकितुमधुनेदम्।
मिलतिलज्जितमिव नयनं तव विरमविसृजसि रतिखेदम्॥
क्षणमधुना.... ॥७॥

अन्वय—[मयि अकारण-कोपे तव नयनमेव प्रमाणमिति प्रार्थयते]—[अयि प्रेयसि] इदं तव नयनम् अधुना अति विफलरुषा (मानापरनाम्ना अकारण-कोपेन) विकलीकृतं (नितरां क्लेशितं) माम् अवलोकितुं (द्रष्टुं) लज्जितं (सलज्जमिव) मीलति (मुद्रितं भवति) [अन्योऽपि यः कश्चित् निरपराधं कुपित्वा व्याकुलीकरोति सोऽपि तन्मुखावलोकने लज्जितो भवतीत्यभिप्रायः]; तर्हि अधुना] विरम (रोषात् निवर्त्तस्व) [ततश्च] रतिखेदं (सुरत-वाम्यं) विसृज (त्यज)॥७॥

अनुवाद—हे मानमयी! तुम अकारण ही मेरे प्रति अभिमान कर व्याकुल हो रही हो, देखो तुम्हारे लोचनद्वय मेरी ओर देखकर अर्द्धनिमीलित हो रहे हैं। अब तुम मेरे प्रति वाम्यभावका परित्याग करो।

पद्यानुवाद—

लाज भरे ये नेत्र देखने खुलते हैं—झप जाते।
मान निगोड़ेके कारण हम, दो न एक हो पाते॥

बालबोधिनी—हे राधे! तुम्हारी ये आँखें सदैव व्यर्थके क्रोधसे मुझे ऐसे देखती थीं कि मैं व्यर्थ ही व्याकुल हो जाता था। मुझे विकल करनेके लिए तुम मेरे प्रति अकारण रोष दिखाया करती थीं। तुम्हारी इस उत्तेजनासे तो मैं

टूक-टूक हो जाया करता था, देखो अब तुम्हारी दृष्टि मुझ पर प्रेम वर्षण कर रही है, क्रोधसे भरी दृष्टि अब स्वयं ही सलज्ज हो रही हैं, अब इन नेत्रोंके निरर्थक उन्मीलनका परित्याग कर दो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ और उत्साहसे भरकर रतिजन्य खेदका परित्याग कर दो।

श्रीजयदेव-भणितमिदमनुपद-निगदितमधुरिपु-मोदम् ।
जनयतु रसिकजनेषु मनोरम रतिरस भाव-विनोदम्॥
क्षणमधुना.... ॥८॥

अन्वय—अनुपद-निगदित-मधुरिपु-मोदं (अनुपदं प्रतिपदं निगदितः विवृतः मधुरिपोः श्रीकृष्णस्य मोदः हर्षः यत्र तादृशं) इदं श्रीजयदेव भणितं (श्रीजयदेव कथित गीतं) रसिकजनेषु (श्रीकृष्णभक्तजनविशेषेषु) मनोरम-रतिरसभावविनोदं (मनोरमे रतिरसे यो भावः तदास्वादरूपः तेन यो विनोदः हर्षः तं) जनयतु॥८॥

अनुवाद—पद-पद पर मधुरिपु श्रीकृष्णके आनन्द विनोदका वर्णन करनेवाले जयदेव कवि द्वारा रचित यह गीत रसिक जनोंमें मनोरम-रति-रस-भाव विनोदको उत्पन्न करे।

पद्यानुवाद—

माधव कर मनुहार प्रियासे रति-विलास-रस भूले।
जन-रञ्जक मधुमय लीला गा कवि 'जय' मनमें फूले॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत अष्टपदी 'मधुरिपुमोदविद्याधर-लीला' में कवि जयदेवने श्रीमधुसूदनके प्रमोद-आनन्द-वर्द्धनका निरूपण किया है। यह गीत रसिकोंमें मनोहर रति-रस-आनन्दकी सृष्टि करे। रसिकजनोंमें रति-रस अथवा केलि-रसकी अनुपमता एवं उज्ज्वलताकी सर्वश्रेष्ठता अंगीकारकी जाती है। इसी राग-रसको ही महामहिम शृङ्गार-रसके नामसे ख्यापित किया गया है। इस प्रकार यह प्रबन्ध श्रीपति—श्रीकृष्णका प्रीतिकारक है, रति-रसके भावको विकसित करनेवाला है, संभोग-शृङ्गारको उन्मीलित करनेवाला है।

''अनुहारमयी राधा।''

प्रत्यूहः पुलकांकुरेण निविडाश्लेषे निमेषेण च
क्रीडाकूत–विलोकितेऽधर–सुधापाने कथा–नर्मभिः।
आनन्दाधिगमेन मन्मथ–कला–युद्धेऽपि यस्मिन्नभू–
दुद्भुतः स तयोर्बभूव सुरतारम्भः प्रियं भावुकः॥१॥

अन्वय—[एवमुपकरण–सामग्रीं निरूप्य उपक्रम–सूचित–रहःकेलि–पर्यवसानमाह]—यस्मिन् (सुरतारम्भे) निविड़ाश्लेषे (प्रगाढ़ालिङ्गने) पुलकाङ्कुरेण (रोमोद्‌गमेन); [तथा] क्रीड़ाकूत–विलोकिते (क्रीड़ायाम् आकूलविलोकिते सतृष्णावलोकने) निमेषेण; [तथा] अधरसुधापाने कथाकेलिभिः (वाक्चातुर्यैः); [तथाच] मन्मथकलायुद्धे (कामक्रीड़ाविशेषरूप संग्रामे) आनन्दाधिगमेन (चरमसुखप्राप्त्या) प्रत्यूहः (विघ्नः) अपि तयोः (राधाकृष्णयोः) प्रियम्भावुकः (प्रीतिजनकः) अभूत्, सः (तादृशः) सुरतारम्भः उद्भूतः (उत्पन्नः) वभूव। [अन्यत्र आरम्भे मध्ये वा प्रत्यूहो दोषजनक एव; इहतु आदौ मध्येऽपि प्रत्यूहः उत्तरोत्तरक्रीड़ारम्भक एव इति आरम्भस्य अद्भूतत्वं सूचितम्। एतेन केलीनाञ्च परमप्रेमविलासत्वमपि दर्शितम्]॥१॥

अनुवाद—तदन्तर उन दोनोंका चिराकांक्षित अद्भुत, परमप्रिय सुरत–संग्राम आरम्भ हुआ। उस समय प्रगाढ़ आलिङ्गनमें पुलकायमान होना यथार्थ प्रतीत हुआ, क्रीड़ाके अभिप्रायसे देखनेके समय निमेषपात भी विघ्नीभूत लगता था, अधर–सुधा पान करते हुए केलि–कथाएँ भी कष्टदायिका अनुभूत हुईं, काम–कला–युद्धमें आनन्दका अधिगम भी विघ्न–सा ही प्रतीत हुआ।

पद्यानुवाद—

अति क्रीड़ा–बाधित आलिङ्गन।
मन्द वार्ता–वारित चुम्बन॥
नयन नमित, वञ्चित मुख दर्शन।
सुख अति, विस्मृत रति–लीला गुन॥

उमग रही राधा तन–मनमें।
विलस रही मृदु सुमन–शयनमें॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें कवि जयदेव वर्णन करते हैं कि अब श्रीराधा और श्रीमाधवमें चिरकालसे आकांक्षित उनका अतिशय प्रिय सुरत प्रारम्भ हुआ। उस रतिक्रीड़ाके आरम्भमें पुलकावलीके प्रस्फुरणसे ही बाधा उत्पन्न होती है। आलिङ्गनके आरम्भमें सात्त्विक रोमाञ्चका होना युक्तिसंगत ही है। रोमाञ्चसे पूर्णालिङ्गनमें बाधा होना स्वाभाविक ही है। काम–क्रीड़ाके लिए विलोकन–अवलोकन करने पर पलकोंका गिरना भी बाधा प्रतीत हुई। अभिप्राय विशेषसे देखनेके कारण पलकोंका गिरना भी असहनीय होने लगा। अधर–सुधा पान करते समय काम–कथाएँ कहना भी अन्तराय प्रतीत हुआ। अधरपानमें प्रियालाप भी सहनीय नहीं होता है। रति–प्रियालापसे अतिशय रुचिर अधरपान लगता है। काम–कलाओंसे पूर्ण युद्धमें आनन्दकी प्राप्ति भी बाधा ही प्रतीत हुई।

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूलविक्रीड़ित छन्द है, यथासंख्य अलंकार है, संभोग नामका शृङ्गार रस है, प्रस्तुत श्लोककी भूमिका चन्द्रहास नामक चौबीसवें प्रबन्धकी है।

दोर्भ्यां संयमितः पयोधर–भरेणापीडितः पाणिजै
राविद्धो दशनैः क्षताधरपुटः श्रोणीतटेनाहतः।
हस्तेनानमितः कचेऽधरसुधापानेन सम्मोहितः
कान्तः कामपि तृप्तिमाप तदहो कामस्य वामा गतिः॥२॥

अन्वय—न केवलं प्रत्यूह एव बन्धनादिकमपि क्रीड़ारम्भको वभूवेत्याह]—कान्तः (श्रीकृष्णः) दोर्भ्यां (भूजाभ्यां) संयमितः (नियन्त्रितः) पयोधरभरेण (पयोधरयोः स्तनयोः भरेण) आपीड़ितः (नितरां पीड़ितः) पाणिजैः (नखैः) आविद्धः) विक्षतः) दशनैः (दन्तैः) क्षताधरपुटः (क्षतम् अधरपुटं यस्य तादृशः)

श्रोणीतटेन (नितम्बदेशेन) आहतः (नितरां ताड़ितः) हस्तेन कचे (केशे) आनमितः (वक्रीकृतः) अधर-मधुस्यन्देन (अधरसुधा-क्षरणेन अधरामृतदानेनेत्यर्थः) सम्मोहितः (सम्यक् मोहं प्राप्तः) [सन्] कामपि (अनिर्वाच्यां) तृप्तिं आप (प्राप्तवान्); अहो (आश्चर्यम्) तत् (तस्मात्) कामस्य गतिः (स्वरूपं) वामा (विचित्रा)। [कान्तया संयमनादिभिः परिभूतोऽपि कान्तः कामपि अनिर्वचनीयां तृप्तिं प्राप्तस्तदतीवाद्भूतमेवेति भावः]॥२॥

अनुवाद—राधिकाकी बाहोंसे बँधे, पयोधर-भारसे दबे, पाणिज अर्थात् नखोंसे बिद्ध किये गये, दन्तोंसे क्षत किये गये अधरवाले, कटि-तट (नितम्ब) से आहत, हाथोंसे केश पकड़कर नमित किये गये, अधर-मधु-धारासे सम्मोहित प्रिय कान्त श्रीकृष्ण किसी लोकोत्तर आनन्दको प्राप्त हुए। इस प्रकार कामदेवकी गतिको अति कुटिल कहा गया है।

पद्यानुवाद—

बाहु-बद्ध, कुचसे आपीड़ित।
दशन-अधर क्षत, श्रोणी ताड़ित॥
कर पंकज कल कुच ध्रुव धारित।
रति-गति वामा (जग अपवारित)॥
उमग रही राधा तन-मनमें।
विलस रही मृदु सुमन-शयनमें॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत पद्यमें कवि जयदेव विपरीत रतिका वर्णन करते हुए कह रहे हैं कि कान्त श्रीकृष्णने किसी वाणीसे अगोचर तृप्तिको प्राप्त किया, इसीसे कहा जाता है कि कामकी गति वाम है, लोक-पथसे अतीत है। वामत्व रसान्तरके आविर्भावसे हुआ है। मानो अपराधीको वीर रसका आश्रय लेकर क्रमसे संयमन, पीड़न, बेधन, क्षताहत, नमन और सम्मोहनकी अवस्था तक पहुँचाया है। उत्साहके स्थिर होनेपर भी काम-युद्धसे विरत नहीं होते। श्रीराधाने विपरीत रतिके माध्यमसे श्रीकृष्णको अनेक प्रकारसे

दण्डित-पीड़ित किया। अपनी भुजाओंके बन्धनमें उनको बाँध लिया। पयोधरोंके भारसे उनको समस्त रूपसे दबाकर पीड़ित किया, नखोंसे उनको क्षत-विक्षत किया, दाँतोंसे उनके अधर-पुटको दंशित कर लिया, नितम्बोंसे उनको आस्फालित किया, प्रताड़ित किया, हाथोंसे बालोंको पकड़ लिया, अधरोंकी मधुधाराको पान करती हुई सम्मोहनको प्राप्त करा दिया। कितना आश्चर्य है!

प्रस्तुत श्लोकमें शार्दूल-विक्रीड़ित छंद तथा रसवदलङ्कार है। कुछ विद्वान इसे 'कामिनीहास' नामक प्रबन्धकी भी संज्ञा देते हैं।

माराङ्के रति-केलि-सङ्कुल-रणारम्भे तया साहस-
प्रायं कान्तजयाय किञ्चिदुपरि प्रारम्भि यत्सम्भ्रमात्।
निष्पन्दा जघनस्थली शिथिलता दोर्वल्लिरुत्कम्पितं
वक्षो मीलितमक्षि पौरुषरसः स्त्रीणां कुतः सिध्यति॥३॥

अन्वय—[तत्क्रीड़ाविशेषमाह]—माराङ्के (केलिपक्षे—मारः मदनः अङ्कः चिह्नं यत्र; रणपक्षे—मारः मारं अङ्कः चिह्नं यत्र तस्मिन्) रतिकेलिसङ्कुलरणारम्भे (रतिकेलिरेव सस्कुलरणः परस्पराहत-संग्रामः तस्य आरम्भे) तया (श्रीराधया) कान्तजयाय (कान्तस्य पराभवाय) उपरि (कान्तस्येति शेषः) साहसप्रायं (साहसबहुलं) यत्किञ्चित् (अनिर्वचनीयं) प्रारम्भि (उपक्रान्तं) तेन (वैपरीत्येन हेतूना) सम्भ्रमात् (सम्भ्रम-जनितात् आयासात् इत्यर्थः) [श्रीराधायाः] जघनस्थली निस्पन्दा [जाता], दोर्वल्लिः (भूजलता) शिथिलता (श्लथा आलस्यजड़ा इति यावत्) वक्षः उत्कम्पितं (उच्चैः कम्पितं), [तथाच] अक्षि (नेत्रयुगलं) मीलितम् (सङ्कुचितम्) [अभूत्]; [युक्तञ्चैतत्] स्त्रीणां (अवलानां) पौरुषरसः (पुरुष-सम्पाद्यव्यापारः) कुतः सिध्यति॥३॥

अनुवाद—सुरत-क्रीड़ारूपी संग्रामके प्रारम्भ होनेपर श्रीराधाने काम-स्मर अभिनिवेशके कारण साहससे भरकर अपने कान्त पर विजय प्राप्त करनेके लिए कुछ समय तक श्रीकृष्णके

वक्षस्थल पर सम्भ्रमपूर्वक जो विपरीत रति आरम्भ की, उससे उनकी जघनस्थली निष्पन्द हो गयी, बाहें शिथिल हो गयीं, वक्षःस्थल जोर-जोरसे काँपने लगा, आँखें बंद हो गयीं—भला स्त्रियोंका पौरुष-रस-अभिलाष कैसे सफल हो सकता है!

बालबोधिनी—जैसा कि पूर्वोक्त वर्णन करते हुए आ रहे हैं, उसी वीरसंवलित शृङ्गारकी विवृत्ति करते हुए कहते हैं। इस श्लोकके पूर्व श्लोकसे ही युक्त करना चाहिए। रति-केलिसे संकुल रणके आरम्भमें वाम अंगमें वर्तमान श्रीराधाके द्वारा सम्भ्रमपूर्वक स्मर-समर अभिनिवेशसे संयम आदिके द्वारा कान्त पर विजय प्राप्त करनेके लिए जो कुछ भी साहस किया, इससे वे पूर्ण रूपसे थक गयीं। जघन-स्थलीके निष्पन्द होनेसे वह चलनेमें असमर्थ हो गयीं। दोनों भुजाओंकी शिथिलताके कारण वे बन्धन-प्रहार करनेमें असमर्थ हो गयीं। वक्षस्थल जोर-जोरसे कम्पित होने लगा। आँखें बन्द हो गयीं और देखनेमें असमर्थ हो गयीं। किसीने ठीक ही कहा—स्त्रियाँ अबला होती हैं, उनमें वीर रस किस प्रकारसे आ सकता है? पौरुषत्वको अबलाएँ प्राप्त नहीं कर सकतीं।

प्रस्तुत श्लोकको कुछ विद्वानोंके द्वारा 'पौरुषप्रेम विलास' नामक प्रबन्ध माना गया है। इसमें शार्दूलविक्रीड़ित छंद, संभोग-शृङ्गार रस तथा विशेषोक्ति अलंकार है।

तस्याः पाटल-पाणिजाङ्कितमुरो निद्राकषाये दृशौ
निर्धौतोधर-शोणिमा विलुलिताःस्रस्तस्रजो मूर्धजाः।
काञ्चीदाम दरश्लथाञ्चलमिति प्रातर्निखातै दृशो-
रेभिः कामशरैस्तदद्भुतमभूत्पत्युर्मनः कीलितम्॥४॥

अन्वय—[अथ सुरतान्ते चिह्नशोभित-वपु-दर्शनेन प्रियस्य प्रेमोत्सवमाह]—तस्याः (राधायाः) उरः (वक्षःस्थलं) पाटल-पाणिजाङ्कितं (पाटलैः पाटलकुसुमवत् श्वेतरक्तैः पाणिजैः

नखैः अङ्कितं), दृशौ (नयने) निद्राकषाये (निद्रावेशेन कषाये लोहिते) अधर-शोणिमा, (अधरस्य शोणिमा लौहित्यं) निर्धौतः (बहुशः चुम्बनादिना क्षालितः); मूर्द्धजाः (केशाः) विलुलिताः (आलुलायिताः); [तथा] स्रस्तस्रजः (स्रस्ताः बन्धनशैथिल्यात् इतस्ततोगताः स्रजः मालाः येभ्यः तादृशाः); काञ्चीदाम (मेखला) दरश्लथाञ्चलम् (ईषत्श्लथप्रान्तभागम्); इति (इत्थं) प्रातः (प्रभाते) दृशोः (नेत्रयोः) निखातैः (प्रोथितैः) एभिः कामशरैः (नखाङ्क-जागरण-चुम्बनादिरूपैः मदन-बाणैः) पत्युः (कान्तस्य) मनः कीलितं (बिद्धम्), अहो तत् अद्भुतम् (आश्चर्यम्) अभूत्। [अन्यत्रार्पितशरैरन्यद् विद्धमित्याश्चर्यम्]॥४॥

अनुवाद—श्रीराधाका उर-स्थल नखोंसे अंकित होनेके कारण पाटल वर्णका हो रहा था, निद्राके अभावसे उसकी दृष्टि लाल-लाल हो रही थी, अधरोंकी लालिमा चुम्बनसे नष्ट हो गयी थी, केशोंमें ग्रथित पुष्पमाला कुम्हला गयी थी, कमरकी करधनी शिथिल हो गयी थी, उसके समीपके वस्त्र खुल गये थे—इस प्रकार पाँच बाण जो प्रातःकाल श्रीकृष्णके नेत्रोंमें थे, उनको श्रीराधामें देखकर श्रीकृष्णका मन पुनः कामदेवके बाणोंसे कीलित हो गया। कैसी आश्चर्यकी बात है!

बालबोधिनी—संभोग-लीलाका वर्णन करते हुए कवि जयदेव कहते हैं कि सम्भोगके अन्तमें श्रीराधाके पाँचों काम-शरोंके द्वारा श्रीकृष्ण कीलित हो गये। कितनी अद्भुत बात है! प्रातःकाल इन बाणोंके प्रभावसे श्रीकृष्णमें पुनः काम उद्भूत हो गया। प्रियाजुके किन अंगोंमें पञ्च बाणोंको देखकर श्रीकृष्णमें काम उत्पन्न हुआ? इसका निदर्शन करते हुए कवि कहते हैं—

(१) पलाश पुष्प बाण—कामक्रीड़ामें श्रीराधाके वक्षःस्थल पर रक्त-कमलके समान अपने नखोंसे नखक्षत किया था। अतः पलाश पुष्प-बाण है।

(२) कमल पुष्प–बाण—रात्रिमें सो न पानेके कारण आँखोंमें कषाय हो रहा था, आँखें लाल–लाल हो रही थीं, अतः कमल पुष्प–बाण है।

(३) बन्धुजीव पुष्पबाण—श्रीराधाके अधरोंकी लालिमा प्रक्षालित हो गयी थी, अतः बन्धुजीव पुष्पबाण है।

(४) मालती पुष्प–बाण—रति–क्रीड़ामें केशोंके मर्दनसे पुष्पमाला मुरझाकर निपतित हो गयी थी, अतः मालती पुष्पबाण है।

(५) कुसुमास्त्रबाण—श्रीराधाकी मेखला और अञ्चल शिथिल हो गये थे, इससे कामदेवके सुवर्ण जातीय चम्पा आदि बाणोंको सूचित किया है।

इन श्रीराधाके अङ्गोंमें विद्यमान पुष्पबाणोंको देखकर श्रीकृष्णका मन भी कीलित हो जाना स्वाभाविक ही था। इन बाणोंने श्रीकृष्णके नेत्रोंके माध्यमसे उनके मनको भी आहत कर दिया।

प्रस्तुत श्लोकको 'कामाद्भुताभिनवमृगाङ्क लेख' नामक प्रबन्ध माना गया है। वही शार्दूलविक्रीड़ित छंद है और अद्भुतरसोपबृंहित श्रृङ्गार रस है।

व्यालोलः केशपाशस्तरलितमलकैः स्वेदलोलौ कपोलौ
क्लिष्टा दृष्टाधरश्रीः कुचकलशरुचा हारिता हारयष्टिः।
काञ्चीकाञ्चिद्गताशां स्तनजघनपदं पाणिनाच्छाद्यसद्यः
पश्यन्ती सत्रपा मां तदपि विलुलित स्रग्धरेयंधिनोति॥५॥

अन्वय—[यद्यपि श्रीराधायाः] केशपाशः व्यालोलः (श्लथः विकीर्ण इत्यर्थः) अलकैः (चूर्णकुन्तलैः) तरलितं (स्वस्थानात् भ्रंशितं); कपालौ (गण्डौ) स्वेदलोलौ (स्वेदेन घर्मजलेन लोलौ व्याप्तौ); दष्टाधरश्रीः (दशन–क्षताधर–शोभा), क्लिष्टा (क्षता); कुचकलस–रुचा (स्तनकुम्भयोः रुचा कान्त्या) [स्पर्द्धयेव] हारयष्टिः (मुक्ताहारः) हारिता (परिभूता); काञ्ची (मेखला)

काञ्चीत् आशां (दिशं) गता; तदपि (तथापि) इयं (श्रीराधा) सद्यः (सपदि) पाणिना (करेण) स्तन-जघन-पदम् आच्छाद्य विलुलित-स्रग्धरा (विमर्दित माल्यधारिणी अपि) सत्रपं (रसावेश-शैथिल्ये निजाङ्गावलोकनात् आत्मनः क्रीड़ाविशेषावेशकलनात् सलज्जं यथा तथा) मां पश्यन्ति [सती] धिनोति (अत्यूत्सुकं करोति) [वसनादिव्यतिरेकेण केवलाङ्गशोभादर्शनात् प्रीणनमिति ज्ञेयम्] ॥५॥

अनुवाद—जिनका केशपाश बिखर गया था, अलकावली चंचल हो गयी थी, कपोलयुगल स्वेदसे आर्द्र हो गये थे, अधरश्रीकी शोभा निरस्त हो गयी थी, कुच-कलशकी शोभासे मुक्ता-हारावली पराजित हो गयी थी, करधनीकी कान्ति हताश हो गयी थी; प्रातः ऐसी अवस्था पर क्लान्तश्रान्त श्रीराधा अपने हाथोंसे सद्यः वक्षोज एवं उरुद्वयको ढकने लगी, लज्जापूर्वक श्रीकृष्णको देखती हुई वह अपनी मुग्धकारिणी कान्तिसे श्रीकृष्णको आनन्दकारिणी जान पड़ रही थीं।

बालबोधिनी—श्रीराधा रतिकालमें परिमर्दित होकर श्रान्त-क्लान्त हो गयी थीं। जैसे ही प्रातःकाल हुआ, वह लज्जापूर्वक जल्दी-जल्दी अपने अङ्गोंको आच्छादित करने लगीं। आच्छादित करती हुई वह श्रीकृष्णको देख रही थीं और अपनी मुग्ध-कान्तिसे श्रीकृष्णका मन मोह रही थीं। उनका कबरी-बन्धन खुल गया था, अलकावली इधर-उधर बिखर रही थी। कपोलयुगल पर स्वेद सूख जाने पर अनेक धब्बे पड़ गये थे, बिम्ब-अधरोंकी कान्ति धूमिल हो गयी थी, स्तन-कलशोंकी कान्तिके पुरःसरमें हार एवं काञ्चीकी कान्ति हताश हो गयी थी। कञ्चुकके अभावसे हारकी शोभा फीकी पड़ गयी थी और विवस्त्र होनेसे मेखलाकी कान्ति भी धूमिल हो गयी।

प्रस्तुत पदमें स्रग्धरा छन्द है।

ईषन्मीलितदृष्टि मुग्धविलसत्सीत्कारधारावशा–
दव्यक्ताकुलकेलिकाकुविकसद्दन्तांशुधौताधरम् ।
शान्तस्तब्धपयोधरं भृशपरिस्वङ्गात्कुरङ्गीदृशो
हर्षोत्कर्षविमुक्तनिःसहतनोर्धन्यो धयत्याननम् ॥६ ॥

अन्वय—श्वासोन्नद्ध-पयोधरोपरि-परिष्वङ्गी (श्वासेन उन्नद्धयोः स्फीतयोः पयोधरयोः उपरि परिष्वङ्गः आलिङ्गनं विद्यते यस्य तादृशः) धन्यः (आत्मानं धन्यं मन्यमानः सौभाग्यशाली जनः) हर्षोत्कर्ष-विमुक्तिनिःसहतनोः (हर्षोत्कर्षस्य आनन्दातिशयस्य विमुक्त्या प्रसृत्या निःसहा धर्त्तुमशक्या तनुर्यस्याः तादृश्याः) कुरङ्गीदृशः (मृगलोचनायाः) [कान्तायाः] मीलद्दृष्टि (मीलन्ती सङ्कुचन्ती दृष्टिः यत्र तत् आवेशवशात् मुदितलोचनविशिष्ट-मित्यर्थः) मिलत्कपोलपुलकं (कपोल-पुलक-समन्वितं) शीत्कारधारावशात् (शीत्कारस्य या धारा अनवच्छिन्नता तस्या वशात्) अव्यक्ताकुल-केलि-काकु-विकसद्दन्तांशु-धौताधरं (अव्यक्ता अपरिस्फुटा आकुला असम्बन्धा या केलिषु काकुः तया विकसद्भिः दन्तांशुभिर्दन्त-प्रभाभिः धौतः अधरः यत्र तादृशं) आननं धयति (चुम्बति) ॥६ ॥

अनुवाद—मृगनयनी श्रीराधाकी आँखें कामकेलिजन्य आनन्दातिशयके कारण कुछ-कुछ बन्द-सी हो रही थीं, अन्य प्रकारके व्यापारको सह सकनेमें असमर्थ शरीरवाली हो गयी थीं, मुहुर्मुहुः सीत्कार करनेके कारण और अव्यक्त तथा आकुल केलि-काकु ध्वनि-विकारसे विकसित दाँतोंकी किरणोंसे उनके अधर प्रक्षालित हो गये थे, प्रगाढ़ आलिङ्गनके कारण उनके पयोधर शिथिल श्वासोच्छ्वासके कारण ईषत् कम्पित हो रहे थे—इस प्रकारके मुखमण्डलको कोई पुण्यशाली ही देख सकता है।

बालबोधिनी—कवि कहते हैं कि रतिक्रीड़ामें अत्यधिक हर्षोत्कर्ष प्राप्त कर लेनेके कारण आलिंगन, चुम्बन आदिसे विमुक्त होकर श्रीराधा एक प्रकारसे परमानन्दमें डूब गयीं।

कामावेशके वशीभूत उनके शरीरने अब किसी भी प्रकारके व्यापारको सह सकनेमें असमर्थता प्रकट कर दी। रतिकालमें उस मृगलोचनाके पयोधर प्रगाढ़ आलिङ्गनके कारण पुलकरहित कठिन और कुछ झुके हुए हो गये। इस प्रकार सुरतान्तमें कान्त श्रीकृष्ण उनके मुखको देखकर पुनरालिङ्गनके द्वारा अधर-पानकी स्पृहा करने लगे। नेत्र कुछ मुकुलित हो गये।

विलास-क्रीड़ाके समय उनके द्वारा बार-बार मनोहर सीत्कार करनेके कारण निकलनेवाली अव्यक्त एवं आकुल काकु ध्वनि प्रस्फुटित हुई और दाँतोंकी किरणोंसे अधर-पुट धुल गये। श्रीराधाके इस प्रकारके मुखमण्डलको कोई सुकृतिवान ही देख सकता है। यह सौभाग्य या तो श्रीकृष्णको अथवा उनकी मञ्जरियोंको ही प्राप्त हो सकता है।

प्रस्तुत पदमें शार्दूलविक्रीड़ित छंद, जाति अलंकार, पाञ्चाली रीति, मागधी गीति, भारती वृत्ति और स्थित लययुक्त गान है। श्रीराधा श्रीकृष्णके बीच प्रगाढ़ आलिङ्गनको 'वृक्षाधिरूढ़कम्' आलिङ्गन कहा गया है।

[अथ सा निर्गतबाधा राधा स्वाधीनभर्तृका।
निजगाद रतिक्लान्तं कान्तं मण्डनवाञ्छया॥]
अथ सहसा सुप्रीतं सुरतान्ते सा नितान्तखिन्नाङ्गी।
राधा जगाद सादरमिदमानन्देन गोविन्दम्॥७॥

अन्वय—[एवं प्रियदर्शनानन्दोन्मत्ता प्रियं जगादेति तस्याः स्वाधीनभर्त्तृकावस्थां वर्णयिष्यन् आह]—[स्वाधीनभर्त्तृकालक्षणं यथा—कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्। विचित्र-विभ्रमासक्ता सा स्यात् स्वाधीनभर्त्तृका॥ इति साहित्यदर्पणे] सुरतान्ते (सुरतावसाने) नितान्तखिन्नाङ्गी (अतीवक्लान्तावयवा) सा राधा इति (उक्तप्रकारेण) मनसा निगदन्तं (कथयन्तं चिन्तयन्तमित्यर्थः) गोविन्दम् आनन्देन (आनन्दावेशेन) सादरं (यथा स्यात् तथा) इदं (वक्ष्यमाणं वचनं) जगाद (उक्तवती)॥७॥

अनुवाद—[इसके बाद जिसकी काम–बाधा शान्त हो गयी है, ऐसी स्वाधीनभर्तृका श्रीराधा अपने रति–श्रम–क्लान्त कान्तसे अपने शृङ्गारकी कामनासे बोलीं]

तदनन्तर सुरकालके अन्तमें अति खिन्न अंगोंवाली श्रीराधा अचानक आनन्द और आदरपूर्वक श्रीगोविन्दसे कहने लगीं।

पद्यानुवाद—

सरस सुरतिके अन्त, अङ्गसे छिन्न भिन्न हो बाला—
हरिसे बोल उठी आँखोंमें भर कर मदकी हाला—
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! (लगा रहे क्यों देरी?)

बालबोधिनी—अनन्तर दोनोंके परस्पर आनन्द एवं सन्दोहरूप सुरतके अवसान पर श्रीराधा गोविन्दको प्रोत्साहित करते हुए कहने लगीं। सम्भोगके अवसान पर श्रीराधाके अंग अतिशय रूपसे थक गये थे। श्रीराधाने अपने कान्त श्रीगोविन्दको आनन्दमय देखा और कहा।

जब स्वामी प्रीतिपरायण हो तब ही अपनी बात कहना साफल्यपूर्ण होता है—यह नीति है। अतः श्रीराधा सस्मित गोविन्दसे जो कहने लगीं, उसका वर्णन इस काव्यके अगले प्रबन्धमें किया जा रहा है।

गीतम् ॥२४॥

रामकरीरागयतितालाभ्यां गीयते।

कुरु यदुनन्दन! चन्दनशिशिरतरेण करेण पयोधरे।
मृगमद–पत्रकमत्र मनोभवमङ्गलकलशसहोदरे॥१॥
निजगाद सा यदुनन्दने क्रीड़ति हृदयानन्दने॥ध्रुवपदम्॥

अन्वय—हृदयानन्दने (हृदयमानन्दयति स्वचापल्येन क्रीड़नाय उन्मुखं करोतीति हृदयानन्दनः तस्मिन् चित्ताह्लादके) यदुनन्दने

(श्रीकृष्णे) क्रीड़ति (विलसति सति) [सुरतान्तेऽपि चिक्रीड़िषोदयात् अखण्डलीलात्वमुक्तम्] सा [राधा] [तं प्रति] निजगाद [क्रीड़नसमयेऽपि प्रियप्रेरणात् नित्यस्वाधीनभर्त्तृकात्वे प्राधान्यं द्योतितम्]।—अयि यदुनन्दन (महाकुलोद्भवत्वेन सर्वातिशायि-नामक-गुण-ख्यापनाय सम्बोधनमिदं) [यदि पुनर्मनोभव-मखारम्भः सम्भवति तदा] [चन्दनादपि] शिशिरतरेण; [शीतलत्वेन अव्यग्रतया करणयोग्यता सूचिता) [तव] करेण अत्र मनोभव-मङ्गल-कलस-सहोदरे (मनोभवस्य कामस्य यः मङ्गलकलसः तस्य सहोदरे तत्सदृशे; मङ्गलकलसोऽपि यथाविधानेन स्थाप्यते, अतस्त्वमपि तथा कुरु इत्यर्थः) [मम] पयोधरे (स्तने) मृगमद-पत्रकं (कस्तूरिका-पत्रावलीं) कुरु (रचय)॥१॥

अनुवाद—हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाले यदुनन्दनके साथ क्रीड़ा करती हुई श्रीराधाने कहा—हे यदुनन्दन! चन्दनसे भी अति शीतल अपने हाथोंसे मनोभवके मङ्गल-कलशके समान मेरे पयोधरों पर मृगमदसे पत्रक-रचना कीजिए।

पद्यानुवाद—

चन्दन-शिशिर समान करोंसे कुच कलशों पर मेरे,
मृगमद पत्रक सुन्दर। सहचर चित्रित करो सबेरे।
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—प्रस्तुत पदमें हृदयानन्दन ध्रुव पद है। श्रीकृष्ण श्रीराधाके हृदयको आनन्द प्रदान करनेवाले थे। यदुनन्दन—यदुवंशमें उत्पन्न होनेवाले नन्दनन्दन श्रीकृष्णको अपने साथ क्रीड़ा करते देखकर श्रीराधा बोलीं—मुझे अपने हाथोंसे वैसा ही सजा दो, जैसे मैं भी पूरी-की-पूरी कृष्णभावित, कृष्णमयी हूँ। सर्वप्रथम मेरे स्तन-कलशों पर चन्दनके समान शीतल स्पर्शसे कस्तूरीसे पत्रावलीकी रचना करो। मङ्गल-कलश पयपूर्ण होते हैं, सुनील आम्र-पल्लवोंसे सुसज्जित होते हैं, जिन्हें कामदेवकी विश्वयात्राके समय

स्थापित कर दिया जाता है। इस पदसे 'मयूरपदक' नामका नख–क्षत भी व्यञ्जित हो रहा है। यहाँ कस्तूरी–पत्रक चित्रकारीका अनुनय किया जा रहा है।

अलिकुल–गञ्जन–सञ्जनकं रतिनायक–शायक–मोचने।
त्वदधर–चुम्बन–लम्बित–कज्जलमुज्ज्वलय प्रियलोचने॥
निज.... ॥२॥

अन्वय—अयि प्रिय (प्रीतिभाजन), रति–नायक–शायक–मोचने (रतिनायकस्य मदनस्य शायकान् बाणान् कटाक्षादिरूपान् मोचयतीति तथोक्ते; कज्जलादिकमपि तत्रापेक्षितमस्तीति भावः) [मम] लोचने (नेत्रे) अलिकुल–गञ्जन–सञ्जनकं (अलिकुल–गञ्जनं सञ्जनयति इति तादृशं भ्रमर–निकर–तिरस्कारकमित्यर्थः) त्वदधर–चुम्बन–लम्बित–कज्जलम् (तवाधरचूम्बनेन, लम्बितं गलितं कज्जलं) उज्जलय (उज्जलं कुरु; पूर्ववत् विधेहीत्यर्थः) ॥२॥

अनुवाद—हे प्रिये! रतिनायक कामदेवके सायकोंको छोड़नेवाली मेरी आँखोंका काजल तुम्हारे अधरोंके चुम्बनसे गलित हो गया है, अलि–कुलको भी तिरस्कृत करनेवाले कज्जलको मेरी आँखोंमें उज्ज्वल कीजिए।

पद्यानुवाद—

रति नायक सायक मोचन ये, लोचन आँजो फिर से,
चुम्बन गलित हुआ कजल है, जिस पर भौंरे तरसे।
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—हे प्रिय! हे हृदयानन्दन! श्रीराधा इस प्रकार आगे कहती हैं कि मेरी आँखोंमें नूतन कज्जल रेखाको आँजो। यह इतनी उज्ज्वल हो कि भ्रमर–समूह भी तिरस्कृत हो जायँ। मेरे ही कटाक्षपातसे कामदेवके बाण

चलते हैं। तुम्हारे द्वारा अधर-चुम्बन करनेसे मेरी आँखोंका काजल फैल गया है। इस पदसे श्रीकृष्णके द्वारा श्रीराधाके नेत्रोंका चुम्बन भी अभिव्यक्त हो रहा है। आप ही तो मेरी आँखोंका अञ्जन हैं।

हे मनोहरवेषधारिन्!

नयन-कुरङ्ग-तरङ्ग-विकास-निरासकरे श्रुतिमण्डले।
मनसिज-पाश विलासधरे शुभवेश निवेशय कुण्डले॥
निज.... ॥३॥

अन्वय—अयि शुभवेश (सुन्दर-वेशधारिन्), नयन-कुरङ्ग-तरङ्ग-विकाश-निरासकरे (नयनमेव कुरङ्गः, तस्य तरङ्गः कुर्दनं तस्य या विकाशः स्फुरणं तस्य निरासं प्रत्याख्यानं करोतीति तस्मिन्) मनसिज-पाश-विलासधरे (मनसिजस्य कामस्य यः पाशः मृग-बन्धनरज्जुः तस्य विलासं शोभां धरतीति तथोक्ते) कुण्डले (सुरतभ्रष्टे इतिभावः) श्रुतिमण्डले (कर्णे) निवेशय (परिधापय)। [शुभकर्माणि कृतवेशस्य तव प्रियत्वात् ममापि तथा वेशकरणं युक्तमित्यभिप्रायः]॥३॥

अनुवाद—हे शुभवेश! नयनरूपी कुरङ्ग-तरङ्गके विकासको निरस्त करनेवाले तथा युवकोंके मनको बाँधनेवाले कामदेवके पाशके समान मेरे श्रुतिमण्डल पर कुण्डल धारण कराइये।

पद्यानुवाद—

मनसिज पाश विलास कुण्डलोंको कानोंमें धारो,
हे शुभ अंग! तरंग नयन पर हरिण वृन्दको कारो।
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णसे कहती हैं—हे मनोहर-वेषधारिन्! हे प्रिय पीताम्बरधारिन्! हे हृदयानन्दन! हे क्रीड़ापरायण! आप मेरे कानोंमें कामदेवके पाशकी शोभाको धारण करनेवाले कुण्डल पहना दीजिए। मेरे इस श्रुति-मण्डलमें

नेत्ररूपी हिरणकी तरङ्गका जो विकास है, प्रेक्षण–विशेषकी जो विशेष वृत्ति है, उसे भी निरस्त करनेवाले, युवकोंके मनको मोह लेनेवाले कुण्डल पहना दीजिए। इस पदसे नेत्रोंकी श्रुतिगामिता युक्त हुई है। मृगके समान बंकिमता एवं चंचलता द्योतित हुई है।

भ्रमरचयं रचयन्तमुपरि रुचिरं सुचिरं मम सम्मुखे।
जित–कमले विमले परिकर्मय नर्मजनकमलकं मुखे॥
निज.... ॥४॥

अन्वय—[अयि नाथ] मम सम्मुखे (समक्षमवस्थाय) जितकमले (जितं सुषमा–पराजितं कमलं येन तादृशे) विमले (निर्मले) मुखे सुचिरं (बहुक्षणं व्याप्य) भ्रमरचयं (भ्रमरसमूहं) रचयन्तं (भ्रमर–पंक्तिबुद्धिं जनयन्तं) [अतएव सखीनां] नर्मजनकं (परिहासजनकं नेत्ररञ्जनमिति भावः) अलकं (चूर्णकुन्तलं) परिकर्मय (संस्कुरु विरचय इत्यर्थः) [अत्र मुखस्य कमलत्वेन, अलकस्य च भ्रमरत्वेन निरूपितम्]॥४॥

अनुवाद—मनोहर और अमल कमलोंको भी जीतनेवाले विमल एवं रुचिर मेरे मुख पर नर्म परिहास जनक भ्रमरोंकी शोभा प्रकाशित करने वाले मेरे मुख पर आप सुन्दर अलकावलीको गूँथिए।

पद्यानुवाद—

अमल कमल मुख पर पिय बिखरी ये अलकें सुलझाओ,
रह–रह झूम चूम उठते अलि, इनको दूर भगाओ!
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णसे कहती हैं—हे यदुनन्दन! मेरे मुखकी शोभाने कमलोंको भी जीत लिया है। आप इस मनोहर, विमल एवं अनवद्य मुख पर अलकोंसे प्रसाधन करें। मेरी अलकावली नर्म–परिहास वचनोंकी जननी है और

नित्य निरन्तर पद्मोंके ऊपर घिर आयी भौरोंकी भीड़का भ्रम उत्पन्न करती है। आप ही तो मेरे मुखारविन्दके कुन्तल हैं।

प्रस्तुत पदमें अलक भ्रमर पंक्तिके द्वारा मुखपद्मकी उत्प्रेक्षा की गयी है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मृगमद–रस–वलितं ललितं कुरु तिलकमलिक–रजनीकरे।
विहित–कलङ्क–कलं कमलानन! विश्रमित–श्रमशीकरे॥
निज.... ॥५॥

अन्वय—हे कमलानन (सरोजवदन) विश्रमित–श्रम–शीकरे (विश्रमिता अपगता श्रमशीकराः श्रमाम्बुकणाः यत्र तादृशे) अलिक–रजनीकरे (अलिकं ललाटं रजनीकरः चन्द्रइव तस्मिन्) मृगमद–रसेन (कस्तूरिका–द्रवेण) वलितं (रचितं) [अतएव] विहित–कलङ्क–कलं (विहिता कृता कलङ्कस्य कला रेखा येन तादृशं ललाटस्य बालचन्द्रत्वेन मृगमदतिलकस्य च कलङ्क–कलात्वेन निरूपितं) तिलकं ललितं (सुन्दरं यथा तथा) कुरु (रचय) ॥५॥

अनुवाद—हे कमललोचन! रतिके श्रमसे उत्पन्न स्वेदबिन्दुओंसे युक्त, मृग–लाञ्छनकी शोभा धारण करनेवाले अर्द्ध–चन्द्रके समान मेरे भाल पर मनोहर कस्तूरीसे सुन्दर तिलक रचना कीजिए।

पद्यानुवाद—

मृगमद रससे वलित ललित अति तिलक अलिक पर मेरे,
रचो, चन्द्रको, भास उठे ज्यों मृगछाया हो घेरे!
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णसे कहती हैं—हे कमलवदन! हे हृदयानन! मेरा ललाट चन्द्रमाके समान है, आप उस पर ललित मनोहर तिलक रचना कीजिए। इस तिलकको कस्तूरी—मृगमद रससे ही रचिये। जिस प्रकार अष्टमीका अर्द्धचन्द्र कलङ्क रेखाओंसे सुशोभित होता है, उसी प्रकार

मेरे मुख पर भी मृगलांछनके समान मेरे विशाल भाल पर तिलक स्थापित कीजिए। रति-कालमें प्रवाहित होनेवाले श्रम-जलकण भी अब शुष्क-शान्त हो गये हैं। यहाँ इस पदसे पुनः उद्दीपन विभाव भी सूचित हो रहा है। हे कृष्ण, आप ही तो मेरे सौभाग्यके केन्द्रबिन्दु हैं, आप ही मेरे ललाटके तिलक हैं।

मम रुचिरे चिकुरे कुरु मानद! मनसिज-ध्वज-चामरे।
रति-गलिते ललिते कुसुमानि शिखण्डि-शिखण्डक-डामरे॥
निज.... ॥६॥

अन्वय—अयि मानद (सम्मानप्रद) मानसज-ध्वज-चामरे (मानसजस्य कामस्य यो ध्वजः तस्य चामरे चामरतुल्ये) रतिगलिते (सम्भोगावेगेन विकीर्णे) शिखण्डि-शिखण्डक-डामरे (शिखण्डिनो मयूरस्य शिखण्डकस्य पुच्छस्य इव डामरः आटोपो यस्य तस्मिन्; मानसजध्वजादावाटोपनादिकमपि तदुपयोग्यमेवेत्यर्थः) [अतएव] रुचिरे (स्वभाव-सुन्दरे) ललिते (मनोहरे) मम चिकुरे (कुन्तले) कुसुमानि (पुष्पमाल्यं) कुरु (विनिवेशय) ॥६॥

अनुवाद—हे मानद! रतिकालमें शिथिल हुए कामदेवकी ध्वजाके चामरके समान तथा मयूर-पुच्छसे भी मनोहर मेरे मनोहर केशोंमें कुसुम सजा दीजिए।

पद्यानुवाद—

मोर पंख, चामर ध्वज मनसिजसे सुन्दर अलकोंसे,
गिरे सुमन क्रीड़ामें, उनको गूँथो चुन पलकोंसे।
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णको इस पदमें 'मानद' शब्दसे सम्बोधित करती हैं। मानद अर्थात् मान प्रदान करनेवाले श्रीकृष्ण, अपनी प्रेयसियोंको सम्मान देनेवाले श्रीकृष्ण, 'मानद्यति' अर्थात् मानिनी रमणियोंके मानको खण्डित करनेवाले श्रीकृष्ण!

आप अपनी शोभासे मयूरोंके शिखण्डक अर्थात् मयूरपिच्छको भी तिरस्कृत करनेवाले हैं, मेरे कृष्ण-कुन्तल मनोभवके ध्वज-चमरके समान मनोहर एवं रुचिर हैं, रतिकालमें इनका बन्धन खुल गया है आप इनमें कुसुमोंको सुसज्जित कर दें। आप ही कुसुम-गुम्फित केशपाश बनकर महकें।

सरस-घने जघने मम शम्बर-दारण-वारण-कन्दरे।
मणि-रसना-वसनाभरणानि शुभाशय! वासय सुन्दरे॥
निज.... ॥७॥

अन्वय—अयि शुभाशय (सदाशय; शुद्धान्तःकरणस्यैव क्रियासिद्धेस्तथा सम्बोधनं प्रयुक्तम्) सरसघने (सरसं रागोद्दीपकं च तत् घनं निबिड़ं चेति तथोक्ते) शम्बरदारण-वारण-कन्दरे (शम्बरदारणः मदनः स एव वारणो हस्ती तस्य कन्दरे गह्वररूपे मदनावासस्थले इत्यर्थः) [स्वभावत एव] सुन्दरे मम जघने मणिरसनावसनाभरणानि (मणिमयकाञ्चीं वसनम् आभरणानि च) वासय (यथास्थानं परिधापय)॥७॥

अनुवाद—हे शोभन-हृदय! मेरी कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीकी कन्दरारूपी सरस, सुन्दर, सुभग, स्निग्ध, स्थूल जघनस्थलीको मणि, करधनी, वस्त्र तथा आभूषणोंसे अलंकृत कीजिए।

पद्यानुवाद—

सरस जघन घन पर मणि रसना वसनाभरण फबीले,
पहनाओ सत्वर शुभ आशय! (कँपते नयन लजीले!)
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—श्रीराधा श्रीकृष्णसे कहती हैं—हे शोभन हृदय! हे हृदयानन्दन! हे प्राणनाथ! हे शुभाशय! आपके करकमल समस्त शुभोंके आशय हैं, आपका हृदय अति सरस सभी मङ्गलोंका मूल है। आप मेरी जघन-स्थली, श्रोणी-तटको मणिमय करधनी, वसन एवं आभरणोंसे अलंकृत

कर दीजिए। मेरी जघनस्थली सरस, स्निग्ध और सान्द्र है। कामदेवरूपी मदोन्मत्त हाथीके निवास हेतु कन्दराके समान सुन्दर एवं मनोहर है। आप यहाँ वस्त्र एवं आभूषण धारण कराइये। आप ही मेरे कटि तटके अलंकार हैं।

प्रस्तुत पदमें अनुकूल नायक है, प्रगल्भा नायिका है तथा संभोग शृङ्गार रस है।

श्रीजयदेव–वचसि रुचिरे सदयं हृदयं कुरु मण्डने।
हरिचरण–स्मरणामृत–निर्मित–कलि–कलुष–ज्वर–खण्डने॥
निज.... ॥८॥

अन्वय—हरिचरण–स्मरणामृत–कृत–कलि–कलुष–ज्वरखण्डने (हरिचरणयोः स्मरणमेव अमृतं तेन कृतं कलिकलुषज्वरेण यः सन्तापः तस्य खण्डनं येन तस्मिन्) जयदे (जयं श्रीकृष्णं ददातीति जयदस्तस्मिन्) मण्डने (अलङ्काररूपे) श्रीजयदेव–वचसि हृदयं (चित्तं) सदयं [यथास्यात् तथा] [भक्तिरसपूर्णं] कुरु [स्निग्धान्तःकरणस्यैव एतच्छ्रवणयोग्यत्वादिति भावः]॥८॥

अनुवाद—श्रीहरिके चरणोंके स्मरणरूपी अमृतसे कलि–कलुष–ज्वरको विनष्ट करनेवाली, कल्याणदायिनी, मनोहारिणी कवि जयदेवकी वाणीको समलंकृत करनेमें अपने हृदयको सदय बनायें।

पद्यानुवाद—

कलिकी कलुष गरल मारक यह कवि श्रीजयदेवकी वाणी,
हरि–चरणोंके स्मरणामृत–सी बनती जग कल्याणी!
हे यदुनन्दन! हृदयानन्दन! इतनी अनुनय मेरी,
पूर्ण करो हे असुरनिकन्दन! लगा रहे क्यों देरी?

बालबोधिनी—प्रस्तुत अष्टपदी श्रीराधा–भावकी एक सुनिश्चित योजना है। श्रीराधाके प्रेमकी चरम परिणति है कि वह स्वयंको श्रीकृष्णमें विलीन कर देना चाहती है, वह श्रीकृष्णके हाथोंसे कृष्णमय बन जाना चाहती है। उसका

हृदय श्रीकृष्णका है, उसके वस्त्र, शृङ्गार एवं आभूषण सभी तो श्रीकृष्ण हैं। इस अष्टपदीमें श्रीराधाके प्रेमकी अनुभूतिकी गहराई रस बनकर बरसी है। श्रीराधा कहती हैं—हे यदुनन्दन! मण्डन अर्थात् शृङ्गारके निमित्त अपने हृदयको सदय बनाओ, दयापरायण होकर मण्डन बन जाओ। यह मण्डन वाणीका मण्डन जयदेवकी पत्नीके सामीप्यके कारण उत्कर्षप्रद हो गया है। इस अष्टपदीका विषय कवि जयदेवकी वाणी है। 'च' पदसे तात्पर्य है कि जैसे श्रीराधाको सुसज्जित करनेमें आप सदय बनेंगे, उसी प्रकार मेरी वाणीको भी अलंकृत करनेके लिए सदय बन जाइए। अन्य पदोंको भी जयदेवकी वाणी एवं श्रीराधाके अलंकारोंका विशेषण मानना चाहिए। यह वाणी हरि-चरणोंके स्मरणका अमृत है, जो कलिकालके कलुषित ज्वरके रोषको शान्त करनेवाला है। हरि-चरण-स्मरण-अमृत ही सभी पापोंका खण्डन करनेवाला है। यह अमृत ही कवि जयदेवकी वाणी है। इस काव्य-वर्षामृतकी स्मृति ही सबका कल्याण करनेवाली है।

रचय कुचयो पत्रश्चित्रं कुरुष्व कपोलयोः
घटय जघने काञ्चीं मुग्धस्त्रजा कबरीभरम्।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरुनूपुरा-
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत्॥१॥

अन्वय—[अयि प्राणेश्वर] [मम] कुचयोः (स्तनयोः) पत्रं (चित्रविशेषं) रचय; कपोलयोः (गण्डयोः) चित्रं कुरुष्व; जघने काञ्चीं घटय (परिधापय); स्रजा (मालया) कबरीभरं (केशपाशं) अञ्च (अलङ्कुरु); पाणौ वलयश्रेणीं कलय (विन्यस्य); पदे (चरणे) नूपुरौ कुरु (परिधापय)—इति [अत्यावेशभरेण] राधया निगदितः (अनुरुद्धः) पीताम्बरः (श्रीकृष्णः) अपि प्रीतः [सन्] तथा (श्रीराधोक्तं तत्तत् सर्वमेव) अकरोत् (सम्पादितवान्) [अपिशब्देन रतान्तर्वसन-व्यत्ययाभावेऽपि तदाज्ञाकरणात् तस्या-खण्डित-तदधीनत्वं द्रढीकृतम्॥१॥

अनुवाद—हे प्राण प्रिय! आप मेरे कुचोंपर पत्र रचना कीजिए। मेरे कपोलों पर चित्रावली रचना कीजिए, जघन-स्थलीको करधनीसे सजा दीजिए। बालोंमें मनोहर कबरी बन्धन कीजिए, हाथोंमें कंगन पहनाइए, पैरोंमें नूपुर पहना दीजिए। श्रीराधाने इस तरह जो कुछ कहा, पीताम्बरधारी श्रीकृष्णने प्रसन्न होकर वैसा ही किया।

पद्यानुवाद—

कुच पर पत्र, चित्र गालों पर, जघन करधनी,
केशे सुमन सजाओ, राधा बोली—हे पीताम्बर वेशे।
कलय-वलय कर, पद मणि नूपुर पहनाओ हे मेरे।
हरि विहँसे कह—प्रिये! समर्पित हूँ चरणोंमें तेरे॥

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें कवि जयदेव इस अष्टपदीके सूत्रोंकी पुनः अवतारणा करते हुए कह रहे हैं कि पीताम्बर श्रीकृष्णको श्रीराधाके द्वारा जो कुछ भी कहा गया, उन्होंने प्रसन्न मनसे सब वैसा ही सम्पन्न किया। 'अपि' पदसे घोषित होता है कि श्रीराधाका जो-जो अभीष्ट था, श्रीकृष्णके द्वारा वैसा-वैसा शृङ्गार अत्यन्त प्रीतिपूर्वक सम्पन्न हुआ। श्रीराधाका सानुनय आग्रह है कि हे यदुनन्दन! स्तनों पर पत्रावलीकी चित्रकारी कर दीजिए, मेरे गालों पर मकर आदि की चित्र रचना कर दीजिए। मेरी कमरमें आप करधनी पहना दीजिए, मेरे बालोंसे माला निर्माल्य हो गयी है—आप मनोहर मालासे मेरे केशोंको ग्रंथन कर दीजिए, हाथोंमें कंगन पहना दीजिए, मेरे पैरोंमें मणिमय नूपुर पहना दीजिए। श्रीकृष्ण द्वारा यह पूरा ही शृङ्गार सम्पादित किया गया—अत्यन्त प्रीति एवं आनन्दके साथ। श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके सम्पूर्ण मण्डन बन गये।

प्रस्तुत श्लोकमें हरिणी छंद यथा संख्या अलंकार, प्रगल्भा नायिका, दक्षिण नायक तथा शृङ्गार रसका संयोग पक्ष निरूपित हुआ है।

यद्‌गान्धर्व–कलासु कौशलमनुध्यानं च यद्वैष्णवं
यच्छृङ्गार विवेक–तत्त्व–रचना–काव्येषु लीलायितम्।
तत्सर्वं जयदेव पण्डित–कवेः कृष्णैकतानात्मनः
सानन्दाः परिशोधयन्तु सुधियः श्रीगीतगोविन्दतः ॥२॥

अन्वय—[अथोपसंहारेऽपि स्वाभीष्टोपासनायाः सर्वोत्तमता निश्चयावेशेन कारुण्योदयात् तत्र सन्दिहानान् भक्तरसिकजनान् प्रत्याह]—भोः सुधियः (श्रीकृष्णभक्तिरसोल्लासितचित्ताः साधवः) [भवन्तः] सानन्दाः (आनन्देन सहिताः सन्तः) कृष्णैकतानात्मनः (कृष्णे एकतानः एकाग्रः अनन्यवृत्तिरिति यावत् आत्मा मनः यस्य तस्य; श्रीकृष्णैकान्तभक्तस्यैव सर्वगुणाश्रयत्वादित्यर्थः; यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चने इत्युक्तेः) जयदेव–पण्डितेकवेः (पण्डासद–सद्‌विवेचिका बुद्धिः तया अन्वितः कविः सत्काव्य–कर्त्ता; जयदेव एव पण्डितकविस्तस्य) श्रीगीतगोविन्दतः (श्रीगीत–गोविन्द–ग्रन्थात्) [वक्ष्यमाणं] तत् सर्वं परिशोधयन्तु (परि सर्वतोभावेन शोधयन्तु आशङ्कापङ्कमुद्धार्य निश्चिन्वन्तु इत्यर्थः) [तत् किमित्याह]—यत् गान्धर्वकलासु (सङ्गीतशास्त्रोक्त– गीतराग–तालादिषु) कौशलं (नैपुण्यं) [तदेव निर्वन्धानुसारेण जानन्तु इत्यर्थः]; [न केवलमेतत्, अपि तु] यत् वैष्णवं (वेवेष्टि विश्वं व्याप्नोतीति विष्णुः; सर्वव्यापनशीलस्य विष्णुः अचिन्त्या–नन्तशक्तेः स्वयं भगवतः श्रीकृष्णस्य भजन–विषयकं) अनुध्यानं (अनुचिन्तनं स्वाभीष्ट–तल्लीलाविचार–समाधानात् अनुक्षण–चिन्तनमित्यर्थः) [तदपि एतद्‌दृष्ट्येव निश्चिन्वन्तु; नित्यत्व–सर्वोत्तमत्वनिश्चयात् द्रढ़ीकुर्वन्तु इतिभावः] यदपि शृङ्गारविवेकतत्त्वं (तत्रापि दुरूहगतेः शृङ्गारस्य–महाप्रेमरसस्य विवेके विचारे यत् तत्त्वं दुरूहातिदुरूह–व्रजलीलागतं) [तदपि निश्चिन्वन्तु]; काव्येषु यत् लीलायितं (विलसितं, रासलीलादि–व्यञ्जनाविशेष ग्रथनं) [तदपि परिशेषयन्तु एतदनुसारेण निश्चिन्वन्तु]॥२॥

अनुवाद—जो गान्धर्व कलाओंमें कौशल हैं, श्रीकृष्णका जो ध्यान है, शृङ्गार रसका जो वास्तविक तत्त्व–विवेचन है,

भगवद्लीलाका जो काव्यमें वर्णन है, उन सबको भगवान् श्रीकृष्णमें एकाग्रचित्त रखनेवाले विद्वान् श्रीगीतगोविन्द नामक काव्यसे आनन्दपूर्वक परिशोधन करें। अर्थात् समझें और समझायें।

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें विद्वानोंकी प्रार्थनाके व्याजसे आत्मप्रशंसा करते हैं। हे सुधी जनो! जयदेव पण्डित कविका सर्वस्व गीतगोविन्द है। आप गीतगोविन्दको ही समझें और समझायें। गीतगोविन्दकी भी रसवत्ताकी परख करें। प्रामाणिक वस्तुकी परख आवश्यक है। गान्धर्वविद्या संगीत-शास्त्रका ही पर्याय है। अतः गान्धर्वविद्यामें जो भी विचक्षणता एवं कुशलता हो सकती है, इस काव्यमें उसे लिपिबद्ध कर दिया गया है। श्रीभगवान् सम्बन्धी वैष्णव साधनाके ध्यान-चिन्तनकी जो शुद्ध परिणति है, उसका भी निदर्शन रसमें कर दिया गया है। शृङ्गार रसका जो संयोग विप्रलम्भादिरूपसे विवेचन है, उसका भी सर्वोत्कृष्ट वर्णन इसमें किया गया है। शृङ्गाररस प्रधान काव्य प्रणयनकी जो लीला है, वह भी इसमें उत्तम रूपसे रूपायित हुई है। कवि जयदेव श्रीकृष्णमें ही अपने मन और बुद्धिको एकान्तिक रूपसे अभिनिविष्ट करनेवाले हैं। उनकी यह रचना श्रीकृष्णका एकाग्र ध्यान करनेके लिए ही है। विष्णुभक्त कला-कुशलताकी विवेकपूर्ण तत्त्व रचना की, ध्यान-चिन्तन की, लीला वर्णन की, सर्वोत्कृष्टता एवं अद्भुतताकी परिशुद्धिका स्वरूप देखना चाहें अथवा परखना चाहें तो इस महान प्रबन्ध-काव्य गीतगोविन्दके माध्यमसे करें।

साध्वी माध्वीक! चिन्ता न भवति भवतः शकरे कर्कशासि।
द्राक्षे द्रस्यन्ति के त्वाममृत! मृतमसि क्षीर! नीरं रसस्ते।
माकन्द! क्रन्द कान्ताधर! धर न तुलां गच्छ यच्छत्ति भावं
यावच्छृङ्गारसारं शुभमिव जयदेवस्य वैदग्ध्यवाचः॥३॥

अन्वय—[अथ "हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीर" इति शुकोक्तप्रायत्वात् एतच्छ्रवणकीर्त्तनस्मरणानुमोदनप्रभावमाह]—इह (मर्त्त्यलोके) यावत् जयदेवस्य वचांसि (पदावली) विष्वक् (सर्वतः) शृङ्गार-सारस्वतं (शृङ्गार-रस-सन्दर्भीयं भावं) यच्छन्ति (ददति) तावत् हे माध्वीक (मधो) भवतः चिन्ता साध्वी न भवति (मधुरत्वेऽपि त्वयि मादकत्वादित्यर्थः); हे शर्करे त्वं कर्करा (कङ्करवत् कठिना) असि (कङ्करवत् प्रतीयसे इतिभावः; मादकत्वाभावेऽपि तव कठिनत्वादित्यर्थः); हे द्राक्षे के त्वां द्रक्ष्यन्ति (कोमलत्वेऽपि निन्द्यदेशोद्भवत्वादित्यर्थः), हे अमृत त्वं मृतम् असि (मरणान्तरं सुरलोके-प्राप्यत्वादित्यर्थः); हे क्षीर ते रसः नीरं (नीरवतृ, आवर्त्तनाद्यपेक्षत्वात्), हे माकन्द (चूत) त्वं क्रन्द (रुदिहि; त्वगष्ट्यादिहेयांशसाहित्यात्); हे कान्ताधर (अतिलोभनीय-प्रियाधर), त्वं धरणितलं (पातालम् असुरालयं) गच्छ (अधोदातृनामत्वात् तवात्र स्थितिरपि न युक्तेत्यर्थः; श्रीजयदेव-वर्णित-मधुराख्यभक्ति-रसास्वादनिर्वृतजनास्त्वयि घृणामेव प्रदर्शयिष्यन्तीति भावः) ॥३॥

अनुवाद—अरे माध्वीक (द्राक्षासव)! तुम्हारा चिन्तन ठीक नहीं है। हे शर्करे (शक्कर)! तुम अति कर्कशा हो। हे द्राक्षे! (अंगूर) तुम्हें कौन देखेगा। हे अमृत! तुम तो मृत तुल्य हो। हे दुग्ध! तुम्हारा स्वाद तो जलके समान है। हे माकन्द (पके आम)! तुम अब क्रन्दन करो। हे कान्ताके अधर! तुम अब पाताल चले जाओ, जब तक शृङ्गारके सार सर्वस्व शुभमय कवि जयदेवकी विदग्धतापूर्ण वाणी है, तुम्हारा कोई काम नहीं है।

बालबोधिनी—प्रस्तुत श्लोकमें कवि जयदेवने श्रीगीतगोविन्द काव्यकी माधुर्य वैदग्धीका वर्णन किया है। सार रूपमें काव्य उज्ज्वलतम शृङ्गार रसकी मंगलमयी प्रस्तुति है, इसकी मधुरताकी ऊँचाई इतनी अनुपमेय हो गयी है कि संसारकी कोई भी मधुर वस्तु इसके सामने फीकी पड़ गई

है। कोई भी मधुर वस्तु सुधी वैष्णवोंके लिए माधुर्यका परिवेषण नहीं कर सकती। कवि जयदेवके विदग्धतापूर्ण वचन स्वयं ही शुभ हैं, सम्पूर्ण सार–के–सार हैं, जो सार है वह शृङ्गार रस है और शृङ्गार रसका सार गीतगोविन्द है। जो कुछ भी शुभ और मंगल है वह है श्रीकृष्ण और श्रीराधाका मंगल चरित। गीतगोविन्द जैसी रस माधुर्य वैचित्री कहीं भी तो नहीं है, जिसका भगवद्भक्त रसिकजन आस्वादन कर सकें। इन शृङ्गार सार सर्वस्व वचनावलीके सामने सम्पूर्ण संसारका एकाग्रभूत माधुर्य धूमायित हो गया है। नीरस हो गया है। ग्रन्थकार कहते हैं—हे माध्वीक! अंगूरसे बनी मदिरा! तुम्हारी क्या चिन्ता करें, तुम्हारी मधुरता व्यर्थ है। सज्जनोंके लिए तुम्हारी मादकता किस काम की? हे शर्करे! तुम मीठी हो तो क्या हुआ, कितनी कर्कशा हो, क्या तुम गवेषणाके योग्य हो, तुममें तो सार ही नहीं है, हे द्राक्षे! तुम डरो मत, तुम्हारी ओर क्या कोई रसिकजन कभी देख सकता है? हे अमृत! तुम्हें तो गर्व ही नहीं करना चाहिए, तुम तो मरे हुए ही हो, हे क्षीर रस (दूध) मैं रस हूँ, यह जानकर गर्व मत करो, क्योंकि तुम्हारा रस तो नीर ही है। हे माकन्द पके हुए रस फल, तुम्हें तो रोना ही है, रसिकजन तुम्हारा जरा भी चिन्तन नहीं करेंगे। हे कामिनीके अधर! तुम्हारा भी कोई स्थान नहीं है, तुम तो असुरोंके निवास स्थान पातालमें चले जाओ। काव्य रसके रसिकोंको इसमें माधुर्य प्रतीत नहीं होता।

प्रस्तुत श्लोकमें स्रग्धरा छंद, आरमयी वृत्ति, वैदर्भी रीति और गुणकीर्तन नामका नाट्यालङ्कार है। इस ग्रन्थके आदि मध्य और अन्तमें मङ्गल ही मङ्गल है। अतः यहाँ शुभ शब्दका उपादान है। तिरस्कृतोपदालङ्कार है।

इत्थं केलिततीर्विहृत्य यमुनाकूले समं राधया
तद्रोमावलि–मौक्तिकावलि–युगे वेणी भ्रमं बिभ्रति।
तत्राह्लादि–कुच–प्रयागफलयोर्लिप्सावतोर्हस्तया–
र्व्यापाराः पुरुषोत्तमस्य ददतु स्फीतां मुदा सम्पदम्॥४॥

अनुवाद—इस प्रकार यमुना कूलपर श्रीराधाके साथ विविध केलि क्रीड़ाओंके द्वारा विहार करके श्रीराधाकी रोमावली एवं मुक्तावली दोनों ही प्रयागके संगमका भ्रम उत्पन्न कर रहे थे। उस प्रयागके फल आह्लादकारी दोनों कुच हैं। उनको प्राप्त करनेकी इच्छावाले पुरुषोत्तम श्रीकृष्णके दोनों हस्त कमलोंमें समस्त व्यापार पाठमें और श्रोताओंको आनन्दरूप सम्पत्ति प्रदान करें।

बालबोधिनी—कवि जयदेव कहते हैं कि श्रीपुरुषोत्तमके हस्त व्यापार अपने पाठकों एवं श्रोताओंको अतिशय आनन्द सम्पत्ति प्रदान करें। इन हाथोंका यह वैशिष्ट्य है कि ये नित्य-निरन्तर वेणी संगममें आनन्दित होते रहते हैं। प्रयागका फल कुच है। स्वाधीनभर्तृका श्रीराधाके साथ यमुनाके तट पर श्रीकृष्ण स्वेच्छापूर्वक अनेक प्रकारकी क्रीड़ाएँ करते हैं। श्रीराधाकी रोमावली एवं मुक्तावलीका संगम गंगा-यमुना नदीके संगम विलासका स्मरण कराता है। रोमावलीकी उपमा यमुनासे की गई है; क्योंकि वह कृष्णवत् नीलवर्णा है। मुक्तावली उज्ज्वल है। अतः उसकी तुलना गंगासे की गई है। उनका संगम ही प्रयाग होता है। कुच द्वय उस प्रयाग स्नानके फल हैं, उसकी प्राप्ति ही स्नानके फलकी प्राप्ति है। नीली-नीली यमुनाकी धारा और उजली-उजली मौक्तिकावलीके संगमके कारण श्रीराधा ही प्रयाग हैं। इस प्रयागके आनन्दप्रद फलको प्राप्त करनेकी इच्छासे श्रीकृष्ण जो हस्त व्यापार कर रहे हैं, वे व्यापार समस्त पाठकोंके लिए अभिवृद्धिशील आनन्दका विधान करें।

प्रस्तुत प्रबन्धका नाम 'सुप्रीतपीताम्बर तालश्रेणी' है।

प्रस्तुत श्लोकमें सांगरूपकालंकार ही शार्दूलविक्रीड़ित छंद है, स्वाधीनभर्तृका नायिका है। पाञ्चाली रीति एवं गीति है। भारती वृत्ति है। धीरोदात्त गुणोंसे युक्त उत्तम नायक है।

पर्यङ्कीकृत–नाग–नायक–फणा–श्रेणी मणीनां गजे
संक्रान्त–प्रतिबिम्ब–संकलनया विभ्रदविभू–प्रक्रियाम्।
पादोम्भोरुहधारि–वारिधि सुतामक्ष्मां दिदृक्षुः शतैः
कायव्यूहमिवाचरन्नुपचितीभूतो हरिः पातु वः॥

अन्वय—[अथ श्रीराधायाः पूर्वोक्तभावदर्शनात् तृप्तोत्कण्ठा–वगुण्ठितः श्रीकृष्णे नेत्रबाहुल्यमिच्छन् श्रीनारायणस्य लक्ष्मीदर्शनं श्लाघितवान् इति स्मरन् कविः आशिषं प्रयुङ्क्ते]—पर्यङ्कीकृत–नागनायक–फणा–श्रेणी–मणीनां गणे (पर्यङ्कीकृतस्य नागनायकस्य शेषस्य फणाश्रेण्यां ये मणयः रत्नानि तेषां गणे समूहे) संक्रान्तप्रतिविम्ब संकलनया (संक्रान्तानां मिलितानां प्रतिबिम्बानां प्रतिकृतीनां संकलनया प्रसरणेन) विभुप्रक्रियां (सर्वव्यापिभावं) विभ्रत् (धारयन्) उपचितीभूतः (वृद्धिं प्राप्तः) पादाम्भोरुहधारि–वारिधिसुतां (चरणकमल–सेविनी या वारिधिसुता लक्ष्मीः तां) अक्ष्णां शतैः (नेत्रशतैः) दिदृक्षुः (द्रष्टुमिच्छुः) [अतएव] कायव्यूहमिव (शरीरसमूहमिव) आचरन् हरिः (युष्मान्) पातु (रक्षतु)॥२॥

अनुवाद—जिस नाग–नायक शेषराजको जिन्होंने अपनी शय्या बना रखा है, उसकी असंख्य फनोंकी मणियोंमें प्रतिबिम्बित होनेसे जिनका विभुत्व विस्तारको प्राप्त कर रहा है, श्रीलक्ष्मीजी सदैव जिनके चरण कमलोंका संवाहन करती हैं और जिन्हें वे सहस्र–सहस्र नेत्रोंसे देखना चाहती हैं, जो कायव्यूहकी भाँति अनेकों विग्रह–स्वरूपोंमें स्फीत हो रहे हैं, वे श्रीहरि आप सबकी रक्षा करें।

त्वामप्राप्य मयि स्वयम्बरपरां क्षीरोद–तीरोदरे
शंके सुन्दरि! कालकूटमपिवमूढ़ो मृड़ानीपतिः।

इत्थं पूर्वकथाभिरन्य मनसो विक्षिप्य वक्षोञ्चलं
पद्मायाः स्तनकोरकोपरि मिलन्नेत्रोहरिः पातु वः॥

अन्वय—[एवं चिन्तयन् अत्युच्छलितोत्कण्ठया तदवलोकनाय तस्य वैचित्त्यापत्तेः पुनः श्रीनारायण-चरित-वर्णन-कौतुकमातनोदिति स्मरन् पुनः अशिषयति]—अयि सुन्दरि (त्रिलोकसौन्दर्यसारभूते) क्षीरोदतीरोदरे (क्षीरोदस्य क्षीरसागरस्य तीरोदरे तटमध्ये) मयि स्वयंवरपरां (मदेकचित्तामित्यर्थः) त्वाम् अप्राप्य मूढ़ः (तव सौन्दर्यविमुग्धः) मृड़ानीपतिः (गिरिजानाथः) कालकूटं (विषं) अपिवत् (वृथैव मे जीवितमिति मन्यमानः तत्त्यागार्थमिति भावः] [इति अहं] शङ्के (सम्भावयामि); [एतेन गिरिजाया अपि पद्मायाः सौन्दर्याधिक्यं सूचितम्], इत्थं (एवं) पूर्वकथाभिः (पुराणप्रसिद्धाभिस्तदश्रुतपूर्वाभिः) अन्यमनसः (विस्मितचित्तायाः) पद्मायाः (लक्ष्म्याः) वक्षोऽञ्चलं (वक्षःस्थमुत्तरीयवसनं) विक्षिप्य (अपसार्य) स्तनकोरकोपरि (कुचकुट्मलयोः उपरि) मिलन्नेत्रः (संक्रान्तदृष्टिः) हरिः वः (प्रेमरसज्ञान् भक्तान् युष्मान्) पातु॥

अनुवाद—हे सुन्दरि! मूढ़ मृड़ानीपति रुद्र क्षीर-सागरके तटपर जब तुम्हें प्राप्त नहीं कर सके, तब तुमने स्वयं मुझे वरण कर लिया। इस प्रकार पूर्ण कथाको मनमें स्मरण कर महापद्मारूपा श्रीराधाके स्तन कोरकके ऊपर जिन्होंने नेत्र भर-भरकर दर्शन प्राप्त किये, वे श्रीहरि आप सबकी रक्षा करें।

श्रीभोज-देव-प्रभवस्य रामा-देवीसुत श्रीजयदेवकस्य।
पराशरादिबन्धुवर्गकण्ठे श्रीगीतगोविन्दकवित्वमस्तु॥

इति श्रीजयदेवकृतौ गीतगोविन्द सुप्रीतपीताम्बरो नाम द्वादशः सर्गः।

अन्वय—[अथ स्वमातृपितृस्मरणपूर्वकं पराशरादिमत-ज्ञातार एव अस्य अधिकारिणः इति तान् प्रति अशिषयति]—श्रीभोजदेव-प्रभवस्य (श्रीभोजदेवः प्रभवः जनको यस्य श्रीभोजदेव-सुतस्य)

वामादेवी–सुत–श्रीजयदेवकस्य (वामादेवी जयदेवजननी तस्याः सुतस्य श्रीजयदेवकस्य) पराशरादिप्रिय–बन्धुकण्ठे (पराशरादीनां ये प्रियाः तन्मतज्ञाः तेषु अपि ये बन्धवः तन्मतसार–श्रीराधामाधवरहः–केलिज्ञानेन बन्धुत्वं प्राप्ताः तेषां कण्ठे) [भूषणवत्] [सर्वदा] श्रीगीतगोविन्दकवित्वं (श्रीगीतगोविन्दाख्यं काव्यं) अस्तु [अनेन अस्य प्रबन्धस्य सर्व–वेदेतिहास–पुराणादि–वेत्तृणां सम्मत्या सर्वसारत्वं दुरूहत्वञ्च वोधितम्]॥ सर्गोऽयं समृद्धिदाख्य–सम्भोग–रसानन्दितः पीताम्बरः प्रियाधीनत्वेन तद्वर्ण–वसन–प्रियः श्रीकृष्णो यत्र स इति सुप्रीत–पीताम्बरो नाम द्वादशः ॥६ ॥

अनुवाद—श्रीभोजदेवसे उत्पन्न रामादेवीके पुत्र श्रीजयदेव कवि द्वारा प्रस्तुत इस प्रबन्ध काव्य श्रीगीतगोविन्दका काव्यत्व पराशर आदि प्रिय बन्धुओंके कण्ठमें सुशोभित हो।

बालबोधिनी—श्रीभोजदेव और श्रीरामादेवी (श्रीराधादेवी) के पुत्र श्रीजयदेवने भगवान्‌के प्रिय भक्तों पराशर आदि प्रिय मित्रोंके कण्ठमें मुखरित विभूषित होनेके लिए और प्रखरित होकर गगनमें अनुगुंजित होनेके लिए इस पदावलीकी रचना की है। रसरूप श्रीकृष्णके स्मरणमें अनोखे लीला–चित्र भक्त हृदयोंमें सदैव सुशोभित होते रहें, प्रिय–प्रियतर–प्रियतम–प्राण सर्वस्व बन जावें।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः